वन्दे श्रीवीरमानन्दम् —

श्रीयुत कृष्णलाल वर्माका "जैनरत्न -
प्रथम खंड" ग्रन्थ हमने देखा, जिसमे
चतुर्विंशति (२४) तीर्थकरोका चरित्र है
ऐसे लोकोपयोगी जैन साहित्यकी आजके
जमानेमे अति आवश्यकता है जो किंचित्
रूपमे वर्माजीने सफलता प्राप्त की है
इसग्रन्थमे अधिक भाग "त्रिषष्टिशलाका
पुरुषचरित्र" भगवान् श्रीहेमचन्द्राचार्य
विरचितके अनुसार है इसलिए इसकी
प्रामाणिकतामे शंकाको अवकाश नहीहै
श्रीवीरसवत् २४६२ श्रीआत्मसवत् ४०
विक्रमसवत् १९९२ ई० सन १९३५
मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी सूर्यवार तारीख
१७ नवम्बर इतिशम् । द० वल्लभविजय

आचार्य महाराज श्री विजयवल्लभ सूरिजिकी सम्मति

विषय सूची

सहायक ग्रंथ

१ त्रिषष्टि शलाका पुरुषचरित्र—श्रीमद्धेमचंद्राचार्य रचित

२ श्रीमद्भगवती सूत्र—श्रीरामचंद्रजिनागम संग्रहका गुजराती अनुवादसहित (तीन खंड)

३ विशेषावश्यक—गुजराती भाषान्तर दो भाग (आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित)

४ जैनागम शब्दसंग्रह—शतावधानी पं मुनि श्रीरत्नचंद्रजी महाराजद्वारा संपादित।

५ जैनतत्त्वादर्श—श्रीमद्विजयानंद सूरिजी महाराज विरचित।

६ श्री वीरनिर्वाण संवत और जैन कालगणना—मुनि श्रीकल्याणविजयजी महाराज लिखित।

७ पाइअसद्द महण्णवो—(प्राकृत हिन्दी कोश) लेखक पंडित हरगोविंददास टी. शेठ न्याय-व्याकरण तीर्थ।

८ अर्धमागधीकोश ४ भाग—सम्पादक, शतावधानी पं मुनि श्रीरत्नचंद्रजी महाराज।

९ श्री महावीरस्वामीचरित्र—लेखक वकील नंदलाल लल्लूभाई वडोदरा।

१० भगवान महावीरका आदर्श जीवन। लेखक पंडित रत्न पं मुनि श्री चौथमलजी महाराज।

११ उवासगदसाओ—(उपासकदशांगका गुजराती अनुवाद) अनुवादक अध्यापक बेचरदासजी दोशी व्याकरण-न्याय तीर्थ।

१२ भगवान महावीरनी धर्मकथाओ—(गुजराती) लेखक पं बेचरदास दोशी व्याकरण-न्याय तीर्थ।

वन्दे श्रीवीरमानन्दम् ।

भूमिका
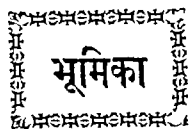
नम सत्योपदेशाय, सर्वभूतहितैषिणे ।
वीतदोषाय वीराय, विजयानन्दसूरये ॥

वर्तमान समय मुद्रण युग कहा जाता है । इसमें विविध विषयोंके अनेक बहुमूल्य ग्रन्थ भिन्न भिन्न सस्थाओं द्वारा छपकर प्रकाशित हो रहे हैं । आबालवृद्ध सभी मुद्रणकलासे मुद्रित ग्रन्थ ही पढना चाहते हैं । सुदर स्याही, बढिया कागज मनोहर अक्षर और लुभावनी बाइंडिंगसे अलकृत पुस्तकें सबसे पहले पढी जाती हैं । इस मुद्रण-कलाने अपनी प्राचीन हस्तलिखित कलाको इतना धक्का पहुँचाया ह कि जिसका वर्णन करना दुष्कर है ।

यह स्पष्ट है कि पुरानी लिखाईके जमानेमें पुस्तकें इतनी ही दुलभ, और महँगी थीं जितनी आज सुलभ और सस्ती हैं । आज हर एक आसानीसे पुस्तकें पढ सकता ह । उस जमानेमें बडी कठिनतासे पुस्तकें पढनेको मिलती थीं । यदि किसीसे एक पुस्तक लेनी होती थी तो अधिक खुशामद करनी पडती थी । आज भी—ऐसे सुलभताके समयमें भी—प्राचीन भडारोंसे हस्तलिखित पुस्तकें निकलवाते काफी अनुभव हो रहा है । पसीना उतरता है तब जाकर सरक्षकोंको दया आजावे तो पुस्तक नीकालके देते हैं । वह भी आधी या पाव सपूर्ण

तो मिलनी बहुत ही दुर्लभ है। कहीं कहीं भिक्षारश पहुंचनेसे मिल भी जाती हैं।

इस समय लिखित ग्रंथोंका पढ़नेवाले भी बहुत ही अल्प संख्यामें हैं। कितने ही तो लिखित पुस्तक है यह सुनकर हाथमें भी नहीं लेते। इस मुद्रणकलाने स्वामी वर्गको और गृहस्थवर्गको इतना बदल दिया है कि वे प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंको पढ़ना तक भूल गये हैं। यह कितना शोचनीय है!

इस मुद्रणकलाने संसारपर उपकार भी बहुत किया है। इससे प्रायः सारा संसार पढ़ना सीखा है। प्रत्येक व्यक्ति बढ़ियासे बढ़िया ग्रन्थ अल्प मूल्यमें किसीकी भी खुशामद किये बिना सरलतासे प्राप्त कर सकता है और बिना संकोच पढ़कर आत्मबोध कर सकता है। प्राचीन समयमें यह ज्ञान गुरुकृपासे मिलता था। वर्षोंतक गुरुसेवा करके शास्त्रका रहस्य सीखते थे। आज साक्षात् शास्त्र ग्रंथ हाथमें लिये और आद्योपान्त पढ़कर संतोष मानते हैं।

ऐसे उपयोगी सुंदर यन्त्रप्रधान मुद्रणयुगमें अनेक शास्त्र और धार्मिक ग्रन्थ प्रसिद्ध हो रहे हैं।

वर्तमान दुनियाको नवीनता चाहिए। प्राचीन पद्धतिसे लिखे हुए ग्रन्थ जब नई पद्धतिसे लिखकर प्रकाशित कराये जाते हैं तब उनका बहुत आदर होता है। इसी तरह बहुत बड़े ग्रन्थकी बात थोड़ेमें मधुर भाषाके अंदर लिखी जाती है तो जनसमाज उसको पढ़नेसे घबराता नहीं है। प्रत्येक यह चाहता है कि थोड़ेमें ज्यादा ज्ञान मिले। बात भी सत्य है।

यह पद्धति आज कलकी नहीं है। बहुत प्राचीन कालसे चली आती है। ससारमें देखा जाता है कि महाभारत एक लक्ष श्लोक प्रमाण बनाया गया था। २४ सहस्र श्लोक प्रमाण रामायण रचा गया था। पीछेसे ऐसे विद्वान हुए कि जिन्होंने थोडेमें सपूर्ण सारयुक्त बाल भारत, और बाल रामायण इत्यादिक रचे और उनसे पढने-वालोंका बहुत ही उपकार हुआ।

इसी तरह कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य महाराजने प्राय-छत्तीस हजार श्लोक प्रमाण त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र नामका तिरसठ महापुरुषोंका सुन्दर जीवनवृत्तान्त–युक्त ग्रथ बनाया। आचार्य श्रीहरि-भद्र सूरिजी महाराजने सवेगरसपूर्ण श्रीसमरादित्य चरित्र हजारों श्लोकोंके प्रमाणमें बनाया परन्तु यह सब बहुत विस्तृत होनेसे सभी लाभ उठा सकें इस विचारसे बाद में लघु त्रिषष्टिकी और सक्षेप समरादित्य चरित्रादिकी रचना की गई। इन सब प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि लोकरुचिको आदरपूर्वक ध्यानमें लेकर Short is sweet के अनुसार विस्तृत ग्रन्थ सक्षेपमें परन्तु भाव युक्त भाषामें रचे गये। इनसे समाज और भद्रिक आत्माओंको बडा भारी लाभ हुआ। इस-लिये थोडेमें अधिक जान सकें यह भावना आजकी नहीं परन्तु ऊपरके दृष्टान्तसे साफ प्रतीत होता है कि प्राचीन कालसे चली आती है। उपर्युक्त प्रमाणोंसे ऐसा मानना आवश्यक है।

प्राचीन साहित्य सस्कृत, प्राकृत, मागधी, और अपभ्रंशादि भाषा-ओंमें रचा हुआ अधिक देखनेमें आता है। इसका प्रधान कारण यह है कि ये भाषाएँ उस समय इसी तरह प्रचलित थीं जिस तरह आज हिन्दी, गुजराती, मराठी, मारवाडी, बगाली वगैरा हैं। बडे बडे सम्राट

भाषा और महाराष्ट्र संस्कृत तथा प्राकृत प्रभृति भाषाके सर्वोच्च स्थान होते थे। इस लिये उस समयमें प्रत्येक प्रांत और देशमें राजभाषा-का व्यवहार संस्कृत प्राकृतादिका ही था। आज सर्वों ग्रन्थ इस बातकी साक्षी दे रहे हैं।

आज राजभाषा सर्वत्र संस्कृत-प्राकृत हटकर इंग्लिश (English) देशमेंमें व्याप्त है। इस लिये हर जगह इसी इंग्लिश भाषाका आदर है। कुछ लोग संस्कृत-प्राकृत भाषाओंको (Dead language) मरी हुई भाषा कह रहे हैं। अर्थात् इनके जाननेवाले अल्प संख्यामें पाये जाते हैं। सर्वत्र राजभाषाका प्रचार जा वेगसे बढ़ रहा है। लोकसमूह अपने निर्वाहके लिये राजभाषाको जितना आदर देता है उतना औरको नहीं देता। अपने अपने देशोंमें मातृभाषाएँ तो कायम ही हैं मगर आज जितनी वेगसे राजभाषाकी गति है उतनी ही वेगसे हिन्दी भाषा पहुँच रही है। भारतके अधिक भागमें हिन्दी बोली जानेके कारण सुज्ञोंने इसका नाम राष्ट्रभाषा रखा है। यह बात बिलकुल सत्य है। इसलिये इंग्लिशसे दूसरे नंबर पर इसीका सर्वत्र आदर है।

इस राष्ट्रभाषामें जो ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं उनका आदर सब स्थानोंमें होता है। उनसे हर एक भाषा जाननेवाला लाभ उठा सकता है। इसलिये श्रीयुत वर्माजीने यह स्तुत्य प्रयास किया है। उन्होंने त्रिषष्टि शलाका पुरुषचरित्ररूपी महासागरमें डुबकी लगा कर उसमेंसे २४ बहुमूल्य मोती निकाले हैं। अर्थात् त्रिरसठ महापुरुषोंके चरित्रोंमेंसे २४ पुरुषोत्तम तीर्थंकरोंके चरित्र हिन्दीमें लिखे हैं। भाषा बड़ी ही सरल, रोचक और कोमल है।

तीर्थंकरों और दूसरे महापुरुषोंके चरित्रोंका वर्णन पैतालीस आगम शास्त्रोंमें, उनकी निर्युक्तिमें, चूर्णिमे, टीकाओंमें और वसुदेव हिण्डी वगैरहमें आता है। उसी परसे कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्यने विस्तृत रूपसे त्रिषष्टि शलाकापुरुषचरित्रकी मनोहर रचना की है। इस त्रिषष्टिके पहले भी अनेक चरित्र और कथा ग्रन्थ लिखे गये हैं परंतु प्राय वे सभी प्राकृत और मागधी भाषामें ही अधिकतर उपलब्ध होते हैं।

पैतालीस आगमशास्त्र—जो जैनोंके सर्वस्व कहे जाते है—प्राकृत—मागधी भाषामें ही श्री पूर्वाचार्योंने रचे है। इसका कारण स्पष्ट है कि उक्त आगम शास्त्रोंको अर्थ रूपसे श्रीतीर्थंकर भगवान कहते हैं और सूत्ररूपसे श्रीगणधर महाराज रचना करते है। "अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गुंथंति गणहरा निउणा" यह रचना केवल लोकोपयोगी बनानेके लिये, हरेक सुगमतासे जान सके इस पवित्र इरादेसे, की गई है। शास्त्रोंमें आता है कि,—

> बालस्त्रीमन्दमूर्खाणां, नृणां चारित्रकांक्षिणाम्।
> अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञै, सिद्धान्तः प्राकृतः कृतः॥

बाल जीवोंके, स्त्रियोंके, मन्द बुद्धिवालोंके अपठित जनोंके, और चारित्रकी आकांक्षा रखनेवालोंके अनुग्रहार्थ—भलेके लिये तत्त्वज्ञोंने सिद्धान्तोंको प्राकृत-मागधी भाषामें रचा है। इस प्रमाणसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उदार चेता पूर्व महापुरुषोंने उस समयमें प्रचलित देश भाषामें ही शास्त्रोंको रचकर लोकोपकार किया है।

श्रीहेमचन्द्राचार्य भगवानके बाद जितने चरित्र लिखे गये हैं वे प्रायः सभी संस्कृतमें ही हैं। कारण उस समय संस्कृत भाषाका प्राधान्य था।

क्रमशः समय बीतता गया और साथ ही भाषा भी बदलती गई। लोग अपनी बोलचालकी भाषाओंमें धार्मिक पुरुषोंके जीवन चरित्र देखनेके उत्सुक हुए। समयको पहचाननेवाले उपकारी महात्माओंने और आचार्योंने उस समयकी प्रचलित भाषामें रास चौपईकी रचना कर धार्मिक लोगोंकी धर्मभावनाको प्रफुल्लित और समाजको धर्मोन्मुख रखा। द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावके अनुसार गीतार्थ पूर्व महापुरुषोंने मूल वस्तुको उसी स्वरूपमें कायम रख बाहरके रूपोंमें अनेक परिवर्तन किये हैं। आज भी अनेक परिवर्तन हो रहे हैं।

संसारमें सभी प्राणी निमित्त पाकर आचरण करनेवाले हैं। अनादि-कालसे इस आत्माको शुभाशुभ निमित्त मिलते रहे हैं। अनादि अभ्यासवश यह आत्मा अशुभ निमित्त पाते ही उस तरफ खिंच जाता है। परंतु शुभकी तरफ अच्छे निमित्त पानेपर भी बड़ी मुश्किलसे खिंचता है। जबतक निमित्त पाकर आत्मा शुभ मार्गकी तरफ नहीं झुकता है तबतक कभी उसका छुटकारा नहीं होनेवाला है। यह बात निर्विवाद और सरल है।

निमित्त कहाँ तक इस आत्माको साहाय्य करता है इसका एक सुंदर आदर्श उदाहरण जो ग्रन्थमें दिया गया है वह दिखलाना अनुचित नहीं समझा जायेगा।

* समुद्रमें जिनेश्वरकी प्रतिमा—मूर्त्तिके आकारकी मछलियाँ होती हैं । उनको देखकर दूसरी कई मछलियाँ सम्यक्त्ववान बनती हैं और अपने आत्माका कल्याण करती हैं । जब अगाध समुद्रमें रहनेवाले जलचर आत्मा भी इस तरह निमित्त पाकर आत्मकल्याण करते हैं तब मनुष्योंको जिनप्रतिमा—मूर्ति कितनी उपकारक हो सकती है इसका विचार बुद्धिशालियोंको अवश्य ही करना उचित है । निमित्त प्राप्तकर प्राणियोंके विचार बदलते हैं और वे पश्चात्तापादि कर आत्मसाधनमें लग जाते हैं । इसमें संदेहके लिये कोई स्थान नहीं है ।

जिन प्रतिमा—मूर्ति आदि निमित्तोंकी जितनी जरूरत है उतनी ही जरूरत उनके आदर्श चरित्रोंको जानने की है । उसी जरूरतको पूर्ण करनेके लिए, संस्कृत प्राकृतको नहीं जाननेवालोंके लिए, समयानुकुल लोकरुचिको ध्यानमें लेकर श्रीयुत कृष्णलाल वर्माजीने चौबीस तीर्थंकरोंके उत्तम चरित्रोंकी रचना राष्ट्रभाषा हिन्दीमें की है । इनका मूल आधार कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य रचित त्रिषष्टि शलाका-पुरुष चरित्र है ।

प्रत्येक आत्मा तीर्थंकरोंके पवित्र चरित्रामृतका पानकर अपनी आत्माको पवित्र बना सके इस हेतुसे वर्माजीने वर्त्तमानकी लोक भाषामें ये चरित्र तैयार किये हैं । भाषा इतनी सरल और सुंदर है कि बेपढे स्त्री पुरुष बालक और बालिका तक इस ग्रन्थको समझ सकते हैं और अपनी आत्माका हित साध सकते हैं । वर्माजीके लिखे हुए ग्रन्थोंमें हमेशा भाषा सौष्ठवकी रक्षा होती है ।

---

*उपदेश प्रासाद ग्रन्थके तीसरे विभागके तेरहवें स्तंभमें यह वर्णन है ।

इसमें भगवान आदिनाथ, शांतिनाथ, नेमनाथ, पार्श्वनाथ और महावीरके चरित्र सविस्तर लिखे गये हैं। शेष सभी संक्षेपमें हैं।

यहाँ एक बातका खुलासा करना जरूरी जान पड़ता है। आज कल कुछ विधवाविवाहकी हिमायत करनेवाले शास्त्रोंके—मान्यनीय आगम शास्त्रोंके—पाठोंको समझे बिना कहा करते हैं कि प्रभु श्रीऋषभदेवने सुनंदाके साथ पुनर्लग्न किया था। उनको मैं सस्नेह मगर जोर देकर कहता हूँ कि यह बात बिलकुल गलत है। शास्त्रोंका अभ्यास किये बगैर इस तरहकी व्यर्थ बातें करनेसे बहुत ही हानि होती है। अपनी कुछ वृत्तियोंका खयाल न कर प्रभुतक पहुँचना सचमुच ही शोचनीय है। पुरुषोत्तम मर्यादनीय पुरुषके लिए ऐसी बात कहना वास्तवमें हास्यास्पद है। सत्य बात तो यह है कि—

युगलियोंके समयमें शादी जैसी कोई प्रथा ही नहीं थी। श्रीऋषभदेव प्रभुका इन्द्रने आकर ब्याह करवाया था तभीसे शादीकी रीति चली है। जो आज तक चली आ रही है।

यह भी ध्यान देनेकी बात है कि जब श्रीऋषभदेव प्रभु बालक थे तभी, एक युगलियाका जन्म हुआ था। युगलियाके मातापिता उनको—बालक और बालिकाको—किसी ताड़वृक्षके नीचे बिठाकर क्रीडा करनेको दूर गये हैं इतनेहीमें हवा चलती है। ताड़फल टूटता है, बालकके सिरपर जाकर गिरता है। बालक वहीं मर जाता है। बालिका अकेली रह जाती है। मातापिता बालिकाका पालन करते हैं। कुछ दिन बाद उसके मातापिता भी मर जाते हैं। अत्यंत रूपवती बालिका अकेली रह जाती है। कुछ युगलिये इसको निराधार इधर उधर

भटकते देख श्रीनाभि कुलकरके पास लाते है। नाभि कुलकर बालिकाको, उसका वृत्तान्त जानकर, ग्रहण करते है और सबको पूछकर, सबकी सम्मतिसे, सबके सामने कहते है कि, बडी, होनेपर यह सुनदा श्री ऋषभदेवकी पत्नी होगी। उस समय प्रभु बालक थे, सुनदा भी बालक थी। प्रभु बालिका सुमगला और सुनदाके साथ बडे होते हैं। योग्य उम्रके होनेपर इन्द्र और इन्द्राणियॉ मिलकर प्रभुके साथ दोनोंका व्याह कराते हैं। तभीसे प्रभुके साथ पतिपत्नी-का व्यवहार चालू होता है। यह बात आवश्यक चूर्णि, आवश्यक टीका, जबूद्वीप पन्नति और त्रिषष्टि शलाकाचरित्रमे साफ तौरमे लिखी हुई है, तो भी यह कह देना कि प्रभुने विधवाव्याह किया था, कितना निंद्य और तिरस्करणीय है सो कहनेवालोंको खुद सोच लेना चाहिए। जिनको मूल पाठ देखना हो वे ऊपर जिन ग्रन्थोंके नाम दिये हैं उनमेसे कष्ट करके देख लें। टीकाकारोंने कितना सुदर खुलासा किया है वह भी देखनेसे साफ साफ मालूम हो जायगा। कहनेवालों को यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि जगद्वदनीय प्रभु विधवाविवाह जैसा घृणित कार्य कभी कर ही नहीं सक्ते।

यह खुलासा इसलिये करता हूँ कि शास्त्रोंके सबल प्रमाण मौजूद होते हुए भी परमार्थको जाने बगैर यद्वा तद्वा शास्त्रोंके नामसे उच्छल पटना और दुनियामें असत्य फैलाना इसमे आत्मकल्याण नहीं है। भद्रिक आत्माएँ शास्त्रोंके वचनोंका परमार्थ न समझते होनेसे सत्य मान लेते हैं। इसलिये भवभीरु आत्माओंके लिये यह खुलासा सशास्त्र वचन प्रमाणसे किया गया है। सर्व दुनियाका व्यवहार को दिखलानेवाले प्रभुके लिये इस तरह कहना यह सर्वथा सत्यसे दूर

है । आशा रखता हूँ कि उपरके वास्तविक खुलासेसे पुनर्विवाहके प्रश्नकर्ताओंको सत्य जाननेको मिलेगा, और वे अपने जीवनमें परिवर्तन कर शुद्ध ब्रह्मचर्यकी तरफ पूर्ण दत्तचित्त होकर सत्यके ग्राहक बनेंगे । अस्तु ।

अंतमें इतनी नम्र सूचना करना उचित मालूम पड़ता है कि, एक बार इन चरित्रोंको शुरूसे आखिर तक जरूर पढ़ जाना चाहिए । सम्पूर्ण पढ़नेके बाद विचार स्थिर करने चाहिए । ऊपर ऊपर पढ़ लेने मात्रमें आनंद नहीं आता है और कई बार मिथ्या कल्पनाएँ भी घर कर जाती हैं । जिनेश्वरोंके पुनीत चरित्र पढ़नेसे आत्माका कल्याण होता है यह बात किसीसे कहनेकी जरूरत नहीं है ।

श्रीयुत वर्माजीने जैसे चौबीस तीर्थंकरोंके हिन्दी भाषामें सुंदर और उपयोगी चरित्र लिखकर प्रकाशित कराये हैं, वैसे ही शेष ३९ महापुरुषोंके चरित्र भी शीघ्र ही लिखकर प्रकाशित करावें ऐसी मेरी नम्र सूचना है ।

चौबीस तीर्थंकरोंके चरित्र लिखकर वर्माजीने संसारपर और खासकर हिन्दी समाजपर महान् उपकार किया है । इन चरित्रोंद्वारा उन्होंने साहित्यकी एक बहुत बड़ी कमीको पूरा किया है, इसके लिए उन्हें धन्यवाद है ।

कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्यने संस्कृतमें त्रिषष्टि शलाकापुरुषचरित्र नामका एक बड़ा सविस्तर ग्रंथ लिखा है । उसका ही सुंदर मरकतेश्वर यात्रोंमें जिनमंदिरके समान सुप्रसिद्ध ग्रंथमें ऊँचे वस्तु कलशोंपर पताका स्थिर किया गया है । पूज्यपाद महात्मार

णीय आचार्य श्रीविजयवल्लभ सूरि महाराजकी कृपासे और पूज्य प्रवर मुनिवर्य श्रीमान पुण्यविजयजी महाराजकी सहायतासे उसको सम्पादन करनेका कार्य मैने अपने सिर लिया है। भावनगरकी श्रीआत्मानद जैनसभा इसको श्रीजैन आत्मानद शताब्दि सीरिजमें प्रकाशित करेगी। मुझे आशा है कि थोडे ही समयमें मैं इसका, दसपर्वोमेंसे, प्रथम पर्व विद्वानोंके करकमलोंमें दे सकूँगा।

श्रावकवर्गसे मैं आग्रह करूँगा कि, वह वर्माजीके ग्रथरत्नको शीघ्र खरीद कर शेष महापुरुषोंके चरित्र छपानेमें ग्रथभडारके सहायक बनें।

शासनदेव श्रीवर्माजीकी उत्तम लेखनीसे लिखे गये इस ग्रथ चरित्र रत्नको, हरेक घरमें और हरेक व्यक्तिके हाथमें पहुँचा कर वर्माजीके उत्साहको प्रति दिन बढावे। और दूसरे चरित्र लिखनेकी उन्हें प्रेरणा करे। इसी शुभाषासे विराम लेता हूँ।

गोडीजीका उपाश्रय
पायधुनी, बबई न ३
वि० सं० १९९१
वीर सं० २४६१
आत्म स० ४०
विजयादसमी सोमवार
ता ७—१०—३५

न्यायांभोनिधि जैनाचार्य श्रीमद्विजयानद सूरीश्वरजी, प्रसिद्ध नाम श्री आत्मारामजी महाराजके पट्टधर पूज्यपाद आचार्य श्रीविजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराजके प्रशिष्य रत्न पन्यास श्री उमगविजयजी महाराजके अन्तेवासी, विद्वज्जन कृपाकांक्षी—

मुनि—चरणविजय

निवेदन

जैनोंका इतिहास बहुत बड़ा है। उसको व्यवस्थित रूपसे लिखने-लिखानेकी बहुत जरूरत है। मगर इस जरूरतको पूरा करनेकी तरफ बहुत कम ध्यान दिया गया है।

हिन्दीकी बात दूर रही गुजरातीमें भी इसका कोई उद्योग किया गया हो ऐसा मालूम नहीं होता। यद्यपि गुजरातीमें बहुत जैन-साहित्य प्रकाशित हुआ है, तथापि ऐसा एक भी ग्रंथ अब तक प्रकाशित नहीं हुआ है जिससे कोई आदमी जैनोंके इतिहासको सिलसिलेवार जान सके।

मेरा कई बरसोंसे विचार था कि यह काम किया जाय मगर शक्तिकी मर्यादा कार्यमें हाथ लगानेसे रोकती रही थी। जिस विषयकी सामग्री गहन अध्ययन और खोजकी एवं इनके लिए जिन आवश्यक साधनोंकी जरूरत है उन्हें अपने पास न पाकर मैं चुप रहता था।

आखिरकार सन १९२९ में मैंने अपनी अल्प शक्तिके अनुसार इस दिशामें काम करनेका इरादा पक्का कर लिया।

इस इरादेको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए 'जैनरत्न' नामक ग्रंथ कई खंडोंमें प्रकाशित करानेकी योजना की गई। जिन्होंने जैनधर्मको आचरणमें लाकर यह सिद्ध किया है कि जैनधर्म एक कल्पनामात्र वस्तु नहीं है प्रत्युत वह जीवनको उच्च, आदरणीय, परोपकारमय और पवित्र बनानेवाला एक व्यवहारोपयोगी धर्म है, जिन्होंने अपने जीवनसे यह प्रमाणित किया है कि, जैनधर्म व्यवहार

श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा इस ग्रंथके लेखक

कुशल, वीर, साहसी और आनके लिए प्राण देनेकी तालीम देनेवाला एक बहुत बड़ा गुरु है। जिन्होंने बताया है कि, जैनधर्मको धारण करनेवाला अन्याय और अत्याचारका मुकाबिला करनेके लिए असीम साहसी और वज्रतुल्य कठोर भी होता है और स्नेह एवं सौजन्यके सामने अत्यंत नम्र और कुसुमके समान कोमल भी होता है, जिन्होंने बताया है कि जैनधर्मधारक जुल्मियोंको कषायरहित होकर, तलवारके घाट भी उतार सकता है और मौका पड़नेपर हँसते हँसते अपने प्राण भी दे सकता है, जिन्होंने दुनियाको दिखाया है कि, जैनी राजा बनकर राज्यकी रक्षा कर सकता है मंत्री बनकर सुचारु रूपसे राज्यतंत्र चला सकता है, व्यापारी बनकर देशकी समृद्धि बढ़ा सकता है, न्यायासनपर बैठकर दूधका दूध और पानीका पानी कर सकता है, युद्धमें जाकर तलवारके जौहर दिखा सकता है, धन पाकर नम्रता पूर्वक उस धनको प्रजाकी भलाईके लिए खर्च सकता है विद्या पाकर प्रजाजीवनको उन्नत बनानेमें और साहित्य-की अभिवृद्धि करनेमें उसका उपयोग कर सकता है, और साधु बनकर संयम, नियम, तप और त्यागका महान आदर्श और मुक्ति-प्राप्तिका सर्वोत्तम मार्ग संसारको दिखा सकता है। उन सभीको मैं जैनोंके रत्न समझता हूं। और ऐसे रत्नोंका जीवन-संग्रह इस ग्रंथमें किया जाय। यही जैनरत्नकी योजनाका मुख्य उद्देश है।

ऐसे रत्न तीर्थंकर हुए हैं, चक्रवर्ती आदि राजा हुए हैं, मंत्री हुए हैं, आचार्य हुए हैं, साधु हुए हैं श्रावक हुए हैं, और श्राविकाएँ हुई हैं। वर्त्तमानमें भी ऐसे रत्नोंकी कमी नहीं है। इसलिए प्रत्येक खंडके दो विभाग किये गये हैं।

एक विभाग है प्राचीन महापुरुषोंकी जीवनियोंका और दूसरा विभाग है, अर्वाचीन जैन सद्गृहस्थोंके परिचयोंका। प्राचीन महापुरुषोंकी जीवनियोंका कार्य कठिन है; परंतु वर्तमान सद्गृहस्थोंके परिचयका काम अत्यंत कठिन निकला। कठिनाइयों और कष्टोंका यदि वर्णन करने बैठूं तो शायद सौ दो सौ पेजकी एक खासी पुस्तक बन जाय। मगर मैं अपनी कठिनाइयोंकी गाथा सुनाकर अपने कृपालु पाठकोंका समय बर्बाद न करूँगा। जो जिन सज्जनोंने मुझे उत्साह प्रदान किया और ग्रंथको छपानेके लिए पहलेसे धन प्रदानकर मेरा हौसला बढ़ाया उन सज्जनोंके नाम उपकारके साथ यहाँ स्मरण किये बगैर भी न रह सकूँगा। वे सज्जन हैं १ सेठ मकजी लखमसी B. A. LL. B बंबई। (२) सेठ नानजी लधा बंबई। (३) यतिजी महाराज श्रीमनूपचंद्रजी उदयपुर। (४) सेठ मणिलाल मकजी वामण बंबई (५) सेठ मोहनचंदजी मूथा विगरस (६) सेठ कुंदनमलजी कोठारी सारखा। इनके अलावा वे सभी कृपालु ग्राहक जो पहलेसे ग्रंथके ग्राहक बने हैं और जिनके नाम सधन्यवाद आगे दिये गये हैं।

उपकार माननेके बाद इस विलंबके लिए मैं नम्रतापूर्वक क्षमा माँगता हूँ। आशा है ग्राहकगण मुझे क्षमा करेंगे। मैं मानता हूँ कि पहलेसे रुपये देकर चार पाँच बरस तक ग्रंथ प्राप्त करनेके लिए राह देखना अति कठिन है; परंतु कृपालु ग्राहकोंने उस कठिनताको धीरज पूर्वक सहा इसके लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ।

इन वरसोंमें सद्गृहस्थोंकी जीवनियोंमें जो कई उल्लेखनीय घटनाएँ हो गई हैं। और जो हमें मालूम हुई हैं उनमेंसे मुख्यके उल्लेख यहाँ किये जाते हैं।

१—(क) सेठ वेलजी लखमसीको सन् १९३४ में इंडियन मर्चेंटस चेम्बरने इंडिअन लेजिस्लेटिव एसेम्बली (बडी धारासभा) के मेम्बर चुनना चाहा था। अगर ये जाते तो सभवत ये ही इस सभाके पहले जैन मेम्बर होते, परतु वेलजी सेठने वहाँ जाना स्वीकार न किया।

(ख) वेलजी सेठके छोटे भाई जादवजी सेठका सन १९३२ के नवंबरमें अवसान हो गया। यह बात बडे खेदकी हुई (इनका-पूरा हाल जाननेको ' जैनरत्न उत्तरार्द्ध श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन पेज १ से १२ तक देखो)

२—डॉ पुन्शी हीरजी मैशरी सन १९३३ में बम्बईकी म्युनिसिपल कोर्पोरेशनकी स्टेंडिंग कमेटीके प्रमुख (Chair man) चुने गये थे। यह मान मात्र इन्हींको, जैनोंमें सबसे पहले मिला था। (देखो—जै र उ श्वे. जै पेज २३—२७)

३—बडे खेदके साथ लिखना पडता है कि सेठ चाँपसी भाराकी कपनीकी जाहोजलाली अब पहलेसी नहीं रही है, परतु उन्होंने जो धर्मकार्य किये हैं वे कायम है। प्रत्येक जाहोजलालीवाले सद्गृहस्थको इससे सबक लेना चाहिए और अपनी बढतीके समय जितना हो सके उतना धर्मकार्य कर लेना चाहिए। (देखो—जै र उ श्वे स्था जै पेज २९—३२)

हिन्दी भाषामें जैन साहित्यका अभाव है। और उसमें भी चरित्र ग्रन्थ तो सभपा नहीं के बराबर ह। इस अभावकी पूर्ति करनेका काम पाँच बरस पहले मैंने अपने निर्बल कंधोंपर उठाया। बोझ-बहुत और शक्ति कम इसलिए इन पाँच बरसोंमें बहुत ही कम काम कर सका हूँ। तो भी मुझे संतोष है कि, मैं करीब ८ सौ पेजका ग्रन्थ पाठकोंके भेट करनेमें समर्थ हुआ हूँ।

मैं कह चुका हूँ कि, ग्रन्थमें दो विभाग हैं—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्धमें प्राचीन जैन महापुरुषोंके चरित्र और उत्तरार्द्धमें वर्तमान सज्जनों और सन्नारियोंके परिचय देनेका विचार किया गया है। तदनुसार जैनरत्नके प्रथम खंडमें—

(१) पूर्वार्द्धमें चौबीस तीर्थंकरोंके चरित्र हैं। ये चरित्र श्वेतांबर मूर्तिपूजक ग्रन्थानुसार दिये गये हैं। स्थानकवासी सम्प्रदाय मूर्ति-पूजाकी बातोंके सिवा वे ही सब बातें मानता है जो श्वेतांबर मूर्ति-पूजक समाज मानता है। इसलिए मूर्तिपूजाकी घटनाओंको छोड़ देनेके बाद ये चरित्र सकता स्थानकवासी सम्प्रदायकी मान्यताके अनुसार हो जायँगे।

दिगंबर सम्प्रदायकी मान्यताके अनुसार घटनाओंमें बहुतसा अंतर है। मेरा इरादा था कि दोनों सम्प्रदायोंमें जो अन्तर है उसका एक परिशिष्ट जोड़ दिया जाय; परंतु परिस्थितियोंकी प्रतिकूलताके कारण एसा करना स्थगित रखा गया है।

(२) उत्तरार्द्धमें भगवान महावीरके पुजारी तीनों सम्प्रदायोंके अनेक सज्जनों और सन्नारियोंका परिचय है। यह परिचय गुणग्राहकताकी

दृष्टिसे और उन्होंने समाज या देशके लिए क्या क्या कार्य तनसे, मनसे या धनसे, किये हैं उनका दिग्दर्शन करानेके इरादेसे दिया है। दोषदृष्टिको इसमें जगह नहीं दी गई है। दोष कषायोंसे होते हैं। कषायोंकी न्यूनाधिकताके अनुसार सभी साधारण मनुष्योंमें न्यूनाधिक प्रमाणमें दोष हैं। सज्जन दोषोंकी उपेक्षा करते है और गुणोंको अपनाते हैं।

मैं जानता हूँ कि जैन समाजमें सैकड़ों ही नहीं हजारों-लाखों रत्न हैं। सन्नारियाँ भी हैं और सज्जन भी हैं। मगर जैनरत्नकी प्रथम जिल्दमें बहुत थोड़ोंका, जिनका थोडे श्रमसे प्राप्त हो सका, परिचय है। भविष्यमें अधिकका परिचय देनेकी कोशिश की जायगी।

जैनरत्नकी दूसरी जिल्दमें हम चक्रवर्तियों, वासुदेवों प्रति वासुदेवों और बलदेवोंके चरित्र प्रकाशित करायँगे। फिर भगवान महावीरके बाद सिलसिलेवार इतिहास क्रमसे प्राचीन चरित्र प्रकाशित करानेका यत्न किया जायगा। उनमें जैनाचार्यों, जैनसाधुओं जैन राजाओं जैनमंत्रियों और प्रसिद्ध प्रसिद्ध श्रावकोंके चरित्र रहेंगे सुविधाके अनुसार इस क्रममें परिवर्तन भी किया जा सकेगा।

ऊपर जिनका उल्लेख किया गया है उनके चरित्र पूर्वार्द्धमें रहेंगे। उत्तरार्द्धमें सभी अर्वाचीन-वर्तमान जैन सज्जनों और सन्नारियोंके परिचय रहेंगे।

हमारा इरादा है कि, जैनरत्न धीरे धीरे जैनसमाजका एक उत्तम चरित्र-कोश हो जाय। मगर यह तभी संभव है, जब जैन सज्जन मेरी मदद करें।

इसकी योजना विस्तार पूर्वक ग्रन्थके अंतमें दी गई है।

इसमें जो जैन दर्शनका भाग है वह न्यायतीर्थ मुनि श्री न्याय-विजयजी महाराजका लिखा हुआ है। उन्होंने इस जैनरत्नमें छापनेकी इजाजत दी है, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

आचार्य महाराज श्री विजयवल्लभ सूरिजीका उपकार मानता हूँ कि जिन्होंने अनेक कार्योंके होते हुए भी तीर्थंकरोंके चरित्र शुरूसे अत-तक पढ़कर उनमें रही हुई अशुद्धियोंको शुद्ध करवा दिया है। इस ग्रंथमें जो शुद्धिपत्र है वह आपहीकी कृपाका फल है।

अतमें मुनि श्री चरणविजयजी महाराजके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ कि जिन्होंने कार्यकी अधिकताके होते हुए भी ग्रंथकी भूमिका लिख देनेकी कृपा की है।

कृष्णलाल वर्मा.

जैनरत्नके पहलेसे ग्राहक होनेवाले सज्जन।

	प्रति.
मुनिश्री महाराज श्री अनूपचंद्रजी उदयपुर	१
सेठ खेतसी खतमसी बंबई ।	१
सेठ मानजी मूळा बंबई ।	१
सेठ मूलचंदजी सोभागमलजी, धूलचंदजी	१
सेठ मनीचन्द्रजी बरास	१
सेठ मोहनचन्द्रजी बिगरस	१
सेठ शिवचन्द्रजी बिगरस	१
सेठ कुंदनमलजी धारवड	१
मंत्री श्रीवीरतत्त्व प्रकाशक मंडल शिवपुरी	१
विजय धर्मलक्ष्मी ज्ञानमंदिर आगरा	२
पं. भगवानदासजी जयपुर	१
श्री इन्दरमलजी जयपुर	१
श्रीपूज्यजी श्रीधरणेन्द्र सूरिजी जयपुर	१

	प्रति
सेठ रामलालजी जयपुर	१
श्री हीरालालजी कमठी	१
सेठ कुंवरजी आनंदजी भंवर	१
सेठ त्रिकमजी नरसी अहमदाबाद	१
सेठ वीरचन्द मगनजी कोलम्ब बंबई	१
सा. हीरजी जामनजी मगनजी बंबई	१
सा. वीरजी मूळा, बंबई	१
सा. शिवचरण लालजी जसवंत नगर	१
सेठ वीरचंद पानाचंद माडुम्मा	१
सेठ पदमसी शिवजी बंबई	१
डॉ. पुन्सीजी हीरजी बंबई	१
सेठ मावजीभाई भगसी बंबई	१
सेठ कुंवरजी कल्याणजी मानजी बंबई	१
सेठ लाभजी जेठाभाई बंबई	१
सा. नानसी मालजी बंबई	१

जैन-रत्न

आश्रय

सुख और दुःख जिनके सामने तुच्छ थे; मोह-माया जिनको कभी विचलित न कर सके; आरंभ किया हुआ काम जिन्होंने कभी अधूरा नहीं छोड़ा; आत्मकल्याण और जीव मात्रकी भलाई करना जिनका ध्रुव ध्येय था; भयका भयंकर भूत और स्नेहका हृदयको पानी पानी कर देनेवाला महान् स्वर्गीय देव जिनको कभी अपने स्थिर मार्गसे चलित नहीं कर सका और जिनका नाम प्रत्येक मानव हृदय-पटपर, जानमें या अजानमें, अंकित है उन्हीं वीतराग वीर प्रभुका बलदायक आश्रय ग्रहण-कर आज 'जैनरत्न'का यह महान् कार्य आरंभ करता हूँ।

आरंभ

जैनशास्त्र कहते हैं कि, जैनधर्म अनादि अनंत है। इस कथनमें कोई अतिशयोक्ति नहीं मालूम होती। कारण सत्य और अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह एव ब्रह्मचर्य ये सिद्धान्त अनादि अनन्त हैं। कोई नहीं बता सकता कि वे कबसे आरंभ हुए और कबतक रहेंगे? ऐसे महान् सिद्धान्त जिस धर्मकी

जाए तो वह धर्म अनादि अनन्त है यह बात माननेमें किसीको कोई ऐतराज नहीं हो सकता। दुनियामें जितने धर्म प्रचलित हैं उन सबमें उपर्युक्त सिद्धान्त ही किसी और किसी अंशमें काम कर रहे हैं। और उन्हीं सिद्धान्तोंके कारण वे धर्म टिके हुए हैं।

जैनधर्ममें उपर्युक्त सिद्धान्तोंकी विस्तृत विवेचना की गई है। उन सिद्धान्तोंके अनुसार जीवन बितानेवाली आत्माएँ महान् हुई हैं, होती हैं और होती रहेंगी। ऐसे सिद्धान्तोंको पालनेवाले सामान्य जीव भी सर्वज्ञ–सिद्ध–ईश्वर तक हो सकते हैं। एक महात्माने कहा है कि—

'जो नर करणी करे तो नर नारायण होय।'

यह कथन बिल्कुल ठीक है। आदमी अमर करणी करे यानी वह सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य इन पाँच सिद्धान्तोंका अपने जीवनमें पूरा पालन करे तो वह आदमी यानी आदमी मिटकर नारायण–ईश्वर–सर्वज्ञ बन जाता है।

जो पूर्णरूपसे इन सिद्धान्तोंको पालते हैं वे ईश्वर–तीर्थंकर या सामान्य केवली–सर्वज्ञ होते हैं। जो इनका पालन करनेमें कुछ कमी करते हैं वे उनसे नीचे दर्जेके होते हैं। जैनशास्त्रोंने उनके चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, प्रति वासुदेव और श्रावक ऐसे दर्जे गिनाये हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पूर्ण रूपसे पाँचों सिद्धान्तोंको पालनेवालोंकी पंक्तिमें आ जाते हैं।

जैनरत्नमें हम उपर्युक्त सिद्धान्तोंका जिन महापुरुषोंने पालन किया है या करते हैं उन्हींके जीवनका परिचय करायेंगे।

तीर्थंकर चरित-भूमिका

इस भूमिकामें उन बातोंका वर्णन दिया है जो समानरूपसे सभी तीर्थंकरोंके होती हैं। वे बातें मुख्यतया ये हैं—

१—तीर्थंकरोंकी माताओंके चौदह महा स्वप्न* ।

२—पंच कल्याणक ।

३—अतिशय ।

ये बाते भूमिका रूपमें इसलिए दी गई हैं कि, प्रत्येक तीर्थंकरके चरित्रमें बार बार इन बातोंका वर्णन न देना पड़े। हरेक चरित्रमें समय बतानेके लिए आरोंका उल्लेख आयगा। इसलिए आरोंका परिचय भी इस भूमिकामें करा दिया जाता है।

आरे

समय विशेषको जैन शास्त्रोंमें आराका नाम दिया गया है। एक कालचक्र होता है। मुख्यतया इस कालचक्रके दो भेद किये गये हैं। एक है 'अवसर्पिणी' यानी उतरता और दूसरा है 'उत्सर्पिणी' यानी चढता। अवसर्पिणीके छः भेद हैं। जैसे-(१) एकान्त सुषमा (२) सुषमा (३) सुषम दुःखमा (४) दुःखम सुषमा (५) दुःखमा और

* दिगंबर जैन आम्नायमें १६ स्वप्न माने जाते हैं और श्वेतांबर जैन आम्नायमें चौदह ।

(६) एकान्त दुखमा। इसी तरह उत्सर्पिणीके छसे गिननेसे छः भेद होते हैं। अर्थात् (१) एकान्त दुखमा (२) दुखमा (३) दुखम सुखमा (४) सुखम दुखमा (५) सुखमा, और (६) एकान्त सुखमा। इन्हीं बारह भेदों-का समय जब पूर्ण होता है तब कहा जाता है कि, अब एक कालचक्र समाप्त हो गया है।

नरक, स्वर्ग, मनुष्य लोक और मोक्ष ये चार स्थान जीवों-के रहनेके हैं। इनमेंसे अन्तिम स्थानमें अर्थात् मोक्ष में तो केवल कर्म-मुक्त जीव ही रहते हैं। बाकी तीनमें कर्मलिप्त जीव रहते हैं। नरकके जीवोंके चौदह (१४) भेद किये गये हैं। स्वर्गके जीवोंके एकसौ अठानवे (१९८) भेद किये गये हैं और मनुष्य लोकके जीवोंके ३५१ भेद किये गये हैं। मनुष्य लोकके कुछ क्षेत्रोंमें आरों का उपयोग होता है। इसलिये हम यहाँ मनुष्य लोकके विषयमें थोड़ासा लिख देना उचित समझते हैं।

मनुष्य लोकमें मुख्यतया ३ खंडोंमें मनुष्य बसते हैं। (१) जम्बू द्वीप (२) धातकी खण्ड और (३) पुष्करार्द्ध। जंबुद्वीपकी अपेक्षा धातकी खण्ड दुगना है और पुष्करार्द्ध, धातकी खण्डकी बराबर ही है। यद्यपि पुष्कर द्वीप धातकी खण्डसे दुगना है तथापि उसके आधे हिस्सेहीमें मनुष्य बसते हैं इसलिए वह धातकी खण्डके बराबर ही माना जाता है। जंबुद्वीपमें,—भरत, ऐरवत, महाविदेह, हिमवन्त, हिरण्य-वन्त, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, देवकुरु और उत्तर कुरु, ऐसे नौ

क्षेत्र हैं। धातकी खण्डमें इन्हीं नामोंके इनसे दुगने क्षेत्र हैं और धातकी खन्डके बराबर ही पुष्करार्द्धमें हैं। इनमेंके आरंभके यानी भरत, ऐरवत और महाविदेह [१]कर्म-भूमिके क्षेत्र हैं और बाकीके [२]अकर्म-भूमिके। इन्हीं कर्म-भूमिके पंद्रह क्षेत्रोंमें,—पाँच भरत, पांच ऐरवत, और पांच विदेहमें,—इन आरोंका प्रभाव और उपयोग होता है, और क्षेत्रोंमें नहीं।

महाविदेहमें केवल चौथा 'आरा' ही सदा रहता है। भरत और ऐरवतमें उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीका व्यवहार होता है। प्रत्येक आरेमें निम्न प्रकारसे जीवोंके दुःख सुखकी घटा बढ़ी होती रहती है।

१—एकान्त सुषमा—इस ओरमें मनुष्योंकी आयु तीन पल्योपम तककी होती है। उनके शरीर तीन कोस तक होते हैं भोजन वे चार दिनमें एक बार करते हैं। संस्थान उनका '[३]समचतुरस्र' होता है। संहनन[४] उनका 'वज्र ऋषभ नाराच'

१—जहां असि (शस्त्रका) मसि (लिखने पढने का) और कृषि (खेतीका) व्यवहार होता है उसे कर्मभूमि कहते हैं।

२—जहां इनका व्यवहार नहीं होता है और कल्प वृक्षोंसे सब कुछ मिलता है उन्हें अकर्मभूमि कहते हैं॥

३—सस्थान छः होते हैं। शरीरके आकार विशेषको संस्थान कहते हैं। (१) सामुद्रिक शास्त्रोक्त शुभ लक्षणयुक्त शरीरको 'समचतुरस्र' सस्थान कहते हैं। (२) नाभिके ऊपरका भाग शुभ लक्षण युक्त हो और नीचेका हीन हो उसे 'न्यग्रोध' सस्थान कहते है। (३) नाभिके नीचेका भाग यथोचित हो और ऊपरका हीन हो उसे 'सादी' सस्थान कहते हैं। (४) जहाँ हाथ, पैर, मुख, गला आदि यथा लक्षण हों और छाती, पेट, पीठ आदि विकृत हों उसे 'वामन' सस्थान कहते हैं। (५)

आभूषण अर्थात जेवर देते हैं (९) 'गेहाकार' गंधर्व नगरकी तरह उत्तम घर देते हैं और (१०) 'अनग्न' नामक कल्पवृक्ष उत्तमोत्तम वस्त्र देते हैं। उस समयकी भूमि शर्करासे (शकरसे)भी अधिक मीठी होती है। इसमें जीव सदा सुखी ही रहते हैं। यह आरा चार कोटाकोटि सागरोपमका होता है। इसमें आयुष्य,

१— आँख फुरकती है इतने समयमें असख्यात समय हो जाते है। अथवा वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्षणरूप काल जिसके भूतभाविष्य का अनुमान न हो सके, जिसका फिर भाग न हो सके उसको 'समय' कहते हैं। ऐसे असंख्यात समयोंकी एक 'आवली' होती है। ऐसी दो सौ और छप्पन आवलियोंका एक 'क्षुल्लक भव' होता है, इसकी अपेक्षा किसी छोटे भवकी कल्पना नहीं हो सकती है। ऐसे उत्तर क्षुल्लक भवसे कुछ अधिकमें एक 'श्वासोच्छ्वास रूप प्राणकी' उत्पत्ति होती है। ऐसे सात प्राणोत्पत्ति कालको एक 'स्तोक' कहते हैं। ऐसे सात स्तोकको एक 'लव' कहते हैं। ऐसे सतहत्तर लवका एक मुहूर्त (दो घडी) होता है। इस (एक मुहूर्तमें १,६७,७७,२१६ आवलियाँ होती है।) तीस मुहूर्त्तका एक 'दिन रात' होता है। पन्द्रह दिन रातका एक 'पक्ष' होता है। दो पक्षोंका एक महीना होता है। बारह महीनों का एक वर्ष होता है। (दो महीनोंकी एक 'ऋतु' होती है। तीन ऋतुओंका एक 'अयन' होता हैं। दो अयनोंका एक वर्ष होता है।) असख्यात वर्षोंका एक पल्योपम होता है। दश कोटाकोटि पल्योपमका एक सागरोपम होता है। बीस कोटाकोटि सागरोपमका एक कालचक्र होता हैं। ऐसे 'अनत' कालचक्रका एक पुद्गल परावर्तन होता है।

(**नोट**—यहाँ 'अनन्त' शब्द और 'असख्यात' शब्द अमुक सख्याके द्योतक है। शास्त्रकारोंने इनके भी अनेक भेद किये हैं। इस छोटीसी भूमिकामें उन सबका वर्णन नहीं हो सकता। इन शब्दों ('असख्यात या' अनन्त) से यह अर्थ न निकालना चाहिए कि सख्या ही न हो सके, जिसका कभी अन्त ही न आवे।)

संहनन, आदि और कल्पवृक्षोंका प्रभाव क्रमशः कम होता जाता है।

२—सुषमा—यह आरा तीन कोटाकोटि सागरोपमका होता है। इसमें मनुष्य दो पल्योपमकी आयुवाले, दो कोस ऊँचे शरीरवाले और तीन दिनमें एक बार भोजन करनेवाले होते हैं। इसमें कल्पवृक्षोंका प्रभाव भी कुछ कम हो जाता है। पृथ्वीके स्वादमें भी कुछ कमी हो जाती है और जलका माधुर्य भी कुछ घट जाता है। इसमें सुखकी अधिकता रहती है। दुःख भी रहता है मगर बहुत थोड़ा।

३—सुषम दुःषमा—यह आरा दो कोटाकोटि सागरोपमका होता है। इसमें मनुष्य एक पल्योपमकी आयुवाले, एक कोस ऊँचे शरीरवाले, और दो दिनमें एक बार भोजन करनेवाले होते हैं। इस आरेमें भी ऊपरकी तरह प्रत्येक पदार्थमें न्यूनता आती जाती है। इसमें सुख और दुःख दोनोंका समान रूपसे दौरदौरा रहता है। फिर भी प्रमाणमें सुख ज्यादा होता है।

४—दुःषम सुषमा—यह आरा बयालीस हजार कम एक कोटाकोटि सागरोपमका होता है। इसमें न कल्पवृक्ष कुछ देते हैं न पृथ्वी स्वादिष्ट होती है और न जलमें ही माधुर्य रहता है। मनुष्य एक करोड़ पूर्व आयुष्यवाले और पाँचसौ धनुष ऊँचे शरीरवाले होते हैं। इसी आरेसे असि, मसि और कृषिका कर्म आरंभ होता है। इसमें दुःख और सुखकी समानता रहनेपर भी दुःख प्रमाणमें ज्यादा होता है।

५—दुःखमा—यह आरा इक्कीस हजार वर्षका होता है। इसमें मनुष्य सात हाथ ऊँचे शरीरवाले और सौ वर्षकी आयु वाले होते हैं। इसमें केवल दुःखका ही दौरदौरा रहता है। सुख होता है मगर बहुत ही थोडा।

६ एकान्त दुखमा—यह भी इक्कीस हजार वर्षका ही होता है। इसमें मनुष्य एक हाथ ऊँचे शरीरवाले और सोलह वरसकी आयुवाले होते हैं। इसमें सर्वथा दुःख ही होता है।

इस प्रकार छठे आरेके इक्कीस हजार वर्ष पूरे हो जाते हैं, तब पुनः उत्सर्पिणी काल प्रारम होता है। उसमें भी उक्त प्रकार ही से छः आरे होते हैं। अन्तर केवल इतनाही होता है कि, अवसर्पिणीके आरे एकान्त सुपमासे प्रारम होते हैं और उत्सार्पणीके एकान्त दुःखमासे। स्थिति भी अवसर्पिणीके समान ही उत्सर्पिणीके आरोंकी भी होती है। पाठकोंको यह ध्यानमें रखना चाहिए कि ऊपर आयु और शरीरकी ऊँचाई आदिका जो प्रमाण बताया है वह आरेके प्रारंभमें होता है। जैसे जैसे काल बीतता जाता है वैसे ही वैसे उनमें न्यूनता होती जाती है और वह आरा पूर्ण होता है तब तक उस न्यूनताका प्रमाण इतना हो जाता है, जितना अगला आरा प्रारंभ होता है उसमें मनुष्योंकी आयु और शरीरकी ऊँचाई आदि होते हैं।

ऊपर जिन आरोंका वर्णन किया गया है उनमेंसे तीसरे और चौथे आरेमें तीर्थंकर होते हैं।

तीर्थंकरोंकी माताओंके चौदह स्वप्न

अनादिकालसे संसारमें यह नियम चला आरहा है कि, जब जब किसी महापुरुषके, इस कर्मभूमिमें आनेका समय होता है तभी तब उसके कुछ चिन्ह पहिलेसे दिखाई दे जाते हैं। इसी भाँति जब तीर्थंकर होनेवाला जीव गर्भमें आता है तब उस विदुषीको यानी तीर्थंकर जब गर्भमें आते हैं तब उनकी माताओंको चौदह स्वप्न आते हैं। सब तीर्थंकरोंकी माताओंको एकहीसे स्वप्न आते हैं। स्वप्नमें जो पदार्थ आते हैं उनके दिखनेका क्रम भी समान ही होता है। केवल मारंभमें फर्क हो जाता है। जैसे ऋषभ देवकी माता मरुदेवीने पहिले वृषभ–बैल देखा था; अरिष्टनेमिकी माता शिवादेवीने पहिले हस्ति–हाथी देखा था आदि। ये स्वप्न चौदह महास्वप्नोंके नामोंसे पहिचाने जाते हैं। जो पदार्थ स्वप्नमें दिखते हैं उनके नाम ये हैं (१) वृषभ (२) हस्ति (३) केसरी सिंह (४) लक्ष्मी देवी (५) पुष्पमाला (६) चंद्रमंडल (७) सूर्य (८) महाध्वज (९) स्वर्ण कलश (१) पद्मसरोवर (११) क्षीरसमुद्र (१२) विमान (१३) रत्नपुंज और (१४) निर्धूम अग्नि ये पदार्थ कैसे होते हैं उनका वर्णन शास्त्रकारोंने इस तरह किया है।

[१] वृषभ—उज्ज्वल, पुष्ट और उच्च स्कंधवाला, लम्बी और सीधी पूँछवाला, स्वर्णके घूघरोंकी मालावाला और

विद्युत्युक्त-बिजलीसहित शरद ऋतुके मेघ समान वर्ण-वाला होता है।

[२] हाथी—सफेद रंगवाला, प्रमाणके अनुसार ऊँचा, निरन्तर गंडस्थलसे झरते हुए मदसे रमणीय, चलते हुए कैलाश पर्वतकी भ्रान्ति करानेवाला और चार दाँतवाला होता है।

[३] केशरीसिंह—पीली आँखोंवाला, लम्बी जीभवाला, धवल (सफेद) केशरवाला और शूरवीरोंकी जयध्वजाके समान पूँछवाला होता है।

[४] लक्ष्मी देवी—कमलके समान आँखोंवाली, कमलमें निवास करनेवाली, दिग्गजेन्द्र अपनी सूँडोंमें कलश उठा कर जिसके मस्तकपर डालते हैं ऐसी, शोभायुक्त होती है।

[५] पुष्पमाला—देव वृक्षोंके पुष्पोंसे गूँथी हुई और धनुष के समान लम्बी होती है।

[६] चद्रमंडल—अपने ही [तीर्थंकरोंकी माताओंको उनके ही] मुखकी भ्रान्ति करानेवाला, आनन्दका कारण रूप और कांतिके समूहसे दिशाओंको प्रकाशित कियेहुए होता है।

[७] सूर्य—रातमें भी दिनका भ्रम करानेवाला, सारे अंधकारका नाश करनेवाला, और विस्तृत होती हुई कान्ति-वाला होता है।

[८] महाध्वज—चपल कानोंसे जैसे हाथी सुशोभित होता है वैसे ही घूघरियोंकी पंक्तिके भारवाला और चलाय-मान पताकासे शोभायुक्त होता है।

[९] स्वर्ण कलश—विकसित कमलोंसे इसका मुख भाग

१—शेरकी गर्दनमें जो बाल होते है उन्हे केशर कहते हैं।

आपने चौदह स्वप्ने ही देखे हैं इससे आपका पुत्र चौदह राज-लोकका स्वामी होगा।"

इस तरह स्वप्नोंका फल सुनाकर इन्द्र अपने अपने स्थान-पर चले जाते हैं।

पंच कल्याणक

तीर्थकरोंके जन्मादिके समय इन्द्रादि देव मिलकर जो उत्सव करते हैं उन उत्सवोंको कल्याणक कहते हैं। इन उत्सवोंका दृश्य अपना और प्राणीमात्रका कल्याण करने-वाले समझते हैं इसीलिए इनका नाम कल्याणक रक्खा गया है। ये एक तीर्थंकरके जीवनमें पाँच बार किए जाते हैं। इस लिये इनका नाम पंचकल्याणक रक्खा गया है। इन पाँचोंके नाम हैं [१] गर्भ-कल्याणक [२] जन्म-कल्याणक [३] दीक्षा-कल्याणक [४] केवलज्ञान-कल्याणक और [५] निर्वाण कल्याणक। इन पाचों कल्याणकोंके समय इन्द्रादि देव कैसी तयारियाँ करते हैं उनका स्वरूप यहाँ लिखा जाता है।

[१] गर्भ-कल्याणक—भगवानका जीव जब माताके गर्भमें आता है तब इन्द्रोंके आसन कंपित होते हैं। इन्द्र सिंहासनसे उतरकर भगवानकी स्तुति करते हैं और फिर जिस स्थानपर भगवान उत्पन्न होनेवाले होते हैं वहाँ वे जाकर भगवानकी माताको जो चौदह स्वप्न आते हैं उन

स्वप्नोंका फल सुनाते हैं। बस इस कल्याणकमें इतना ही होता है।

[२] जन्म-कल्याणक—भगवानका जब जन्म होता है तब यह उत्सव किया जाता है। जब भगवानका प्रसव होता है तब दिक्कुमारियाँ आती हैं।

सबसे पहिले अधोलोककी आठ दिशा-कुमारियाँ आती हैं। इनके नाम ये हैं,—भोगंकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, पुष्पमाला और अनिंदिता। ये आकर भगवानको और उनकी माताको नमस्कार करती हैं। फिर भगवानकी मातासे कहती हैं कि,—"हम अधोलोककी दिक्कुमारियाँ हैं। तुमने तीर्थंकर भगवानको जन्म दिया है। उन्हींका जन्मोत्सव करने यहाँ आई हैं। तुम किसी तरहका भय न करना। उसके बाद वे पूर्व दिशाकी ओर मुखवाला एक सूतिका गृह बनाती हैं। उसमें एक हजार स्तंभ होते हैं। फिर 'संवर्त' नामकी पवन चलाती हैं। उससे सूतिका गृहके एक एक योजन तकका भाग काँटों और कंकरों रहित हो जाता है। इतना होनेबाद ये गीत गाती हुई भगवानके पास बैठती हैं।

इनके बाद मेरु पर्वतपर रहनेवाली उर्द्धलोक वासिनी, मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, वारिषेणा और वलाहिका, नामक आठ दिक्कुमारियाँ आती हैं। वे भगवान और उनकी माताको नमस्कार कर विक्रियासे आकाशमें बादल कर, सुगंधित जलकी वृष्टि

अर्पित होता है, यह समुद्र-मंथनके बाद सुधाकुंभ–अमृत के कलशके समान और जलसे परिपूर्ण होता है।

[१०] पद्म सरोवर–इसमें अनेक विकसित कमल होते हैं, भ्रमर उनपर गुंजार करते रहते हैं।

[११] क्षीर समुद्र–यह पृथ्वीमें फैली हुई शरद ऋतु के मेघकी लीलाको चुरानेवाला और चपल तरंगोंके समूहसे चित्तको आनंद देनेवाला होता है।

[१२] विमान–यह अत्यंत कान्तिवाला होता है। ऐसा जान पड़ता है कि, जब भगवानका जीव देवलोकमें था तब यह उसीमें रहा था। इसलिए पूर्व स्नेहका स्मरण कर यह आया है।

[१३] रत्नपुंज–यह ऐसा मालूम होता है कि, मानों किसी कारणसे तारे एकत्र हो गये हैं; या निर्मल कांति एक जगह जमा हो गई है।

[१४] निर्धूम अग्नि–इसमें धुआँ नहीं होता। यह ऐसा प्रकाशित मालूम होता है कि, तीन लोकमें जितने तेजस्वी पदार्थ हैं वे सब एकीभूत हो गये हैं। ×

जब ये चौदह स्वप्न आते हैं और तीर्थंकर, देवलोकसे च्यवकर माताके गर्भमें आते हैं तब इन्द्रोंके आसन कँपते हैं। इन्द्र उपयोग देकर देखते हैं। उनको मालूम होता है कि, भगवानका जीव अमुक स्थानमें गर्भमें गया है तब वे वहाँ जाते हैं और गर्भधारण करनेवाली माताको इन्द्र इस तरह स्वप्नोंका फल सुनाते हैं:—

× दिगम्बर आम्नायमें दो मत्स्य और सिंहासन' ये दो स्वप्न अधिक हैं। तथा विमानकी जगह नाग भुवन' है। और सब समान हैं।

"हे स्वामिनी ! तुमने स्वप्नमें वृषभ देखा इससे तुम्हारे कुख से मोहरूपी कीचमें फंसे हुए धर्मरूपी रथको निकालने वाला पुत्र होगा। आपने हाथी देखा इससे आपका पुत्र महान पुरुषोंका भी गुरु और बालका स्थानरूप होगा। सिंह देखा इससे आपका पुत्र पुरुषोंमें सिंहके समान धीर, निर्भय, शूर-वीर और अस्खलित पराक्रमवाला होगा। लक्ष्मीदेवी देखी इससे आपका पुत्र तीन लोककी साम्राज्यलक्ष्मीका पति होगा। पुष्पमाला देखी इससे आपका पुत्र पुण्य दर्शनवाला होगा; अखिल जगत् उसकी आज्ञाको मालाकी तरह धारण करेगा। पूर्णचंद्र देखा इससे आपका पुत्र मनोहर और नेत्रों-को आनद देनेवाला होगा। सूर्य देखा उससे तुम्हारा पुत्र मोहरूपी अन्धकारको नष्ट कर जगत्में उद्योत करने वाला होगा। धर्मध्वज देखा इससे आपका पुत्र आपके वंशमें महान प्रतिष्ठा वाला और धर्म ध्वजी होगा। पूर्ण कुंभ देखा, इससे आपका पुत्र सर्व अतिशयोंसे पूर्ण यानी सर्व अतिशय युक्त होगा। पद्मसरोवर देखा इससे आपका पुत्र संसार रूपी जंगलमें पापतापसे तपते हुए मनुष्योंका ताप हरेगा। क्षीर समुद्र देखा इससे आपका पुत्र अधृष्य--नहीं पहुंचने योग्य होनेपर भी लोग उसके पास जा सकेंगे। विमान देखा इस-से आपके पुत्रकी वैमानिक देव भी सेवा करेंगे। रत्नपुंज देखा इससे आपका पुत्र सर्वगुण सम्पन्न रत्नोंकी खानके समान होगा। और जाज्वल्यमान निर्धूम अग्नि देखा इससे आपका पुत्र अन्य तेजस्वियोंके तेजको फीका करनेवाला होगा।

मापने सोलह स्वप्ने ही देखे हैं इससे आपका पुत्र तीन लोक-का स्वामी होगा।"

इस तरह स्वप्नोंका फल सुनाकर इन्द्र अपने अपने स्थान-पर चले जाते हैं।

पंच कल्याणक

तीर्थंकरोंके जन्मादिके समय इन्द्रादि देव मिलकर जो उत्सव करते हैं उन उत्सवोंको कल्याणक कहते हैं। इन उत्सवोंसे देवता अपना और प्राणीमात्रका कल्याण करनेवाले समझते हैं इसीलिए इनका नाम कल्याणक रक्खा गया है। ये एक तीर्थंकरके जीवनमें पाँच बार किये जाते हैं। इस लिये इनका नाम पंचकल्याणक रक्खा गया है। इन पाँचोंके नाम हैं [१] गर्भ-कल्याणक [२] जन्म-कल्याणक [३] दीक्षा-कल्याणक [४] केवलज्ञान-कल्याणक और [५] निर्वाण कल्याणक। इन पाचों कल्याणकोंके समय इन्द्रादि देव कैसी तैयारियाँ करते हैं उनका स्वरूप यहाँ लिखा जाता है।

[१] गर्भ-कल्याणक—भगवानका जीव जब माताके गर्भमें आता है तब इन्द्रोंके आसन कंपित होते हैं। इन्द्र सिंहासनसे उतरकर भगवानकी स्तुति करते हैं और फिर जिस स्थानपर भगवान उत्पन्न होनेवाले होते हैं वहाँ वे जाकर भगवानकी माताको जो चौदह स्वप्न आते हैं उन

स्वप्नोंका फल सुनाते हैं। बस इस कल्याणकमें इतना ही होता है।

[२] जन्म-कल्याणक—भगवानका जब जन्म होता है तब यह उत्सव किया जाता है। जब भगवानका प्रसव होता है तब दिक्कुमारियाँ आती हैं।

सबसे पहिले अधोलोककी आठ दिशा-कुमारियाँ आती हैं। इनके नाम ये हैं,—भोगंकरा, भोगवती, सुभोगा, भोग-मालिनी, तोयधारा, विचित्रा, पुष्पमाला और अनिंदिता। ये आकर भगवानको और उनकी माताको नमस्कार करती हैं। फिर भगवानकी मातासे कहती है कि,—"हम अधोलोक की दिक्कुमारियाँ हैं। तुमने तीर्थंकर भगवानको जन्म दिया है। उन्हींका जन्मोत्सव करने यहाँ आई हैं। तुम किसी तरह-का भय न करना। उसके बाद वे पूर्व दिशाकी ओर मुखवाला एक सूतिका गृह बनाती हैं। उसमें एक हजार स्तंभ होते हैं। फिर 'संवर्त' नामकी पवन चलाती हैं। उससे सूतिका गृहके एक एक योजन तकका भाग कांटों और कंकरों रहित हो जाता है। इतना होनेबाद ये गीत गाती हुई भगवानके पास बैठती हैं।

इनके बाद मेरु पर्वतपर रहनेवाली उर्द्धलोक वासिनी, मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, वारिषेणा और वलाहिका, नामक आठ दिक्कु-मारियाँ आती हैं। वे भगवान और उनकी माताको नमस्कार कर विक्रियासे आकाशमें बादल कर, सुगंधित जलकी वृष्टि

करती हैं। जिससे अधोलोक वासिनी दिक्कुमारियोंकी साफ की हुई एक योजन जगहकी धूल नष्ट हो जाती है; वह सुगंधसे परिपूर्ण हो जाती है। फिर वे पंचवर्णी पुष्प बरसाती हैं। उनसे पृथ्वी अनेक प्रकारके रंगोंसे रंगी हुई दिखती है। पीछे वे भी तीर्थंकरोंके गुणानुवाद गाती हुई अपने स्थानपर बैठ जाती हैं।

इनके बाद पूर्व रुचकाद्रि[1] ऊपर रहनेवाली नंदा, नंदोत्तरा, आनंदा, नंदिवर्द्धना, विजया, वैजयंती, जयंती और अपराजिता नामकी आठ दिक्कुमारियाँ आती हैं। वे भी दोनोंको नमस्कारकर अपने हाथोंमें दर्पण-आइने ले गीत गाती हुई पूर्व दिशामें खड़ी होती हैं।

इनके बाद दक्षिण रुचकाद्रिमें रहनेवाली समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुंधरा नामकी आठ दिक्कुमारियाँ आती हैं और दोनों माता-पुत्रको नमस्कार कर, हाथोंमें कलश ले गीत गाती हुई दक्षिण दिशामें खड़ी रहती हैं।

इनके बाद, पश्चिम रुचकाद्रिमें रहनेवाली इलादेवी, सुरादेवी, पृथ्वी, पद्मावती, एकनासा, अनवमिका भद्रा और अशोका नामकी आठ दिक्कुमारियाँ आती हैं और दोनों

१—रुचक नामका १३ वाँ द्वीप है। उसके चारों दिशाओंमें तथा, चारों विदिशाओंमें पर्वत हैं। उन्हींमेंके पूर्वदिशावाले पर्वतपर रहनेवाली। इसी तरह दक्षिण रुचककी आदि दिशा विदिशाओंके लिए भी समझना चाहिए।

को प्रणाम कर हाथोंमें पंखे ले गीत गाती हुई उत्तर दिशा में खड़ी हो जाती हैं।

फिर उत्तर रुचक पर्वतपर रहनेवाली अलबुसा, मिश्रकेशी, पुण्डरीका, वारणी, हासा, सर्वप्रभा, श्री और ह्री नामकी आठ दिक्कुमारियाँ आती हैं और दोनोंको नमस्कार कर, हाथोंमें चमर ले गीत गाती हुई उत्तर दिशामें खड़ी होती हैं।

फिर ईशान, अग्नि, वायव्य और नैऋत्य विदिशाओंके अन्दर रहनेवाली चित्रा, चित्रकनका, सतेरा और सूत्रामणि नामकी दिक्कुमारियाँ आती हैं और दोनोंको नमस्कार कर, अपनी अपनी विदिशाओंमें दीपक लेकर गीत गाती हुई खड़ी होती हैं।

इन सबके बाद रुचक द्वीपसे रूपा, रूपासिका, सुरूपा और रूपकावती नामकी चार दिक्कुमारियाँ आती हैं। फिर भगवानके जन्मगृहके पास ही पूर्व, दक्षिण और उत्तरमें तीन कदली गृह बनाती हैं। प्रत्येक गृहमें विमानोंके समान सिंहासन सहित विशाल चौक रचती हैं। फिर भगवानको अपने हाथोंमें उठा, माताको चतुर दासीकी भाँति सहारा दे, दक्षिणके चौकमें ले जाती हैं। दोनोंको सिंहासनपर बिठाती हैं और लक्षपाक तैलकी मालिश करती हैं। वहाँसे उन्हें पूर्व दिशाके चौकमें लेजाकर सिंहासनपर बिठाती हैं, स्नान करवाती हैं, सुगंधित काषाय वस्त्रोंसे उनका शरीर पौंछती हैं, गोशीर्ष चंदनका विलेपन करती हैं और दोनोंको दिव्य वस्त्र तथा विद्युतप्रकाशके समान विचित्र आभूषण पहनाती हैं।

तत्पश्चात् वे दोनोंको उठाकरके चौकमें लाकर सिंहासनपर बिठाती हैं। वहाँ वे अभियोगिक देवताओंके पाससे क्षुद्र हिमवंत पर्वतसे गोशीर्ष चंदनका काष्ठ मँगवाती हैं। अरणिकी दो लकड़ियोंसे अग्नि उत्पन्न कर होममें योग्य तैयार किये हुए गोशीर्ष चंदनके काष्ठस होम करती हैं। उससे जो भस्म होती है उसकी रक्षा-पोटली कर वे दोनोंके हाथोंमें बाँध देती हैं। यद्यपि प्रभु और उनकी माता महामहिमामय ही हैं, तथापि दिक्कुमारियोंका ऐसा भक्तिक्रम है, इसलिए वे करती ही हैं। तत्पश्चात् व भगवानके कानमें कहती हैं,–' तुम दीर्घायु होओ। ' फिर पाषाणके दो गोलोंको पृथ्वीमें पछाड़ती हैं। तब दोनोंको वहाँसे सूतिका गृहमें लेजाकर सुला देती हैं और गीत गाने लगती हैं।

दिक्कुमारियाँ जिस समय यह क्रियायें करती हैं उसी समय स्वर्गमें शाश्वत घंटोंकी एक साथ बड़ी ध्वनि होती है। उसको सुनकर सौधर्म देवलोकके इन्द्र सौधर्मेन्द्र पालक नामका एक असंख्य आर अप्रतिम विमान रचवाकर तीर्थंकरोंके जन्मनगरको जाता है। वह विमान पाँच सौ योजन ऊँचा और एक लाख योजन विस्तृत होता है। उसके साथ आठ इन्द्राणियाँ और उसके आधीनके हजारों लाखों देवता भी जाते हैं। विमान जब स्वर्गसे चलता है तब ऊपर बताया गया इतना बड़ा होता है। परंतु जैसे जैसे वह भरतक्षेत्रकी ओर बढ़ता जाता है वैसे ही वैसे वह संकुचित होता जाता है। यानी इन्द्र अपनी विक्रिया-लब्धिके बलसे उसे छोटा बनाता जाता है। जब विमान सूतिका-गृहके पास पहुँचता है तब वह बहुत ही छोटा हो जाता है।

वहाँ पहुँचनेपर सिंहासनमें बैठे ही बैठे इन्द्र सूतिका गृहकी परिक्रमा देता है और फिर उसे ईशान कोणमें छोड़ आप हर्षचित्त होकर प्रभुके पास जाता है। वहाँ पहले प्रभुको प्रणाम करता है फिर माताको प्रणामकर कहता है,—" माता! मैं सौधर्म देवलोकका इन्द्र हूँ। भगवानका जन्मोत्सव करनेके लिए आया हूँ। आप किसी प्रकारका भय न रक्खें।"

इतना कहकर वह भगवानकी मातापर अवस्वापनिका नामकी निद्राका प्रयोग करता है। इससे माता निद्रित-बेहोशीकी दशामें हो जाती है। भगवानकी प्रतिकृतिका एक पुतला भी बनाकर उनकी बगलमें रख देता है फिर वह अपने पाँच रूप बनाता है। देवता सब कुछ कर सकते हैं। एक स्वरूपसे भगवानको अपने हाथोंमें उठाता है। दूसरे दो स्वरूपोंसे दोनों तरफ खड़ा होकर चँवर ढोलने लगता है। एक स्वरूपसे छत्र हाथमें लेता है और एक स्वरूपसे चोबदारकी भाँति वज्र धारण करके आगे रहता है। इस तरह अपने पाँच स्वरूप सहित वह भगवानको आकाश मार्गद्वारा मेरु पर्वतपर ले जाता है। देवता जयनाद करते हुए उसके साथ जाते हैं। मेरु पर्वतपर पहुँच कर वह निर्मल कांतिवाली अति पांडुकंबला नामकी शिला-सिंहासन—जो अर्हन्तस्नात्रके योग्य होती है—पर, भगवानको अपनी गोदमें लिए हुए बैठ जाता है।

जिस समय वह मेरु पर्वतपर पहुँचता है उस समय 'महाघोष' नामका घंटा बजता है, उसको सुन, तीर्थंकरका जन्म जान, अन्यान्य ६३ इन्द्र भी मेरु पर्वतपर आते हैं।

चौसठ इन्द्रोंके नाम नीचे दिये जाते हैं।

(वैमानिक देवोंके इन्द्र १०)

१–सौधर्मेन्द्र–(इसके आनेका वर्णन ऊपर दिया है।)
२–ईशानेन्द्र, अपने अठासी लाख विमानवासी देवताओं सहित 'पुष्पक' विमानमें बैठकर आता है।
३–सनत्कुमार इन्द्र, बारह लाख विमानवासी देवताओं सहित 'सुमन' विमानमें बैठकर आता है।
४–महेन्द्र इन्द्र, आठ लाख विमानवासी देवताओं सहित 'श्रीवत्स' विमानमें बैठकर आता है।
५–ब्रह्मेन्द्र इन्द्र, चार लाख विमानवासी देवताओं सहित 'नंद्यावर्त' विमानमें बैठकर आता है।
६–लांतक इन्द्र, पचास हजार विमानवासी देवताओं सहित 'कामगव' विमानमें बैठकर आता है।
७–शुक्र इन्द्र, चालीस हजार विमानवासी देवताओं सहित 'पीतिगम' विमानमें बैठकर आता है।
८– सहस्रार इन्द्र, छः हजार विमानवासी देवताओं सहित 'मनोरम' विमानमें बैठकर आता है।
९–'आनत प्राणत' देवलोकका इन्द्र, चार सौ विमानवासी देवताओं सहित 'विमल' विमानमें बैठकर आता है।
१ –आरणाच्युत देवलोकका इन्द्र, तीन सौ विमानवासी देवताओं सहित 'सर्वतोभद्र नामके विमानमें बैठकर आता है।

(भुवन-पतिदेवोंके इन्द्र २०)

११–'चमरचंच' नगरीका स्वामी 'चमरेन्द्र' इन्द्र, अपने लाखों देवताओं सहित आता है।

१२–'बलिचंचा' नगरीका स्वामी 'बलि' इन्द्र, अपने देवताओं सहित आता है।

१३–धरण नामक इन्द्र, अपने नागकुमार देवताओं सहित आता है।

१४–भूतानंद नामका नागेन्द्र, अपने देवताओं सहित आता है।

१५–१६–विद्युत्कुमार देवलोकके इन्द्र हरि और हरिसह आते हैं।

१७–१८–सुवर्णकुमार देवलोकके इन्द्र वेणुदेव और वेणुदारी आते हैं।

१९–२०–अग्निकुमार देवलोकके इन्द्र अग्निशिख और अग्निमाणव आते हैं।

२१–२२–वायुकुमार देवलोकके इन्द्र वेलम्ब और प्रभंजन आते हैं।

२३–२४–स्तनित्कुमारके इन्द्र सुघोष और महाघोष आते हैं।

२५–२६–उदधिकुमारके इन्द्र जलकांत और जलप्रभ ,, ,,

२७–२८–द्वीपकुमारके इन्द्र पूर्ण और अविशष्ट ,, ,,

२९–३०–दिक्कुमारके इन्द्र अमित और अमित वाहन ,, ,,

१—भुवनपतिदेव रत्नप्रभा पृथ्वीमें रहते हैं। रत्नप्रभा पृथ्वीका जाडापन १८०००० योजन है।

(व्यंतर योनिके देवेन्द्र १६)

३१-३२-पिशाचोंके इन्द्र काल और महाकाल;
३३-३४-भूतोंके इन्द्र सुरूप और प्रतिरूप;
३५-३६-यक्षोंके इन्द्र पूर्णभद्र और मणिभद्र;
३७-३८-राक्षसोंके इन्द्र भीम और महाभीम;
३९-४ -किन्नरोंके इन्द्र किन्नर और किंपुरुष;
४१-४२-किंपुरुषोंके इन्द्र सत्पुरुष और महापुरुष;
४३-४४-महोरगोंके इन्द्र अतिकाय और महाकाय;
४५-४६-गंधर्वोंके इन्द्र गीतरति और गीतयशा;

(वाण व्यंतरोंकी दूसरी आठ निकायके इन्द्र १६)

४७-४८-अप्रज्ञप्तिके इन्द्र संनिहित और समानक;
४९-५ -पंचप्रज्ञप्तिके इन्द्र धाता और विधाता;
५१-५२-ऋषिवादितनाके इन्द्र ऋषि और ऋषिपालक;
५३-५४-भूतवादितनाके इन्द्र ईश्वर और महेश्वर;
५५-५६-क्रंदितनाके इन्द्र सुवत्सक और विशालक;
५७-५८-महाक्रंदितनाके इन्द्र हास और हासरति;
५९-६ -कूष्मांडनाके इन्द्र श्वेत और महाश्वेत;
६१-६२-पावकनाके इन्द्र पवक और पवकपति;

(ज्योतिष्क देवोंके इन्द्र २)

६३-६४-ज्योतिष्क देवोंके इन्द्र-सूर्य और चन्द्रमा

इस तरह वैमानिकके दस (संख्या १-१ तक) इन्द्र, भुवनपतिकी दस निकायके बीस (संख्या ११-३० तक) इन्द्र, व्यंतरोंके बत्तीस (संख्या ३१-६२) इन्द्र, और

ज्योतिष्कोंके दो (संख्या ६३-६४ तक) इन्द्र कुल मिलाकर ६४ इन्द्र अपने लक्षावधी देवताओ सहित सुमेरु पर्वतपर भगवानका जन्मोत्सव करने आते हैं । *

सबके आ जाने बाद अच्युतेन्द्र जन्मोत्सवके उपकरण लानेकी अभियोगिक देवताओंको आज्ञा देता है । वे ईशान कोणमें जाते हैं । वैक्रियसमुद्घातद्वारा उत्तमोत्तम पुद्‌गलोंका आकर्षण करते हैं । उनसे (१) सोनेके (२) चाँदीके (३) रत्नके (४) सोने और चाँदीके (५) सोने और रत्नके (६) चाँदी और रत्नके (७) सोना चाँदी और रत्नके तथा (८) मिट्टीके इस तरह आठ प्रकारके कलश बनाते हैं । प्रत्येक प्रकारके कलशकी संख्या एक हजार आठ होती है । कुल मिलाकर इन घडोंकी संख्या एक करोड़ और साठ लाखकी होती है । इनकी ऊँचाई पचीस योजन, चौड़ाई बारह योजन और इनकी नालीका मुँह एक योजन होता है । इसी प्रकार उन्होंने आठ तरहके पदार्थोंसे झारियाँ, दर्पण, रत्नके करंडिये, सुप्रतिष्ठक (डिब्बियाँ) थाल, पात्रिकाएँ (रकाबियाँ) और पुष्पोंकी चंगेरियाँ भी तैयार कीं । इनकी संख्या कलशोंहीकी भाँति प्रत्येककी एक हजार और आठ थीं । लौटते समय वे मागधादि तीर्थोंसे मिट्टी, गंगादि महा नदियोंसे जल, 'क्षुद्र हिमवंत' पर्वतसे सिद्धार्थ पुष्प (सरसोंके फूल) श्रेष्ठ गंध

* ज्योतिष्कोंके असख्यात इन्द्र हैं । वे सभी आते हैं । इसलिए असख्यात इन्द्र आकर प्रभुका जन्मोत्सव करते हैं । असख्यातके नाम चन्द्र और सूर्य दो ही हैं इसलिए दो ही गिने गये हैं ।

(व्यंतर योनिके देवेन्द्र ३२)

३१-३२-पिशाचोंके इन्द्र काल और महाकाल;
३३-३४-भूतोंके इन्द्र सुरूप और प्रतिरूप;
३५-३६-यक्षोंके इन्द्र पूर्णभद्र और मणिभद्र;
३७-३८-राक्षसोंके इन्द्र भीम और महाभीम;
३९-४ -किंनरोंके इन्द्र किंनर और किंपुरुष;
४१-४२-किंपुरुषोंके इन्द्र सत्पुरुष और महापुरुष;
४३-४४-महोरगोंके इन्द्र अतिकाय और महाकाय;
४५-४६-गंधर्वोंके इन्द्र गीतरति और गीतयशा;

(वाण व्यंतरोंकी दूसरी आठ निकायके इन्द्र १६)

४७-४८-अणपन्निके इन्द्र संनिहित और समानक;
४९-५०-पंचप्रज्ञप्तिके इन्द्र धाता और विधाता,
५१-५२-ऋषिवादितनाके इन्द्र ऋषि और ऋषिपालक;
५३-५४-भूतवादितनाके इन्द्र ईश्वर और महेश्वर;
५५-५६-कंदितनाके इन्द्र सुवत्सक और विशालक;
५७-५८-महाकंदितनाके इन्द्र हास और हासरति;
५९-६ -कुष्मांडनाके इन्द्र श्वेत और महाश्वेत;
६१-६२-पावकनाके इन्द्र पवक और पवकपति;

(ज्योतिष्क देवोंके इन्द्र २)

६३-६४-ज्योतिष्क देवोंके इन्द्र-सूर्य और चन्द्रमा

इस तरह वैमानिकके दस (संख्या १-१ तक) इन्द्र, भुवनपतिकी दस निकायके बीस (संख्या ११-३० तक) इन्द्र, व्यंतरोंके बत्तीस (संख्या ३१-६२) इन्द्र, और

'अवस्वापनिका' नामकी निद्राको हरण करता है, तीर्थं-करोंके खेलनेके लिए खिलौने रखता है और कुवेरको धनरत्नसे प्रभुका भंडार भरनेके लिये कहता है। कुवेर आज्ञाका पालन करता है। यह नियम है कि, अर्हत स्तन-पान नहीं करते हैं, इसलिए उनके अंगूठेमें इन्द्र अमृतका संचार करता है। इससे जिस समय उन्हें क्षुधा लगती है वे अपने हाथका अंगूठा मुँहमें लेकर चूस लेते हैं। फिर धात्री कर्म (धायका कार्य) करनेके लिए चार अप्सराओंको रखकर इन्द्र चला जाता है।

३—दीक्षाकल्याणक। तीर्थंकरोंके दीक्षा लेनेका समय आता है उसके पहिले तीर्थंकर वरसी दान देते हैं। इसमें एक वर्षतक तीर्थंकर याचकोंको जो चाहिये सो देते हैं। नित्य एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मुद्राओं जितना देते हैं। एक वर्षमें कुल मिलाकर तीन सौ अठासी करोड़ अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राएँ दानमें देते हैं। यह धन इन्द्रकी आज्ञासे कुवेर लाकर पूरा करता है।

जब दीक्षाका दिन आता है तब इन्द्रोंके आसन चलित होते हैं। इन्द्र भक्तिपूर्वक प्रभुके पास आते हैं और उन्हें एक पालकी तैयारकर उसमें बैठाते हैं। फिर मनुष्य और देव सब मिलकर पालकी उठाते हैं, प्रभुको वनमें ले जाते हैं। प्रभु वहाँ सब वस्त्रालंकार उतारकर डाल देते हैं और इन्द्र देव-दुष्य वस्त्र देता है उसे ग्रहण करते हैं। फिर वे केशलुंचन[1]

१—अपने ही हाथोंसे अपने केश उखाड़नेको केशलुंचन कहते हैं।

और सर्वौषधि, उसी पर्वतके 'पद्म' नामक सरोवरमेंसे कमल; इसी प्रकार अन्यान्य पर्वतों और सरोवरोंसे भी उत्तम पदार्थ लेते आते हैं।

सब पदार्थोंके आ जानेपर अच्युतेन्द्र भगवानको जिन पदार्थोंका ऊपर उल्लेख किया गया है उनसे, स्नान कराता है, शरीर पोंछकर चंदनका लेप करता है पुष्प चढ़ाता है, रत्नकी चौकीपर चाँदीके चावलोंसे अष्टमंगल[1] लिखता है और देवताओं सहित नृत्य, स्तुति आदि करके आरती उतारता है।

फिर सब (सौधर्मेंद्रके सिवा) ६२ इन्द्र भी इसी तरह पूजा प्रक्षालन करते हैं।

तत्पश्चात् ईशानेन्द्र सौधर्मेन्द्रकी भाँति अपने पाँच रूप बनाता है; और सौधर्मेन्द्रका स्थान लेता है। सौधर्मेन्द्र भगवानके चारों तरफ स्फटिक मणिके चार बैल बनाता है। उनके सींगोंसे फव्वारोंकी तरह पानी गिरता है। पानीकी धारा चारों ओरसे भगवानपर पड़ती है। स्नान करा कर फिर अच्युतेन्द्रकी भाँति ही पूजा, स्तुति आदि करता है। तत्पश्चात् वह फिरसे पहिलेहीकी भाँति अपने पाँच रूप बनाकर भगवानको ले लेता है।

इस प्रकार विधि समाप्त हो जानेपर सौधर्मेन्द्र भगवानको वापिस उनकी माताके पास ले जाता है। सोनेकी आकृति माताकी गोदसे उठाकर भगवानको लिटा देता है, माताकी

१—दर्पण वर्धमान कलश, मत्स्य युगल श्रीवत्स स्वस्तिक नंद्यावर्त और सिंहासन ये आठ मंगल कहलाते हैं।

'अवस्वापनिका' नामकी निद्राको हरण करता है, तीर्थंकरोंके खेलनेके लिए खिलौने रखता है और कुबेरको धनरत्नसे प्रभुका भंडार भरनेके लिये कहता है। कुबेर आज्ञाका पालन करता है। यह नियम है कि, अर्हत स्तन-पान नहीं करते है, इसलिए उनके अंगूठेमें इन्द्र अमृतका संचार करता है। इससे जिस समय उन्हें क्षुधा लगती है वे अपने हाथका अंगूठा मुँहमें लेकर चूस लेते हैं। फिर धात्री-कर्म (धायका कार्य) करनेके लिए चार अप्सराओंको रखकर इन्द्र चला जाता है।

३—दीक्षाकल्याणक। तीर्थंकरोंके दीक्षा लेनेका समय आता है उसके पहिले तीर्थंकर वरसी दान देते हैं। इसमें एक वर्षतक तीर्थंकर याचकोंको जो चाहिये सो देते हैं। नित्य एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मुद्राओं जितना देते हैं। एक वर्षमें कुल मिलाकर तीन सौ अठासी करोड अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राएँ दानमें देते हैं। यह धन इन्द्रकी आज्ञासे कुबेर लाकर पूरा करता है।

जब दीक्षाका दिन आता है तब इन्द्रोंके आसन चलित होते हैं। इन्द्र भक्तिपूर्वक प्रभुके पास आते हैं और उन्हें एक पालकी तैयारकर उसमें बैठाते हैं। फिर मनुष्य और देव सब मिलकर पालकी उठाते हैं, प्रभुको वनमें ले जाते हैं। प्रभु वहाँ सब वस्त्रालंकार उतारकर डाल देते हैं और इन्द्र देवदुष्य वस्त्र देता है उसे ग्रहण करते हैं। फिर वे केशलुंचन[१]

१—अपने ही हाथोंसे अपने केश उखाड़नेको केशलुंचन कहते हैं।

करते हैं। सौधर्मेन्द्र उन केशोंको अपने पल्लोंमें ग्रहणकर क्षीर-समुद्रमें डाल आता है। तीर्थंकर फिर सावद्ययोगका त्याग करते हैं। उसी समय उन्हें 'मनःपर्ययज्ञान'[1] उत्पन्न होता है। इन्द्रादि देवता प्रभुसे विनती करते हैं और अपने अपने स्थानपर चले जाते हैं। तीर्थंकर विहार करने लगते हैं।

४—केवलज्ञान-कल्याणक। सकल संसारकी, समस्त चराचरकी बात जिस ज्ञानद्वारा मालूम होती है उसे केवलज्ञान कहते हैं। जिस दिन यह ज्ञान उत्पन्न होता है, उसी दिनसे, तीर्थंकर नामकर्मका उदय होता है। जब यह ज्ञान उत्पन्न होता है तब इन्द्रादि देव आकर उत्सव करते हैं। और प्रभुकी धर्म देशना सुननेके लिए समवसरणकी रचना करते हैं। इसकी रचना देवता मिलकर करते हैं। यह एक योजनके विस्तारमें रचा जाता है। वायुकुमार देवता भूमि साफ करते हैं। मेघकुमार देवता सुगंधित जल बरसाकर छिड़काव लगाते हैं। व्यंतर देव स्वर्ण-माणिक्य और रत्नोंसे फर्श बनाते हैं; पचरंगी फूल बिछाते हैं और रत्न, माणिक्य और मोतियोंके चारों तरफ तोरण बाँध देते हैं। रत्नादिककी पुतलियाँ बनाई जाती हैं, जो किनारोंपर बड़ी सुन्दरतासे सजाई जाती हैं। उनके शरीरके प्रतिबिंब परस्परमें पड़ते हैं इससे ऐसा मालूम होता है कि, वे एक दूसरीका आलिंगन कर रही हैं। स्निग्ध नीलमणियोंसे घड़े हुए मगरके चिह्न, नष्ट, कामदेव-परित्यक्त निज चिह्नरूप मकरकी भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं। श्वेत छत्र ऐसे सुशोभित होते

१—इस ज्ञानके होनेसे पंच-इन्द्रिय जीवोंके मनकी बात मालूम होती है।

है मानों भगवानके केवलज्ञानसे दिशाएँ प्रसन्न होकर मधुर हास्य कर रही हैं। फरांती हुई ध्वजाएँ ऐसी जान पड़ती है मानों पृथ्वीने नृत्य करनेके लिए अपने हाथ ऊँचे किये हैं। तोरणोंके नीचे स्वस्तिक आदि अष्ट मंगलके जो चिन्ह बनाये जाते हैं वे वलि-पट्टके समान मालूम होते हैं। समवसरणके ऊपरी भागका यानी सबसे पहिला गढ़-कोट वैमानिक देवता बनाते हैं। वह रत्नमय होता है और ऐसा जान पडता है, मानों रत्नागिरिकी रत्नमय मेखला (कंदोरा) वहाँ लाई गई है। उस कोटपर भाँति भाँतिकी मणियोंके कगूरे बनाये जाते हैं वे ऐसे मालूम होते हैं, मानों वे आकाशको अपनी किरणोंसे विचित्र प्रकारका वस्त्रधारी बना देना चाहते हैं। उसके बाद प्रथम कोटको घेरे हुए ज्योतिष्कपति दूसरा कोट बनाते हैं। उसका स्वर्ण ऐसा मालूम होता है, मानों वह ज्योतिष्क देवोंकी ज्योतिका समूह है। उस कोटपर जो रत्नमय कंगूरे बनाये जाते हैं, वे ऐसे जान पडते हैं मानों सुरों व असुरोंकी स्त्रियोंके लिए मुख देखनेको रत्नमय दर्पण रक्खे गये हैं। इसके बाद भुवनपति देव तीसरा कोट बनाते हैं। वह अगले दोनोंको घेरे हुए होता है। वह ऐसा जान पड़ता है मानों वैताढ्य पर्वत मंडलाकार हो गया है—गोल बन गया है। उसपर स्वर्णके कंगूरे बनाये जाते है वे ऐसे जान पडते हैं मानों देवताओंकी वापिकाओंके (बावडियोंके) जलमें स्वर्णके कमल खिले हुए हैं। प्रत्येक गढमें (कोटमें) चार चार दर्वाजे होते है। प्रत्येक द्वारपर व्यंतर देव धूपारणे (धूपदानियाँ) रखते हैं। उनसे इन्द्रमणिके स्तंभसी

धूम्रलता (धुआँ) उठती है। समवसरणके प्रत्येक द्वारपर चार चार रत्नोंवाली बावड़ियाँ बनाई जाती हैं। उनमें स्वर्णके कमल रहते हैं। दूसरे कोटके ईशान कोणमें प्रभुके विश्रामार्थ एक देवच्छंद (विश्राम-स्थान) बनाया जाता है। अंदरके यानी प्रथम कोटके पूर्वद्वारके दोनों किनारे, स्वर्णके समान वर्णवाले, दो वैमानिक देवता द्वारपाल होकर रहते हैं। दक्षिण द्वारमें दो व्यन्तर देव द्वारपाल होते हैं। पश्चिम द्वारपर रक्तवर्णी दो ज्योतिष्क देव द्वारपाल होते हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानों संध्याके समय सूर्य और चंद्रमा आमने सामने आ खड़े हुए हैं। उत्तर द्वारपर कृष्ण रूप भुवनपति द्वारपाल होकर रहते हैं। दूसरे कोटके चारों दर्वाजोंपर, क्रमशः अभय, पास, अंकुश और मुद्गरको धारण करनेवाली; श्वेतमणि, शोणमणि, स्वर्णमणि और नीलमणिके समान कान्तिवाली, पहिलेहीकी तरह चार निकायकी (चार जातिकी) जया, विजया, अजिता और अपराजिता नामकी दो दो देवियाँ प्रतिहार (चोबदार) बनकर खड़ी रहती हैं। और अन्तिम कोटके चारों दर्वाजोंपर तुंबरु, खट्वांगधारी, मनुष्य-मस्तक-मालाधारी और जटा मुकुटमंडित नामक चार देवता द्वारपाल होते हैं। समवसरणके मध्य भागमें व्यन्तर देव तीन कोसका ऊँचा एक चैत्य-वृक्ष बनाते हैं। उस वृक्षके नीचे विविध रत्नोंकी एक पीठ रची जाती है। उस पीठपर अप्रतिम मणिमय एक छंदक (बैठक) रचा जाता है। छंदकके मध्यमें पाद पीठ सहित रत्नसिंहासन रचा जाता है। सिंहासनके दोनों बाजू दो यक्ष चामर लेकर खड़े होते हैं। समवसर

णके चारों दर्वाजोंपर अद्भुत कान्तिके समूहवाला एक एक धर्मचक्र स्वर्णके कलशमें रक्खा जाता है।

भगवान चार प्रकारके [वैमानिक, भुवनपति, व्यंतर और ज्योतिष्क] देवताओंसे परिवेष्टित समवसरणमें प्रवेश करनेको रवाना होते हैं। उस समय सहस्र पत्रवाले स्वर्णके नौ कमल बनाकर देवता भगवानके आगे रखते हैं। भगवान जैसे जैसे आगे बढते जाते हैं, वैसे ही वैसे देवता पिछले कमल उठाकर आगे धरते जाते हैं। भगवान पूर्व द्वारसे समवसरणमें प्रविष्ट होकर चैत्य-वृक्षकी प्रदक्षिणा करते हैं और फिर तीर्थको नमस्कारकर सूर्य जैसे अंधकारको नष्ट करनेके लिए पूर्वासनपर आरूढ होता है वैसे ही मोहरूपी अंधकारको छेदनेके लिए प्रभु पूर्वाभिमुख सिंहासनपर विराजते हैं। तब व्यंतर अवशेष तीन तरफ भगवानके रत्नके तीन प्रतिबिंब बनाते हैं। यद्यपि देवता प्रभुके अगूठे जैसा रूप बनानेकी भी शक्ति नहीं रखते हैं तथापि प्रभुके प्रतापसे उनके बनाये हुए प्रतिबिंब प्रभुके स्वरूप जैसे ही बन जाते हैं। प्रभुके मस्तकके चारों तरफ फिरता हुआ शरीरकी कान्तिका मंडल (भामंडल) प्रकट होता है। उसका प्रकाश इतना प्रबल होता है कि उसके सामने सूर्यका प्रकाश भी जुगनुसा मालूम होता है। प्रभुके समीप एक रत्नमय ध्वजा होती है।

विमानपतिकी स्त्रियाँ पूर्व द्वारसे प्रवेश करती हैं, तीन प्रदक्षिणा देती हैं और तीर्थंकर तथा तीर्थको नमस्कारकर प्रथम

१-साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाके समूहको तीर्थ कहते हैं।

कोठेमें, साधु साध्वियोंके लिए स्थान छोड़कर उनके स्थानके मध्य भागमें अग्निकोणमें खड़ी रहती हैं । भुवनपति, व्यंतर और ज्योतिष्क देवोंकी स्त्रियाँ दक्षिण दिशासे प्रविष्ट होकर नैर्ऋत्य कोणमें खड़ी होती हैं । भुवनपति, ज्योतिष्क और व्यंतर देवता पश्चिम द्वारसे प्रविष्ट होकर वायव्य कोणमें बैठते हैं । वैमानिक देवता, मनुष्य और मनुष्य-स्त्रियाँ उत्तर द्वारसे प्रविष्ट होकर ईशान दिशामें बैठते हैं । ये सब भी विमानपति देवोंकी स्त्रियोंकी भाँति ही पहिले प्रदक्षिणा देते हैं, तीर्थंकर और तीर्थको नमस्कार करते हैं और तब अपना स्थान लेते हैं । वहाँ पहिले आये हुए-चाहे वे महान् ऋद्धि वाले हों या अल्प ऋद्धिवाले हों-जो कोई पीछेसे आता है उस नमस्कार करते हैं और पीछेसे आनेवाला पहिलेसे आकर बैठे हुओंको नमस्कार करता है । प्रभुके समवसरणमें किसीको, आनेकी, कोई रोकटोक नहीं होती । वहाँपर किसी तरहकी विकथा (निंदा) नहीं होती; विरोधियोंके मनमें वहाँ वैरभाव नहीं रहता; वहाँ किसीको किसीका भय नहीं होता । दूसरे कोटेमें तिर्यंच आकर बैठते हैं और तीसरे गढ़में सबके वाहन रहते हैं ।

५—निर्वाणकल्याणक । जब तीर्थंकरोंके शरीरसे आत्मा उससे छूटकर मोक्षमें चला जाता है, तब इन्द्रादि देव शरीरका संस्कार करनेके लिए आते हैं। आभियोगिक देव नन्दनवनमें-से गोशीर्ष चन्दनके काष्ठ लाकर पूर्व दिशामें एक गोलाकार चिता रचते हैं। अन्य देवता क्षीरसमुद्रका जल लाते हैं । उससे इन्द्र भगवानके शरीरको स्नान कराता है, गोशीर्ष चन्दनका लेप

करता है, हंसलक्षणवाले श्वेत देवदुष्य वस्त्रसे शरीरको आच्छादन करता है और मणिकाके आभूषणोंसे उसे विभूषित करता है। दूसरे देवता भी इन्द्रकी भाँति ही शरीरको स्नानादि कराते हैं। फिर एक रत्नकी शिविका तैयार करते है। इन्द्र शरीरको उठाकर शिविकामें रखता है। इन्द्र ही उसको उठाता है। शिविकाके आगे आगे कई देवता धूपदानियाँ लेकर चलते हैं। कई शिविकापर पुष्प उछालते हैं, कई उन पुष्पोंको उठाते हैं। कई आगे देवदुष्य वस्त्रोंके तोरण बनाते हैं, कई यक्षकर्दमका (धूप) छिड़काव करते हैं, कई गोफनसे फैंके हुए पत्थरकी तरह शिविकाके आगे लोटते है, और कई रुदन करते हुए पीछे पीछे आते है।

इस तरह शिविका चिताके पास पहुँचती है। इन्द्र प्रभुके शरीरको चितामें रखता है। अग्निकुमार देवता चितामे अग्नि लगाता है। वायुकुमार देवता वायु चलाता है इससे चारों तरफ अग्नि फैलकर जलने लगती है। चितामें देवता बहुतसा कपूर और घड़े भर २ के घी तथा शहद डालते हैं। जब अस्थिके सिवा सब धातु नष्ट हो जाते है तब मेघकुमार क्षीर समुद्रका जल बरसाकर चिता ठंडी करता है। फिर सौधर्मेंद्र ऊपरकी दाहिनी डाढ लेता है, चमरेन्द्र नीचेकी दाहिनी डाढ़ लेता है, ईशानेन्द्र ऊपरकी बाईं डाढ़ ग्रहण करता है और बलीन्द्र नीचेकी बाईं डाढ लेता है। अन्यान्य देव भी अस्थियाँ लेते हैं।

फिर वे जहाँ प्रभुका अग्निसंस्कार होता है उस स्थानपर तीन समाधियाँ बनाते हैं और तब सब अपने २ स्थानपर चले जाते हैं।

अतिशय

अतिशय—यानी उत्कृष्टता, विशिष्ट चमत्कारी गुण। जो आत्मा ईश्वर—स्वरूप होकर पृथ्वी पर अवतार लेता है उसमें सामान्य आत्माओंकी अपेक्षा कई विशेषताएँ होती हैं। उन्हीं विशेषताओंको शास्त्रकारोंने 'अतिशय' कहा है। तीर्थंकरोंके चौंतीस अतिशय होते हैं। वे इस प्रकार हैं:—

१–शरीर अनन्त रूपमय, सुगन्धमय, रोगरहित, पसेव (पसीना) रहित और मलरहित होता है।

२–उनका रुधिर दुग्धके समान सफेद और दुर्गन्ध-हीन होता है।

३–उनका आहार तथा निहार चर्मचक्षु—गोचर नहीं होते हैं। (यानी उनका भोजन करना और पाखाने पेशाब जाना किसीको दिखाई नहीं देता है।)

४–उनके श्वासोच्छ्वासमें कमलके समान सुगंध होती है।

५–समवसरण केवल एक योजनका होता है, परन्तु उसमें कोटाकोटि मनुष्य देव और तिर्यंच बिना किसी प्रकारकी बाधाके बैठ सकते हैं।

६–जहाँ वे होते हैं वहाँसे पच्चीस योजनतक यानी दो सौ कोसतक आसपासमें कहीं कोई रोग नहीं होता है और जो पहिले होता है वह भी नष्ट हो जाता है।

७–लोगोंका पारस्परिक वैरभाव नष्ट हो जाता है।

८–मरीका रोग नहीं फैलता है।

९-अतिवृष्टि-आवश्यकतासे ज्यादा बारिश-नहीं होती है।
१०-अनावृष्टि-बारिशका अभाव-नहीं होता है।
११-दुर्भिक्ष नहीं पड़ता है।
१२-उनके शासनका या किसी दूसरेके शासनका लोगोंको भय नहीं रहता है।
१३-उनके[१] वचन ऐसे होते हैं कि, जिन्हें देवता, मनुष्य और तिर्यंच सब अपनी भाषामें समझ लेते हैं।

१—वचन ३५ गुणवाले होते हैं। (१) सब जगह समझे जा सकते हैं। (२) एक योजनतक वे सुनाई देते हैं। (३) प्रौढ (४) मेघके समान गंभीर (५) सुस्पष्ट शब्दोंमें (६) सन्तोषकारक (७) हर एक सुननेवाला समझता है कि वे वचन मुझीको कहे जाते हैं (८) गूढ आशयवाले (९) पूर्वापर विरोधरहित (१०) महापुरुषोंके योग्य (११) संदेह-विहीन (१२) दूषणरहित अर्थवाले (१३) कठिन विषयको सरलतासे समझानेवाले (१४) जहाँ जैसे शोभें वहाँ वैसे बोले जा सकें (१५) षट द्रव्य और नौ तत्त्वोंको पुष्ट करनेवाले (१६) हेतु पूर्ण (१७) पद रचना सहित (१८) छ द्रव्य और नौ तत्त्वोंकी पटुता सहित (१९) मधुर (२०) दूसरेका मर्म समझमें न आवें ऐसी चतुराई-वाले (२१) धर्म, अर्थ प्रतिबद्ध (२२) दीपकके समान प्रकाश-अर्थ सहित (२३) परनिन्दा और स्वप्रशंसा रहित (२४) कर्त्ता, कर्म, क्रिया, काल और विभक्ति सहित (२५) आश्चर्यकारी (२६) उनको सुननेवाला समझे कि वक्ता सर्व गुण सम्पन्न है। (२७) धैर्यवाले (२८) विलम्ब रहित (२९) भ्रांति रहित (३०) प्रत्येक अपनी भाषामें समझ सकें ऐसे (३१) शिष्ट बुद्धि उत्पन्न करनेवाले (३२) पदोंका अर्थ अनेक तरहसे विशेष रूपसे बोले जायँ ऐसे (३३) साहसपूर्ण (३४) पुनरुक्ति-दोष-रहित और (३५) सुननेवालेको दुःख न हो।

१४–एक योजनतक उनके वचन समानरूपसे सुनाई देते हैं।
१५–सूर्यकी अपेक्षा बारह गुना अधिक उनके भामंडलका तेज होता है।
१६–आकाशमें धर्मचक्र होता है।
१७–बारह जोड़ी (चौबीस) चँवर बगैर दुलाये दुलते हैं।
१८–पादपीठ सहित स्फटिक रत्नका उज्ज्वल सिंहासन होता है।
१९–प्रत्येक दिशामें तीन तीन छत्र होते हैं।
२०–रत्नमय धर्मध्वज होता है। इसको इन्द्र–ध्वजा भी कहते हैं।
२१–नौ स्वर्ण कमलपर चलते हैं (दो पर पैर रखते हैं, सात पीछ रहते हैं, जैसे जैसे आगे बढ़ते जाते हैं वैसे ही वैसे देवता पिछले कमल उठाकर आगे रखते जाते हैं।)
२२–मणिका, स्वर्णका और चाँदीका इस तरह तीन गढ़ होते हैं।
२३–चार मुँहसे देशना–धर्मोपदेश–देते हैं। (पूर्व दिशामें भगवान बैठते हैं और शेष तीन दिशाओंमें व्यंतर देव तीन प्रतिबिंब रखते हैं।)
२४–उनके शरीरप्रमाणसे बारह गुना अशोक वृक्ष होता है। वह छत्र घंटा और पताका आदिसे युक्त होता है।
२५–काँटे अधोमुख–उल्टे हो जाते हैं।
२६–चलते समय वृक्ष भी झुककर प्रणाम करते हैं।
२७–चलते समय आकाशमें दुंदुभि बजते हैं।
२८–योजन प्रमाणमें अनुकूल वायु होता है।
२९–मोर आदि शुभ पक्षी प्रदक्षिणा देते फिरते हैं।
३ –सुगंधित जलकी वृष्टि होती है।

३१–जल-स्थलमें उद्भूत पाँच वर्णवाले सचित्त फूलोंकी, घुटने तक आ जायँ इतनी, वृष्टि होती है।
३२–केश, रोम, दाढ़ी, मूँछ, और नाखून (दीक्षा लेनेके बाद) बढ़ते नहीं हैं।
३३–कमसे कम चार निकायके एक करोड देवता पासमें रहते हैं।
३४–सर्व ऋतुएँ अनुकूल रहती हैं।

इनमेंसे प्रारंभके चार (१-४) अतिशय जन्महीसे होते हैं इस लिये वे स्वाभाविक-सहजातिशय या मूलातिशय कहलाते हैं।

फिर ग्यारह (५-१५) अतिशय केवलज्ञान होनेके बाद उत्पन्न होते हैं। ये 'कर्मक्षयजातिशय' कहलाते हैं। इनमेंके सात (६-१२) उपद्रव, तीर्थंकर विहार करते हैं, तब भी नहीं होते हैं यानी विहारमें भी इनका प्रभाव वैसा ही रहता है।

अवशेष उन्नीस (१६-३४) देवता करते हैं। इसलिए वे 'देवकृतातिशय' कहलाते हैं।

ऊपर जिन अतिशयोंका वर्णन किया गया है उनको शास्त्रकारोंने संक्षेपमें चार भागोंमें विभक्त कर दिया है। जैसे-(१) अपायापगमातिशय (२) ज्ञानातिशय (३) पूजातिशय और (४) वचनातिशय।

१–जिनसे उपद्रवोंका नाश होता है उन्हें 'अपायापगमातिशय' कहते हैं। ये दो प्रकारके होते हैं। स्वाश्रयी और पराश्रयी।

(अ) जिनसे अपने संबंधके अपाय–उपद्रव द्रव्यसे और भावसे नष्ट होते हैं वे 'स्वाश्रयी' कहलाते हैं।

(ब) जिनसे दूसरोंके उपद्रव नष्ट होते हैं उनको 'पराश्रयी' अपायापगमातिशय कहते हैं। अर्थात् जहाँ भगवान विचरण करते हैं वहाँसे प्रत्येक दिशामें सवा सौ योजन तक प्रायः रोग, मरी[1], वैर, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुष्काल आदि उपद्रव नहीं होते हैं।

२–ज्ञानातिशय–इससे तीर्थंकर लोकालोकका स्वरूप भली प्रकारसे जानते हैं। भगवानको केवलज्ञान होता है, इससे कोई भी बात उनसे छिपी हुई नहीं रहती है।

३–पूजातिशय–इससे तीर्थंकर सर्वपूज्य होते हैं। देवता, इन्द्र, राजा, महाराजा, बलदेव, वासुदेव चक्रवर्ती आदि सभी भगवानकी पूजा करते हैं।

४–वचनातिशय–इससे देव, तिर्यंच और मनुष्य सभी भगवानकी वाणीको अपनी अपनी भाषामें समझ जाते हैं। इसके ३५ गुण होते हैं। (जिनका वर्णन तेरहवें अतिशयके कुछ नोटमें किया जा चुका है।)

१—सारे रोग इत्यादि उपद्रव है।

२—तीर्थंकरके अठारह दूषण नाश होजाते हैं। अठारह दूषण ये हैं– (१) दानान्तराय (२) लाभान्तराय (३) भोगान्तराय (४) उपभोगान्तराय (५) वीर्यान्तराय (६) हास्य (७) रति (८) अरति (९) शोक (१०) भय (११) जुगुप्सा–निंदा (१२) काम (१३) मिथ्यात्व (१४) अज्ञान (१५) निद्रा (१६) अविरति (१७) राग और (१८) द्वेष।

श्रीआदिनाथ-चरित।

आदिमं पृथिवीनाथ-मादिमं निष्परिग्रहम्।
आदिमं तीर्थनाथं च ऋषभस्वामिनं स्तुमः॥ ३॥
(सकलार्हत-स्तोत्र)

भावार्थ—पृथ्वीके प्रथम स्वामी, प्रथम परिग्रह-त्यागी (साधु) और प्रथम तीर्थकर श्री 'ऋषभ' देव स्वामीकी हम स्तुति करते हैं।

विकास

जैनधर्म यह मानता है कि, जो जीव श्रेष्ठ कर्म करता है, वह धीरे धीरे उच्च स्थितिको प्राप्त करता हुआ अन्तमें आत्म-स्वरूपका पूर्ण रूपसे विकासकर, जिन कर्मोंके कारण वह दुःख उठाता है उन कर्मोंको नाशकर, ईश्वरत्व लाभकर, सिद्ध बन जाता है—मोक्षमें चला जाता है और संसारके जन्म, जरा, मरणसे छुटकारा पा जाता है।

जैनधर्मके सिद्धान्त, उसकी चर्या और उसके क्रियाकांड मनुष्यको इसी लक्ष्यकी ओर ले जाते हैं और उसे श्रेष्ठ कर्ममें लगाते हैं। जैनधर्मके पुराणोंमें इन्हीं श्रेष्ठ कर्मोंके शुभ फलोंका और उन्हें छोडनेवालों पर गिरनेवाले दुःखोंका वर्णन किया गया है।

भगवान आदिनाथके जीवकी सबसे मुख्यतया उत्क्रांति इनी आरंभ हुई उससे लेकर आदिनाथ तककी स्थितिका वर्णन संक्षेपमें यहाँ देदेनेसे पाठकोंको इस बातका ज्ञान होगा कि जीव कैसे उत्तम कर्मों और उत्तम भावनाओंसे ऊँचा उठता जाता है; आत्माभिमुख होता जाता है।

प्रथम भव—क्षितिप्रतिष्ठ नगरमें 'धन' नामक एक साहूकार रहता था। उसके पास अतुल सम्पत्ति थी। एक बार उसने अपने यहाँसे अनेक प्रकारके पदार्थ लेकर वसन्तपुर नामके नगरको जानेका विचार किया। उसके साथ दूसरे व्यापारी तथा अन्य लोग भी जाकर लाभ उठा सकें इस हेतुसे उसने सारे नगरमें ढिंढोरा पिटवा दिया। यह भी कहला दिया कि, साथ जानेवालोंका खर्चा सेठ देगा। सैकड़ों लोग साथ जानेको तैयार हुए। धर्मघोष नामके आचार्य भी अपने–साधु–मंडल सहित उसके साथ चले।

कई दिनके बाद मार्गमें जाते हुए साहूकारका पड़ाव एक जंगलमें पड़ा। वर्षाऋतुके कारण इतनी बारिश हुई कि वहाँसे चलना भारी हो गया। कई दिन तक पड़ाव वहीं रहा। जंगलमें पड़े रहनेके कारण लोगोंके पासका खाना–पीना समाप्त हो गया। लोग बड़ा कष्ट भोगने लगे। सबसे ज्यादा दुःख साधुओंको था; क्योंकि निरन्तर जल-वर्षाके कारण उन्हें दो दो तीन तीन दिन तक अन्न-जल नहीं मिलता था। एक दिन साहूकारको खयाल आया कि, मैंने साधुओंको साथ लाकर उनकी खबर न ली। वह तत्काल ही उनके पास गया

और उनके चरणोंमें गिरकर क्षमा माँगने लगा। उसका अन्तः-करण उस समय पश्चात्तापके कारण जल रहा था। मुनिने उसको सान्त्वना देकर उठाया। उस समय बारिश बंद थी। 'धन' ने मुनि महाराजसे गोचरी लेनेके लिए अपने डेरे चल-नेकी प्रार्थना की। साधु गोचरीके लिए निकले और फिरते हुए धनसेठके डेरे पर भी पहुँचे। मगर वहाँ कोई चीज साधुओंके ग्रहण करने लायक न मिली। 'धन' बड़ा दुःखी हुआ और अपने भाग्यको कोसने लगा। मुनि वापिस चलनेको तैयार हुए। इतनेहीमें उसको घी नजर आया। उसने घी ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। शुद्ध समझकर मुनि महाराजने 'पात्र' रख दिया। धन सेठको घृत वहोराते समय इतनी प्रसन्नता हुई मानों उसको पड़ी निधि मिल गई है। हर्षसे उसका शरीर रोमांचित हो गया। नेत्रोंसे आनंदाश्रु बह चले। वहोरानेके बाद उसने साधुओंके चरणोंमें वंदना की। उसके नेत्रोंसे गिरता हुआ जल ऐसा मालूम होता था, मानो वह पुण्य बीजको सींच रहा है।

संसार-त्यागी, निष्परिग्रही साधुओंको इस प्रकार दान देने और उनकी तब तक सेवा न कर सका इसके लिए पश्चात्ताप करनेसे उसके अन्तःकरणकी शुद्धि हुई और उसे मोक्षका कारण दुर्लभ बोध-बीज (सम्यक्त्व) मिला।

रात्रिको वह फिर साधुओंके पास गया। धर्मघोष आचार्यने उसे धर्मका उपदेश दिया। सुनकर उसे अपने कर्तव्यका भान हुआ।

वर्षा बीतने और मार्गोंके साफ हो जाने पर साहूकार वहाँसे रवाना हुआ और अपने नियत स्थानपर पहुँचा ।

दूसरा भव—मुनियोंको शुद्ध अन्तःकरणसे दान देनेके प्रभावसे 'धन' सेठका जीव, मरकर, उत्तर कुरुक्षेत्रमें, सीता नदीके उत्तर तरफकी तरफ, जम्बू वृक्षके उत्तर भागमें, युगलिया रूपसे उत्पन्न हुआ । उस क्षेत्रमें हमेशा एकांत सुखमा आरा रहता है । वहाँके युगलियोंको तीसरे दिनके अन्तमें भोजन करनेकी इच्छा होती है । उनका शरीर तीन कोसका होता है। उनकी पीठमें दो सौ छप्पन पसलियाँ होती हैं । उनकी आयु तीन पल्योपमकी होती है। उन्हें कषाय बहुत थोड़ा होता है, ऐसे ही माया-ममता भी बहुत कम होती है। उनकी आयुके जब ४९ दिन रह जाते हैं तब स्त्रीके गर्भसे एक सन्तानका जोड़ा उत्पन्न होता है। आयु समाप्त होने तक अपनी सन्तानका पालनकर अंतमें वे मरनेपर स्वर्गमें जाते हैं । उस क्षेत्रकी मिट्टी शर्कराके समान मीठी होती है। शरद ऋतुकी चन्द्रिकाके समान जल निर्मल होता है। वहाँ दस प्रकारके कल्पवृक्ष* इच्छित पदार्थोंका देते हैं । इस प्रकारके स्थानमें धन सेठका जीव आनन्द-भोग करने लगा ।

तीसरा भव—युगलियाका आयु पूर्णकर धनसेठका जीव मरा और पूर्व संचित पुण्य-बलके कारण सौधर्म देवलोकमें जाकर देवता हुआ ।

* देखो पेज ६–७

चौथा भव—वहाँसे च्यवकर धनसेठका जीव पश्चिम महा-विदेह क्षेत्रके अंदर, गंधिलावती विजय प्रांतमें, वैताढ्य पर्वत पर, गंधारके गंधसमृद्धि नगरमें, विद्याधरोंके राजा शतबलकी रानी चंद्रकान्ताकी कूखसे पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ। नाम 'महा-बल' पड़ा। वयस्क (जवान) होनेपर विनयवती नामकी योग्य कन्याके साथ उसका ब्याह हुआ। शतबलने अपनी ढलती आयु देखकर दीक्षा ग्रहण की। महाबल राज्याधिकारी हुआ।

महाबल विषय-भोगमें लिप्त होकर काल विताने लगा। खुशामदी और नीच प्रकृतिके लोग उसको नाना भाँतिके कौश-लोंसे और भी ज्यादा विषयोंके कीचमें फँसाने लगे।

एक वार उसके स्वयंबुद्ध मंत्रीने इस दुःखदायी विषयवा-सनासे मुँह मोडकर परमार्थ साधनका उपदेश दिया। विषय-पोषक खुशामदियोंने स्वयंबुद्धका विरोधकर इस आशयका उपदेश दिया कि,—"जहाँ तक जिन्दगी है वहाँतक खाना पीना और चैन उड़ाना चाहिए। देह नाश होनेपर न कोई आता है न जाता है।" स्वयंबुद्धने अनेक युक्ति-योंसे परलोक और आत्माके पुनर्जन्मको सिद्ध किया और कहाः—"शायद आपको याद होगा कि, आप और मैं एक वार नंदनवनमें गये थे। वहाँ हमने एक देवताको देखा था। वे आपके पितामह थे। उन्होंने संसार छोड़कर तपश्चर्या करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होना बताया था और कहा था कि, आपको भी संसारके दुःखकारी विषय-सुखोंमे लिप्त न होना चाहिए।"

महाबलने परलोक आदि स्वीकारकर इस युवावस्थामें संसार-

त्यागके उपदेशका कारण पूछा । स्वयंबुद्धने कहा कि, मैंने एक ज्ञानी मुनिके द्वारा मालूम किया है कि, आपकी आयु केवल एक महीनेकी बाकी रह गई है। इसीलिए आपसे शीघ्र ही धर्म-कार्यमें महत होनेका अनुरोध करता हूँ।

यह सुनकर महाबलने उसी समय, अपने पुत्रको बुलाकर राज्यासनपर बिठा दिया और अपने समस्त कुटुंब परिवार, स्वजन संबंधी, नौकर, रैयत, छोटे बड़े सबसे क्षमा माँगकर मोक्षकी कारण दीक्षा ग्रहण की। फिर उसने चतुर्विध आहारका त्यागकर, शुद्ध आत्मचिन्तवनमें-समाधिमें दिन बिताये और क्षुधा पिपासा आदि परिसह सह, दुर्द्धर तपकर, शरीरका त्याग किया।

पाँचवाँ भव—धनसेठका जीव महाबलका शरीर छोड़ कर श्रीप्रभनामके देवलोकमें ललितांग नामका देव हुआ। अनेक प्रकारके सुखोपभोगोंमें समय बिताया और आयु समाप्त होने पर देव देहका त्याग किया।

छठा भव—धनसेठका जीव वहाँसे च्यवकर जम्बूद्वीपके सागर समीपस्थ पूर्व विदेहमें, सीता नामकी महानदीके उत्तर तटपर, पुष्कलावती नामक प्रदेशके लोहार्गल नगरके राजा सुवर्णजंघके घर, उसकी लक्ष्मी नामकी रानीकी कूखसे जन्मा। उसका नाम वज्रजंघ रक्खा गया। उसका ब्याह वज्रसेन राजाकी गुणवती बीवी कूखसे जन्मी हुई श्रीमती नामकी कन्याके साथ हुआ। वज्रजंघ जब युवा हुआ तब उसके पिता उसको राज्य-भार सौंपकर साधु हो गये।

ज्रजंघ न्यायपूर्वक शासन और राज्य-लक्ष्मीका उपभोग रने लगा।

वज्रजंघके श्वसुर वज्रसेनने भी अपने पुत्र पुष्करपालको राज्य देकर दीक्षा ले ली। कुछ कालके बाद सीमाके सामंत राजा लोग पुष्करपालसे युद्ध करनेको खड़े हुए। वज्रजंघ अपने सालेकी मददको गया। सामंतोंको परास्तकर जब वह वापिस लौटा तब मार्गमें उसे सागरसेन और मुनिसेन नामक दो मुनियोंके दर्शन हुए। मुनियोंकी देशना सुनकर उसके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। वह यह विचारता हुआ अपने नगरको चला कि, मैं जाते ही अपने पुत्रको राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर लूँगा। नगरमें पहुँचा और वैराग्यकी भावना भाता हुआ अपने शयनागारमें सो गया।

उधर वज्रजंघके पुत्रने राजके लोभसे, धनका लालच देकर, मंत्रियोंको फोड़ लिया और राजाको मारनेका षड्यंत्र रचा। आधी रातके समय राजकुमारने वज्रजंघके शयनागारमें विषधूप किया। जहरीले तेज धूँएने राजा और रानीके नयनोंमें घुसकर उनका प्राण हर लिया।

सातवाँ और आठवाँ भव—राजा और रानी त्यागकी शुभ कामनाओंमें मरकर उत्तरकुरुक्षेत्रमें युगलिया पैदा हुए। वहाँसे आयु समाप्त कर दोनों सौधर्मदेवलोकमें अति स्नेह वाले देवता हुए। दीर्घकाल तक सुखोपभोगकर दोनोंने देव-पर्यायका परित्याग किया।

नवाँ भव—वहाँसे च्यवकर धनसेठका जीव जम्बूद्वीपके विदेह-क्षेत्रमें क्षितिप्रतिष्ठितनगरमें सुविधि वैद्यके घर जीवानंद नामक पुत्र हुआ। उसी समय नगरमें चार लड़के और भी उत्पन्न हुए। उनके नाम क्रमशः महीधर, सुबुद्धि, पूर्णभद्र और गुणाकर थे। श्रीमतीका जीव भी देवलोकसे च्यवकर उसी नगरमें ईश्वरदत्त सेठका केशव नामक पुत्र हुआ। ये छहों अभिन्न हृदय मित्र थे। जीवानंद अपने पिताकी भाँति ही बहुत अच्छा वैद्य हुआ।

एक बार छहों मित्र वैद्य जीवानंदके घर बैठे थे। अचानक ही एक मुनि महाराज वहाँ आ गये। तपसे उनका शरीर सूख गया था। कुसमय और अपथ्यकर भोजन करनेसे उन्हें कृमिकुष्ठ व्याधि हो गई थी। सारा शरीर कृमिकुष्ठसे व्याप्त हो गया था। तो भी उन महात्माने कभी किसीसे औषधकी याचना नहीं की थी।

गोमूत्रिका[1] विधानसे मुनि महाराजका वहाँ आगमन देखकर उन्होंने उन्हें नमस्कार किया। उनके चले जाने पर महीधरने जीवानंदसे कहा:—"तुम्हें चिकित्साका अच्छा ज्ञान है तो भी तुम वेश्याकी भाँति पैसेके लोभी हो। मगर

१—साधु गोचरी जाते हैं तब उनके लिए जमीनपर चले हुए गोमूत्रकी भाँति भिक्षार्थ जानेकी व्यवस्था है। अर्थात् साधुओंको सिल-सिलेवार घरोंमें गोचरी नहीं जाना चाहिए। एक घरमें जाकर फिर उसके सामनेवाले घरमें जाना चाहिए घर भी छोड़कर जाना चाहिए। इस कोई साधुओंके लिए खास तरहसे किसी प्रकारकी तैयारी न कर सके।

हर जगह पैसेहीका खयाल नहीं करना चाहिए। दयाधर्मका भी विचार रखना चाहिए। मुनि महाराजके समान निष्परिग्रहियोंकी चिकित्सा धन प्राप्तिकी आशा छोड़कर करना चाहिए। अगर तुम ऐसे मुनियोंकी भी चिकित्सा निर्लोभ होकर नहीं करते हो तो तुम्हें और तुम्हारे ज्ञानको धिक्कार है।"

जीवानंदने कहाः—"मुझे खेद है कि, मुनिकी चिकित्साके लिए जो सामग्रियाँ चाहिएँ वे मेरे पास नहीं हैं। मेरे पास केवल लक्षपाक तैल है। गोशीर्षचंदन और रत्नकंबल नहीं हैं। अगर तुम ला दो तो मैं मुनिका इलाज करूँ।"

पाँचों मित्र दोनों चीजें ला देना स्वीकारकर वहाँसे रवाना हुए। फिरते हुए एक वृद्ध व्यापारीके पास पहुँचे। व्यापारीने कहाः—"प्रत्येकका मूल्य एक एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ हैं।" उन्होंने कहाः—"हम मूल्य देनेको तैयार हैं।" व्यापारीने कहाः—"ये चीजें तुम किसके लिए चाहते हो?" उन्होंने मुनि महाराजका हाल सुनाया। सुनकर व्यापारीने कहाः—"मैं इनका मूल्य नहीं लूँगा। तुम ले जाओ और मुनि महाराजका इलाज करो। वे दोनों चीजें लेकर रवाना हुए। मुनि महाराजकी दशाका विचार करनेसे वृद्धको वैराग्य हो गया। उसने घर-बार त्याग कर दीक्षा ले ली।

जीवानंदको जब गोशीर्षचदन और रत्नकंबल मिले तब वह बहुत प्रसन्न हुआ। छःहों मित्र मिलकर मुनि महाराजके पास गये। मुनि महाराज नगरसे दूर एक वटवृक्षके नीचे कायोत्सर्ग ध्यानमें निमग्न थे। तीनों बैठ गये। मुनि महाराजने जब ध्यान

छोड़ा तब उन्होंने साविधि वंदना करके महाराजसे इलाज करानेकी प्रार्थना की। यह भी निवेदन किया कि चिकित्सामें किसी जीवकी हिंसा नहीं होगी। महाराजने इलाज करनेकी सम्मति दे दी। वे तत्काल ही एक गायका मुर्दा ले आये। फिर उन्होंने मुनि महाराजके शरीरमें लक्षपाक तैलकी मालिश की। तैल सारे शरीरमें प्रविष्ट हो गया। तैलकी अत्यधिक उष्णताके कारण मुनि महाराज मूर्छित हो गये। शरीरके अंदरके कीड़े व्याकुल होकर शरीरसे बाहिर निकल आये। जीवानन्दने रत्न-कंबल मुनि महाराजके शरीर पर ओढ़ा दिया। कंबल शीतल था इसलिए सारे कीड़े उसमें आ गये। जीवानंदने आहिस्ता-गीसे कंबलको उठाकर गायके मुर्दे पर डाल दिया। 'सत्पुरुष छोटेसे छोटे अपकारी कीड़ेके प्राणोंकी भी रक्षा करते हैं।' कीड़े गायके शरीरमें चले गये। जीवानंदने मुनि महाराजके शरीर पर अमृतरसके समान प्रभाववाला गोशीर्ष चंदनका लेप किया। उससे मुनि महाराजकी मूर्च्छा भंग हुई। थोड़ी देरके बाद और लक्षपाक तैलकी मालिश की। पहिली बार चर्मगत कीड़े निकले थे; अबकी बार मांसगत कीड़े निकले। उनको भी पूर्ववत् गायके शबमें छोड़ दिया और गोशीर्ष चंदनका लेप किया। तीसरी बार और लक्षपाक तैल मला। उससे हड्डियोंमेंके सब कीड़े निकल गये। पूर्ववत् कीड़ोंको गोशबमें छोड़कर बड़े भक्तिभावसे जीवानंदने मुनिमहाराजके शरीरमें गोशीर्ष चंदनका विलेपन किया। उससे उनका शरीर स्वस्थ होकर कुंदनकी भाँति दमकने लगा। जीवानन्दने और उसके पाँचों साथियोंने

भक्ति-पुरस्सर वंदनाकर कहाः—"महाराज! हमने इतनी देरतक आपके धर्म-ध्यानमें बाधा डाली इसके लिए हमें क्षमा कीजिए।"

× × × ×

कुछ कालके बाद उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ। जीवानंदने अपने पाँचों मित्रों सहित दीक्षा ले ली। अनेक प्रकारसे जीवोंकी रक्षा करते और संयम पालते हुए वे तपश्चरण करने लगे। अन्त समयमें उन्होंने संलेखना करके अनशनव्रत ग्रहण किया और आयु समाप्त होनेपर उस देहका परित्याग किया।

दसवाँ भव—धनका जीव जीवानंद नामसे ख्यात शरीरको छोड़कर अपने छःहों मित्रों सहित, बारहवें देवलोकमें इन्द्रका सामानिक देव हुआ। यहाँ बाईस सागरका आयु पूर्ण किया।

ग्यारहवाँ भव—वहाँसे च्यवकर धनसेठका (जीवानंदका) जीव जंबूद्वीपके पूर्वविदेहमें, पुष्कलावती विजयमें, लवण समुद्रके पास, पुंडरीकिनी नामक नगरके राजा वज्रसेनके घर, उसकी धारणी नामा रानीकी कूखसे, जन्मा। नाम वज्रनाभ रक्खा गया। जब ये गर्भमें आये थे तब इनकी माताको चौदह महा स्वप्न आये थे। जीवानंदके भवमें इनके जो मित्र थे वे भी पाँच तो इनके सहोदर भाई हुए और केशवका जीव दूसरे राजाके यहाँ जन्मा।

जब ये वयस्क हुए तब इनके पिता 'वज्रसेन' राजाने दीक्षा ग्रहण कर ली। ये स्वयंबुद्ध भगवान थे।

वज्रनाभ चक्रवर्ती थे। जब इनके पिताको केवलज्ञान हुआ तभी इनकी आयुधशालामें भी चक्ररत्नने प्रवेश किया।

अन्यान्य तेरह रत्न भी उनको उसी समय प्राप्त हुए। जब उन्होंने पुष्कलावती विजयको अपने अधिकारमें कर लिया तब समस्त राजाओंने मिलकर उनपर चक्रवर्तित्वका अभिषेक किया। वे चक्रवर्तीकी सारी संपदाओंका भोग करते थे तो भी इनकी बुद्धि हर समय धर्म-साधनकी ओर ही रहती थी।

एक बार वज्रसेन भगवान विहार करते हुए पुंडरीकिणी नगरीके निकट समोसरे। वज्रनाभ भी धर्मदेशना सुननेके लिए गये। देशना सुनकर उनकी वैराग्य-भावना बहुत ही प्रबल हो गई। उन्होंने अपने पुत्रको राज्य सौंपकर दीक्षा ले ली। घोर तपस्या करने लगे। तपश्चरणके प्रभावसे उनको खेलादि लब्धियाँ× प्राप्त हुईं; परन्तु उन्होंने लब्धियोंका कभी

× १—खेलौषधि लब्धि—इस लब्धिवालेका थूक लगानेसे रोगियोंके रोग मिट जाते हैं। २—जल्लौषधि लब्धि—इस लब्धिवालेके कान, नाक और शरीरका मैल सारे रोगोंको मिटाता है और कस्तूरीके समान सुगंधवाला होता है। ३—आमर्षौषधि लब्धि—इस लब्धिवालेके स्पर्शसे सारे रोग मिट जाते हैं। ४—सर्वौषधि लब्धि—इस लब्धिवालेके शरीरसे छूआ हुआ बारिशका जल और नदीका जल सारे रोग मिटाता है। इनके शरीरसे स्पर्शकरके आया हुआ वायु जहरके असरको दूर करता है। इनके वचनका स्मरण महाविषकी पीड़ाको मिटाता है और इनके नख, केश दाँत और शरीरसे जो कुछ होता है वह दवा बन जाता है। ५—वैक्रिय लब्धि—इससे नीचे लिखी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं—

१—अणुत्व शक्ति—बारीकसे बारीक वस्तुमें भी प्रवेश करनेकी शक्ति। सुईके धागेमेंसे इस लब्धिवाला निकल सकता है।

२—महत्त्व शक्ति—इस शक्तिसे शरीर इतना बड़ा किया जा सकता है कि मेरु पर्वतका शिखर भी उसके घुटने तक रहे।

उपयोग नहीं किया। कारण मुमुक्षु पुरुष प्राप्त वस्तुमें भी आकांक्षा रहित होते हैं।

३—लघुत्व शक्ति-इस शक्तिसे शरीर पवनसे भी हलका बनाया जा सकता है।

४—गुरुत्व शक्ति-इससे शरीर इतना भारी बनाया जा सकता है कि इन्द्रादि देव भी उसके भारको सहन नहीं कर सकते।

५—प्राप्ति शक्ति-इससे पृथ्वीपर बैठे हुए आकाशस्थ तारोंको भी छू सकता है।

६—प्रकाम्य शक्ति-इससे जमीनकी तरह पानीपर चल सकता है और जलकी तरह जमीनमें स्नानादि कर सकता है।

७—ईशत्व शक्ति-इससे चक्रवर्ती और इन्द्रके जैसा वैभव किया जा सकता है।

८—वशित्व शक्ति-इससे क्रूर प्राणी भी वशमें आ जाते हैं।

९—अप्रतिघाती शक्ति-इससे एक दर्वाजेकी तरह पर्वतों और चट्टानोंमेंसे मनुष्य निकल सकता है।

१०—अप्रतिहत अन्तर्ध्यान शक्ति-इससे मनुष्य पवनकी तरह अदृश्य हो सकता है।

११—कामरूपत्व शक्ति-इससे एक ही समयमें अनेक तरहके रूप धारणकर सारा लोक पूर्ण किया जा सकता है।

६—बीजबुद्धि लब्धि-इससे एक अर्थसे अनेक अर्थ जाने जा सकते हैं। जैसे-एक बीज बोनेसे अनेक बीज प्राप्त होते है। ७—कोष्ट बुद्धि लब्धि—जैसे कोठेमें अनाज रहता है वैसे ही इससे पहले सुनी हुई बात पुनरावर्तन न करनेपर भी हमेशा याद रहती ह। ८—पदानुसारिणी लब्धि-इससे आरंभका बीचका या अंतका, चाहे किसी स्थलका एक पद सुननेसे सारा ग्रंथ याद आ जाता है। ९—मनोबली

कर्म बाँधा। वीस स्थानकोमेंसे केवल एक स्थानकका पूर्णरूपसे आराधन भी तीर्थंकर नामकर्मके वंधका कारण होता है। परन्तु

सहित आहार, औषध और वस्त्रादिके दानद्वारा गुरुभक्ति करना, ५—स्थविरपद–पर्यायस्थविर (वीस वर्षकी दीक्षापर्यायवाला,) वयस्थविर (साठ वर्षकी वयवाला) और श्रुतस्थविर (समवायाग-धारी) की भक्ति करना, ६—उपाध्यायपद–अपनी अपेक्षा वहुश्रुत-धारीकी अन्न–वस्त्रादिसे भक्ति करना, ७—साधुपद–उत्कृष्ट तप करने-वाले मुनियोंकी भक्ति करना, ८ ज्ञानपद–प्रश्न, वाचन मनन, आदि द्वारा निरन्तर द्वादशागी रूप श्रुतका सूत्र, अर्थ और उन दोनोंसे ज्ञानोपयोग करना, ९—दर्शनपद–शकादि दोषरहित स्थैर्य आदि गुणोंसे भूषित और शमादि लक्षणवाला दर्शन-सम्यक्त्व पालना, १०—विनयपद–ज्ञान, दर्शन,चारित्र और उपचार इन चारोंका विनय करना, ११—चारित्रपद–मिथ्या करणादिक दश विध समाचारीके योगमें और आवश्यकमें अतिचार रहित यत्न करना, १२—ब्रह्मचर्यपद–अहिंसादि मूलगुणोंमें और समिति आदि उत्तर गुणोंमें अतिचार-रहित प्रवृत्ति करना, १३—समाधिपद–क्षण क्षणमें प्रमादका परिहारकर ध्यानमें लीन होना, १४—तपपद–मन और शरीरको बाधा-पीडा न हो इस तरह तपस्या करना, १५–दानपद-मन, वचन और कायशुद्धिके साथ तपस्वियोंको दान देना, १६—वैयावच्चपद आचार्यादि दस (१ जिनेश्वर २ सूरि ३ वाचक ४ मुनि ५ वालमुनि ६ स्थवि-रमुनि ७ ग्लानमुनि ८ तपस्वीमुनि ९ चैत्य १० श्रमणसघ) की अन्न, जल और आसनसे सेवा करना, १७—सयमपद–चतुर्विध सघके सारे विघ्न मिटाकर मनमें समाधि उत्पन्न करना, १८—अभिनवज्ञानपद–अपूर्व ऐसे सूत्र, अर्थ तथा दोनोंका यत्न पूर्वक ग्रहण करना, १९—श्रुतपद–श्रद्धासे उद्भासन (वहुमानपूर्वक वृद्धि–प्रकाशन) करके तथा अवर्णवादका नाश करके श्रुतज्ञानकी भक्ति करना, २०—तीर्थपद–विद्या, निमित्त, कविता, वाद और धर्म–कथा आदिसे शासनकी प्रभावना करना।

वज्रनाभने वीसों स्थानकोंका आराधन किया था। खड्गकी धाराके समान व्रतस्याका-चारित्रका चौदह लाख पूर्व तक अतिचार रहित उन्होंने पालन किया और अन्तमें दोनों प्रकारकी संलेखना पूर्वक पादपोपगमन अनशन-व्रत स्वीकार कर देह त्यागा।

बारहवाँ भव-मरकर अनुत्तर विमानमें तेतीस सागरोपमकी आयुवाले देवता हुए।

तेरहवाँ भव-आदिनाथ नामरूप।

पूर्वज।

जब मनुष्यका अधःपात होने लगता है तब वह परमुखापेक्षी हो जाता है। हम तीर्थंकर चरित-भूमिकामें कह चुके हैं कि, तीसरे आरेके अन्तमें कल्प वृक्षोंका दान कम हो जाता है। युगलियोंमें भी कषायोंका थोड़ा उदय हो जाता है। उनके कारण वे कुछ अयोग्य कार्य भी करने लग जाते हैं। उस अयोग्य कार्यको रोकनेके लिए किसी सशक्त मनुष्यकी आवश्यकता होती है। युगलिये अपनेमेंसे किसी एक मनुष्यको चुन लेते हैं। वह पुरुष कुलकर कहलाता है। वही युगलियोंको बुरे कामोंसे रोकनेके लिए दंड भी नियत करता है।

तीसरे आरेके अन्तमें एक युगलियोंका जोड़ा उत्पन्न हुआ। पुरुषका नाम सागरचन्द्र था और स्त्रीका प्रियदर्शना। उनका शरीर नौ सौ धनुषका था। उनकी आयु ⅒ पल्योपमकी थी। उनका संहनन 'वज्र ऋषभनाराच' और संस्थान 'समचतुरस्र' था।

इनके पूर्व भवमें एक मित्र था। वह कपट करनेसे मरकर उसी स्थान पर चार दाँतवाला हाथी हुआ। एक दिन उसने फिरते हुए सागरचन्द्र और प्रियदर्शनाको देखा। उसके हृदयमें पूर्व स्नेहके कारण प्रेमका संचार हुआ। उसने दोनोंको आहिस्तगीके साथ सूँडसे उठाकर अपनी पीठपर बिठा लिया। अन्यान्य युगलियोंने, सागरचन्द्रको इस हालतमें देखकर आश्चर्य किया। उसको विशेष शक्तिसम्पन्न समझा और अपना न्यायकर्ता बना लिया। वह विमल—श्वेत, वाहन—सवारी पर बैठा हुआ था, इसलिए लोगोंने उसका नाम 'विमलवाहन' रक्खा।

क्योंकि कल्पवृक्ष उस समय बहुत ही थोड़ा देने लगे थे, इसलिए युगलियोंके आपसमें झगड़े होने लग गये थे। इन झगड़ोंको मिटाना ही विमलवाहनका सबसे प्रथम काम था। उसने सोच-विचारकर सबको आपसमें कल्पवृक्ष बाँट दिये। और 'हाकार' का दंड विधान किया। जो कोई दूसरेके कल्पवृक्षपर हाथ डालता था, वह विमलवाहनके सामने लाया जाता था। विमलवाहन उसे कहताः—"हा! तूने यह किया" इस कथनको वह मौतसे भी ज्यादा दंड समझता था और फिर कभी अपराध नहीं करता था।

प्रथम कुलकर विमलवाहनके युगल संतान उत्पन्न हुई। पुरुषका नाम चक्षुष्मान था और स्त्रीका चन्द्रकान्ता। विमलवाहनके बाद चक्षुष्मान कुलकर हुआ। वह भी अपने पिताहीकी भाँति 'हाकार' दंड विधानसे काम लेता था। यह

दूसरा कुलकर था। जोड़ेका शरीर आठ सौ धनुषका और आयु असंख्य पूर्वकी थी।

इनके जो जोड़ा उत्पन्न हुआ उसका नाम यशस्वी और सुरूपा थे। आयु दूसरे कुलकरके जोड़ेसे कुछ कम और शरीर साढ़े सात सौ धनुषका था। पिताकी मृत्युके बाद यशस्वी तीसरा कुलकर नियत हुआ। उसके समयमें 'हाकार' दंड विधानसे कार्य्य न चला। तब उसने 'माकार' का दंडविधान और किया। अल्प अपराधवालेको 'हाकार' का विशेष अपराधवालेको माकारका और गुरुतर अपराध वालेको दोनोंका दंड देने लगा।

सुरूपाकी कूखसे अभिचन्द्र और प्रतिरूपाका जोड़ा उत्पन्न हुआ। वह अपने मातापितासे कुछ अल्प आयुवाला और साढ़े छः सौ धनुष शरीरवाला था। यशस्वीके बाद अभिचन्द्र चौथा कुलकर नियत हुआ। वह अपने पिताकी 'हाकार' और 'माकार' दोनों नीतियोंसे काम लेता रहा।

प्रतिरूपाने एक जोड़ा उत्पन्न किया। उसका नाम प्रसेनजित और चक्षुकान्ता हुआ। उनके मातापितासे उनकी आयु कुछ कम थी। शरीर छः सौ धनुष प्रमाण था। प्रसेनजित अपने पिताके बाद पाँचवाँ कुलकर नियत हुआ। इसके समयमें 'हाकार और 'माकार' नीतिसे काम नहीं चला तब उसने 'धिक्कार' का तीसरा दंडविधान और बढ़ाया।

चक्षुकान्ताके गर्भसे मरुदेव और श्रीकान्ता नामका जोड़ा उत्पन्न हुआ। वह अपने मातापितासे आयुमें कुछ कम और

शरीर प्रमाणमें साढ़े पाँच सौ धनुष था । प्रसेनजितके वाद मरुदेव छठा कुलकर नियत हुआ । वह तीनों प्रकारके दंडविधानसे काम लेता रहा ।

श्रीकान्ताने नाभि और मरुदेवा नामका एक जोड़ा प्रसवा । उसकी आयु अपने मातापितासे कुछ कम और शरीर सवा पाँच सौ धनुष था । मरुदेवके वाद नाभि सातवें कुलकर नियत हुए । वे भी अपने पिताकी भाँति तीनों–'हाकार' 'माकार' और 'धिक्कार' दंडविधानसे काम लेते रहे ।

जन्म और बचपन ।

तीसरे आरेके जब चौरासी लाख पूर्व और नवासी पक्ष (तीन वरस साढ़े आठ महीने) बाकी रहे तब आषाढ़ कृष्णा चतुर्दशीके दिन उत्तराषाढ़ा नक्षत्र और चंद्रयोगमें 'धनसेठ' (वज्रनाभ) का जीव तेतीस सागरका आयु पूरा कर सर्वार्थसिद्धिसे च्यवा और जैसे मान सरोवरसे गंगाके तटपर हंस आता है उसी भाँति मरुदेवाके गर्भमें आया । उस समय प्राणी मात्रके दुःख कुछ क्षणके लिए हल्के हुए ।

माता मरुदेवाको चौदह महा स्वप्न आये । इन्द्रोंके आसन काँपे । उन्होंने अवधिज्ञानसे प्रथम तीर्थंकरका गर्भमें आना देखा । वे सब इकट्ठे होकर माता मरुदेवाके पास आये । उन्होंने स्वप्नोंका* फल सुनाया । फिर वे मरुदेवाको प्रणाम कर अपने स्थानपर चले गये ।

---

* देखो तीर्थंकरचरित-भूमिका पृष्ठ १०–१४ तक ।

जब गर्भके नौ महीने और साढ़े आठ दिन व्यतीत हुए, सारे ग्रह उच्च स्थानमें आये चंद्रयोग उत्तराषाढा नक्षत्रमें स्थित हुआ तब चैत महीनेकी काली आठमके दिन आधीरातमें मरुदेवा माताने युगल धर्मी पुत्रको उत्पन्न किया। उपपाद शय्यामें जन्म हुए देवताओंकी तरह भगवान सुशोभित होने लगे। तीन लोकमें, अन्धकारका नाश करनेवाले बिजलीके प्रकाशकी तरह, उद्योत हुआ। आकाशमें दुंदुभि बजने लगे। क्षण बार नारकी जीवोंको भी उस समय अभूत पूर्व आनन्द हुआ। दक्षिणमंद पवनने सेवकोंकी तरह पृथ्वीकी रजको साफ करना आरंभ किया। मेघ मन्द गाजने और सुगंधित जलकी वर्षा करने लगे।

छप्पन दिक्कुमारियाँ मरुदेवा माताकी सेवामें आईं § सौधर्मेन्द्र व दूसरे तिरसठ इन्द्रोंने मिलकर प्रभुका जन्म-कल्याणक किया।

माता मरुदेवा सवेरे ही जाग्रत हुईं। रातमें स्वप्न आया हो इस तरह उन्होंने इन्द्रादि देवोंके आगमनकी सारी बातें नाभिराजासे कहीं। भगवानके उरुमें (जाँघमें) ऋषभका चिन्ह था, और माता मरुदेवाने भी स्वप्नमें सबसे पहले ऋषभहीको देखा था, इसलिए भगवानका नाम 'ऋषभ' रक्खा गया। भगवानके साथ जन्मी हुई कन्याका नाम सुमंगला रक्खा गया। योग्य समयमें भगवान इन्द्रके संक्रमण किये हुए अंगूठेके अमृतका पान करने लगे। पाँच धायें-जिन्हें इन्द्रने नियत की थीं हर समय भगवानके पास उपस्थित रहती थीं।

§ देखो तीर्थंकरचरित-भूमिका पृष्ठ १८–२१ तक।

भगवानकी आयु जब एक बरसकी हो गई, तब सौधर्मेन्द्र वंश स्थापन करनेके लिए आया। सेवकको खाली हाथ स्वामी-के दर्शन करनेके लिये नहीं जाना चाहिए, इस खयालसे इन्द्र अपने हाथमें इक्षुयष्टि (गन्ना) लेता गया। वह पहुँचा उस समय भगवान नाभि राजाकी गोदमें बैठे हुए थे। प्रभुने अव-धिज्ञान द्वारा इन्द्रके आनेका कारण जाना* । उन्होंने इक्षु लेनेके लिए हाथ बढ़ाया। इन्द्रने प्रणाम करके इक्षुयष्टि प्रभुके अर्पण की। प्रभुने इक्षु ग्रहण किया। इसलिए उनके वंशका नाम 'इक्ष्वाकु' स्थापनकर' इन्द्र स्वर्गमें गया।

युगादिनाथ (ऋषभदेव)का शरीर पसीने, रोग और मलसे रहित था। वह सुगंधित, सुंदर आकारवाला और स्वर्णकमलके समान शोभता था। उसमें मांस और रुधिर गऊके दुग्धकी धारके समान उज्ज्वल और दुर्गंध विहीन थे। उनके आहार (भोजन) निहार (दिशा फिरने) की विधि चर्मचक्षुके अगोचर थे। उनके श्वासकी खुशबू विकासित कमलके समान थी। ये चारों अतिशय प्रभुको जन्मसे ही प्राप्त हुए थे§। वज्रऋषभ नाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थानके वे धारी थे। देवता बाल-रूप धारण कर प्रभुके साथ क्रीडा करने आते थे। कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यने उसका वर्णन इन शब्दोंमें किया है:-

---

*—तीर्थंकरोंको जन्मसे ही अवधिज्ञान होता है।

§—तीर्थंकरोंके चौतीस अतिशय होते है। उन्होंमें ये प्रारंभके चार हैं। देखो तीर्थंकरचरित्र-भूमिका पृष्ठ १-२६ तक।

“ समचतुरस्र संस्थान” वाला प्रभुका शरीर ऐसा शोभता था मानों वह क्रीडा करनेकी इच्छा रखनेवाली लक्ष्मीकी कांचनमय क्रीडा-वेदिका है। जो देवकुमार समान वयके होकर क्रीडा करनेको आते थे उनके साथ भगवान उनका मन रखनेके लिए खेलते थे। खेलते वक्त धूलधूसरित शरीरवाले और घूघरमाल धारण किये हुए प्रभु ऐसे शोभते थे, मानों मदमस्त गजकुमार हैं। जो वस्तु प्रभुके लिए सुगम थी, वही किसी महर्द्धिक देवके लिए अगम्य थी। यदि कोई देव प्रभुके बलकी परीक्षा करनेके लिए उनकी अँगुली पकड़ता था, तो वह उनके श्वासमें रेणु (रेतीके दाने) के समान उड़कर दूर जा गिरता था। कई देवकुमार कंदुक (गेंद) की तरह पृथ्वीपर लोटकर प्रभुको विचित्र कंदुकोंसे खेलाते थे। कई देवकुमार राजशुक (राजाका तोता) बनकर चाटुकार (मीठा बोलनेवाले) की तरह ‘ जीओ! जीओ! आनंद पाओ! आनंद पाओ! इस तरह अनेक प्रकारके शब्द बोलते थे। कई देवकुमार मयूरका रूप धारणकर केका वाणी (मोरकी बोली) से षड्ज स्वरमें गायन कर नाच करते थे। प्रभुके मनोहर हस्तकमलोंको ग्रहण करनेकी और स्पर्श करनेकी इच्छासे कई देवकुमार हंसोंका रूप धारणकर गांधार स्वरमें गायन करते हुए प्रभुके आसपास फिरते थे। कई प्रभुके प्रीतिपूर्ण दृष्टिपातामृत पानकरनेकी इच्छासे क्रौंचपक्षीका रूप धारणकर उनके समक्ष मध्यम स्वरमें बोलते थे। कई प्रभुको प्रसन्न करनेके लिए कोकिलका रूप धारणकर, पासके वृक्षोंकी डालियोंपर बैठ पंचम स्वरमें राग आलापते थे। कई तुरंग

(घोड़े) का रूप धरकर, अपने आत्माको पवित्र करनेकी इच्छासे, धैवत ध्वनिसे हेषारव (हिनहिनाहट) करते हुए प्रभुके पास आते थे। कई हाथीका स्वरूप धर निषाद स्वरमें बोलतेहुए अधोमुख होकर अपनी सूँडोंसे भगवानके चरणोंको स्पर्श करते थे। कई बैलका रूप धारणकर अपने सींगोंसे तट प्रदेशको ताडन करते, और ऋषभ स्वरमें बोलते हुए प्रभुकी दृष्टिको विनोद कराते थे। कई अंजनाचलके समान भैंसोंका रूपधर, परस्पर युद्धकर प्रभुको युद्धक्रीडा बताते थे। कई प्रभुके विनोदार्थ मल्लका रूपधर, भुजाएँ ठोक, एक दूसरेको अक्षवाट (अखाडे) में बुलाते थे। इस तरह योगी जिस तरह परमात्माकी उपासना करते हैं उसी तरह देवकुमार भी विविध विनोदोंसे निरन्तर प्रभुकी उपासना करते थे।"

अंगूठे चूसनेकी अवस्था बीतने पर अन्य गृहवासी अर्हत पकाया हुआ भोजन करते हैं, परन्तु आदिनाथ भगवान तो देवता उत्तर कुरुक्षेत्रसे कल्पवृक्षोंके फल लाते थे उन्हें भक्षण करते थे और क्षीर समुद्रका जल पीते थे।

यौवनकाल और गृहस्थ जीवन

बाल्यपन बीतने पर भगवानने युवावस्थामें प्रवेश किया। तब भी प्रभुके दोनों चरणोंके मध्य भाग समान, मृदु, रक्त, उष्ण, कंपरहित, स्वेदवर्जित और समान तलुएवाले थे। उनमें चक्र, माला, अकुश, शंख, ध्वजा, कुंभ तथा स्वस्तिकके चिन्ह थे। उनके अगूठेमें श्रीवत्स था। अँगुलियाँ छिद्र-रहित और सीधी

थीं। अँगुलि-सबमें नंदावर्तके चिन्ह थे। अँगुलियोंके प्रत्येक पर्वमें जौ थे। इसी भाँति दोनों हाथ भी बहुत सुन्दर, नवीन आम्रपल्लवके समान हथेलीवाले, कठोर, स्वेदरहित, छिद्ररहित और गरम थे। हाथमें छत्र, चक्र, धनुष, मत्स्य, श्रीवत्स, वज्र, अंकुश, ध्वज, कमल चामर, छत्र, शंख, कुंभ, समुद्र, मंदर, मकर, ऋषभ, सिंह, अश्व, रथ स्वस्तिक, दिग्गज, प्रासाद, तोरण, और द्वीप आदिके चिन्ह थे। उनकी अँगुलियाँ और अंगूठे लाल तथा सीधे थे। पोरोंमें यव थे। अँगुलियोंके अग्रभागमें प्रदक्षिणावर्त थे। उनके करकमलके मूलमें तीन रेखाएँ शोभती थीं। उनका वक्षस्थल स्वर्ण-शिलाके समान, विशाल, उन्नत और श्रीवत्सरत्नपीठके चिन्हवाला था। उनके कंधे ऊँचे और दृढ़ थे। उनकी बगलें थोड़े केशवाली, उन्नत तथा गंध, पसीना और मलरहित थीं। भुजाएँ घुटनों तक लंबी थीं। उनकी गर्दन गोल, अदीर्घ और तीन रेखाओंवाली थी। मुख गोल, कान्तिके तरंगवाला कलंकहीन चंद्रमाके समान था। दोनों गाल कोमल, चिकने और मांसपूर्ण थे। कान कंधे तक लंबे थे। अंदरका आवर्त बहुत ही सुंदर था। होठ बिंबफलके समान लाल और बत्तीसों दाँत कुंद-कलीके समान सफेद थे। नासिका अनु-क्रमसे विकासवाली और उन्नत थी। उनके बाहु अंदरसे काले, सफेद, किनारेपर लाल और कानों तक लंबे थे। भौंहें काजलके समान श्याम थीं। उनका ललाट विशाल, मांसल, गोल, कठिन, कोमल, और समान अष्टमीके चंद्रमाके समान सुशो-

भित होता था। इस प्रकार नाना प्रकारके सुलक्षणवाले प्रभु सुर, असुर, और मनुष्य सभीके सेवा करने योग्य थे। इन्द्र उनका हाथ थामता था, यक्ष चमर ढालते थे, धरणेन्द्र द्वारपाल बनता था और वरुण छत्र रखता था; तो भी प्रभु लेशमात्र भी, गर्व किये विना यथारुचि विहार करते थे। कई बार प्रभु बलवान इन्द्रकी गोदमें पैर रख, चमरेन्द्रके गोदरूपी पलंगमें अपने शरीरका उत्तर भाग स्थापन कर, देवताओंके आसनपर बैठे हुए दिव्य संगीत और नृत्य सुनते और देखते थे। अप्सराएँ प्रभुकी हाजिरीमें खड़ी रहती थीं; परन्तु प्रभुके मनमें किसी भी तरहकी आसक्ति नहीं थी।

जब भगवानकी उम्र एक बरससे कुछ कम की थी, तबकी बात है। कोई युगल—अपनी युगल संतानको एक ताड़ वृक्षके नीचे रखकर—रमण करनेकी इच्छासे क्रीडागृहमें गया। हवाके झोंकेसे एक ताडफल बालकके मस्तकपर गिरा। बालक मर गया। बालिका माता पिताके पास अकेली रह गई।

थोड़े दिनोंके बाद बालिकाके मातापिताका भी देहांत हो गया। बालिका वनदेवीकी तरह अकेली ही वनमें घूमने लगी। देवीकी तरह सुन्दर रूपवाली उस बालिकाको युगल पुरुषोंने आश्चर्यसे देखा और फिर वे उसे नाभि कुलकरके पास ले गये। नाभि कुलकरने उन लोगोंके अनुरोधसे बालिकाको यह कहकर रख लिया कि यह ऋषभकी पत्नी होगी।

प्रभु सुमंगला और सुनंदाके साथ बालक्रीडा करते हुए यौवनको प्राप्त हुए।

एक बार सौधर्मेन्द्र प्रभुका विवाह-समय जानकर प्रभुके पास आया और विनयपूर्वक बोला:-"प्रभो! यद्यपि मैं जानता हूँ कि, आप गर्भवाससीसे वीतराग हैं, आपको अन्य पुरुषार्थोंकी आवश्यकता नहीं है इससे चौथे पुरुषार्थ मोक्षका साधन कर नेहीके लिए आप तत्पर हैं; तथापि मोक्षमार्गकी तरह व्यवहार मार्ग भी आपहीसे प्रकट होनेवाला है। इसलिए लोकव्यवहा रको चलानेके लिए मैं आपका विवाहोत्सव करना चाहता हूँ। हे स्वामी, आप प्रसन्न होइए और त्रिभुवनमें अद्वितीय रूप वाली सुमंगला और सुनंदाका पाणिग्रहण कीजिए।

प्रभुने अवधिज्ञानसे उस समय यह देखकर कि, मुझे अभी तिरासी लाख पूर्व तक भोगोपभाग भोगने ही पड़ेंगे, सिर हिला दिया। इन्द्रने प्रभुका अभिप्राय समझकर विवाहकी तयारियाँ कीं। बड़ी धूमधामके साथ सुनंदा और सुमंगलाके साथ प्रभुका ब्याह हो गया।

विवाहोत्सव समाप्त कर स्वर्गपति इन्द्र अपने स्थानपर गया स्वामीकी बताई हुई ब्याहकी रीति तभीसे जगतमें चली।

उस समय कल्पवृक्षोंका प्रभाव कालके दोषसे कम होने लग गया था। युगलियोंमें क्रोधादि कषायें बढ़ने लगी थीं। 'हाकार,' 'माकार' और 'धिक्कारकी' दंडनीति उनके लिए निरुपयोगी हो गई थी। झगड़ा बढ़ने लगा था। इसलिए एक दिन सब युग्म जमा होकर प्रभुके पास गये और अपने दुःख सुनाये। प्रभुने कहा:-"संसारमें मर्यादा उल्लंघन करनेवालोंको राजा दंड देता है। अतः तुम किसीको राज्याभिषेक करो।

चतुरंगिनी सेनासे उसे सशक्त बनाओ। वह तुम्हारे सारे दुःखोंको दूर करेगा।"

उन्होंने कहाः—"हम आपहीको राज्याभिषेक करना चाहते हैं।"

प्रभुने कहाः—"तुम नाभि कुलकरके पास जाओ। वे आज्ञा दें उसको राज्याभिषेक करो।"

लोग नाभि कुलकरके पास गए। उन्होंने कहाः—"ऋषभको तुम अपना राजा बनाओ।"

लोग वापिस लौटकर आये बोलेः—"आपहीको राज्याभिषेक करनेकी नाभि कुलकरने हमें आज्ञा दी है।"

लोग विधि जानते न थे। उन्होंने पहिली बार ही राज्याभिषेककी बात सुनी थी। वे केवल जल चढ़ानेहीको अभिषेक करना समझकर जल लेने गये। उस समय इन्द्रका आसन काँपा। उसने अवधिज्ञान द्वारा प्रभुके राज्याभिषेकका समय जाना। उसने आकर राज्याभिषेक कर प्रभुको दिव्यावस्त्रालंकारोंसे अलंकृत किया। इतनेहीमें युगालिये पुरुष भी कमलके पत्रोंमें जल लेकर आ गए। वे प्रभुको वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत देखकर आश्चर्यान्वित हुए। ऐसे सुन्दर वस्त्राभूषणोंपर जल चढ़ाना उचित न समझ उन्होंने प्रभुके चरणोंमें जल चढ़ाया और उन्हें अपना राजा स्वीकारा। इन्द्रने उन्हें विनीत समझ उनके लिए एक नगरी निर्माण करनेकी कुवेरको आज्ञा दी और उसका नाम विनीता रखनेको कहा। फिर वह अपने स्थान पर चला गया।

प्रकारकी भिन्न भिन्न कलाओंमें निपुण हो गये। इस लिए उनकी अलग जातियाँ ही बन गईं। उनकी पाँच जातियाँ हुईं। १–कुंभार; २ चित्रकार; ३ वार्धिक (राज) ४–जुलाहा; ५ नाई।

अनासक्त होते हुए भी अवश्यमेव भोक्तव्य कर्मको भोगनेके लिए, विवाहके पश्चात ६ लाखसे कुछ न्यून पूर्व वर्ष तक प्रभुने सुमंगला और सुनन्दाके साथ विलास किया। सुमंगलाने १४ महास्वप्नों सहित चक्रवर्ती भरत और ब्राह्मीको एक साथ प्रसवा। सुनन्दाने भी बाहुबलि और सुन्दरीका जोड़ा प्रसवा। तत्पश्चात सुमंगलाने ४९ युग्म पुत्रोंको और जन्म दिया। इस तरह प्रभुके कुल मिलाकर १०० पुत्र और २ कन्याएँ उत्पन्न हुए।*

* एक सौ पुत्रों के नाम—१–भरत, २–बाहुबलि ३–शंख; ४–विश्वकर्मा; ५–विमल; ६–सुलक्षण; ७–अमल, ८–चित्रांग, ९–ख्यात कीर्ति; १०–वरदत्त; ११–सागर; १२–यशोधर; १३–अमर; १४–रथवर; १५–कामदेव; १६–ध्रुव, १७–वत्सनंद; १८–सूर; १९–कामदेव; २०–ध्रुव; २१–वत्सनंद; २२–सूर; २३–सुनंद; २४–कुरु; २५–अंग; २६–वंग; २७–कौशल; २८–वीर; २९–कलिंग; ३०–मागध; ३१–विदेह; ३२–संगम; ३३–दशार्ण; ३४–गंभीर; ३५–वसुवर्मा; ३६–सुवर्मा; ३७–राष्ट्र, ३८–सौराष्ट्र ३९–बुद्धिकर; ४०–विविधकर; ४१–सुयश; ४२–यशःकीर्ति ४३–यशस्कर, ४४–कीर्तिकर, ४५–सुषेण; ४६–ब्रह्मसेन; ४७–विक्रान्त ४८–नरोत्तम; ४९–पुरुषोत्तम; ५०–चंद्रसेन; ५१–महासेन, ५२–नभसेन ५३–भानु, ५४–सुकान्त; ५५–पुष्पयुत; ५६–श्रीधर; ५७–दुर्धर्ष ५८–सुसुमार ५९–दुर्जय ६०–अजयमान; ६१–सुधर्मा; ६२–धर्मसेन; ६३–आनंदन ६४–आनंद; ६५–नंद; ६६–अपराजित; ६७–विश्वसेन; ६८–हरिषेण ६९–जय; ७०–विजय; ७१–विजयंत; ७२–प्रभाकर; ७३–अरिदमन; ७४–मान, ७५–महा बाहु;

प्रभुकी सन्तान जब योग्य वयको प्राप्त हुई; तब उन्होंने प्रत्येकको भिन्न २ कलाएँ सिखाईं।

भरतको ७२ कलाएँ* सिखलाई थीं। भरतने भी अपने भाइयोंको वे कलाएँ सिखलाईं। बाहुबलिको प्रभुने हस्ति, अश्व, स्त्री और पुरुषके अनेक प्रकारके भेदवाले लक्षणोंका ज्ञान दिया। ब्राह्मीको दाहिने हाथसे अठारह§ लिपियाँ बतलाईं, और सुंद-

७६—दीर्घ बाहु, ७७—मेघ; ७८—सुघोष, ७९—विश्व, ८०—वराह, ८१—सुसन, ८२—सेनापति, ८३—कुंजरबल, ८४—जयदेव, ८५—नागदत्त, ८६—काश्यप, ८७—बल, ८८—वीर, ८९—शुभमति, ९०—सुमति; ९१—पद्मनाभ, ९२—सिंह, ९३—सुजाति, ९४—सजय, ९५—सुनाम, ९६—मरुदेव, ९७—चित्तहर, ९८—सरवर, ९९—दृढरथ, १००—प्रभंजन,

* कन्याओंके नाम—ब्राह्मी और सुंदरी।

*—पुरुष की ७२ कलाओंके नाम ये हैं,—लेखन गणित, गीत, नृत्य, वाद्य, पठन, शिक्षा, ज्योतिष, छंद, अलंकार, व्याकरण, निरुक्ति, काव्य कात्यायन, निघंटु, गजारोहण, अश्वारोहण उन दोनों की शिक्षा, शास्त्राभ्यास, रस, यंत्र, मंत्र, विष, खन्य गंधवाद, प्राकृत, संस्कृत, पैशाचिक, अपभ्रंश, स्मृति, पुराण, विधि, सिद्धान्त, तर्क, वैद्यक, वेद, आगम, संहिता, इतिहास, सामुद्रिक विज्ञान, आचार्य विद्या, रसायन, कपट, विद्यानुवाद, दर्शन, संस्कार, धूर्त, सबलक, मणिकर्म, तरुचिकित्सा खेचरीकला, अमरीकला, इन्द्रजाल, पातालसिद्धि, यंत्रक, रसवती, सर्वकरणी, प्रासादलक्षण, पण, चित्रोपला, लेप, चर्मकर्म, पत्रछेद, नखछेद, पत्रपरीक्षा, वशीकरण, काष्ठ घटन देश भाषा, गारुड, योगांग धातुकर्म, केवल विधि, शकुन रुत।

§—हंस, भूत, यक्ष, राक्षस, उड्डि, यौवनी, तुरकी, किरी, द्राविडी, सैंधवी, मालवी, बड़ी, नागरी, भाटी, पारसी, अनिमित्ति, चाणाकी, मूलदेवी। ये अठारह लिपियाँ हैं।

कुबेरने बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी नगरी बनाई। उसका दूसरा नाम अयोध्या रक्खा गया। जन्मसे बीस लाख पूर्व बीते तब प्रभु प्रजाका पालन करनेके लिये विनीता नगरीके स्वामी बने। अवसर्पिणी कालमें ऋषभदेव ही सबसे पहिले राजा हुए। ये अपनी सन्तानकी तरह प्रजाका पालन करने लगे। उन्होंने बदमाशोंको दंड देने और सज्जनोंकी रक्षा करनेके लिए उत्तम मंत्री नियत किये; चोर, डाकुओंसे प्रजाको बचानेके लिए रक्षक-सिपाही नियत किये। हाथी, घोड़े रक्खे; घुड़सवारोंकी और पैदल सैनिकोंकी सेनाएँ बनाई। रथ तैयार करवाये। सेनापति नियत किये। गैया, गाय भैंस, बैल, खच्चर आदि उपयोगी पशु भी प्रभुने पकड़वाये।

कल्पवृक्षोंका सर्वथा अभाव हो गया। लोग कंद, मूल, फलादि खाने लगे। कालके प्रभावसे, शालि, गेहूँ, चने, आदि पदार्थ अपने आप ही उस समय उत्पन्न होने लगे। लोग उन्हें कच्चे ही, छिलकों सहित, खाने लगे। मगर वे हजम न होने लगे इस लिए एक दिन लोग प्रभुके पास गये। प्रभुने कहा,—"तुम इनको छिलके निकालकर खाओ।" इस तरह कुछ दिन किया तो भी वे अच्छी तरह न पचने लगे, तब लोग फिर प्रभुके पास गये। प्रभुने कहा,—"छिलके निकालकर पहिले हाथोंमें मलो और फिर भिगोकर किसी पत्तेमें रखो और खाओ।" ऐसा करनेसे भी जब वह नहीं पचने लगा, तब लोगोंने फिरसे जाकर प्रभुसे विनती की। प्रभुने कहा—"पूर्वोक्त विधि करनेके बाद आपधिको (बगलको) मुट्ठीमें

या बगलमें, थोड़ी देर दवाओ और उनमें जब गरमी पहुँचे तब उन्हें खाओ।" लोग ऐसा ही करने लगे। मगर फिर भी उनकी शिकायत नहीं मिटी।

एक दिन जोरकी हवा चली। वृक्ष परस्पर रगड़ाये। उनमें अग्नि पैदा हुई। रत्नोंके भ्रमसे लोग उसे लेनेको दौड़े। मगर वे जलने लगे, तब प्रभुके पास गये। प्रभुने सब बात समझकर कहा कि, स्निग्ध और रुक्ष कालके योगसे अग्नि उत्पन्न हुई है। तुम उसके आसपाससे घास फूंस हटाकर, उसमें औषधि पकाओ और खाओ।

पूर्वोक्त क्रिया करके लोगोंने उसमें अनाज डाला। देखते ही देखते सारा अनाज उसमें जलकर भस्म हो गया। लोग वापिस प्रभुके पास गये। प्रभु उस समय हाथीपर सवार होकर सैर करने चले थे। युगलियोंकी बातें सुनकर उन्होंने थोड़ी गीली मिट्टी मँगवाई। महावतके स्थानमें, जाकर हाथीके सिरपर मिट्टीको वढ़ाया और उसका बर्तन बनाया और कहाः—"इसको अग्निमें रखकर सुखा लो। जब यह सूख जाय तब इसमें नाज रखकर पकाओ और खाओ। सभी ऐसे बासन बना लो।" उसी समयसे बर्तन बनानेकी कलाका आरंभ हुआ।

विनीता नगरीके बाहिर रहनेवाले लोगोंको वर्षादिसे कष्ट होने लगा। इसलिये प्रभुने लोगोंको मकान बनानेकी विद्या सिखाई। चित्रकला भी सिखाई। वस्त्र बनाना भी बताया। जब प्रभुने बढे हुए केशों और नाखूनोंमें लोगोंको पीड़ित होते देखा, तब कुछको नाईका काम सिखलाया। स्वभावतः कुछ लोग उक्त

प्रभुकी सन्तान जब योग्य वयको प्राप्त हुई; तब उन्होंने प्रत्येकको भिन्न २ कलाएँ सिखाईं।

भरतको ७२ कलाएँ* सिखलाई थीं। भरतने भी अपने भाइयोंको वे कलाएँ सिखलाईं। बाहुबलिको प्रभुने हस्ति, अश्व, स्त्री और पुरुषके अनेक प्रकारके भेदवाले लक्षणोंका ज्ञान दिया। ब्राह्मीको दाहिने हाथसे अठारह§ लिपियाँ बतलाईं, और सुद-

---

७६—दीर्घ बाहु, ७७—मेघ, ७८—सुघोष, ७९—विश्व, ८०—वराह, ८१—सुसन, ८२—सेनापति, ८३—कुजरबल, ८४—जयदेव, ८५—नागदत्त, ८६—काश्यप, ८७—बल, ८८—वीर, ८९—शुभमति, ९०—सुमति, ९१—पद्मनाभ, ९२—सिंह, ९३—सुजाति, ९४—सजय, ९५—सुनाम, ९६—मरुदेव, ९७—चित्तहर, ९८—सरवर, ९९—दृढरथ, १००—प्रभजन,

* कन्याओंके नाम—ब्राह्मी और सुदरी।

*—पुरुष की ७२ कलाओंके नाम ये हैं,—लेखन गणित, गीत, नृत्य, वाद्य, पठन, शिक्षा, ज्योतिष, छद, अलकार, व्याकरण, निरुक्ति, काव्य कात्यायन, निघटुं, गजारोहण, अश्वारोहण उन दोनों की शिक्षा, शास्त्राभ्यास, रस, यत्र, मत्र, विष, खन्य गधवाद, प्राकृत, सस्कृत, पैशाचिक, अपभ्रश, स्मृति, पुराण, विधि, सिद्धान्त, तर्क, वैद्क, वेद, आगम, सहिता, इतिहास, सामुद्रिक विज्ञान, आचार्य विद्या, रसायन, कपट, विद्यानुवाद, दर्शन, सस्कार, धूर्त, सवलक, मणिकर्म, तरुचिकित्सा खेचरीकला, अमरीकला, इन्द्रजाल, पातासासिद्धि, पचक, रसवती, सर्वकरणी, प्रासादलक्षण, पण, चित्रोपला, लेप, चर्मकर्म, पत्रछेद, नखछेद, पत्रपरीक्षा, वशीकरण, काष्ट घटन देश भाषा, गारुड, योगाग धातुकर्म, केवल विधि, शकुन रुत।

§—हस, भूत, यक्ष, राक्षस, उड्डि, यौवनी, तुरकी, किरी, द्राविडी, सैंधवी, मालवी, वड्डी, नागरी, भाटी, पारसी, आनिमित्ति, चाणाकी, मूलदेवी। ये अठारह लिपियाँ हैं।

टीका बायें हाथसे गणितका ज्ञान दिया। वस्तुओंका मान (माप) उन्मान (तोला, माशा आदि तोल) अवमान (गज, फुट, इंच आदि माप) और प्रतिमान (तोला, माशा आदि वजन) बताया। मणि आदि पिरोना भी सिखलाया। उनकी आज्ञासे वादी और प्रतिवादीका व्यवहार राजा, अध्यक्ष और कुलगुरुकी साक्षीसे होने लगा। हस्ति आदिकी पूजा; धनुर्वेद तथा वैद्यककी उपासना; संग्राम, अर्थशास्त्र, बंध, घात, वध और गोष्ठी आदिकी प्रवृत्ति भी उसी समयसे हुई। यह मेरी माता है, यह मेरा पिता है, यह मेरा भाई है, यह मेरी बहिन है, यह मेरी स्त्री है यह मेरी कन्या है। यह मेरा धन है, यह मेरा मकान है आदि, मेरे तेरे-की ममता भी उसी

(नोट)—प्रभुने स्त्रियोंको ६४ कलाएँ भी सिखाई थीं। कल्पसूत्रमें इसका उल्लेख है। मगर किसको सिखाई थीं इसका उल्लेख हमारे देखने में नहीं आया। उन ६४ कलाओंके नाम ये हैं—नृत्य औचित्य चित्र वादित्र, मंत्र तंत्र ज्ञान विज्ञान फलाकृष्टि, संस्कृत जल्पी क्रिया कल्प ज्ञान विज्ञान, दंभ, जलस्तंभ गीत ताल, आकृतिगोपन, आरामरोपण काव्य शक्ति वक्रोक्ति, नर लक्षण, गजपरीक्षा अश्वपरीक्षा वास्तु शुद्धि, लघुबुद्धि, शकुनविचार, धर्माचार अंजन योग चूर्ण योग गृहीधर्म सुप्रसादन कर्म सोना सिद्धि वर्णिका वृद्धि, वाक पाटव करलाघव ललित चरण, तेल सुरभिकरण भृत्योपचार गेहाचार व्याकरण पर-निराकरण, वीणानाद वितंडावाद, अंकस्थिति जनाचार कुंभभ्रम सारिश्रम रत्नमणिभेद, लिपिपरिच्छेद वैद्य क्रिया कामाविष्करण रंधन केशबंधन शालिखंडन मुख मंडन, कथाकथन कुसुमगुंथन, वरवेश, सर्व भाषाविशेष वाणिज्य, भोज्य अभिधान परिज्ञान यथास्थान आभूषण धारण अन्त्याक्षरिका और प्रश्नप्रहेलिका।

समयसे प्रारंभ हुई। प्रभुको वस्त्राभूषणोंसे आच्छादित देख कर लोग भी अपनेको वस्त्रालंकारसे सजाने लगे। प्रभुने जिस तरहसे पाणिग्रहण किया था उसी तरह, उसके बाद और लोग भी पाणिग्रहण करने लगे। वह प्रवृत्ति आज भी चल रही है। प्रभुके विवाहके बाद दूसरेकी कन्याके साथ ब्याह करनेका रिवाज हुआ। चूड़ा, उपनयन आदि व्यवहार भी उसी समयसे चले। यद्यपि ये सारी क्रियाएँ सावद्य हैं तथापि समयको देखकर, लोगोंके कल्याणार्थ प्रभुने इनका व्यवहार चलाया। प्रभुने जो कलाएँ चलाईं, उनका शनैः शनैः विकास हुआ। अर्वाचीन कालके बुद्धि-कुशल लोगोंने उनके शास्त्र बनाये। उनसे लोग आजतक लाभ उठा रहे हैं।

प्रभुने चार प्रकारके कुल बनाये। उनके नाम ये थे; १-उग्र; २-भोग; ३-राजन्य, ४-क्षत्री।

(१) नगरकी रक्षाका काम यानी सिपाहीगिरी करनेवालोंको एवं चोर लुटेरे आदि प्रजापीड़क लोगोंको दंड देनेवालोंका जो समूह था उस समूहके लोग उग्रकुलवाले कहलाते थे।

(२) जो लोग मन्त्रीका कार्य करते थे वे भोगकुलवाले कहलाते थे।

(३) जोलोग प्रभुके समवयस्क थे और प्रभुकी सेवामें हर समय रहते थे वे राजन्यकुलवाले कहलाते थे।

(४) बाकीके जो लोग थे वे सभी क्षत्री कहलाते थे। चार प्रकारकी नीतियाँ भी प्रभुने नियत की थीं। वे थीं शाम, दाम, दंड, और भेद। जिस समय जिसकी आवश्यकता

होती थी, उस समय उसीसे काम लिया जाता था। प्रभुने सबको विवेक सिखाया था, त्याज्य और ग्राह्यका ज्ञान दिया था।

एक बार वसन्त आया तब प्रभु परिजनोंके आग्रहसे नंद नोद्यानमें क्रीडा करने गये। नगरके लोग जब अनेक प्रकारकी क्रीडा कर रहे थे तब प्रभु एक तरफ बैठे हुए देख रहे थे, देखते ही देखते उनको विचार आया कि अन्यत्र भी कहीं ऐसी सुखसमृद्धि होगी? क्षण बारके बाद उन्होंने अपने पूर्व भवके समस्त सुखोपभोग और फिर उसके बाद होनेवाले जन्म-मरण आदिके दुःख देखे। विचार करते हुए उनके अन्तःकरणमें वैराग्य भावना उदित हुई। कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्राचार्यने उसका वर्णन इस तरह किया है:—

"विषय-सुखमें लीन अपने आत्महितको भूले हुए लोगों को धिक्कार है! इस संसाररूपी कूपमें प्राणी 'अरघट्टघटि न्याय' से (रेंटकी घेड़ें जैसे कूपमें जाती हैं, भरती हैं और वापिस खाली होती हैं, वे इसी तरह चक्कर-खाया करती हैं। वैसे ही) अपने कर्मसे गमनागमन किया करते हैं। मोहसे अंधे बने हुए उन प्राणियोंको धिक्कार है कि, जिनका जन्म सोते हुए मनुष्यकी भाँति फिजूल चला जाता है। चूहे जैसे वृक्षोंको खा जाते हैं उसी तरह राग, द्वेष, और मोह उद्यमी प्राणियोंके धर्मको भी मूलमेंसे छेद डालते हैं। मुग्ध लोग बड़वृक्षकी भाँति उस क्रोधको बढ़ाते हैं कि, जो क्रोध अपनेको बढ़ाने वालेहीको जड़से खा डालता है। हाथीपर चढ़े हुए महावतकी तरह मानपर चढ़े हुए

लोग भी मर्यादाका उल्लंघन करते हैं। और दूसरोंका तिरस्कार करते है। माया कौंचकी फलीकी तरह लोगोंको सन्तप्त करती है; परन्तु फिर भी लोग मायाका परित्याग नहीं करते हैं। तुपोदक से(बहेड़ाके जल से) जैसे दुग्ध फट जाता है और काजलसे जैसे निर्मल-सफेद वस्त्र पर दाग लग जाते हैं वैसे ही, लोभ मनुष्यके गुणोंको दूषित करता है। जब तक संसार रूपी कारागृहमें (जेलखानेमें) ये चार कषायरूपी चौकीदार सजग (खबरदारीसे) पहरा देते हैं तबतक जीव इससे निकलकर मोक्षमें कैसे जा सकता है? अहो! भूत लगेहुए प्राणीकी तरह पुरुष अंगना के (स्त्री के) आलिंगनमें व्यग्र रहते हैं और यह नहीं देखते हैं कि, उनका आत्महित क्षीण हो रहा है। औषधसे जैसे सिंहको आरोग्य करके मनुष्य अपना काल बुलाता है वैसे ही मनुष्य जुदा जुदा प्रकारके मादक और कामोद्दीपक पदार्थ सेवनकर उन्मादी बन अपने आत्माको भवभ्रमणमें फँसाते हैं। सुगंध यह है या यह? मै किसको ग्रहण करूँ? इस तरह सोचता हुआ मनुष्य लंपट होकर भ्रमरकी तरह भटकता फिरता है। उसको कभी सुख नहीं मिलता। खिलौनेसे जैसे बचोंको भुलाते है वैसे ही मनुष्य क्षण बारके लिए मनोहर लगनेवाली वस्तुओंमें लुभाकर अपने आत्माको धोखा देते हैं। निद्रालु पुरुष जैसे शास्त्रके चिन्तनसे भ्रष्ट होता है वैसे ही मनुष्य वेणु (वंसी) और वीणाके नादमें कान लगाकर अपने आत्महितसे भ्रष्ट होता है। एक साथ प्रबल बने हुए वात, पित्त और कफ जैसे जीवनका अन्त कर देते

है वैसे ही मयूर विषय-कषाय भी मनुष्यके आत्माविका मन्त कर देते हैं। इसलिए इनसे भिन्न रहनेवाले प्राणियोंको धिक्कार है।"

प्रभु जिस समय इस प्रकार वैराग्यकी चिन्तासन्ततिसे सम्पूर्ण हुआ था, उस समय ब्रह्म नामक पाँचवें देवलोकके अन्तमें बसनेवाले सारस्वत, आदित्य, वन्हि, अरुण, गर्दतोय तुषिताश्व, अव्याबाध, मरुत और रिष्ट जो प्रकारके लोकान्तिक देव प्रभुके पास आए और सविनय बोले—"भरतक्षेत्रमें नष्ट हुए मोक्षमार्गको बतानेमें दीपकके समान हे प्रभो! आपने व्यवहारके अन्यान्य प्रकारके व्यवहार जैसे प्रचलित किए हैं वैसे ही अब धर्मतीर्थको भी चलाइए।"

इतना कह कर वे लोकांतिक देवता अपने स्थानको गए। प्रभु भी दीक्षा ग्रहण करनेका निश्चय कर वहाँसे अपने महलोंमें गये।

साधुजीवन

प्रभुने महलमें आकर भरतको राज्य ग्रहण करनेका आदेश दिया। भरतने यह आज्ञा स्वीकार की। प्रभुकी आज्ञासे सामन्तों, मन्त्रियों और पुरजनोंने मिलकर भरतका राज्याभिषेक किया। प्रभुने अपने अन्यान्य पुत्रोंको भी जुदा जुदा देशादि राज्य दे दिये। फिर प्रभुने वर्षीदान देना आरम्भ किया। नगरमें घोषणा करवा दी कि जो जिसका अर्थी हो वह वही आकर ले जाय। प्रभु सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्त तक एक करोड़ आठ लाख स्वर्णमुद्राओंका दान नित्य प्रति करते

थे। तीन सौ अठ्यासी करोड़ और अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राओंका दान प्रभुने एक वरसमें किया था। यह धन देवताओंने लाकर पूरा किया था। प्रभु दीक्षा लेनेवाले हैं यह जानकर लोग भी वैराग्योन्मुख हो गये थे, इसलिए उन्होंने उतना ही धन ग्रहण किया था, जितनी उनको आवश्यकता थी।

तत्पश्चात् इन्द्रने आकर प्रभुका दीक्षा-कल्याणक* किया। चैत्रकृष्ण अष्टमीके दिन जब चंद्र उत्तरा आषाढा नक्षत्रमें आया था, तब दिनके पिछले पहरमें प्रभुने चार मुष्टिसे अपने केशोंको लुंचित किया। जब पाँचवीं मुष्टिसे प्रभुने अवशेष केशोंका लोच करना चाहा तब इन्द्रने उतने केश रहने देनेकी प्रार्थना की। प्रभुने यह प्रार्थना स्वीकार की; क्योंकि,-'स्वामी अपने एकान्त भक्तोंकी याचना व्यर्थ नहीं करते हैं। प्रभुके दीक्षा महोत्सवसे संसारके अन्यान्य जीवोंके साथ नारकी जीवोंको भी सुख हुआ। उसी समय प्रभुको मनुष्य क्षेत्रके अंदर रहनेवाले समस्त संज्ञी पचेन्द्री जीवोंके मनोद्रव्यको प्रकाशित करनेवाला मनःपर्ययज्ञान प्रकट हुआ।

प्रभुके साथ ही कच्छ, महाकच्छ आदि चार हजार राजाओंने प्रभुके साथ दीक्षा ले ली।

प्रभु मौन धारणकर पृथ्वीपर विचरण करने लगे। पारणेवाले दिन प्रभुको कहींसे भी आहार नहीं मिला। क्योंकि लोग आहारदानकी विधिसे अपरिचित थे। वे तो प्रभुको पहिलेके समान ही घोड़े, हाथी, वस्त्र, आभूषण, आदि भेट करते थे,

*—देखो तीर्थंकर चरित-भूमिका, पृष्ठ २५।

परन्तु प्रभुको तो इनमेंसे एककी भी आवश्यकता नहीं थी। भिक्षा न मिलनेपर भी किसी तरह मनमें खेद किये बिना जंगम तीर्थकी भाँति प्रभु विचरण करते थे और क्षुधापिपासादि भूख प्यास वगैरा परिसहोंको सहते थे। अन्यान्य साधु भी प्रभुके साथ साथ विहार करते रहते थे।

क्षुधा आदिसे पीड़ित और ज्ञानसे अजान साधु विचार करने लगे कि भगवान न जंगलमें पके हुए मधुर फल खाते हैं और न निर्मल झरनोंका जल ही पीते हैं। सुंदर शरीरपर इतनी धूल जम गई है तो भी उसे हटानेका प्रयास नहीं करते। धूप और सरदीको झेलते हैं, भूख प्यासकी बाधा सहते हैं, रातको कभी सोते भी नहीं हैं। हम रात दिन इनके साथ रहते हैं। परन्तु कभी दृष्टि उठाकर हमारी तरफ देखते भी नहीं हैं। न जाने इन्होंने क्या सोचा है? कुछ भी समझमें नहीं आता। हम इनकी तरह कबतक ऐसे दुःख झेल सकते हैं? और दुःख तो झेले भी जा सकते हैं, परंतु क्षुधातृषाके दुःख झेलना असंभव है। इस तरह विचारकर सभी गंगा तटके नजदीकवाले वनमें गये और कंद मूल, फलादिका आहार करने लगे और गंगाका जल पीने लगे। उसीसे जटाधारी तापसोंकी प्रवृत्ति हुई।

कच्छ और महाकच्छके नमि और विनमि नामक पुत्र थे। वे प्रभुने दीक्षा ली थी तब कहीं प्रभुकी आज्ञासे गये हुए थे। वे जब लौटकर आए तब उन्हें ज्ञात हुआ कि, प्रभुने दीक्षा ले ली है। वे प्रभुके पास गये और उनकी सेवा करने लगे तथा उनसे प्रार्थना करने लगे कि, हे प्रभो! हमको राज्य दीजिए।

एक बार धरणेन्द्र प्रभुकी वंदना करनेके लिए आया। उस समय उसने नमि विनमिको प्रभुकी सेवा करते और राज्यकी याचना करते देखकर कहाः—“ तुम भरतके पास जाओ वह तुम्हें राज्य देगा। प्रभु तो निष्परिग्रही और निर्मोह हैं। ” उन्होंने उत्तर दियाः—“ प्रभुके पास कुछ है या नहीं इससे हमें कोई मतलब नहीं है। हमारे तो ये ही स्वामी हैं। ये देंगे तभी लेंगे हम औरोंसे याचना नहीं करेंगे। ”

धरणेन्द्र उनकी बातोंसे प्रसन्न हुआ। उसने प्रभुसेवाके फल स्वरूप गौरी और प्रज्ञप्ति आदि अड़तालीस हजार विद्याएँ उन्हें दीं और कहाः—“ तुम वैताढ्य पर्वतपर जाकर नगर बसाओ और राज्य करो। ” नमि और विनमिने ऐसा ही किया।

कच्छ और महाकच्छ गंगानदीके दक्षिण तटपर मृगकी तरह वनचर होकर फिरते थे और वल्कलसे (वृक्षोंकी छालसे) अपने शरीरको ढकते थे। गृहस्थियोंके घरके आहारको वे कभी ग्रहण नहीं करते थे। चतुर्थ और छट्ठ आदि तपोंसे उनका शरीर सूख गया था। पारणाके दिन सडे गले और पृथ्वीपर पड़े हुए पत्तों और फलोंका भक्षण करते थे और हृदयमें प्रभुका ध्यान धरते थे।

प्रभु निराहार एक बरस तक आर्य और अनार्य देशोंमें विहार करते रहे। विहार करते हुए प्रभु गजपुर (हस्तिनापुर) नगरमें पहुँचे। वहाँ बाहुबलिका पुत्र सोमप्रभ राजा राज्य करता था।

मद्भुकी भात देखकर मगागम विदेशस आपे हुए चन्तुकी तरह मद्भुको घेरकर खड़े हो गये। कोई मद्भुको अपने घर विश्राम लेनेकी, कोई अपने घर स्नानादिसे निपटकर भोजन करनेकी, और कोई अपने घरको चमकर पावन करनेकी मापना करने लगा। कोई कहने लगा,—"मेरी पर सुका मात्र स्वीकारिये।" कोई कहने लगा,—"आपके शरीरके अनुकूल रेशमी वस्त्र मैं तैयार कराता हूँ। आप उन्हें धारण कीजिये।" कोई कहने लगा,—"मेरा यह घोड़ा सूर्यके घोड़ेको भी परास्त करनेवाला है, आप इसको ग्रहण कीजिए।" कोई बोला,—"आप क्या हम गरीबोंकी कुछ भी भेट न स्वीकारेंगे?" आदि। मगर मद्भुने तो किसीको भी कोई उत्तर नहीं दिया। मद्भु आहारके लिए घर २ जाते थे और कहीं शुद्ध आहार न मिलनेसे लौट आते थे।

घरमें मद्भुके आनेकी धूम मच गई। सामयम राजाके पुत्र श्रेयांस कुमारने भी मद्भुके आगमनके समाचार सुने। वह अपने प्रपितामहके आगमन समाचार सुनकर हर्षसे प्रगल्भ बना हुआ नंगे पैर अकेला ही मद्भुके दर्शनार्थ दौड़ा। उसने जाकर मद्भुके चरणोंमें नमस्कार किया। फिर वह खड़ा होकर उस मूर्तिको देखने लगा। देखते ही देखते उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उसके द्वारा उसे मालूम हुआ कि, साधुओंको शुद्ध आहार कैसे देना चाहिए। उसी समय मजाजनोंमेंसे कइयोंने गन्नेके रससे भरेहुए घड़े लाकर श्रेयांस कुमारको भेट किये। कुमारने उसे शुद्ध समझकर मद्भुसे

स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। प्रभुने शुद्ध आहार समझ अंजलि जोड़ हस्तरूपी पात्र आगे किया। उस पात्रमें यद्यपि बहुतसा रस समा गया; परन्तु कुमारके हृदयरूपी पात्रमें हर्ष न समाया। प्रभुने उस रससे पारणा किया। सुर, नरोंने और असुरोंने प्रभुके दर्शन रूपी अमृतसे पारणा किया। मनुष्योंने आनंदाश्रु बहाये। आकाशमें देवताओंने दुंदुभि-नाद किया और रत्नोंकी, पंचवर्णके पुष्पोंकी, गंधोदककी और दिव्य वस्त्रोंकी वृष्टि * की। वैशाख सुदी ३ के दिन श्रेयांस कुमारका दिया हुआ यह दान अक्षय हुआ। इससे वह दिन पर्व हुआ और अक्षय तृतीयाके नामसे ख्याति पाया। यह पर्व-त्योहार आज भी प्रसिद्ध है। संसारमें अन्यान्य व्यवहार भगवान श्रीऋषभदेवने चलाये, मगर दान देनेका व्यवहार श्रेयांसकुमारने प्रचालित किया।

दुंदुभिनादसे और रत्नादिकी वृष्टिसे नगरके नर-नारी श्रेयांसके महलकी ओर आने लगे। कच्छ और महाकच्छ आदि कुछ तापस भी, जो उस समय दैववशात हस्तिनापुर आये थे, प्रभुके पारणेकी बात सुनकर वहाँ आ गये। सबने श्रेयांसकुमारको धन्यधन्य कहा, उसके पुण्यको सराहा और प्रभुको उपालंभ देते हुए कहाः—“हमारा, यद्यपि प्रभुने पहिले पुत्रवत् पालन किया था, तथापि हमसे कोई

*—तीर्थंकरोंका जब प्रथम पारणा होता है तभी ये पंच दिव्य होते हैं। यानी दुंदुभि बजती है और देवता रत्न, पाँच प्रकारके पुष्प, सुगन्धित जल और उज्ज्वल वस्त्रोंकी वृष्टि करते हैं।

पदार्थ भेटमें नहीं लिया। हमने कितना अनुनय विनय किया, कितनी आर्त भावनायें कीं तो भी प्रभु हमारे पर दयालु नहीं हुए, परन्तु तुम्हारी बात उन्होंने सहसा मान ली। तुम्हारी दी हुई भेंट प्रभुने तत्काल ही स्वीकार कर ली।"

श्रेयांस कुमारने उत्तर दिया—"तुम प्रभुके ऊपर दोष न लगाओ। वे पहिलेकी तरह अब राजा नहीं हैं। वे इस समय संसार-विरक्त, सर्वत्यागी यति हैं। तुम्हारी भेंट की हुई चीजें संसार भागी ले सकता है, यति नहीं। सर्जीव फलादि भी प्रभुके लिए अग्राह्य हैं। इन्हें तो रसिक ग्रहण कर सकता है। प्रभु तो केवल ४२ दोषरहित, एषणीय, कल्पनीय और प्रासुक अन्न ही ग्रहण कर सकते हैं।"

उन्होंने कहा—"युवराज! आजतक प्रभुने कभी यह बात नहीं कही थी। तुमने कैसे जानी?"

श्रेयांस कुमार बोले—"प्रभु भगवानका दर्शन करनेसे जाति-स्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ। सेवककी भाँति मैं आठ भवसे प्रभुके साथ साथ स्वर्ग और मृत्युलोक सभी स्थानोंमें हूँ। इस भवसे तीन भव पहिले भगवान विदेह भूमिमें उत्पन्न हुए थे। ये चक्रवर्ती थे और मैं इनका सारथि था। इनका नाम वज्रनाभ था। उस समय इनके पिता वज्रसेन तीर्थंकर हुए थे। इन्होंने बहुत काल तक भोग भोगकर उनसे दीक्षा ली। मैंने भी इन्हींके साथ दीक्षा ले ली। जब हमने दीक्षा ली थी तब भगवान वज्रसेनने कहा था कि, वज्रनाभका जीव भरतक्षेत्रमें प्रथम तीर्थंकर होगा। उस समय साधुओंको कैसा आहार दिया जाता है सो मैंने

देखा था। मैंने खुदने भी शुद्ध आहार ग्रहण किया था। इसलिए मैं शुद्ध आहार देनेकी रीति जानता था। इसीसे मैंने प्रभुको शुद्ध आहार दिया और प्रभुने ग्रहण किया।" लोग ये बातें सुनकर प्रसन्न हुए और आनंदपूर्वक अपने घर चले गये।

प्रभु वहाँसे विहारकर अन्यत्र चले गये। श्रेयांसकुमारने जिस स्थानपर प्रभुने आहार किया था वहाँ एक स्वर्ण-वेदी बनवाई और वह उसकी भक्तिभावसे पूजा करने लगा।

एक बार विहार करतेहुए प्रभु बाहुबलि देशमें, बाहुबलिके तक्षशिला नगरके बाहिर उद्यानमें आकर ठहरे। उद्यान-रक्षकने ये समाचार बाहुबलिके पास पहुँचाए। बाहुबलि अत्यन्त हर्षित हुए। उन्होंने प्रभुका स्वागत करनेके लिए अपने नगरको सजानेकी आज्ञा दी। नगर सजकर तैयार हो गया। बाहुबलि आतुरतापूर्वक दिन निकलनेकी प्रतीक्षा करने लगे और विचार करने लगे कि, सवेरे ही मैं प्रभुके दर्शनसे अपनेको और पुरजनोंको पावन करूँगा। इधर प्रभु सवेरा होते ही प्रतिमास्थिति समाप्त कर (समाधि छोड़) पवनकी भाँति अन्यत्र विहार कर गये।

बाहुबलि सवेरे ही अपने परिवार और नगरवासियों सहित बड़े जुलूसके साथ प्रभुके दर्शन करनेको रवाना हुए। मगर उद्यानमें पहुँचकर उन्हें मालूम हुआ कि प्रभु तो विहार कर गये हैं। बाहुबलिको बड़ा दुःख हुआ। तैयार होकर आनेमें वक्त खोया इसके लिए वे बडा पश्चात्ताप करने लगे। मन्त्रियोंने उन्हें समझाया और कहाः—" प्रभुके चरणोंके वज्र, अंकुश

चक्र, छत्र रत्न और मस्तकके जिस स्थानपर चिन्ह रहे गए हैं उस स्थानके दर्शन करो और भावसहित यह मानो कि, हमने प्रभुके ही दर्शन किये हैं।"

बाहुबलिने अपने परिवार और पुरजनों सहित उस जगह वंदना की और उस स्थानका कोई उल्लंघन न करे इस खयालसे उन्होंने वहाँ रत्नमय धर्मचक्र स्थापन किया। वह आठ योजन विस्तारवाला, चार योजन ऊँचा और एक हजार आरों वाला था। वह सूर्यबिंबकी भाँति सुशोभित था। बाहुबलिने वहाँ अट्ठाई महोत्सव किया। अनेक स्थानोंसे लाए हुए पुष्प वहाँ चढ़ाए। उनसे एक पहाड़ीसी बन गई। फिर बाहुबलि नित्य उसकी पूजा और रक्षा करनेवाले लोगोंको वहाँ नियत कर, चक्रको नमस्कारकर नगरमें चला गया।

प्रभु तपमें निष्ठा रखते हुए विहार करने लगे। जिस २ प्रकारके अभिग्रह करते थे। मौन धारण किए हुए यवनादि आदि म्लेच्छदेशोंमें भी प्रभु विहार करते थे और वहाँके रहने वाले निवासियोंको अपने मौनोपदेशसे भद्रिक बनाते थे। अनेक प्रकारके उपसर्ग और परिसह सहन करते हुए प्रभुने एक हजार बरस पूर्ण किये।

प्रभु विहार करते हुए अयोध्या नगरीमें पहुँचे। वहाँ पुरि मताल नामक उपनगरकी उत्तर दिशामें शकटमुख नामक उद्यान था उसमें गए। वहाँ अट्ठम तपकर, प्रतिमायोगमें रहे। प्रभुने अप्रमत्त (सातवाँ) गुणस्थान प्राप्त किया। फिर 'अपूर्वकरण (आठवाँ) गुणस्थानमें आरूढ होकर प्रभुने 'सविचार

प्रथक्त्व वितर्क' युक्त शुक्ल ध्यानके प्रथम पायेको प्राप्त किया। उसके वाद 'अनिवृत्ति' (नवाँ) गुणस्थान तथा 'सूक्ष्म संपराय' (दसवाँ) गुणस्थानको प्राप्त किया और क्षण वारहीमें प्रभु क्षीणकपायी वने, फिर उसी ध्यानसे लोभका हननकर उपशांत कषायी हुए। तत्पश्चात् 'ऐक्यश्रुत अविचार' नामके शुक्ल ध्यानके दूसरे पायेको प्राप्तकर अन्त्य क्षणमें, तत्काल ही प्रभुने 'क्षीणमो' (वारहवें) गुणस्थानको पाया। उसी समय प्रभुके पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, और पाँच अन्तराय कर्म भी नष्ट हो गए। प्रभुके घातिया कर्मका हमेशाके लिए नाश हो गया।

इस तरह व्रत लेनेके वाद एक हजार वरस वीतनेपर फाल्गुन मासकी कृष्णा ११ के दिन, चन्द्र जव उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें आया था तव, सवेरे ही तीन लोकके पदार्थोंको वताने वाला, त्रिकाल-विषयज्ञान (केवलज्ञान-ब्रह्मज्ञान) प्राप्त हुआ। उस समय दिशाएँ प्रसन्न हुई। वायु सुखकारी वहने लगा। नारकीके जीवोंको भी क्षण वारके लिए सुख हुआ।

इन्द्रादिक देवोंने आ कर प्रभुका केवलज्ञानकल्याणक* किया। समवसरणकी रचना हुई। सव प्राणी धर्मदेशना सुननेके लिए वैठे।

राजा भरत सदैव सवेरे ही उठकर अपनी दादी मरुदेवा माताके चरणोंमें नमस्कार करने जाते थे। मरुदेवा माता पुत्र-वियोगमें रो रो कर अंधी हो गई थीं। भरतने जाकर दादीके

*—देखो, तीर्थंकर चरित भूमिका पृष्ठ २६–३० तक।

चरणोंमें सिर रक्खा और कहाः—" आपका पौत्र आपको प्रणाम करता है। "

मरुदेवाने भरतको आशीर्वाद दिया। उनकी आँखोंसे अश्रु-धारा बह चली। हृदय भर आया। वे भर्राई हुई आवाजमें बोलीं:—" भरत! मेरी आँखोंका तारा! मेरा लाडला! मेरे कलेजेका टुकड़ा ऋषभ मुझे, तुझे, समस्त राज्य-संपदाको, प्रजाको और लक्ष्मीको तृणकी भाँति निराधार छोड़कर चला गया। हाय! मेरा प्राण चला गया; परन्तु मेरी देह न गिरी। हाय! जिस मस्तकपर चंद्रकान्तिके समान शुभ्र रहता था आज वही मस्तक सूर्यके प्रखर आतापसे तप्त हो रहा है। जिस शरीरपर दिव्य वस्त्रालंकार सुशोभित होते थे वही शरीर आज डाँस, मच्छरादि जन्तुओंका स्थान और निवासस्थान हो रहा है। जो पहिले रत्नजड़ित सिंहासनपर आरूढ़ होता था उसीके लिए आज बैठनेको भी जगह नहीं है; वह गेंडेकी तरह सदा ही रहता है। जिसकी हजारों सशस्त्र सैनिक रक्षा करते थे वही आज असहाय, सिंहादि हिंस्र पशुओंके बीचमें विचरण करता है। जो सदैव देवताओंका लाया हुआ भोजन जीमता था उसे आज भिक्षान्न भी कठिनतासे मिलता है। जिसके कान अप्सराओंके मधुर गायन सुनते थे वही आज सर्पोंकी कर्ण-कटु फूत्कार सुनता है। कहाँ उसका पहिलेका सुखमय और कहाँ उसकी वर्तमान भिक्षुक स्थिति! उसका उज्ज्वल कमलसा सुकुमार शरीर आज सूर्यके प्रखर आताप, शीतकालके भयंकर तुषार और वर्षाऋतुके कठोर जलपातको सहकर

काला और रुक्ष हो गया है। उसके भरे हुए गाल और उसका विकसित वदन सूख गये हैं। उसका वह सूखा हुआ मुँह हर समय मेरी आँखोंके सामने फिरा करता है। हाय! मेरे लाल! तेरी क्या दशा है?"

भरतका भी हृदय भर आया। वे थोड़ी देर स्थिर रहे। आत्मसंवरण किया और फिर बोलेः—"देवी! धैर्यके पर्वत समान, वज्रके साररूप, महापराक्रमी, मनुष्योंके शिरोमणि, इन्द्र जिनकी सेवा करते हैं ऐसे मेरे पिताकी माता होकर आप ऐसा दुःख क्यों करती हैं? वे संसार सागरको पार करनेके लिए उद्यम कर रहे हैं। हम उनके लिए विघ्न थे। इसीलिए उन्होंने हमारा त्याग कर दिया है। भयंकर जीवजन्तु उनको पीड़ा नहीं पहुंचा सकते। वे तो प्रभुको देखते ही पाषाणमूर्तिकी भाँति स्थिर हो जाते हैं। क्षुधा, तृषा, शीत, आताप और वर्षादि तो उनको हानि न पहुँचाकर उल्टे उनको, कर्म-शत्रुओंको नाश करनेमें, सहायता देते हैं। आप, जब उन्हें केवलज्ञान प्राप्त होनेकी बात सुनेंगी तब मेरी बात पर विश्वास करेंगी।"

इतनेहीमें वहाँ यमक और शमक नामके दो व्यक्ति आए। यमकने नमस्कारकर निवेदन कियाः—"महाराज! आज पुरिमताल उपनगरके शकटमुख नामक उद्यानमें युगादि नाथको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ है।" शमकने निवेदन कियाः—"स्वामिन्! आपकी आयुधशालामें आज चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है।"

भरत विचार करने लगे कि, पहिले मुझे किसकी पूजा करनी चाहिए। अन्तमें उन्होंने प्रभुकी ही पूजा करनेके लिए

जाना स्थिर किया। यमक और शमकको पुरस्कार देकर विदा किया। फिर वे मरुदेवा मातासे बोलेः—" माता ! आप हमेशा कहती थीं कि, मेरा पुत्र भिखारी है। आज चलकर देखिए कि, आपका पुत्र कैसा सम्पत्तिवाला है।"

मरुदेवा माताको हस्तिपर सवारकरा अपने परिजन सहित भरत प्रभुको वांदनेके लिए चले। दूरसे भरतने समवसरणका रत्नमयगढ़ बतलाकर कहाः—" माता ! देवी और देवताओंके बनाये हुए प्रभुके इस समवसरणको देखिए, पिताजीकी चरण-सेवाके इच्छुक देवताओंका जयनाद सुनिए, आकाशमें बजते-हुए दुंदुभिकी ध्वनि श्रवण कीजिए, ग्राम (रागका उठाव) और रागसे पवित्र बनी हुई प्रभुका यशोगान करनेवाली गंध र्वोंकी हर्षोत्पादिनी गीति कर्णगोचर कीजिए।"

पानीके प्रवाह प्रवाहसे जैसे अनेक दिनोंका जमा हुआ कचरा भी साफ़ हो जाता है, उसी तरह आनंदाश्रुके प्रवाह प्रवाहसे मरुदेवा माताकी आँखोंमें आये हुए जाले साफ़ हो गये। उन्हें स्पष्ट रूपसे दिखाई देने लगा। उन्होंने अतिशय सहित तीर्थंकरोंके समवसरण-वैभवको देखा। उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। वे प्रभुके उस सुखमें तल्लीन हो गईं। तत्काल ही सम-कालमें अपूर्वकरणके क्रमसे वे क्षपकश्रेणीमें आरूढ़ हुईं, घातिया कर्मोंका नाश होनेसे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। वे अंतकृत-केवली हुईं। उसी समय उनके आयु आदि अघाति कर्म भी नाश हो गये। उनका आत्मा हाथीके होदेमें ही देहको छोड़कर मोक्षमें चला गया। इस अवसर्पिणी कालमें मरुदेवी माता सबसे प्रथम

सिद्ध हुई। देवताओंने उनके शरीरको, सत्कार करके क्षीर-समुद्रमें निक्षिप्त किया-डाला।

भरत समवसरणमें पहुँचे। प्रभुके तीन प्रदक्षिणा दे, प्रणाम कर इन्द्रके पीछे जा बैठे। भगवानने सर्व भाषाओंको स्पर्श करनेवाली (अर्थात् जिसको प्रत्येक भाषा जाननेवाला समझ सके ऐसी) पैंतीस अतिशयवाली और योजनगामिनी वाणीसे देशना दी। उसमें संसारका स्वरूप और उससे छूटनेका उपाय बताया तथा सम्यक्त्वके प्रकारों और श्रावकके बारह व्रतोंका खास तरहसे विवेचन किया।

प्रभुकी देशना सुनकर भरत राजाके पुत्र ऋषभसेनने भरतके अन्यान्य पाँच सौ पुत्रों और सात सौ पौत्रों सहित दीक्षा ले ली। भरतके पुत्र मरीचीने भी दीक्षा ली। ब्राह्मीने भी उसी समय दीक्षा ले ली। सुंदरीने भी दीक्षा लेना चाहा; परन्तु भरतने आज्ञा नहीं दी। इसलिए वह श्राविका हुई। भरतने भी श्रावकके व्रत ग्रहण किये। मनुष्य तिर्यंच और देवताओंकी पर्पदाओंमेंसे, कइयोंने मुनिव्रत ग्रहण किया, कई श्रावक बने और कइयोंने केवल सम्यक्त्व ही धारण किया। तापसोंमें-से कच्छ और महाकच्छको छोडकर और सभीने प्रभुके पास आकर फिरसे दीक्षा ले ली। उसी समयसे ऋषभसेन (पुंडरीक) आदि साधुओं, ब्राह्मी आदि साध्वियों, भरत आदि श्रावकों और सुंदरी आदि श्राविकाओंके समूहको मिलाकर चतुर्विध संघकी स्थापना हुई। उस चतुर्विध संघकी योजना आज भी है। और उसके द्वारा अनेक जीवोंका कल्याण होता है।

उस समय प्रभुने गणधर होने योग्य ऋषभसेन आदि चौरासी सद्बुद्धि साधुओंको, सर्व शास्त्र समन्वित उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य नामकी पवित्र त्रिपदीका उपदेश दिया। उस त्रिपदीके अनुसार उन्होंने (साधुओंने) चतुर्दश पूर्व और द्वादशांगी रची। फिर इन्द्र दिव्य चूर्णका (वासक्षेपका) एक थाल भरकर प्रभुके पास खड़ा रहा। प्रभुने खड़े होकर चतुर्दश पूर्व और द्वादशांगी-पर, क्रमशः चूर्ण क्षेप किया—डाला और सूत्रसे अर्थसे, सूत्रार्थसे, द्रव्यसे, गुणसे, पर्यायसे और नयसे, उन्हें अनुयोग—अनुज्ञा दी, (उपदेश देनेकी आज्ञा दी) तथा गणकी अनुज्ञा भी दी। तत्पश्चात् देवताओं, मनुष्यों, और उनकी स्त्रियोंने दुंदुभिकी ध्वनि पूर्वक उनपर चारों तरफसे वासक्षेप किया। प्रभुकी वाणीका ग्रहण करनेवाले सभी गणधर हाथ जोड़कर खड़े रहे। उस समय प्रभुने पूर्वकी तरफ मुँहकर बैठे हुए पुनः धर्मदेशना दी।

उज्ज्वल शालिका बनाहुआ और देवताओं द्वारा सुगन्धमय किया हुआ, बलि (नैवेद्य) समवसरणके पूर्व द्वारसे अंदर लाया गया। स्त्रियाँ मंगल—गीत गाती हुई उसके पीछे पीछे आईं। वह बलि प्रभुके प्रदक्षिणा करके उछाला गया। उसका आधा भाग पृथ्वीमें पड़नेके पहिले ही देवताओंने ग्रहण कर लिया। अवशेष आधेका आधा भरतने लिया और आधा लोगोंने बाँटके ले लिया। उस बलिके प्रभावसे पहिलेके जो रोग होते हैं वे नष्ट हो जाते हैं और आगामी छः मासतक कोई रोग नहीं होता है।

प्रभु वहाँसे उठकर मध्य भागस्थ देवछंदमें विश्राम करने के लिये गये। गणधरोंमें मुख्य ऋषभसेनने प्रभुके चरणोंमें

बैठकर धर्मदेशना दी। तत्पश्चात् सभी अपने अपने स्थानपर चले गये।

इस प्रकार तीर्थकी स्थापना होनेपर प्रभुके पास रहनेवाला 'गोमुख' नामका यक्ष प्रभुका अधिष्ठायक देवता हुआ। इसी भाँति प्रभुके तीर्थमें उनके पास रहनेवाली प्रतिचक्रा नामकी देवी शासन देवी हुई, जिसे हम चक्रेश्वरीके नामसे पहिचानते हैं।

महर्षियों–साधुओंसे परिवृत्त प्रभुने वहाँसे विहार किया। उनके केश, डाढ़ी और नाखून बढ़ते नहीं थे। प्रभु जहाँ जाते थे वहाँ वैर, मरी, ईति, अवृष्टि, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि और स्वचक्र और परचक्रसे होनेवाला भय-ये उपद्रव नहीं होते थे।

सुंदरीको भरतने दीक्षा नहीं लेने दी, इससे वे घरहीमें आंबिल करके हमेशा रहती थीं। भरत जब छः खंड पृथ्वीको विजय करके आये तब उन्होंने सुंदरीकी कृश मूर्ति देखी। उसका कारण जाना और उन्हें दीक्षा लेनेकी आज्ञा दे दी। उस समय अष्टापदपर प्रभुका समवसरण आया हुआ था। सुंदरीने वहाँ जाकर प्रभुके पाससे दीक्षा ले ली।

भरत छः खंड पृथ्वी विजय करके आये तब उन्होंने अपने भाइयोंसे भी कहलाया कि तुम आकर हमारी सेवा करो। अठानवे भाइयोंने उत्तर दिया कि, हम भरतकी सेवा नहीं करेंगे। राज्य हमें हमारे पिताने दिया है।

तत्पश्चात् उन्होंने प्रभुके पास जाकर सारी बातें निवेदन कीं। प्रभुने उन्हें धर्मोपदेश देकर संयम ग्रहण करनेकी सूचना की। तदनुसार उन्होंने संयम ग्रहण कर लिया।

एक बार मरुने ब्राह्मी ब्राह्मी और सुंदरीसे कहा—' भरतसे चिढ़कर, विजयी बननेके बाद बाहुबलिको वैराग्य हो गया; उसन दीक्षा ग्रहणकर घोर तपश्चरण आरंभ किया। इस समय उसके घाति कर्म क्षय हो गये हैं; परंतु मान कषायका अभीतक नाश नहीं हुआ है। वह सोचता है कि, मैं अपनेसे छोटे भाइयोंको कैसे प्रणाम करूँ? जबतक यह भाव रहेगा उसे केवलज्ञान नहीं होगा। अतः तुम जाकर उसे उपदेश दो। यह समय है। वह तुम्हारा उपदेश मान लेगा। ब्राह्मी और सुंदरीने ऐसा ही किया। बाहुबलिको केवलज्ञान हो गया।

परिव्राजक मतकी उत्पत्ति—एक बार ऋषभ प्रभुमें भरतके पुत्र मरिचि मुनि घबराकर विचार करने लगे कि, इस दुस्सह संयम-भारसे छूटनेके लिए क्या प्रयत्न करना चाहिए? अगर पुनः गृहस्थ होता हूँ तो कुलकी मर्यादा जाती है और चारित्र पाला नहीं जाता। सोचते सोचते उन्हें एक उपाय सूझा,—उन्होंने भगवेके बजाय कषाय (काष पीत) रंगके वस्त्र धारण किये। धूप वर्षासे बचनेके लिए वे छत्ता रखने लगे। शरीर पर चंदनादिका लेप करने लगे। स्थूल हिंसाका ही त्याग रक्खा। द्रव्य रखने लगे। जोड़े पहिनने लगे। और स्नानादिका जल पीने लगे और हमेशा कच्चे जलसे स्नान करने लगे। इतना करनेपर भी वे विहार प्रभुके साथ ही करते थे और जो कोई उनसे उपदेश सुनने आता था उसे शुद्ध धर्महीका उपदेश देते थे। अगर कोई उनसे पूछता था कि, तुम ऐसा आचरण क्यों करते हो तो उसे वे कहते थे कि, मेरेमें इतनी शक्ति नहीं है।

एक बार वे रुग्ण हुए। साधुओंने व्रत-त्यागी समझकर उनकी सेवा नहीं की। इससे उनको विशेष कष्ट हुआ और उन्होंने अपने समान कुछको बनानेका विचार किया। ये जब अच्छे होकर एक बार प्रभुकी देशनामें बैठे हुए थे तब कपिल नामक राजकुमार देशना सुनने आया। भगवानका प्रतिपादित धर्म उसे बहुत कठोर जान पडा। उसने इधर देखा। विचित्र वेषवाले मरिचि उसके नजर आये। उसने उनके पास आकर उन्हें धर्मोपदेश देनेके लिए कहा। अपना सहायक करनेके लिए उन्होंने अपने कल्पित धर्मका उपदेश दिया। कपिलको अपना शिष्य बनाया तभीसे यह परिव्राजकमत प्रचलित हुआ।

ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति—एक बार भरत चक्रवर्तीने सारे श्रावकोंको बुलाकर कहा कि, तुम लोगोंको कृषि आदि कार्य न करके केवल पठनपाठनमें और ज्ञानार्जनमें ही अपना समय बिताना चाहिए और भोजन हमारे रसोड़ेमें आकर कर जाना चाहिए। वे ऐसा ही करने लगे। मुफ्तका भोजन मिलता देख कर कई आलसी लोग भी अपनेको श्रावक बता बताकर भोजन करने आने लगे। तब श्रावकोंकी परीक्षा करके उन्हें भोजन दिया जाने लगा। जो श्रावक होते थे उनके, ज्ञान दर्शन और चारित्रके चिन्हवाली, कांकणी रत्नसे तीन रेखाएँ कर दी जाती थीं। भरतने उन्हें यह आज्ञा दे रक्खी थी कि तुम जब भोजन करके रवाना हो तब मेरे पास आकर यह पद्य बोला करो—

" जितोभवान् वर्द्धते भीस्तस्मान्माहन माहन। "

अर्थात्—तुम जीते हुए हो; भय बढता है इसलिए (आत्मगुणको) न मारो न मारो। सदैव उच्च स्वरसे वे लोग इस

शब्दका उच्चारण करते थे, इसलिए लोगोंने उनका नाम 'माहन' रक्खा। राजाने उन लोगोंको भोजन दिया, इसलिए प्रजा भी उन्हें जिमाने लगी। उनके स्वाध्यायके लिए—ज्ञानके लिए ग्रंथ बनाये गये। उनका नाम वेद (ज्ञान) रक्खा गया। माहन शब्द अपभ्रंश होते होते 'ब्राह्मण' हो गया। अतः वे लोग और उनकी सन्तान 'ब्राह्मण' के नामसे ख्यात हुए। भरत चक्रवर्तीके बाद जब कांकणी रत्नका अभाव हो गया तब उनके पुत्र सूर्ययशाने सोनेके तीन सूत बनाकर उन्हें पहिननेके लिए दिये। पीछेसे शनैः शनैः वे सूत रूईके हो गये और उसका नाम यज्ञोपवीत पड़ा।

एक बार भगवानके समवसरणमें चक्रवर्ती भरतके प्रश्न करनेपर प्रभुने कहा कि, इस अवसर्पिणी कालमें भरतक्षेत्रमें मेरे बाद तेईस तीर्थंकर होंगे और तेरे बाद ११ चक्रवर्ती तथा ९ वासुदेव ९ बलदेव और ९ प्रतिवासुदेव होंगे।

दीक्षाके पश्चात् जब लाख पूर्व बीते तब प्रभुने अपना निर्वाण समय नजदीक समझ अष्टापद पर्वतकी तरफ प्रयाण किया। वहाँ जाकर दस हजार मुनियोंके साथ प्रभुने चतुर्दश तप (छः उपवास) करके पादोपगममें अनशन किया।

भरत चक्रवर्ती अनशनके समाचार सुनकर व्याकुल हुए और अपने परिवार सहित अष्टापदपर पहुँचे। ध्यानस्थ प्रभुको नमस्कारकर उनके सामने बैठ गये।

चौसठ इन्द्रोंके भी आसन काँपे। उन्होंने प्रभुका निर्वाण समय जाना। वे प्रभुके पास आये और प्रदक्षिणा देकर पाषाणमूर्तिकी भाँति स्थिर होकर सामने बैठ गये।

१—वृक्षकी तरह स्तब्ध और निश्चेष्ट रहनेको पादोपगमन कहते हैं।

इस अवसर्पिणीकालके तीसरे आरेके जब नन्यानवे पक्ष (४ बरस एक महीना और पन्द्रह दिन) रहे तब माघकृष्णा त्रयोदशीके सवेरे, अभिचि नक्षत्रमें, चंद्रका योग आया था उस समय पर्यंकासनस्थ प्रभुने बादर काययोगमें रहकर बादर वचन-योग और बादर मनोयोगको रोका; फिर सूक्ष्म काय-योगका आश्रय ले, बादर काययोग, सूक्ष्म मनोयोग तथा सूक्ष्म वचनयोगको रोका। अन्तमें वे सूक्ष्म काययोगका भी त्यागकर और 'सूक्ष्म क्रिया' नामक शुक्ल ध्यानके तीसरे पायेके अन्तको प्राप्त हुए। तत्पश्चात् उन्होंने 'उच्छिन्नक्रिया' नामके शुक्ल ध्यानके चौथे पायेका—जिसका काल केवल पाँच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारण जितना ही है—आश्रय किया। अन्तमें केवलज्ञानी, केवलदर्शनी, सर्व दुःखविहीन, आठों कर्मोंका नाश कर सारे अर्थोंको सिद्ध करनेवाले अनत वीर्य, अनंत सुख और अनत ऋद्धिवाले, प्रभु बंधके अभावसे एरंड फलके बीजकी तरह ऊर्द्ध्व गतिवाले होकर स्वभावतः सरल मार्ग द्वारा लोकाग्रको (मोक्षको) प्राप्त हुए। प्रभुके निर्वाणसे-सुखकी छायाका भी कभी दर्शन नहीं करनेवाले—नारकी जीवोंको भी क्षण बारके लिए सुख हुआ।

दस हजार श्रमणों (साधुओं) को भी, अनशन व्रत लेनेके और क्षपकश्रेणीमें आरूढ़ होनेके बाद केवलज्ञान प्राप्त हुआ। फिर मन, वचन और कायके योगको सर्व प्रकारसे रुद्ध कर वे भी ऋषभदेव स्वामीकी भाँति ही परम पदको प्राप्त हुए।

चक्रवर्ती भरत वज्राहतकी भाँति इस घटनासे मूर्च्छित हो कर पृथ्वीपर गिर पड़े। इन्द्र उनके पास बैठकर रुदन करने लगा। देवताओंने भी इन्द्रका साथ दिया। मूर्च्छित चक्री

जब चैतन्य हुए तब पशुओंने भी पशुपक्षियों सबका स्वा-देनेवाला आक्रंदन करना आरंभ किया।

जब सबका मोह छूटनेसे हृदय कम हुआ तब प्रभुका निर्वाण महोत्सव (निर्वाणकल्याणक)* किया गया और प्रभुका भौतिक शरीर भी देखते ही देखते चितामें भस्मीसात हो गया।

इस तरह एक महान आत्मा हमेशाके लिए संसारसे मुक्त हो गया। अपने अन्तिम भवमें संसारका महान उपकार कर गया और संसारको सुखका वास्तविक स्थान तथा उस स्थान पर पहुँचनेका मार्ग दिखा गया।

प्रभुकी चौरासी लाख आयु इस प्रकार पूर्ण हुई थी। २० लाख पूर्व कुमारावस्थामें, ६३ लाख पूर्व राज्यका पालन और सुख भोगमें, १ ० वर्ष छद्मस्थावस्थामें १ वर्ष कम एक लाखपूर्व केवली पर्यायमें। उनका शरीर ५ ० धनुष ऊँचा था।

भगवानका धार्मिक परिवार इस प्रकार था—८४ गणधर ८४ गण; ८४ हजार साधु; ३ लाख साध्वियाँ; ३ १० ० श्रावक; ५५४ ० श्राविकाएँ; ४७५० चौदह पूर्वधारी श्रुत केवली; ९ हजार अवधिज्ञानी; २ केवलज्ञानी; २ ६ ० वैक्रियक लब्धिवाले, १२६५ ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी और १२६५ वादी थे। २ ० साधु और चालीस हजार साध्वियाँ मोक्षमें गईं। २२९ ० साधु अनुत्तर विमानमें गये।

---

*—देखो तीर्थंकरचरित भूमिका पृ १ —११।

श्रीअजितनाथ चरित।

अर्हंतमजितं विश्व–कमलाकरभास्करम्।
अम्लानकेवलादर्श–संक्रातजगतं स्तुवे॥

"संसाररूपी कमलसरोवरको प्रकाशित करनेमें सूर्यके समान और जगत्को अपने निर्मल केवलज्ञान द्वारा जाननेमें दर्पणके समान श्रीअजितनाथ स्वामीकी मैं स्तुति करता हूँ।"

१ प्रथम भव—समस्त द्वीपोंके मध्यमें नाभिके समान जम्बूद्वीप है। उसमें महाविदेह क्षेत्र है। इस क्षेत्रमें हमेशा 'दुखमा सुखमा' नामका चौथा आरा * वर्तता है। इसी क्षेत्रमें सीता नामक एक बड़ी नदी थी। उसके दक्षिण तटपर वत्स नामका देश था। वह बहुत समृद्धिशाली था। उसमें सुसीमा नामकी नगरी थी। उसकी सुंदरताको देखकर देखनेवाले स्वर्गकी कल्पना करने लगते थे। कई कहते थे पातालस्थ असुर देवोंकी यह भोगावती नगरी है। कई कहते थे यह देवताओं की अमरावती है जो स्वर्गसे यहाँ उतर आई है और कई कहते थे यह तो उन दोनोंकी छोटी बहन है। पाताल और स्वर्गमें उन्होंने अधिकार किया है। इसने मनुष्य लोकमें अपना स्थान बनाया है।

---

* देखो तीर्थंकर चरितभूमिका, पेज ८

इसी नगरमें विमलवाहन नामका राजा राज्य करता था। वह प्रजाको सन्तानकी तरह पालता था, पोषता था और प्रसन्न बनाता था। न्याय तो उसके जीवनका प्रदीप था। और तो और वह निकृष्ट अन्याय भी कभी नहीं सहता था। उसके लिए दंड देता था, प्रायश्चित्त करता था। प्रजाके लिए वह सदा अपना सर्वस्व न्योछावर करनेको तत्पर रहता था। प्रजा भी उसको प्राणोंसे ज्यादा प्यार करती थी। जहाँ उसका पसीना गिरता वहाँ प्रजा अपना रक्त बहा देनेको सदा तैयार रहती थी। वह शत्रुओंके लिए जैसा वीर था, वैसा ही नम्र और याचकोंके लिये दयालु और दाता था। इसीलिए वह युद्धवीर, दयावीर और दानवीर कहलाता था। राज–धर्ममें रहकर बुद्धिको स्थिर रख, प्रमादको छोड़, जैसे सर्पराज अमृतकी रक्षा करता है वैसे ही वह पृथ्वीकी रक्षा करता था।

संसारमें वैराग्योत्पत्तिके अनेक कारण होते हैं। संस्कारी आत्माओंके अन्तःकरणोंमें तो प्रायः, जब कभी वे सांसारिक कार्योंसे निवृत्त होकर बैठे होते हैं, वैराग्यके भाव जाग्रत हो जाते हैं।

राजा विमलवाहन संस्कारी था, धर्मपरायण था। सवेरेके समय, एक दिन, अपने झरोखेमें बैठे हुए उसको विचार आया, "मैं कब तक संसारके इस बोझेको उठाये फिरूँगा। जन्मा, बालक हुआ–बाल्यावस्था दूसरोंकी सरसतामें, खेलने कूदनेमें और लाड प्यारमें खोई। जवान हुआ–युवती पत्नी लाया, दिन पामरमें निमग्न हुआ इन्द्रियोंका दास बना, उन्मत्त होकर मोम

भोगने लगा, धर्मकी थोड़ीबहुत भावनाएँ जो लड़कपनमें प्राप्त हुई थीं उन्हें भुला दिया। मगर उसका क्या परिणाम हुआ? पिताके देहान्तने सब सुख छीन लिया। छिः! वास्तविक सुख तो कभी छिनता नहीं है। वह विषय-सेवनका उन्माद जाता रहा। गया मगर सर्वथा न मिटा। राज्यकार्यके बोझके तले वह दब गया। राजा बननेपर दुःख और चिन्ताकी मात्रा बढ गई। कठोर राज्यशासन चलानेमें कितनोंको सताया? कितनोंका जी दुखाया? उच्चाकांक्षा, राज्यलोभ और अहमन्यताके कारण कितनोंको तहोबाला किया? यह सब कुछ किया किन्तु आत्मसुख न मिला। अब पवन विकंपित लता-पत्रकी भाँति यौवनकी चंचलता भी जाती रही, और राज्यगर्वका उन्माद भी मिट गया। जिन चीजोंको मैं सुखदायी समझता था, जिन भोगोंके लिए मैंने समझा था कि इन्हें भोग डालूँगा मगर जैसेके तैसे ही हैं। मेरी ही भोगनेकी शक्ति जाती रही; तो भी तृष्णा न मिटी।"

पाठकगण! विवेकी और धर्मी मनुष्योंके दिलोंमें ऐसे विचार प्रायः आया ही करते हैं। भर्तृहरिने ऐसे ही विचारोंसे प्रेरित होकर लिखा है:—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

भाव यह है कि, हमने बहुत कुछ भोग भोगे परन्तु भोगोंका अन्त न आया; हाँ हमारा अन्त हो गया। हमने तापोंको

दुःखोंको नहीं घुमाया परन्तु संसारके तापोंने थोड़े दिनोंमें ही तपा तपाकर हमारे शरीरको क्षीण कर दिया। काल-समय समाप्त न हुआ, परन्तु हमारी आयु समाप्त हो गई। जिस तृष्णाके वशमें होकर हमने अपने कार्य किये वह तृष्णा तो नष्ट न हुई मगर हम ही नष्ट हो गये।

उर्दू कवि जौकने कहा है:—

पर जौक तू न छोड़ेगा इस पीरा जाल को,
यह पीरा जाल गर तुझे चाहे तो छोड़ दे।

अभिप्राय यह है कि, लोग दुनियाको नहीं छोड़ते। दुनिया ही लोगोंको निकम्मे बनाकर छोड़ देती है।

विमलवाहन वैराग्य-मार्गमें निमग्न था, उसी समय उसने सुना कि अरिंदम नामक आचार्य महाराज विहार करते हुए आये हैं और उद्यानमें ठहरे हैं।

इस समाचारको सुनकर राजाको इतना हर्ष हुआ जितना हर्ष दानेके मोहताजको अतुल सम्पत्ति मिलनेसे या बाँझको सगर्भा होनेसे होता है। वह तत्काल ही बड़ी धूमधामके साथ आचार्य महाराजको वंदना करनेके लिए रवाना हुआ। उद्यानके समीप पहुँचकर राजा हाथीसे उतर गया। उसने अंदर जाकर आचार्य महाराजको विधिपूर्वक वंदन किया।

मुनिके चरणोंमें पहुँचते ही राजाने अनुभव किया कि, मुनिके दर्शन उसके लिए, कामदेवके आघातसे बचानेके लिए वज्रमय बख्तरके समान हो गये हैं; मस्तक रात्रन्दीमें मुनिदर्शन आँखसे मिट गया है; देह-वस्तु मुनिदर्शन-तेजसे भाग गया है।

क्रोध-अग्नि दर्शन-मेघसे बुझ गई है; मानवृक्षको दर्शनगजने उखाड़ दिया है; माया-सर्पिणीको दर्शनगरुड़ने डस लिया है; लोभपर्वतको दर्शनवज्रने विध्वंस कर दिया है; मोहान्धकारको दर्शनसूर्यने मिटा दिया है। राजाके अन्तःकरणमें एक अभूतपूर्व आनन्द हुआ। पृथ्वीके समान क्षमाको धारण करनेवाले आचार्य महाराजने उसको धर्मलाभ दिया। राजा बैठ गया। आचार्य महाराज धर्मोपदेश देने लगे।

जब उपदेश समाप्त हो गया, तब राजाने पूछाः—"दया-नाथ! संसाररूपी विषवृक्षके अनन्त दुःखरूपी फलोंको भोगते हुए भी मनुष्योंको जब वैराग्य नहीं होता; वे अपने घरबार नहीं छोड़ते; तब आपने कैसे राज्यसुख छोड़कर संयम ग्रहण कर लिया?"

मुनिने अपनी शान्त एवं गंभीर वाणीमें उत्तर दियाः—"राजन्! संसारमें जा सोचता है उसके लिये प्रत्येक पदार्थ वैराग्यका कारण होता है और जो नहीं सोचता उसके लिए भारीसे भारी घटना भी वैराग्यका कारण नहीं होती। मैं जब गृहस्थ था तब अपनी चतुरंगिणी सेना सहित दिग्विजय करने निकला। एक जगह बहुत ही सुन्दर बागीचा मिला। मैंने वहीं डेरा डाला और एक दिन बिताया। दूसरे दिन मैं वहाँसे चला गया। कुछ कालके बाद जब मैं दिग्विजय करके वापिस लौटा तब मैंने देखा कि, वह बागीचा नष्ट हो गया है, सुमन-सौरभ-पूर्ण वह बागीचा कंटकाकीर्ण हो रहा है। उसी समय मेरे अन्तः-करणमें एक वैराग्य-भावना उठी। संसारकी असारता आर

उसका मायामात्र मेरी आँखोंके सामने खड़ा हुआ । मैंने, अपने राज्यमें पहुँचते ही राज्य लड़केको सौंप दिया और, निर्वाण-प्राप्तिके लिए चिन्तामणि रत्नके समान फल देनेवाली दीक्षा, महामुनिके पाससे, ग्रहण कर ली ।

राजाका अंतःकरण पहले ही संसारसे पराङ्मुख हो रहा था। इस समय उसने इसे छोड़ देनेका संकल्प कर लिया । उसने आचार्य महाराजसे प्रार्थना की:—" गुरुवर्य ! मैं जाकर राजभार अपने लड़केको सौंपूँगा और कल फिर आपके दर्शन करूँगा । आपसे संयम ग्रहण करूँगा । तब तक आप यहाँसे विहार न करें । " आचार्य महाराजने राजाकी प्रार्थना स्वीकार की । राजा नगरमें गया ।

नगरमें आकर विमलवाहनने अपने मंत्रियोंको बुलाया । उनके सामने अपनी दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की । मंत्रियोंने निर्मल अंतःकरणके साथ राजाकी इच्छामें अनुमोदन दिया । तब राजाने अपने पुत्रको बुलाया और उसे राजभार ग्रहण करनेके लिए कहा । यद्यपि उसका हृदय बहुत दुःखी था तथापि पिताकी आज्ञाको उसने सिरपर चढ़ाया । विमलवाहनने पुत्रको राजसिंहासनपर बिठाकर, आचार्य महाराजके पाससे दूसरे दिन दीक्षा ले ली ।

इन्होंने समिति, गुप्ति, परिसह आदि क्रियाओंका निर्दोष करते हुए अपने मनको स्थिर किया । वे सिद्ध, गुरु, बहुश्रुत, स्थविर, तपस्वी मुनिजन और संघमें भक्ति रखते थे । वहीं

उनका इन स्थानकोंका आराधन था। इनसे और अन्यान्य तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन करनेवाले स्थानकोंका × आराधन करके, तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया। उन्होंने एकावली, रत्नावली और 'ज्येष्ठ सिंहनिष्क्रीडित' तथा 'कनिष्ठ सिंहनिष्क्रीडित' आदि उत्तम तप किये। F अन्तमें उन्होंने दो प्रकारकी संलेखना और अनशन व्रत ग्रहण करके पंच परमेष्ठीका ध्यान करते हुए उस देहका त्याग किया।

२ दूसरा भव

वहाँसे मरकर राजा विमलवाहनका जीव 'विजय' नामके अनुत्तर विमानमें, तेतीस सागरोपमकी आयु वाला देव हुआ। वहाँके देवताओंका शरीर एक हाथका होता है। उनका शरीर चन्द्रकिरणोंके समान उज्ज्वल होता है। उन्हें अभिमान नहीं होता। वे सदैव सुखशय्यामें सोते रहते हैं। उत्तर क्रियाकी शक्ति रखते हुए भी उसका उपयोग करके वे दूसरे स्थानोंमें नहीं जाते। वे अपने अवधिज्ञानसे समस्त लोकनालिका (चौदह राजलोकका) अवलोकन किया करते हैं। वे आयुष्यके सागरोपमकी संख्या जितने पक्षोंसे, यानी तेतीस पक्ष बीतनेपर, एक बार श्वास लेते हैं। तेतीस हजार बरसमें एक बार उन्हें भोजनकी इच्छा होती है। इसी प्रकार विमलवाहन राजाके जीवका भी काल बीतने लगा। जब आयुमें छः महीने बाकी रहे तब दूसरे देवताओंकी तरह उन्हें मोह न हुआ, प्रत्युत पुण्योदयके निकट आनेसे उनका तेज और भी बढ गया।

× देखो पेज ५०-५१

F तपोंका हाल जाननेके लिए देखो-' श्री तपोरत्न महोदधि '

विनीता नगरीके स्वामी आदि तीर्थंकर श्रीऋषभदेव स्वामीके बाद इक्ष्वाकु वंशमें असंख्य राजा हुए। उस समय

१ तीसरा भव जितशत्रु यहाँके राजा थे, विजयादेवी उनकी रानी थी। विजयादेवीने हस्ती आदिक चौदह स्वप्न देखे। तब सगर्मा पूर्वे विमलवाहन राजाका जीव विजया विमानसे च्यवकर, रत्नकी खानिके समान विजयादेवीकी कूखमें आया। उस दिन वैशाखकी शुक्ला त्रयोदशी थी, और चन्द्रका योग रोहिणी नक्षत्रमें आया था। इनको गर्भमें ही तीन ज्ञान (मति, श्रुति और अवधि) थे।

उसी दिन राजाके राजाके भाई सुमित्रकी स्त्री वैजयंतीको भी–जिसका दूसरा नाम यशोमती था–वे ही चौदह स्वप्न आए। उसकी कूखमें भावी चक्रवर्तीका जीव आया।

सवेरा होनेपर राजाको दोनोंके स्वप्नोंकी बात मालूम हुई। राजाने निमित्तकोंसे फल पूछा। उन्होंने नक्षत्रादिका विचार करके स्वप्नोंका फल बताया कि, विजयादेवीकी कूखसे तीर्थंकर जन्म लेंगे और यशोमतीके गर्भसे चक्रवर्ती।

इन्द्रादि देवोंके आसन विकंपित हुए। उन्होंने आकर गर्भ-कल्याणकका उत्सव किया।

जब नौ महीने और साढे आठ दिन व्यतीत हुए तब माघ शुक्ला अष्टमीके दिन विजयादेवीने, सत्य और प्रिय वाणी जैसे पुण्यको जन्म देती है वैसे ही पुत्ररत्नको प्रसव किया। शुभ लग्न था। सारे ग्रह उच्चके थे। नक्षत्र रोहिणी था। पुत्रके पैरमें हाथीका चिन्ह था। प्रसवके समय देवी और पुत्र–दोनोंको

किसी प्रकारका कष्ट नहीं हुआ। बिजलीके प्रकाशके समान कुछ क्षणके लिए तीनों भुवनमें उजाला हो गया। क्षण वारके लिए उस समय नारकी जीवोंको भी सुख हुआ। चारों दिशाओंमें प्रसन्नता हुई। लोगोंके अन्तःकरण प्रातःकालीन कमलकी भाँति विकसित हो गये। दक्षिण वायु मंद मंद बहने लगी। चारों तरफ शुभसूचक शकुन होने लगे। कारण, महात्माओंके जन्मसे सब बातें अच्छी ही होती हैं।

छप्पन कुमारिकाओंके आसन काँपे और वे प्रभुकी सेवामें आई। इंद्रादि देवोंके आसन विकंपित हुए। चौसठ इन्द्रोंने आकर प्रभुका जन्मकल्याणक किया।

उसी रातको वैजयंतीने भी, जैसे गंगा स्वर्णकमलको प्रकट करती है वैसे ही एक पुत्रको जन्म दिया।

जितशत्रु राजाको यथा समय समाचार दिये गये। राजाने बडा हर्ष प्रकट किया। उसने प्रसन्नताके कारण राज-*विद्रोहियों, और शत्रुओं तकको छोड़ दिया। शहरमें ये समाचार पहुँचे। आनंद-कोलाहलसे नगर परिपूर्ण हो गया। बड़े बडे सामन्त और साहूकार लोग आ आकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए राजाको भेट देने लगे। किसीने रत्नाभूषण, किसीने बहु मूल्य रेशमी और सनके वस्त्र, किसीने शस्त्रास्त्र, किसीने हाथी घोड़े और किसीने उत्तमोत्तम कारीगरीकी चीजें भेट कीं। राजाने उनकी आवश्यकता न होते हुए भी अपनी प्रजाको प्रसन्न रखनेके लिए सब प्रकारकी भेटें स्वीकार कीं।

समस्त नगरमें [वंदनवार बँधे । दस दिन तक नगरमें राजाने उत्सव कराया । मालका महसूल न लिया और किसीको दंड भी न दिया ।

कुछ दिन बाद राजाने नामकरण संस्कारके लिए महोत्सव किया । मंगल गीत गाये गये । बहुत सोच विचारके बाद राजाने अपने पुत्रका नाम 'अजित' रक्खा । कारण, जबसे यह शिशु कूखमें आया तबसे राजा अपनी पत्नीके साथ चौसर खेलकर कभी नहीं जीते । भ्राताके पुत्रका नाम 'समर' रक्खा गया ।

अजितनाथ स्वामी अपने हाथका अंगूठा चूसते थे । उन्होंने कभी धायका दूध नहीं पिया । उनके अंगूठेमें इन्द्रका रक्खा हुआ अमृत था । सभी तीर्थंकरोंके अंगूठेमें इन्द्र अमृत रखता है । दूजके चंद्रमाकी तरह दोनों राजकुमार बढ़ने लगे ।

योग्य आयु होने पर 'समर' पढ़नेके लिए भेजे गये । तीर्थंकर जन्महीसे तीन ज्ञानवाले होते हैं । इसी लिए महात्मा अजितकुमार उपाध्यायके पास अध्ययनके लिए नहीं भेजे गये ।

उनकी बाल्यावस्था समाप्त हुई । अब उन्होंने जवानीमें प्रवेश किया । उनका शरीर साढ़े चार सौ धनुषका, संस्थान समचतुरस्र और संहनन 'वज्र ऋषभ नाराच' था । वक्षस्थलमें श्रीवत्सका चिन्ह था । वर्ण स्वर्णके समान था । उनकी केश-

राशि यमुनाकी तरंगोंके समान कुटिल और श्याम थी। उनका ललाट अष्टमीके चंद्रमाके समान दमकता था। उनके गाल स्वर्णके दर्पणकी तरह चमकते थे। उनके नेत्र नीले कमलके समान स्निग्ध और मधुर थे। उनकी नासिका दृष्टि-रूपी सरोवरके मध्य भागमें स्थित पालके समान थी। उनके होठ विंब फलके जोड़ेसे जान पडते थे। सुंदर आवर्त्तवाले कर्ण सीपसे मनोहर लगते थे। तीन रेखाओंसे पवित्र वना हुआ उनका कंठ शंखके समान शोभता था। हाथीके कुंभस्थलकी तरह उनके स्कंध ऊँचे थे। लंवी और पुष्ट भुजाएँ भुजगका भ्रम कराती थीं। उरस्थल स्वर्णशैलकी शिलाके समान शोभता था। नाभि मनकी तरह गहन थी। वज्रके मध्य भागकी तरह उनका कटि प्रदेश कृश था। उनकी जाँघ वड़े हाथीकी सूंडसी सरल और कोमल थी। दोनों कुमार अपने यौवनके तेज और शरीरके संगठनसे वहुत ही मनोहर दीखते थे। सगर अपने रूप और पराक्रमादि गुणोंसे मनुष्योंमें प्रतिष्ठा पाता, जैसे इन्द्र देवोंमें पाता है। और अजित स्वामी अपने रूप और गुणसे, मेरु पर्वत जैसे सारे पर्वतोंमें अधिक मानद है वैसे ही, देवलोकवासी, ग्रैवेयकवासी और अनुत्तर विमानवासी देवोंसे एवं आहारक शरीरसे भी अधिक माननीय थे।

रागरहित अजित प्रभुको राजाने और इन्द्रने व्याह करने-के लिए पूछा। प्रभुने अपने भोगावली कर्मको जान अनुमति दी। इनका व्याह हुआ। सगरका भी व्याह हो गया। ये आनंदसे सुखोपभोग करने लगे।

जितशत्रु राजाको और उनके भाई सुमित्रको वैराग्य हो आया। उन्होंने अपने पुत्रोंसे, जिनकी आयुके अठारह लाख पूर्व समाप्त हो गये थे, कहा—“पुत्रो! हम अब मोक्ष साधन करना चाहते हैं। धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ हम भली प्रकार साध चुके। इस लिए तुम यह राज्य-भार ग्रहण करो। अजित राजा बने और सगर युवराज होकर रहे। हमें दीक्षा स्वीकार करनेकी अनुमति दो।”

अजितनाथ बोले:—“हे पिताजी! आपकी इच्छा शुभ है। अगर भोगावली कर्मका विघ्न बीचमें न आता तो मैं भी आपके साथ ही संयम ग्रहण कर लेता। पिताके मोक्ष-पुरुषार्थ साधनमें अगर पुत्र बाधक बने तो वह पुत्र, पुत्र नहीं है। मगर मेरी इतनी प्रार्थना है कि, आप मेरे चाचाजीको यह भार सौंपिए। मेरे सिर यह भार न रखिए।”

सुमित्र बोले:—“मैं संयम ग्रहण करनेके शुभ कामको नहीं छोड़ सकता। राज्य-भार मेरे लिए असह्य है।”

अजितकुमार:—“यदि आप राज्य ग्रहण नहीं करना चाहते हैं तो घरहीमें भावयति होकर रहिए। इससे हमें सुख होगा।”

राजा बोले:—“हे बंधु! तुम आग्रह करनेवाले अपने पुत्रकी बात मानो। जो भावसे यति—साधु होता है वह भी यति ही कहलाता है। और तुम्हारा यह बड़ा पुत्र तीर्थंकर है, इसके तीर्थमें तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। दूसरा पुत्र चक्रवर्ती है। इन्हें धर्मपूर्वक शासन करते देखकर तुम्हें अत्यंत प्रसन्नता होगी”

यद्यपि सुमित्रकी दीक्षा लेनेकी बहुत इच्छा थी, तथापि उन्होने अपने ज्येष्ठ बन्धुकी आज्ञा मानकर भावयति रूपसे घरहीमें रहना स्वीकार कर लिया। सत्य है:— "सत्पुरुष अपने गुरुजनकी आज्ञाको कभी नहीं टालते।"

जितशत्रु राजाने प्रसन्न होकर बड़े समारोहके साथ अजितकुमारको राज्याभिषेक किया। सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। भला विश्वरक्षक स्वामी प्राप्त कर किसको प्रसन्नता न होगी? फिर अजितकुमारने सगरको युवराज पद दिया।

जितशत्रु राजाने दीक्षा ग्रहण की। बाह्य और अंतरंग शत्रुओंको जीतनेवाले उन राजर्पिने अखंड व्रत पाला। क्रमशः केवलज्ञान हुआ और अंतमें शैलेशी ध्यानमें स्थित उन महात्माने अष्ट कर्मोंका नाश कर परम पद प्राप्त किया।

अजितनाथ स्वामी समस्त ऋद्धि सिद्धि सहित राज करने लगे। जैसे उत्तम सारथीसे घोडे सीधे चलते हैं वैसे ही अजित स्वामीके समान दक्ष और शक्तिशाली नृपको पाकर प्रजा भी नीति मार्ग पर चलने लगी। उनके शासनमें पशुओंके सिवा कोई बंधनमें नहीं था। ताडना वाजिंत्रोंहीकी होती थी। पिंजरेमें पक्षी ही बंद किये जाते थे। अभिप्राय यह है कि, प्रजामें सब तरहका सुख था। वह नीतिके अनुसार आचरण करती थी। उसमें अजित स्वामीके प्रभावसे अनीतिका लेश भी नहीं रह गया था।

उनके पास सकल ऐश्वर्य था तो भी उन्हें उसका अभिमान

नहीं था। अतुल शरीर बल रखते हुए भी उनमें मद न था। अनुपम रूप रखते हुए भी उन्हें सौन्दर्यका अभिमान नहीं था। विपुल माल होते हुए भी उन्मत्तता उनके पास नहीं आती थी। अनेक प्रलोभन और मद-मात्सर्यको बढ़ानेवाली सामग्रियोंके होते हुए भी व सबको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते थे। तृणतुल्य समझते थे। इस प्रकार राज्य करते हुए अजित स्वामीने तिरपन लाख पूर्वका समय व्यतीत किया।

एक दिन प्रभु अकेले बैठे हुए थे। अनेक प्रकारके विचार उनके अन्तःकरणमें उठ रहे थे। अन्तमें वैराग्य भावनाकी लहर उठी। उस भावनाने उनके अन्यान्य समस्त विचारोंको दबा दिया। हृदयके ही नहीं, समस्त शरीरके शिरा मन्दिरमें—रगरग और रेशे रेशेमें वैराग्य-भावनाने अधिकार कर लिया। संसारसे उनका चित्त उदास हो गया।

जिस समय अजित स्वामीका चित्त निर्वेद हो गया था उस समय सारस्वतादि लोकान्तिक देवताओंने आकर विनती की "हे भगवन्! आप स्वयंबुद्ध हैं। इसलिए हम आपको किसी तरहका उपदेश देनेकी इच्छा तो नहीं करते परंतु प्रार्थना करते हैं कि, आप धर्मतीर्थ चलाइए।"

देवता चरणवंदना कर चले गये। अजित स्वामीने मनोनुकूल अनुरोध देख, भोगावली कर्मोंका क्षय समझ, तत्काल ही सगर कुमारको बुलाया और कहाः—"बंधु! मेरे भोगकर्म समाप्त हो चुके हैं। अब मैं संसारसे तैरनेका कार्य करूँगा—दीक्षा लूँगा। तुम इस राज्यको ग्रहण करो।"

सगरकुमारके हृदयपर मानों वज्र गिरा। दुःखसे उनका चेहरा श्याम हो गया। नेत्रोंसे अश्रुजल वरसने लगा। भला स्वच्छंदतापूर्वक सुखभोगको छोड़कर कौन मनुष्य उत्तरदायित्व-का बोझा अपने सिर लेना चाहेगा? उन्होंने गद्गद् कंठ होकर नम्रतापूर्वक कहाः—"देव! मैंने कौनसा ऐसा अपराध किया है कि, जिसके कारण आप मेरा इस तरह त्याग करते हैं? यदि कोई अपराध हो भी गया हो तो आप उसके लिए मुझे क्षमा करें। पूज्य पुरुष अपने छोटोंको उनके अपराधोंके लिए सजा देते हैं, उनका त्याग नहीं करते। वृक्षका सिर आकाश तक पहुँचता हो, परन्तु छाया न देता हो, तो वह निकम्मा है। घनघटा छाई हो परन्तु वरसती न हो तो वह निकम्मी है। पर्वत महान हो मगर उसमें जलस्रोत न हो तो वह निकम्मा है। पुष्प सुन्दर हो परन्तु सुगन्ध-विहीन हो तो निकम्मा है। इसी तरह तुम्हारे विना यह राज्य मेरे लिए भी निकम्मा है। आप मुक्तिके लिए ससारका त्याग करते हैं, मैं आपकी चरणसेवाके लिए संसार छोड़ूँगा। मै माता, पुत्र, पत्नी सवको छोड़ सकता हूँ; परन्तु आपको नहीं छोड़ सकता। यहाँ मै युवराज होकर आपकी आज्ञा पालता था, वहाँ शिष्य होकर आपकी सेवा करूँगा। यद्यपि मैं अज्ञ और शक्ति-हीन हूँ तो भी आपके सहारे, उस वालककी तरह जो गऊकी पूँछ पकडकर नदी पार हो जाता है, मैं भी संसार सागरसे पार हो जाऊँगा। मैं आपके साथ दीक्षा लूँगा, आपके साथ वन वन फिरूँगा, आपके साथ अनेक प्रकारके दुःसह कष्ट सहूँगा, मगर आपको छोड़कर

राज्यसुख भोगनेके लिये मैं यहाँ न रहूँगा। अतः पूज्यवर! मुझे साथ लीजिये।"

जिसके प्रत्येक शब्दसे प्रभु-वियोगकी आंतरिक दुःसह वेदना प्रकट हो रही थी, जिसका हृदय इस भावनासे टूक टूक हो रहा था कि, भगवान मुझे छोड़कर चले जायँगे; उस मोहमुग्ध सगर कुमारको प्रभुने अपनी स्वाभाविक अमृत-सम वाणीमें कहा:—"बंधु! मोहाधीन होकर मेरे साथ आनेकी भावना अनुचित है। मोह आखिर दुःखदायी है। हाँ दीक्षा लेनेकी तुम्हारी भावना श्रेष्ठ है। संसार सागरसे पार उतरनेका यही एक साधन है। तो भी अभी तुम्हारा समय नहीं आया है। अभी तुम्हारे भोगावली कर्म अवशेष हैं। उन्हें भोगे बिना तुम दीक्षा नहीं ले सकते। अतः हे युवराज! क्रमागत अपने इस राज्यभारको ग्रहण करो, प्रजाका पालन करो, न्यायसे शासन करो और मुझे संयम लेनेकी अनुमति दो।"

सगरकुमार स्तब्ध होकर प्रभुके मुखकी ओर देखने लगा। क्या करता और क्या नहीं? उसके हृदयकी अजब हालत थी। एक ओर स्वामी-वियोगकी वेदना थी और दूसरी तरफ स्वामीकी आज्ञा भंग होनेका खयाल था। वह दोनोंमेंसे एक भी करना नहीं चाहता था। न वियोग-वेदना सहनेकी इच्छा थी और न आज्ञा लोपनेकीही। मगर दोनों परस्पर विरोधी बातें एक साथ कैसे होतीं? दिन रातका मेल कैसे संभव था? आखिर कुमारने वियोग-वेदनाको, आज्ञा लोपनेसे ज्यादा अच्छा समझा।

'गुरुजनोंकी आज्ञा मानना ही संसारमें श्रेष्ठ है' इसलिए प्रभुसे विलग होनेमें सगरकुमारका हृदय खंड खंड होता था तो भी उसने प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य की और भग्न स्वरमें कहाः—"प्रभो! आपकी आज्ञा शिरसा वंद्य है।"

प्रभुने सगरकुमारको राज्याधिकारी बनाया और आप वर्षी-दान देनेमें प्रवृत्त हुए। इन्द्रकी आज्ञासे तिर्यक्जृंभक नामवाले देवता, देशमेंसे ऐसा धन ला लाकर चौकमें, चोराहोंपर, तिराहों पर और साधारण मार्गमें जमा करने लगे जो स्वामी बिना-का था, जो पृथ्वीमें गड़ा हुआ था, जो पर्वतकी गुफाओंमें था, जो श्मशानमें था और जो गिरे हुए मकानोंके नीचे दबा हुआ था।

धन जमा हो जानेके बाद सब तरफ ढिंढोरा पिटवा दिया गया कि, लोग आवें और जिन्हें जितना धन चाहिए वे उतना ले जावें। प्रभु सूर्योदयसे भोजनके समयतक दान देते थे। लोग आते थे और उतना ही धन ग्रहण करते थे जितने की उनको आवश्यकता होती थी। वह समय ही ऐसा था कि, लोग मुफ्तका धन, बिना जरूरत लेना पसन्द नहीं करते थे। प्रभु रोज एक करोड आठ लाख स्वर्ण मुद्राएँ दानमें देते थे। इससे ज्यादा खर्च हों इतने याचक ही न आते थे और इससे कम भी कभी खर्च नहीं होता था। कुल मिलाकर एक बरसमें प्रभुने तीन सौ अट्ठासी करोड अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राएँ दानमें दीं थीं।

जब दान देनेका एक वर्ष समाप्त हो गया तब सौधर्मेन्द्रका आसन काँपा। उसने अवधिज्ञान द्वारा इसका कारण जाना।

बह भरत सामानिक दुवारिका सामें लेकर प्रभुके पास आया। अन्यान्य इन्द्रादि देव भी विनिता नगरीमें आ गये। देवताओं और मनुष्योंने मिलकर दीक्षा महोत्सव किया। प्रभु सुदर्शना नामकी पालकीमें सवार कराए गये। बड़ी धूमधामके साथ पालकी रवाना हुई। महावती सुरनर पालकीके साथ चले। देवांगनाएँ और विनिता नगरीकी कुल-कामिनियाँ, मंगल गीत गाती हुई पीछे पीछे चलने लगीं।

कुसुम अन्तमें 'सहसाम्रवन' नामक उद्यानमें पहुँचा। भगवान वहाँ पहुँचकर शिविकासे उतर गये। फिर शरीरपरसे उन्होंने सारे वस्त्राभूषण उतार दिये, और इन्द्रका दिया हुआ अदूषित देवदूष्य वस्त्र धारण किया। उस दिन चैत्र महीना था, चन्द्रमाकी बढ़ती हुई कलाका शुक्ल पक्ष था, नवमी तिथि थी; चन्द्र रोहिणी नक्षत्रमें आया था। उस समय समुत्पन्न छट्ठका नीच तपका तप करके सायंकालके समय प्रभुने पञ्च मुष्टि लोच किया। इन्द्रने अपने उत्तरीय वस्त्रमें केशोंको लिया और उन्हें क्षीर समुद्रमें पहुँचा दिया।

प्रभु सिद्धोंको नमस्कार कर तथा सामायिकका उच्चारणकर, सिद्धशिला तक पहुँचाने योग्य दीक्षायान पर आरूढ़ हुए। उसी समय भगवानको मनःपर्ययज्ञान हुआ।

अन्यान्य एक हजार राजाओंने भी उसी समय चारित्र ग्रहण किया।

अच्युतेन्द्रादि देवनायकों और भरतादि नरेन्द्रोंने विविध प्रकारसे भक्तिपुरस्सर प्रभुकी स्तुति की। फिर इन्द्र अपने देवों

सहित नंदीश्वर द्वीपको गये और सगर विनिता नगरीमें गया। दूसरे दिन प्रभुने ब्रह्मदत्त राजाके घर क्षीररस छट्ठ तपका पारणा किया। तत्काल ही देवताओंने ब्रह्मदत्तके आंगनमें साढ़े वारह करोड़ स्वर्ण मुद्राओंकी और पवन-विताडि लता पल्लवोंकी शोभाको हरनेवाले वहु मूल्य सुंदर वस्त्रोंकी वृष्टि की; दुंदभिनादसे आकाश मंडलको गुंजा दिया; सुगंधित जलकी वृष्टिकी और पञ्चवर्णी पुष्प वरसाये। फिर उन्होंने वड़े हर्षके साथ कहाः—"यह प्रभुको दान देनेका फल है। ऐसे सुपात्र दानसे केवल ऐहिक सम्पदा ही नहीं मिलती है वल्के इसके प्रभावसे कोई इसी भवमें मुक्त भी हो जाता है, कोई दूसरे भवमें मुक्त होता है, कोई तीसरे भवमें सिद्ध वनता है और कोई कल्पातीत* कल्पोंमें उत्पन्न होता है। जो प्रभुको भिक्षा लेते देखते हैं वे भी देवताओंके समान नीरोग शरीरवाले हो जाते हैं।"

जव भगवान ब्रह्मदत्तके घरसे पारणा करके चले गये, तव उसी समय ब्रह्मदत्तने जहाँ भगवानने पारण किया था वहाँ एक वेदी वनवाई, उस पर छत्री चुनवाई और हमेशा वहाँ वह भक्तिभावसे पूजा करने लगा।

भगवान ईर्या समितिका पालन करते हुए विहार करने लगे। कभी भयानक वनमें, कभी सघन झाड़ियोंमें, कभी पर्वतके सर्वोच्च शिखरपर और कभी सरोवरके तीरपर, कभी नाना विधिके फल फूलोंके वृक्षोंसे पूरित उद्यानमें और कभी वृक्ष-

* ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानको कल्पातीत कहते हैं।

विहीन मवस्थामें, सभी स्थानोंमें निमग्न भावसे, शीत, धाम और वर्षाकी बाधाओंकी कुछ परवाह न करते हुए प्रभुने ध्यान और कायोत्सर्गमें अपना समय बिताना आरम्भ किया।

चतुर्थ अष्टम दशम मासिक, चतुर्मासिक, अष्टमासिक, आदि उग्र तप सभी मध्यारक अभिग्रहों सहित, करते हुए भगवानने बारह वर्ष व्यतीत किये।

बारह वर्षके बाद भगवान पुनः सहसाम्रवन नामक उद्यानमें आकर सप्तच्छद वृक्षके नीचे कायोत्सर्ग ध्यानमें निमग्न हुए। 'अप्रमत्तसंयत' नामके सातवें गुणस्थानसे प्रभु क्रमशः क्षीणमोह नामके गुणस्थानके अन्तमें पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही उनके सभी घाति कर्म नष्ट हो गए। पौष शुक्ला एकादशीके दिन चन्द्र जब रोहिणी नक्षत्रमें आया तब प्रभुको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

इस ज्ञानके होते ही तीन लोकमें स्थित तीन कालके सभी भावोंको प्रभु प्रत्यक्ष देखने लगे। सौधर्मेन्द्रका आसन काँपा। उसने प्रभुको ज्ञान हुआ जान सिंहासनसे उतरकर विनती की। फिर वह अपने देवों सहित सहसाम्रवनमें आया। अन्यान्य इन्द्रादि देव भी आये। सबने मिलकर समवसरणकी रचना की। भगवान चैत्यवृक्षकी प्रदक्षिणा दे, 'तीर्थायनमः' इस वाक्यसे तीर्थको नमस्कार कर मध्यके सिंहासनपर पूर्व दिशामें मुख करके बैठे। व्यंतर देवोंने तीनों ओर प्रभुके प्रतिबिंब रक्खे। वे भी प्रभुही स्वरूपके समान दिखने लगे। बारह पर्षदाएँ अपने २ स्थानपर बैठ गईं। सगरको भी ये समाचार मिले। वह बड़ी

धूमधामके साथ प्रभुकी वन्दना करनेके लिये आया और भक्ति-पूर्वक नमस्कारकर अपने योग्य स्थान पर बैठ गया। इन्द्र और सगरने प्रभुकी स्तुति की।

भगवानने देशना दी। श्रीमद् हेमचन्द्राचार्यने इस देशनामें धर्मध्यानका वर्णन किया है और उसके चौथे पाये संस्थान-विजयका–जिसमें जंबूद्वीपकी, रचना मेरुपर्वत आदिका उल्लेख है–वर्णन विस्तार पूर्वक किया है।

देशना समाप्त होने पर सगर चक्रवर्तीके पिता वसुमित्रने–जो अब तक भावयति होकर रहे थे–प्रभुसे दीक्षा ले ली।

इसके बाद गणधर नामकर्मवाले और श्रेष्ठ बुद्धिवाले सिंह-सेन आदि पचानवे मुनियोंको समस्त आगमरूप व्याकरणके प्रत्याहारोंकीसी उत्पत्ति, विगम और ध्रौव्यरूप त्रिपदी सुनाई। रेखाओंके अनुसार जैसे चित्रकार चित्र खींचता है वैसे ही त्रिपदीके अनुसार गणधरोंने त्रिपदीके अनुसार चौदह पूर्व सहित द्वादशांगीकी रचना की।

श्रीअजितनाथ भगवानके तीर्थका अधिष्ठाता 'महायक्ष' नामका यक्ष हुआ और अधिष्ठात्री देवी हुई 'अजितबला'। यक्षका वर्ण श्याम है, वाहन हाथीका है, हाथ आठ हैं। देवीका रंग स्वर्णसा है। उसके हाथ चार हैं। वह लोहासनाधिरूढ है।

भ्रमण करते हुए एक बार भगवान कौशांबी नगरीके पास आये। वहाँ समवसरणकी रचना हुई। भगवानने देशना देनी शुरू की। उसी समय एक ब्राह्मण पतिपत्नी आये। वे भगवा-नको नमस्कार कर, परिक्रमा दे, बैठ गये।

जब देशना समाप्त हुई तब ब्राह्मणने पूछा:–"भगवन् ! यह इस भाँति कैसे है ? भगवानने उत्तर दिया:–" यह सम्यक्त्वकी महिमा है। यही सारे अनिष्टोंको नष्ट करनेका और सारे अर्थोंकी सिद्धियोंका एक प्रबल कारण है। ऐहिक ही नहीं पारमार्थिक महाफल मुक्ति और तीर्थंकर पद भी इसीसे मिलता है।"

ब्राह्मण सुनकर हर्षित हुआ और प्रणाम करके बोला:–"यह ऐसा ही है। सर्वज्ञकी वाणी कभी अन्यथा नहीं होती।"

लोकोंके लिए यह प्रश्नोत्तर एक रहस्य था, इसलिए मुख्य गणधरने, यद्यपि इसका अभिप्राय समझ लिया था तथापि पर्षदाको समझानेके हेतुसे, प्रभुसे प्रश्न किया:—" भगवान ! ब्राह्मणने क्या प्रश्न किया और आपने क्या उत्तर दिया ? कृपा करके स्पष्टतया समझाइए।"

प्रभुने कहा:—" इस नगरके थोड़ी ही दूर पर एक शालिग्राम नामका अग्रहार* है। वहाँ दामोदर नामका एक ब्राह्मण बसता था। उसके एक पुत्र था उसका नाम शुद्धभट था। सुलक्षणा नामक कन्याके साथ उसका ब्याह हुआ था। दामोदरका देहान्त हो गया। शुद्धभटके पास जो धन सम्पत्ति थी वह दैवदुर्योग से नष्ट हो गई। वह दानेदानेको मोहताज हो गया। बिचारेके पास खानेको अनाजका दाना और शरीर ढकनेको कपड़ा पुराना कपड़ा तक न रहा।

आखिर एक दिन किसीको कुछ न कहकर वह घरसे चुपचाप निकल गया। अपनी प्रिय पत्नी तकको न बताया कि,

* ब्राह्मणों को दी हुई जमीनपर जो गाँव बसाया जाता है उसे अग्रहार कहते हैं।

वह कहाँ जाता है। सुलक्षणा विचारी बडी दुखी हुई। मगर क्या करती ? उसका कोई वश नहीं था। वह रो रोकर अपने दिन निकालने लगी।

चौमासा निकट आया तब विपुला नामक साध्वीजी उसके घर चौमासा निर्गमन करनेके लिए आईं। सुलक्षणाने उन्हें रहनेका स्थान दिया। साध्वीकी संगतिसे सुलक्षणाका उद्वेगमय मन शान्त हुआ और उसने सम्यक्त्व ग्रहण किया। साध्वीने सुलक्षणाको धर्मशिक्षा भी यथोचित दी। चातुर्मास बीतने पर साध्वीजी अन्यत्र विहार कर गईं। सुलक्षणा धर्मध्यानमें अपना समय बिताने लगी।

कुछ कालके बाद शुद्धभट द्रव्य कमाकर अपने घर आया। उसने पूछाः-"प्रिये! तूने मेरे वियोगको कैसे सहन किया?"

उसने उत्तर दियाः—"मैं आपके वियोगमें रात दिन रोती थी। रोनेके सिवा मुझे कुछ नहीं सूझता था। अन्नजल छूट गया था। थोड़े जलकी मछलीकी तरह तड़पती थी। दावानलमें फँसी हुई हरिणीकी तरह मैं व्याकुल थी। शरीर सूख गया था। जीवनकी घड़ियाँ गिनती थी। ऐसे समयमे विपुला नामक एक साध्वीजी चातुर्मास बितानेके लिए यहाँ आईं। उनका आना मेरे हृद्रोगको मिटानेमें अमृतसम फलदायी हुआ। उन्होंने मुझे धर्मोपदेश देकर शान्त कर दिया। समयपर उन्होंने मुझे सम्यक्त्व धारण कराया। यह सम्यक्त्व संसार-सागरसे तैरनेमें नौकाके समान है।"

ब्राह्मण ने पूछाः-"वह सम्यक्त्व क्या है?"

सुलसाने उत्तर दिया–"सच्चे देवको देव मानना सच्चे गुरुको गुरु मानना और सच्चे धर्मको धर्म मानना यही सम्यक्त्व है।"

सुदभट्टने पूछा–"आपका कहना सत्य है, पर बात हम कैसे जान सकते हैं?"

सुलसाने उत्तर दिया:–"जो सर्वज्ञ हों, रागादि दोषोंको जीतनेवाले हों और यथास्थित अर्थको कहनेवाले हों; वे ही सच्चे देव होते हैं। जो महाव्रतोंके धारक हों, धैर्यवाले हों, परिग्रहमयी हों भिक्षावृत्तिसे प्रासुक आहार ग्रहण करनेवाले हों, निरन्तर सममार्गोंमें रहनेवाले हों और धर्मोपदेशक हों वे ही सच्चे गुरु होते हैं। जो दुर्गतिमें पड़नेसे जीवोंको बचाता है वह धर्म है। यह संयमादि दश प्रकारका है।" उसीने फिर कहा,–"शम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा और आस्तिक्य ये पाँच लक्षणसम्यक्त्वको पहचाननेके हैं।"

सीधी बातें सुदभट्टके हृदयमें जम गई। उसने कहा:–"प्रिये! तुम भाग्यवती हो कि, तुम्हें चिंतामणि रत्नके समान सम्यक्त्व प्राप्त हुआ है।"

शुद्ध भावना भाते और कहते हुए सुदभट्टको भी सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो गई। दोनों श्रावक–धर्मका पालन करने लगे।

अग्रहारके अन्यान्य ब्राह्मण इनका उपहास करने लगे और तिरस्कार पूर्वक कहने लगे कि,–ये हर्कागार कुसम्प्रदायगत धर्मको छोड़कर श्रावक हो गये हैं। मगर इन्होंने किसीकी परवाह न की। ये अपने धर्म पर दृढ़ रहे।

एक वार सरदीके दिनोंमें ब्राह्मण चौपालमें वैठे हुए अग्नि ताप रहे थे। शुद्धभट भी अपने पुत्रको गोदमें लेकर फिरता हुआ उधर चला गया। उसको देखकर सारे ब्राह्मण चिल्ला उठे,"–दूर हो! दूर हो! हमारे स्थानको अपवित्र न कर।"

शुद्धभटको क्रोध हो आया और उसने यह कहते हुए अपने लड़केको आगमें फेंक दिया कि यदि जैनधर्म सच्चा है और सम्यक्त्व वास्तविक महिमामय है तो मेरा पुत्र अग्निमें न जलेगा।

सब चिहुँक उठे और खेद तथा आक्रोशके साथ कहने लगेः–"अफ्सोस! इस दुष्ट ब्राह्मणने अपने वालकको जला दिया।"

वहाँ कोई सम्यक्त्ववान देवी रहती थी। उसने वालकको वचा लिया। उस देवीने पहले मनुष्य भवमें संयमकी विराधना की थी, इससे मरकर वह व्यंतरी हुई। उसने एक केवलीसे पूछा था,–"मुझे वोधिलाभ कव होगा?" केवलीने उत्तर दिया था,–"तू सुलभवोधि होगी, तुझे सम्यक्त्वकी प्राप्तिके लिए भली प्रकारसे सम्यक्त्वकी आराधना करनी पडेगी।" तभी से देवी सम्यक्त्व प्राप्तिके प्रयत्नमें रहती थी। उस दिन सम्यक्त्वका प्रभाव दिखानेहीके लिए उसने वच्चेकी रक्षा की थी।

ब्राह्मण यह चमत्कार देखकर विस्मित हुए। उस दिनसे उन्होंने शुद्धभटका तिरस्कार करना छोड़ दिया।

शुद्धभटने घर जाकर सुलक्षणासे यह वात कही। सुलक्षणाने कहाः–"आपने ऐसा क्यों किया? यह तो अच्छा हुआ कि दैवयोगसे कोई व्यन्तर देव वहाँ था जिसने वालकको

बचा लिया। यदि न होता तो हमारी कितनी हानि होती! हमारा बालक बाला और साथ ही मूर्ख लोग जैनधर्मकी भी अवहेलना करते। सम्यक्त्व तो सत्य-मार्ग दिखानेवाला एक सिद्धान्त है। यह कोई चमत्कार दिखानेकी चीज नहीं है। अतः हे आर्यपुत्र! आगेसे आप ऐसा कार्य न करें।"

फिर अपने पतिको धर्ममें दृढ बनानेके लिये सुलक्षणा उसको लेकर यहाँ आई। ब्राह्मणने मुझसे प्रश्न किया और मैंने उत्तर दिया कि, यह प्रभाव सम्यक्त्वहीका है।

शुद्धभट्टने सुलक्षणा सहित दीक्षा ली। अनुक्रमसे दोनों केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षमें गये।

अजितनाथ स्वामीको केवलज्ञान हुआ तबसे वे विहार करते थे और उपदेश देते थे। उनके सब मिलाकर पचानवे गणधर थे, एक लाख मुनि थे, तीन लाख तीस हजार साध्वियाँ थीं, तीन हजार सात सौ चौदह पूर्वधारी थे, एक हजार सवा चार सौ मनःपर्ययज्ञानी थे, नौ हजार चार सौ अवधिज्ञानी थे, बारह हजार चार सौ वादी थे, बीस हजार चार सौ वैक्रियक लब्धिवाले थे, दो लाख अठावने हजार श्रावक थे, और पाँच लाख पैंतालीस हजार श्राविकाएँ थीं।

दीक्षा लेनेके बाद एक लाख पूर्वमें जब बारासी लाख वर्ष बाकी रहे तब, भगवान अपना निर्वाण निकट समझकर सम्मेद शिखर पर गये। जब उनकी बहत्तर लाख वर्षकी आयु समाप्त हुई तब उन्होंने एक हजार साधुओंके साथ, पादोपगमन अन शन किया। उस समय एक साथ सभी इन्द्रोंके आसन काँपे।

वे अवधिज्ञान द्वारा प्रभुका निर्वाण समय निकट जान सम्मेत शिखरपर आए और देवताओं सहित प्रदक्षिणा देकर प्रभुकी सेवा करने लगे।

जव पादोपगमन अनशनका एक मास पूर्ण हुआ तव प्रभुका निर्वाण हो गया। उस दिन चैत्र शुक्ला पंचमीका दिन था; चन्द्रमा मृगशिर नक्षत्रमें आया था। इन्द्रादि देवोंने मिलकर प्रभुका निर्वाण-कल्याणक किया।

उनका शरीर ४५० धनुप ऊँचा था। प्रभुने अठारह लाख पूर्व कौमारावस्थामें, तरेपन लाख पूर्व चौरासी लाख वर्ष राज्य करने में, वारह वरस छदमस्थावस्थामें और चौरासी लाख वारह वर्ष कम एक लाख पूर्व केवल ज्ञानावस्थामे विताये थे। इस तरह वहत्तर लाख पूर्वकी आयु समाप्त कर भगवान अजितनाथ, ऋषभदेव प्रभुके निर्वाणके पचास लाख करोड सागरोपम वर्षके वाद, मोक्षमें गये।

---

३ श्री संभवनाथ-चरित

त्रैलोक्य प्रभवे पुण्य संभवाय भवच्छिदे।
श्रीसंभव जिनेन्द्राय मनो भवभिदे नमः॥

भावार्थ—तीन लोकके स्वामी, पवित्र जन्म वाले, संसारको छेदनेवाले और कामदेवको भेदनेवाले श्री संभवनाथ जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ।

पातकी खंडके ऐरावत द्वीपमें क्षेमपुरा नामक नगर था। वहाँके राजाका नाम विपुलवाहन था। वह

१ प्रथम भव साक्षात् इन्द्रके समान शक्ति-वैभव-वाली था। शक्ति होते हुए भी उसे किसी तरहका मद न था। मरू जैसे बच्चेकी या मामी मैसे अपने बालकोंकी रक्षा करता है वैसे ही वह प्रजाकी रक्षा करता था। वह पूर्ण धर्मात्मा था। देव-श्री अरहंत, गुरु-श्री निर्ग्रंथ और धर्म-दयामयकी वह भली प्रकारसे भक्ति तथा उपासना करता था। उसकी प्रजा भी माया उसका अनुसरण करनेवाली थी।

भावी प्रबल होता है। होनहारके आगे किसीका जोर नहीं चलता। एक बार भयंकर दुष्काल पड़ा। देशमें अन्न-कष्ट बहुत बढ़ गया। लोग भूखके मारे तड़प तड़पकर मरने लगे।

राजा यह दशा न देख सका। उसने अपने काम करनेवालोंको आज्ञा दे दी कि, कोठारमें जितना अनाज है सभी देशके भूखे लोगोंमें बाँट जाय, मुनियोंको प्रासुक आहार पानी मिले इसकी व्यवस्था हो और जो श्रावक सर्वथा अयोग्य हैं उन्हें राज्यके रसोईमें भोजन कराया जाय।

इतना ही नहीं मुनियोंको, एषणीय कल्पनीय और प्रासुक आहार अपने हाथोंसे देने और अन्यान्य श्रावकोंको, अपने सामने भोजन कराकर, संतोष-लाभ कराने लगा।

इस भाँति जबतक दुष्काल रहा तबतक वह सारे देशकी और खास कर समस्त संघकी भली प्रकारसे सेवा करता और उस सवाब देता रहा। इससे उसने तीर्थंकर नामकर्म बाँधा।

एक वार वह छतपर बैठा हुआ था। संध्याका समय था। आकाशमें वदली छाई हुई थी। देखते ही देखते जोरकी हवा चली और वदली छिन्न भिन्न हो गई।

उसने सोचा, इस वदलीकी तरह संसारकी सारी वस्तुएँ छिन्न भिन्न हो जायँगी, मौत हर घडी सिरपर सवार रहती है, वह न जाने किस समय धर दवायेगी। वह नहीं आती है तव तक आत्मकल्याण कर लेना ही श्रेष्ठ है।

दूसरे दिन विपुलवाहनने वहुत वड़ा दरवार किया, उसमें अपने पुत्रको राज्य सिंहासन पर विठाया और फिर स्वयंप्रभसूरिके पास जाकर दीक्षा ले ली।

राजमुनिने राज्यकी भाँति ही अनेक प्रकारके उपसर्ग सहते हुए भी संयमका पालन किया और अन्तमेंवे अनशन कर, मृत्यु, पा, आनत नामके नवें देवलोकमें उत्पन्न हुए।

२ दूसरा भव

इसी जम्बूद्वीपके पूर्व भरतार्द्धमें श्रावस्ती नामका शहर था। उसमें जितारी नामका राजा राज्य करता था। उसमें नामके अनुसार गुण भी थे। उसके सेनादेवी नामकी पटरानी थी। वह इतनी गुणवती थी कि, लोग उसको जितारीका सेनापति कहा करते थे। इसी रानीको फाल्गुन मासकी अष्टमीके दिन, मृगशिर नक्षत्रमें चन्द्रमाका योग आने पर चौदह स्वप्न आये। उसी समय विपुलवाहनका जीव अपनी देव-आयु पूर्णकर रानी सेनादेवीके गर्भमें आया। उस समय क्षण वारके लिए नारकियोंको भी सुख हुआ।

३ तीसरा भव

स्वप्न देखते ही देवी जागृत हुई और उठकर राजाके पास गई। राजाको स्वप्न सुनाये। राजाने कहा:—"हे देवी! इन स्वप्नोंके प्रभावसे तुम्हारे एक ऐसा पुत्र होगा जिसकी तीन लोक पूजा करेंगे।"

इन्द्रोंका आसन काँपा। उन्होंने देवों सहित आकर गर्भ-कल्याणक किया। फिर एक इन्द्रने आकर सेनादेवीको नमस्कार किया और कहा:—"हे स्वामिनी! इस अवसर्पिणी कालमें जगतके स्वामी तीसरे तीर्थंकर तुम्हारे घर जन्म लेंगे।"

स्वप्नका अर्थ सुनकर महिषीको इतना हर्ष हुआ, जितना हर्ष मेघकी गर्जना सुनकर मयूरीको होता है। अवशेष रात उन्होंने जागकर ही बिताई।

जब नौ महीने और साढ़े सात दिन व्यतीत हुए तब सेना-देवीने जरायु और रुधिर आदि दोषोंसे वर्जित पुत्रको जन्म दिया। उनके चिन्ह अश्वका था। उनका वर्ण स्वर्णके समान था। उस दिन मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशीका दिन था, चन्द्रमा मृगशिर नक्षत्रमें आया था। जन्म होते ही तीन लोकमें अन्ध कारको नाश करनेवाला प्रकाश हुआ। नारकी जीवोंको भी क्षण भरके लिए सुख हुआ। सारे ग्रह उच्च स्थानपर आये। सारी दिशायें प्रसन्न हो गई। सुखकर मंद पवन चलने लगा, लोग क्रीडा करने लगे। सुगंधित जलकी वृष्टि हुई, आकाशमें दुंदुभि बजे, पवनने रज दूर की और पृथ्वीने शान्ति पाई।

छप्पन कुमारियाँ आकर सेवा करने लगीं। इन्द्रोंके आसन काँपे। उन्होंने आकर प्रभुका जन्मकल्याणक किया।

सवेरे ही जितारी राजाने बड़ा भारी उत्सव किया। सारा नगर राजभवनकी तरह मंगल-गान और आनन्दोल्लाससे परिपूर्ण हो गया। प्रभु जब गर्भमें थे तब शंबा (फलि, मूंग, मोंठ, चँवले का धान्य) बहुत हुआ था इसलिए उनका नाम शंबव-नाथ अथवा संभवनाथ रक्खा गया।

प्रभुका बाल्यकाल समाप्त हुआ। युवा होनेपर ब्याह हुआ। पन्द्रह लाख पूर्व भोग भोगनेके बाद जितारी राजाने दीक्षा ली और प्रभुका राज्याभिषेक किया। प्रभुने चवालीस लाख पूर्व और चार पूर्वांग* तक राज्यका उपभोग किया।

तीन ज्ञानके धारक प्रभु एक बार एकांतमें बैठे हुए थे। उसी समय उन्हें विचार आया,—"यह संसार विप-मिश्रित मिठाईके समान है। खानेमें स्वाद लगते हुए भी प्राणहारी है। ऊसर भूमिमें अनाज कभी पैदा नहीं होता, इसी प्रकार चौरासी लाख जीव-योनिकी दशा है। मनुष्यभव बड़ी कठिनतासे मिलता है। प्रबल पुण्यका उदय ही इस योनिका कारण होता है। मनुष्यभव पाकर भी जो इसको व्यर्थ खो देता है, आत्म-साधन नहीं करता है उसके समान संसारमें अभागा कोई नहीं है। यह तो अमृत पाकर उसे पैर धोनेमें खर्च कर देना है। मनुष्य होकर भोग विलासमें ही समय निकाल देना मानों रत्न पाकर कौओंको खिला देना है।"

भगवान जब इस प्रकार वैराग्य भावनामें मग्न थे उस समय

१—एक पूर्वांग चौरासी लाख बरसका होता है।

लोकान्तिक देवतामोंने आकर विनतीकी:-“हे प्रभो! तीर्थ चलाइए।” फिर देवता नमस्कार कर चले गए।

वर्षी दान देनेके अनन्तर भगवानने सहसाम्र वनमें आकर मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमाके दिन चन्द्रमा जब मृगसिर नक्षत्रमें आया था तब संध्याके समय पंच मुष्टि लोच किया और इंद्रका दिया हुआ देवदूष्य वस्त्र धारण कर सर्व सावद्य योगोंका त्याग कर दिया।

इन्द्रादि देव तपकल्याणक मना स्तुति कर अपने अपने स्थानको गये। दूसरे दिन भगवान पारणेके लिये नगरमें गये। सुरेन्द्र राजाके घर पारणा किया।

चौदह बरस तपश्चरण करनेके बाद प्रभुको केवलज्ञान हुआ। उस दिन कार्तिक महीनेकी कृष्णा ५ थी और चन्द्रमा मृगशिर नक्षत्रमें आया था। केवलज्ञान होनेके बाद देवताओंने समवसरणकी रचना की। प्रभुने उसमें बैठकर देशना दी। देशना सुनकर अनेक लोगोंको वैराग्य हुआ और उन्होंने दीक्षा ग्रहण की।

भगवानने चारु आदि गणधरोंको स्थिति, उत्पाद और नाश इस त्रिपदीका उपदेश दिया। इस त्रिपदीका अनुसरण करके १ २ गणधरोंने चौदह पूर्व सहित द्वादशांगीकी रचना की। उसके बाद प्रभुने उनपर वासक्षेप डाला।

संभवनाथ प्रभुके शासनका अधिष्ठाता देवता त्रिमुख और देवी दुरितारी थे। देवताके तीन मुँह, तीन नेत्र और छः हाथ थे। उसका वर्ण श्याम था। उसका वाहन मयूरका था। देवी चार भुजा वाली थी। उसका वर्ण गोरा था और सवारी उसके मेषकी थी।

प्रभुके परिवारमें १०२ गणधर, दो लाख साधु, तीन लाख दो हजार एक सौ पचास चौदह पूर्व धारी, नौ हजार छः सौ अवधि ज्ञानी, बारह हजार एक सौ पचास मनःपर्ययज्ञानी, पन्द्रह हजार केवलज्ञानी, उन्नीस हजार आठ सौ वैक्रियक लब्धिवाले, बारह हजार वादलब्धिवाले (वादी), दो लाख तरानवे हजार श्रावक और छः लाख छत्तीस हजार श्राविकाएँ थे।

केवलज्ञान होनेके बाद चार पूर्वांग और चौदह वर्ष कम एक लाख पूर्व तक प्रभुने विहार किया था।

फिर अपना मोक्ष काल समीप समझकर प्रभु परिवार सहित समेतशिखर पर्वतपर गये। वहाँ एक हजार मुनियों-के साथ उन्होने पादोपगमन अनशन किया। इन्द्रादि देव आकर प्रभुकी सेवाभक्ति करने लगे।

जब सर्वयोगके निरोधक शैलेशी नामके ध्यानको प्रभुने समाप्त किया तब चैत्र शुक्ला पंचमीके दिन प्रभुका निर्वाण हुआ। उस समय चंद्रमा मृगशिर नक्षत्रमें आया था। एक हजार मुनि भी प्रभुके साथ ही उसी समय मोक्षमें गये। इन्द्रादि देवोंने केवलज्ञानकल्याणक किया।

कुमारावस्थामें पन्द्रह लाख पूर्व, राज्यमें चार पूर्वांग सहित चॅवालीस लाख पूर्व, और दीक्षामें एक पूर्वांग कम एक लाख पूर्व, इस तरह सब मिला कर साठ लाख पूर्वकी आयु प्रभुने समाप्त की। उनका शरीर ४०० धनुष्य ऊँचा था।

अजितनाथ स्वामीके निर्वाणके तीस लाख कोटि सागरो-पम समाप्त हुए तब संभवनाथ प्रभु मोक्षमें गये।

४ श्री अभिनंदन स्वामी-चरित

अनेकांतमताम्भोधि-समुल्लासनचंद्रमाः ।
दद्यादमंदमानंदं, भगवानभिनंदनः ॥

भावार्थ—अनेकांत (स्याद्वाद) मत रूपी समुद्रको आनंदित करनेमें चंद्रमाके समान हे अभिनंदन भगवान ! (सबको) अत्यानंद दीजिए ।

१ प्रथम भव

जंबूद्वीपके पूर्व विदेहमें मंगलावती नामका प्रांत था । उसमें रत्नसंचय नामकी नगरी थी । उसमें महाबल नामका राजा राज्य करता था । उसको वैराग्य हो जानेसे उसने विमलसूरि नामके आचार्यके पाससे दीक्षा ली । बहुत बरसों तक चारित्र पाला । बीस स्थानकोंमेंसे कई स्थानकोंका आराधन किया और अन्तमें वह कालधर्म पाया ।

२ दूसरा भव

महाबलका जीव मरकर विजय नामके विमानमें महर्द्धिक देवता हुआ । तेतीस सागरोपमकी आयु भोगी ।

३ तीसरा भव

महाबलका जीव विजय नामक विमानसे च्यवकर भरत क्षेत्रकी अयोध्या नगरीके राजा संवरकी सिद्धार्था रानीकी कोखमें वैशाख सुदि चौथके दिन आया । देवताओंने गर्भकल्याणक किया । फिर नौ महीने और साढ़े सात दिन पूरे हुए तब

सिद्धार्था राणीने महा सुदि २ के दिन पुत्ररत्नको जन्म दिया। इन्द्रादि देवोंने जन्मकल्याणक किया। उनका लांछन वानरका था और वर्ण सोनेके समान था। प्रभु जब गर्भमें थे तब सारे नगरमें अभिनंदन (हर्ष) ही अभिनंदन हुआ था इसलिए पुत्रका नाम अभिनंदन रक्खा।

युवा होनेपर राजाने अनेक राजकन्याओंके साथ उनका ब्याह किया। साढ़े बारह लाख पूर्वतक उन्होंने युवराजकी तरह संसारका सुख भोगा। फिर संवर राजाने दीक्षा ली और अभिनंदन स्वामीको राज्यासनपर बिठाया। आठ अंग सहित साढ़े छत्तीस लाख पूर्व तक उन्होंने राज्यधर्मका पालन किया।

फिर जब उनको दीक्षा लेनेकी इच्छा हुई तब लोकांतिक देवोंने आकर प्रार्थना की:-"स्वामी! तीर्थ प्रवर्ताइए।" तब सांवत्सरिक दान देकर महा सुदि १२ के दिन अभिचि नक्षत्रमें सहसाम्र वनमें छट्ठ तप सहित प्रभुने दीक्षा ली। इन्द्रादिदेवोंने दीक्षाकल्याणक किया। दूसरे दिन प्रभुने इन्द्रदत्त राजाके घर पारणा किया। अनेक स्थानोंपर विहार करते हुए प्रभु फिरसे सहसाम्रवनमें आये। वहाँ छट्ठ तप करके रायण (खिरणी) के झाड़के नीचे काउसग्ग किया। शुक्ल ध्यान करते हुए उनके घातिया कर्मोंका नाश हुआ और पोस सुदि १४ के दिन अभिचि नक्षत्रमें उनको केवलज्ञान हुआ।

इन्द्रादि देवोंने समवसरणकी रचना की। प्रभुने सिंहासनपर बैठकर देशना दी और उत्पाद, व्यय एवं ध्रुवमय त्रिपदीकी

व्याख्या की। उसीके अनुसार गणधरोंने द्वादशांगी वाणीकी रचना की।

अभिनन्दन प्रभुके तीर्थमें यक्षेश्वर नामका यक्ष और कालिका नामकी शासन देवी हुए।

क्रमशः अभिनंदन नाथके संघमें, ११६ गणधर तीन लाख साधु, छः लाख तीस हजार साध्वियाँ नौ हजार आठ सौ अवधिज्ञानी एक हजार आठ सौ चौदह पूर्वधारी, ग्यारह हजार छः सौ पचास मनः पर्ययज्ञानी सोलह हजार वाद लब्धिवाले, दो लाख अठासी हजार श्रावक और पाँच लाख सत्ताईस हजार श्राविकाएँ, इतना परिवार हुआ।

प्रभु केवलज्ञान अवस्थामें आठ पूर्वांग और अठारह वर्ष कम लाख पूर्व तक रहे। फिर निर्वाण-समय नजदीक जान समेत शिखर पर्वतपर आए। वहाँ एक मासका अनशन व्रत लेकर वैशाख सुदि ८ के दिन पुष्य नक्षत्रमें मोक्ष गये। इन्द्रादि देवोंने मोक्षकल्याणक किया। उनके साथ एक हजार मुनि भी मोक्षमें गये।

अभिनंदन स्वामीने, कौमारावस्थामें साढे बारह लाख पूर्व, राज्यमें आठ पूर्वांग सहित साढे छत्तीस लाख पूर्व और दीक्षामें आठ पूर्वांगमें एक लाख पूर्व कम इस तरह कुल पचास लाख पूर्वकी उम्र भोगी और वे मोक्षमें गये। उनका शरीर ३५० धनुष्य ऊँचा था।

संभवनाथ स्वामीके निर्वाणके बाद दस लाख करोड़ सागरोपम बीते तब अभिनंदन नाथका निर्वाण हुआ।

५ श्रीसुमतिनाथ स्वामी-चरित

द्युसत्किरीटशाणाग्रो-त्तेजितांघ्रिनखावलिः ।
भगवान् सुमतिस्वामी, तनोत्वभिमतानि वः ॥

भावार्थ---देवताओंके मुकटरूपी शाणके अग्र भागके कोनोंसे जिनकी नख-पंक्ति तेजवाली हुई है ऐसे भगवान सुमतिनाथ तुम्हें वांछित फल देवें ।

१ पहला भव

जंबू द्वीपके पूर्व विदेहमें पुष्कलावती नामका प्रांत था। उसमें शंखपुर नामका शहर था । वहाँ विजयसेन नामका राजा राज्य करता था। उसके सुदर्शना नामकी राणी थी। उसके कोई सन्तान नहीं हुई।

एक दिन किसी उत्सवमें राणी उद्यानमें गई । वहाँ शहरकी दूसरी स्त्रियाँ भी आई हुई थीं। उनमें एक सेठानी भी थी। आठ सुंदर युवतियाँ और अन्यान्य नौकरानियाँ उसके साथ थीं। उन्हें देखकर राणीको कुतूहल हुआ । उसने दर्याफ्त कराया कि, वे कौन थीं, तो मालूम हुआ कि, आठ युवतियाँ उसके दो बेटोंकी बहुएँ थीं। यह जानकर राणीको आनंद हुआ। साथ ही इस बातका दुःख भी हुआ कि उसके कोई पुत्र नहीं है। उसने राजाको जाकर अपने मनका दुःख कहा ।

राजाने राणीको अनेक तरहसे समझाया बुझाया और अनशनव्रत करके देवीकी आराधना की । देवी प्रकट हुई। राजाने

पुत्र माँगा। देवी यह वरदान देकर चली गई कि एक जीव स्वर्गसे च्यवकर तेरे घर पुत्ररूपमें जन्म लेगा।

समयपर रानी गर्भवती हुई। उस रातको रानीने स्वप्नमें सिंह देखा। गर्भके प्रभावसे रानीको दया पलवानेका और लड़ाई बन्द करानेका दोहद रहा। राजाने वह दोहद पूर्ण कराया।

समयपर पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम पुरुषसिंह रक्खा गया। जब वह जवान हुआ तब राजाने उसे आठ राजकन्याएँ ब्याह दीं।

एक दिन कुमार उद्यानमें फिरने गया। वहाँ उसने विनयनंदन नामके युवक आचार्यको देखा। उनका उपदेश सुन उसे वैराग्य हुआ। कुमारने मातापितासे आज्ञा लेकर दीक्षा ले ली और बीस स्थानकोंमेंसे कई स्थानोंकी आराधनाकर तीर्थंकर गोत्र बाँधा।

मरकर सिंहरथका जीव वैजयंत विमानमें महर्द्धिक देवता
२ दूसरा भव हुआ। उसने तेंतीस सागरोपमकी आयु भोगी।

जंबूद्वीपमें विनीता (अयोध्या) नामकी नगरीमें मेघ नामक राजा था। उसकी रानी मंगलादेवीको चौदह
३ तीसरा भव स्वप्न सहित गर्भ रहा। सिंहरथका जीव वैजयंत विमानसे च्यवकर श्रावण सुदि २ के दिन मघा नक्षत्रमें रानीके गर्भमें आया। इन्द्रादिदेवोंने गर्भकल्याणक किया।

नौ महीने और साढ़े सात महीने वीतने पर वैशाख सुदि ८ के दिन चंद्र नक्षत्रमें मंगलादेवीने क्रौंच पक्षीके चिन्हवाले पुत्ररत्नको जन्म दिया। इन्द्रादिदेवोंने जन्मकल्याणक किया। पुत्रका नाम सुमतिनाथ रखा गया। कारण,-एक वार रानीने, ये गर्भमें थे तव, एक ऐसा न्याय किया था जो किसीसे नहीं हो सका था।

युवा होनेपर प्रभुने अनेक व्याह किये, राज्य किया और फिर वैराग्य उत्पन्न होनेपर वर्षीदान दे वैशाख सुदि ९ के दिन मघा नक्षत्रमें एक हजार राजाओंके साथ दीक्षा ले ली। इन्द्रादिदेवोंने तपकल्याणक किया। दूसरे दिन विजयपुरके राजा पद्मराजके घर उनने वेलाका पारणा किया।

वीस वरस विहार करके प्रभु वापिस सहसाम्र वनमें-जहाँ दीक्षा ली थी-आये। वहाँ प्रियंगु (मालकांगनीका झाड) के नीचे छट्ठ तप करके काउसग्गमें रहे। घाति कर्मोका नाश होनेसे चैत्र सुदि ११ के दिन मघा नक्षत्रमें उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इन्द्रादि देवोंने ज्ञानकल्याणक किया।

उनके शासनमें तुंबुरु नामका यक्ष और महाकाली नामकी शासनदेवी हुए। उनके संघमें १०० गणधर ३ लाख २० हजार साधु, ५ लाख ३० हजार साध्वियाँ, २ हजार ४ सौ चौदह पूर्व धारी, ११ हजार अवधिज्ञानी, १० हजार साढे चार सौ मनःपर्यवज्ञानी, १३ हजार केवली, १८ हजार चार सौ वैक्रिय लब्धिवाले, १० हजार साढ़े चार सौ वादलब्धिवाले, २ लाख ८१ हजार श्रावक और ५ लाख १६ हजार श्राविकाएँ थे।

मोक्षकाल निकट जान प्रभु सम्मेत शिखरपर गये। वहाँ एक हजार मुनियोंके साथ मासखमण कर रहे और चैत सुदि ९ के दिन पुनर्वसु नक्षत्रमें मोक्ष गये। इन्द्रादि देवोंने मोक्ष कल्याण किया।

दस लाख पूर्व कौमारावस्थामें, उन्तीस लाख बारह पूर्वांग राज्यावस्थामें और बारह पूर्वांग कम एक लाख पूर्व चारित्राव स्थामें इस तरह ४ लाख पूर्वकी आयु पूर्णकर सुमति नाथ प्रभु मोक्ष गये। उनका शरीर तीन सौ धनुष ऊँचा था।

अभिनंदन प्रभुके निर्वाणके बाद ९ लाख करोड सागरोपम बीते तब सुमति नाथ प्रभुका निर्वाण हुआ।

---

६ श्री पद्मप्रभुचरित

पद्मप्रभ प्रभोर्देह–मासः पुष्णातु वः श्रियम्।
अंतरंगारिमथने, कोपाटोपादिवारुणा ॥

भावार्थ—काम, क्रोधादि अंतरंग शत्रुओंका नाश करनेके क्रोपकी प्रबलतासे मानों पद्मप्रभुका शरीर लाल हो गया है वह कान्ती तुम्हारी लक्ष्मीका (मोक्ष लक्ष्मीका) पोषण करे।

धातकी खण्डके पूर्व विदेहमें वत्स नामका नगर है। उसीमें सुसीमा नामकी नगरी थी। उसका राजा अपरा-

१ प्रथम भव जित था। उसको, कोई कारण पाकर, संसारसे वैराग्य हो गया। उसने पिहिताश्रव मुनिके

पाससे दीक्षा ली। चिरकाल तक तपश्चर्या करके वीस स्थानककी आराधना की। उसीके प्रभावसे तीर्थंकर गोत्रका उपार्जन किया।

अन्तमें अपराजितने शुभ ध्यानपूर्वक प्राण छोड़ा, मर कर नवग्रैवेयकमें देव हुआ। वहाँ ३२ सागरोपम तक सुख भोग आयु पूर्ण कर वह मरा।

२ दूसरा भव

जंबूद्वीपमें भरतक्षेत्र है। उसमें कौशाम्बी नामकी नगरी थी। उसका प्रजापति धर था। उसकी रानीका नाम सुसीमा था। उसीके गर्भमें अपराजित राजाका जीव माघ वदि ६ के दिन चित्रा नक्षत्रमें आया। इन्द्रादिक देवोंने गर्भकल्याणक किया। नौ महीने साढ़े सात दिन व्यतीत होनेपर कार्तिक वदि ११ के दिन चित्रा नक्षत्रमें प्रभुने जन्म धारण किया। इन्द्रादि देवोंने जन्मकल्याणक मनाया। सुसीमा देवीको गर्भ कालमें पद्मशय्या (कमलकी सेज) पर सोनेकी इच्छा हुई थी, इसीसे प्रभुका नाम पद्मप्रभु रखा गया। अनुक्रमसे बढ़ते हुए भगवान यौवनावस्थाको प्राप्त हुए। पिताने उनको विवाह योग्य जानकर अनेक राजकन्याओंके साथ उनका विवाह कर दिया। उनके साथ साढ़े सात पूर्वतक भोग भोगे। अर्थात् युवराज पदमें रहे। पीछे पिताने प्रभुका राज्यतिलक किया। साढे इकीस लाख पूर्व तक राज्य किया। इसके बाद लोकान्तिक देवोंने आकर प्रार्थना कीः—"हे प्रभो! अब दीक्षा धारण करके जगतके जीवोंका कल्याण कीजिये।"

३ तीसरा भव

उन्होंने देवोंकी बात मान, संवत्सरी दान दे, कार्तिक वदि १२ के दिन चित्रा नक्षत्रमें सहस्राम्रवनमें जाकर, एक हजार

राजाओंके साथ छट्ठ तप सहित (बेला करके) दीक्षा ली। इन्द्रादि-देवोंने दीक्षाकल्याणकका उत्सव किया। दीक्षाके दूसरे दिन सोमसेनराजाके यहाँ पारणा किया।

छः मास विहार कर प्रभु पुनः सहसाम्र वनमें पधारे। वृक्षके नीचे उन्होंने कायोत्सर्ग धारण किया। और शुक्ल ध्यानपूर्वक घातिया कर्मोंका नाशकर चैत्र सुदि १५ के दिन चित्रा नक्षत्रमें केवललक्ष्मी पाई। केवलज्ञान होनेपर देवोंने समोशरणकी रचना की। भगवानने भव्य जीवोंको उपदेश दिया।

१०७ गणधर, ३ लाख ३ हजार साधु, ४ लाख २ हजार साध्वियाँ, २ हजार तीन सौ चौदह पूर्वधारी, १० हजार अवधिज्ञानी, १० हजार तीन सौ मनःपर्ययज्ञानी, ४ हजार केवली, १६ हजार एक सौ आठ वैक्रियक लब्धिधारी, ९ हजार ६ सौ वादी, २ लाख ७६ हजार श्रावक और ५ लाख ५ हजार श्राविकाएँ इतना भगवानका परिवार था। कुसुम नामक यक्ष और अच्युता नामक शासन देवी थी।

भगवानने दीक्षा लेनेके बाद छः मास सोलह पूर्वांग न्यून एक लाख पूर्व व्यतीत होनेपर मोक्षकाल समीप जान सम्मेद शिखरमें अनशन व्रत ग्रहण किया। एक मासके अन्तमें मार्गशीर्ष वदि ११ के दिन चित्रा नक्षत्रमें तीन सौ आठ मुनियोंके साथ भगवान मोक्ष पधारे। इन्द्रादि देवोंने मोक्षकल्याणक किया।

प्रभुकी कुल आयु ३ लाख पूर्वकी थी, जिसमेंसे उन्होंने साढ़े सात लाख सोलह पूर्वांग तक कुमारावस्था भोगी, साढ़े इक्कीस लाख पूर्व तक राज्य किया, सोलह पूर्वांग न्यून एक

लाख पूर्व तक चारित्र पाला, और तब वे मोक्ष गये। उनका शरीर २५० धनुष ऊँचा था।

सुमतिनाथके निर्वाणके बाद ९० हजार कोटि सागरोपम बीते, तब पद्मप्रभु मोक्षमें गये।

---

७ श्री सुपार्श्वनाथ-चरित

श्रीसुपार्श्वजिनेन्द्राय, महेद्रमहितांघ्रये।
नमश्चतुर्वर्णसंघ—गगनाभोग भास्वते॥

भावार्थ—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका इस चतुर्विध संघरूपी आकाशके प्रकाशको फैलानेमें सूर्यके समान और इन्द्रोंने जिनके चरणोंकी पूजा की है ऐसे श्री सुपार्श्व जिनेंद्रको मेरा नमस्कार हो।

धातकी खण्डके पूर्व विदेहमें क्षेमपुरी नामकी नगरी थी।

१ प्रथमभव

उसमें नंदिषेण राजा राज्य करता था। उसको संसारसे वैराग्य हुआ और उसने अरिदमन नामक आचार्यके पास दीक्षा ली, कठिन महाव्रतोंको पाला, तथा बीस स्थानककी आराधना कर तीर्थंकर गोत्रका बंध किया।

२ द्वितीय भव

अन्त समयमें अनशन पूर्वक प्राणत्याग कर नंदिषेणका जीव छठे ग्रैवेयकमें देव हुआ।

१८ सागरोपमकी आयु पूर्ण कर छठे ग्रैवेयकसे चयकर मंत्री-
षेणका जीव बनारस नगरीके राजा प्रतिष्ठकी रानी
१ तृतीय भव पृथ्वीके गर्भमें, भाद्रपद वदि ८ के दिन,अनुराधा
नक्षत्रमें आया। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक
किया। साढ़े नौ मास बीतने पर पृथ्वी देवीने जेठ सुदि १२ के
दिन विशाखा नक्षत्रमें स्वस्तिक लक्षण युक्त, पुत्रको जन्म दिया।
इन्द्रादि देवोंने जन्मकल्याणक किया। शिशुकालको व्यतीत
कर भगवान युवा हुए। अनेक राजकन्याओंसे उन्होंने
शादी की। उनके साथ सुख भोगते हुए जब पाँच लाख पूर्व
बीत गये तब राज्यपदको ग्रहण किया।

राज्य करते हुए बीस लाख पूर्वांग अधिक १४ लाख पूर्व
चले गये। तब लोकान्तिक देवोंने आकर दीक्षा लेनेकी विनती
की। प्रभुने सांवत्सरी दान किया और सहस्राम्रवनमें जाकर जेठ
सुदि १२ के दिन अनुराधा नक्षत्रमें दीक्षा ग्रहण की। इन्द्रादि
देवोंने दीक्षाकल्याणक किया। दूसरे दिन राजा महेन्द्रके घर
पर पारणा किया।

नौ मासतक विहार करके फिर उसी वनमें आकर प्रभुने
कायोत्सर्ग धारण किया और ज्ञानावरणादि कर्मोंको नष्टकर
फाल्गुन वदि ८ के दिन विशाखा नक्षत्रमें केवलज्ञान पाया।
इन्द्रादि देवोंने समवसरणकी रचना कर ज्ञानकल्याणक मनाया।

भगवानका परिवार इस प्रकार था, ९५ गणधर, ३ लाख
साधु, ४ लाख ३० हजार साध्वियाँ, २ हजार तीस चौदह
पूर्व धारी, ९ हजार अवधिज्ञानी, ९१५० मनःपर्ययज्ञानी

१५ हजार ३ सौ वैक्रियक लब्धिधारी, ११ हजार केवली, ८ हजार ४ सौ वादी, २ लाख ५७ हजार श्रावक, ४ लाख ९३ हजार श्राविकाएँ, और मातंग नामक यक्ष, व शान्ता नामक शासन देवी।

केवलज्ञान होनेके बाद नौ मास वीस पूर्वांग न्यून वीस लाख पूर्व व्यतीत होने पर निर्वाण काल समीप जान प्रभु सम्मेद शिखरपर पधारे। पाँच सौ मुनियोंके साथ उन्होने एक मासका अनशन व्रत धारण किया। और फाल्गुन वदि ७ के दिन मूल नक्षत्रमें वे मोक्ष गये। इन्द्रादि देवोंने मोक्षकल्याणक किया।

सुपार्श्वनाथजीकी कुल आयु २० लाख पूर्वकी थी, उसमेंसे ५ लाख पूर्वतक वे कुमार रहे, १४ लाख पूर्व और २० पूर्वांगतक उन्होंने राज्य किया। वीस पूर्वांग न्यून एक लाख पूर्वतक वे साधु रहे, बादको मोक्ष गये। उनका शरीर २०० धनुप ऊँचा था।

पद्मप्रभुके निर्वाणके बाद ९०० कोटि सागरोपम बीते, तब सुपार्श्वनाथजी मोक्षमें गये।

---

८ श्री चंद्रप्रभ-चरित

सदैव संसेवनतत्परे जने, भवंति सर्वेऽपि सुराः सुहृदयः।
समग्रलोके समचित्तवृत्तिना, त्वयैवसंजातमतो नमोऽस्तुते॥

भावार्थ—सभी देवता उन मनुष्योंपर कृपा करते हैं जो हमेशा उनकी सेवामें तत्पर रहते हैं; परन्तु सभी लोगोंपर (जो सेवा करते है उनपर भी और जो सेवा नहीं करते हैं उनपर भी)

समान मनवाले (एकसी कृपा करनेवाले) वे आप ही हुए हैं। इसलिए हे चन्द्रप्रभ भगवान! आपको मेरा नमस्कार है।

१ प्रथम भव

धातकीखण्ड द्वीपमें मंगलावती नामका देश है। उसकी प्रधान नगरी रत्नसंचयी है। उसका राजा पद्म था। कोई कारण पाकर उसको संसारसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने युगंधर मुनिके पास मुनिव्रत धारण किया। चिरकाल तक शुद्ध चारित्रको पाला और बीस स्थानकी आराधना कर तीर्थंकर कर्मका उपार्जन किया।

२ दूसरा भव

आयु पूर्ण होनेपर पद्मनाभ वैजयन्त नामक विमानमें देव हुआ। वहाँके सुख भोगकर उसने मरण किया।

३ तीसरा भव

पद्मनाभका जीव चन्द्रपुरीके राजा महासेनकी रानी लक्ष्मणाके गर्भमें, स्वर्गसे चयकर चैत्र वदि ५ के दिन अनुराधा नक्षत्रमें आया। इन्द्रादि देवोंने गर्भ कल्याणक मनाया। पौष वदि ११ के दिन अनुराधा नक्षत्रमें लक्ष्मणा देवीने पुत्रको जन्म दिया। इन्द्रादि देवोंने जन्मकल्याणक मनाया। माताको गर्भकालमें चन्द्रपानकी इच्छा हुई थी इससे पुत्रका नाम चन्द्रप्रभ रखा गया।

शिशुवयको लाँघकर प्रभु जब यौवनावस्थाको प्राप्त हुए। तब अनेक राजकन्याओंके साथ उनका पाणिग्रहण हुआ। उन्होंने ढाई लाख पूर्व युवराज पदमें बिताए। पीछे २४ पूर्वांग साढ़े छः लाख पूर्वतक राज्यसुख भोगा। तदनन्तर लौकान्तिक देवोंने आकर दीक्षा लेनेकी प्रार्थना की। उनकी बात मानकर

भगवानने वर्षीदान दिया और फिर पौष वदी १३ के दिन अनुराधा नक्षत्रमें सहस्राम्रवन जा, एक हजार राजाओंके साथ दीक्षा ली। इन्द्रादि देवोंने दीक्षाकल्याणक मनाया। मुनिपदके दूसरे दिन सोमदत्त राजाके यहाँ क्षीरान्नका पारणा किया।

फिर तीन मास तक विहार कर भगवान वापिस सहस्राम्र उद्यानमें पधारे, और पुन्नाग वृक्षके नीचे कायोत्सर्ग धारण किया। फाल्गुन वदि ७ के दिन अनुराधा नक्षत्रमें भगवान-को केवलज्ञा हुआ। इन्द्रादि देवोंने ज्ञानकल्याणक मनाया और समोशरणकी रचना की। सिंहासनपर विराजकर प्रभुने भव्य जीवोंको उपदेश दिया।

पृथ्वीपर विहार करते समय प्रभुका परिवार इस प्रकार था,— ९३ गणधर, ढाई लाख साधु, ३ लाख ८० हजार साध्वियाँ, २ हजार चौदह पूर्वधारी, ९ हजार अवधिज्ञानी, ९ हजार मनःपर्ययज्ञानधारी, १० हजार केवली, १४ हजार वैक्रियक लब्धिवाले, ७ हजार ६ सौ वादी, ढाई लाख श्रावक, ४ लाख ९१ हजार श्राविकाएँ तथैव विजय नामक यक्ष और भ्रकुटि नामकी शासन देवी।

२४ पूर्व तीन मास न्यून एक लाख पूर्व तक विहार कर भगवान निर्वाणकाल समीप जान सम्मेद शिखर पर्वत-पर पधारे। वहाँपर उन्होंने एक हजार मुनियोंके साथ अनशन व्रत धारण किया। और एक मासके अन्तमें योगोंका निरोध कर भाद्रपद वदि ७ के दिन श्रवण नक्षत्रमें उक्त मुनियोंके साथ वे मोक्ष गये। इन्द्रादि देवोंने मोक्षकल्याणक किया।

चन्द्रप्रभुका कुल आयु प्रमाण १ लाख पूर्वका था। उसमेंसे उन्होंने ढाई लाख पूर्व कुमारावस्थामें बिताये, २४ पूर्व सहित साढ़े छः लाख पूर्व पर्यंत राज्य किया और २४ पूर्व सहित एक लाख पूर्व तक वे साधु रहे। उनका शरीर १५ धनुष ऊँचा था।

सुपार्श्व स्वामीके मोक्ष गये पीछे नौ सौ कोटि सागरोपम बीतने पर चन्द्रप्रभजी मोक्षमें गये।

---

९ श्री पुष्पदत (सुविधिनाथ) चरित

करामलकवद्विश्वं, कलयन् केवलश्रिया।
अचिंत्यमाहात्म्यनिधिः, सुविधिर्बोधयेस्तु वः

अर्थ—जो अपनी केवलज्ञानरूपी लक्ष्मीसे जगतको हाथके आँवलेकी तरह जानते हैं और जो अचिन्त्य (जिसकी कल्पना भी न हो सके ऐसे) माहात्म्यरूपी दौलतवाले हैं वे सुविधिनाथ तुम्हारे लिए बोधके कारण होओ।

पुष्करवर द्वीपमें पुष्कलावती नामक देश है। उसकी नगरी पुण्डरीकिणी थी। उस नगरीका राजा महापद्म था। वह संसारसे विरक्त हो गया और जगन्नंद गुरुके पाससे उसने दीक्षा ले ली। वह एकावली तपको पालता था, इससे उसने तीर्थंकर कर्म बाँधा।

१ प्रथम भव

अन्तमें वह शुभ ध्यानपूर्वक मरकर वैजयंत विमानमें महर्द्धिक देव हुआ।

१ दूसरा भव

वहाँके अनुपम सुखोंको भोग कर महापद्मका जीव वैजयंत विमानसे च्यवकर काकंदी नगरीके राजा
३ तीसरा भव सुग्रीवकी रानी रामाके गर्भमें, फाल्गुन वदि ९ के दिन मूल नक्षत्रमें आया। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणकका उत्सव मनाया। क्रमशः गर्भका समय पूर्ण होनेपर महारानी रामाने मार्गशीर्ष वदि ५ के दिन मूल नक्षत्रमें मगरके चिन्ह सहित, पुत्ररत्नको जन्म दिया। इन्द्रादि देवोंने जन्मोत्सव मनाया। गर्भ समयमे माता सब विधियोंमे कुशल हुई थीं इसलिए उनका नाम सुविधिनाथ एवं गर्भ समयमें माताको पुष्पका दोहला उत्पन्न हुआ था इससे उनका नाम पुष्पदन्त रखा गया।

युवा होने पर पिताके आग्रहसे भगवानने अनेक राजकन्याओंके साथ विवाह किये। वे ५० हजार पूर्व तक युवराज रहे। इसके बाद ८८ पूर्वांग सहित ५० हजार पूर्व तक उन्होंने राज्य किया। फिर एक समय लोकान्तिक देवोंने आकर विनती की:- "हे प्रभु! अब जगतके जीवोंके हितार्थ दीक्षा धारण कीजिये।" तब प्रभुने वर्षीदान करके मार्गशीर्ष वदि ६ के दिन मूल नक्षत्रमें एक हजार राजाओंके साथ सहस्राम्रवनमें जाकर दीक्षा धारण की। इन्द्रादि देवोंने दीक्षाकल्याणक किया। श्वेतपुरके राजा पुष्पके घर दूसरे दिन प्रभुने पारणा किया।

वहाँसे विहार कर चार मास बाद भगवान उसी उद्यानमें आये। और मालुर वृक्षके नीचे कायोत्सर्गकर कार्त्तिक

सुदि ३ मूल नक्षत्रमें उन्होंने चार घातिया कर्मोंको नष्टकर केवलज्ञान पाया।

प्रभुका परिवार इस प्रकार था,—८८ गणधर, २ लाख साधु, १ लाख २ हजार साध्वियाँ, ८ हजार ४ सौ अवधि ज्ञानी डेढ़ हजार चौदह पूर्वधारी, साढ़े सात हजार मनः पर्ययज्ञानी, ७ हजार ५ सौ केवली, १३ हजार वैक्रिय लब्धि धारी, ६ हजार वादी, २ लाख २९ हजार श्रावक और ४ लाख ७२ हजार श्राविकाएँ; सर्वत्र अजित नामक यक्ष व सुतारा नामकी शासन देवी।

मोक्षकाल पास जान पुष्पदन्त स्वामी सम्मेदशिखरपर पधारे। और वहाँ उन्होंने एक हजार मुनियोंके साथ एक मासका अनशन धारण किया। अन्तमें योग निरोधकर कार्तिक वदि ९ के दिन मूल नक्षत्रमें पुष्पदन्तजी सिद्ध हुए। इन्द्रादि देवोंने निर्वाणकल्याणक मनाया।

पुष्पदन्तजीकी कुल आयु २ लाख पूर्वकी थी, उसमेंसे उन्होंने आधा पूर्व शिशुवयमें ८८ पूर्वांग सहित आधा लाख पूर्व राज्यकालमें, ८८ पूर्वांग न्यून एक लाख पूर्व साधुपनमें बिताया। फिर व मोक्ष गये। उनका शरीर १०० धनुष ऊँचा था।

चन्द्रप्रभुके निर्वाण जानेके बाद ९० कोटि सागरोपम बीतनेपर सुविधिनाथजी मोक्षमें गये।

श्री सुविधिनाथ मोक्षमें गये उसके बाद हुडा अवसर्पिणी कालके दोषसे स्वामी साधु न रहे। तब लोग श्रावकोंसे ही धर्म पूछने लगे। श्रावक लोग अपनी इच्छानुसार धर्मोपदेश देने

लगे। भद्रिक लोग उन्हें, उपकारी समझकर, द्रव्यादि भेटमें देने लगे। लोभ बुरी बला है। उन श्रावकोंने लोभके वश होकर उपदेश दियाः–" तुम लोग भूमिदान, स्वर्णदान, रूप्यदान, गृहदान, अश्वदान, राजदान, लोहदान, तिलदान, कपासदान आदि दान दिया करो। इन दानोंसे तुमको इस लोकमें और परलोकमें महान फलोंकी प्राप्ति होगी।"

इस उपदेशके अनुसार लोग दान भी देने लगे। लोभसे मार्गच्युत बने हुए उन श्रावकोंने दान भी खुद ही लेना आरंभ कर दिया। वे ही लोगोंके गृहस्थ गुरु बन गये। इन श्रावकोंमें उन लोगोंकी सन्तति मुख्य थी जो भरत चक्रवर्तीके समयमें 'माहन' 'माहन' बोलते हुल ब्राम्हणोंके नामसे मशहूर हो गये थे। और इसी लिए वे श्रावक मुख्यतया ब्राम्हण कहलाये। ऐसा अनुमान होता है।

---

१० श्री शीतलनाथ-चरित

सत्त्वानां परमानंद–कंदोद्भेदनवांबुदः।
स्याद्वादामृतनिस्यंदी, शीतलः पातु वो जिनः॥

भावार्थ—प्राणियोंके उत्कृष्ट आनदके अंकुर प्रकट होनेमें नवीन मेघके समान और स्याद्वाद मतरूपी अमृतको बरसानेवाले श्री शीतलनाथ तुम्हारी रक्षा करें।

पुष्करद्वीपमें वज्र नामक देश है। उसकी राजधानी सुसीमा नामक नगरी थी। उसका राजा पद्मोत्तर था।
१ प्रथम भव उसने बहुत बरसों तक राज्य किया। संसारसे वैराग्य होने पर उसने त्रिस्ताघ नामक आचार्यके पाससे दीक्षा ली, तीव्र तप सहित शुद्ध व्रतोंको पाला और बीस स्थानककी आराधनाकर तीर्थंकर कर्म बाँधा।

२ द्वितीय भव—अन्तमें मरकर वह दसवें देवलोकमें देव हुआ वहाँसे च्यवकर पद्मोत्तरका जीव भरत क्षेत्रके
३ तीसरा भव भद्दिला नगरके राजा दृढ़रथकी रानी नंदाके उदरमें, वैशाख सुदि ६ के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें आया। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक मनाया। गर्भका समय पूर्ण होनेपर नंदा रानीने माघ वदि १२ के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें श्रीवत्स लक्षणयुक्त पुत्रको जन्म दिया। इन्द्रादि देवोंने जन्मकल्याणक मनाया। राजाने हर्षित होकर बहुत दान दिया। पहिले राजाको गर्मी बहुत लगती थी, परन्तु यह पुत्र गर्भमें आया, उसके बाद राजाने एक दिन रानीका अंग छुआ, इसीसे राजाकी बहुत दिनोंकी गर्मी शान्त हो गई। इस कारणसे उन्होंने पुत्रका नाम शीतलनाथ रखा।

शिशु कालमें प्रभुकी अनेक धायें सेवा करती थीं। दूजके चाँद समान बढ़ते हुए प्रभु युवा हुए। पिताने अनेक राजकन्याओंके साथ उनके ब्याह कर दिये। उन्होंने २५ हजार पूर्व तक युवराज पदके सुख भोगे। और ५० हजार पूर्व तक

राज्य किया। पीछे लोकान्तिक देवोंने प्रभुसे दीक्षा लेनेकी प्रार्थना की।

संवत्सरी दान देनेके बाद प्रभुने छट्ठ व्रतकर माघ वदि १२ के दिन पूर्वाषाढा नक्षत्रमें सहस्राम्र वनमें जा एक हजार राजाओंके साथ दीक्षा ली। इन्द्रादि देवोंने तपकल्याणक किया। दूसरे दिन राजा पुनर्वसुके घर उनने पारणा किया। वहाँसे विहार कर तीन मासके बाद प्रभु उसी उद्यानमें आये। पीपल वृक्षके नीचे उन्होंने कायोत्सर्ग धारण किया। शुक्ल ध्यानके दूसरे भेदपर चढ़ और घातिया कर्मोंको क्षय कर, पौष वदि ४ के दिन पूर्वाषाढा नक्षत्रमें शीतलनाथजी केवली हुए। इन्द्रादि देवोंने ज्ञानकल्याणक मनाया और समोशरणकी रचना की। प्रभुने सिंहासनपर बैठकर भव्य जीवोंको दिव्य उपदेश दिया।

शीतलनाथजीके शासनमें इतना परिवार था,—ब्रह्म नामक यक्ष, अशोका शासन देवी, ८१ गणधर, १ लाख साधु, एक लाख छः साध्वियाँ, १३०० चौदह पूर्वधारी, १४ सौ ७ हजार २ सौ अवधिज्ञानी, साढ़े सात हजार मनःपर्यय ज्ञानी, ७ हजार केवली, ४ हजार वैक्रियलब्धिधारी, ५ हजार ८ सौ वादी, २ लाख ८९ हजार श्रावक, और ४ लाख ५८ हजार श्राविकाएं।

अपना निर्वाण काल समीप जान प्रभु सम्मेदशिखरपर आये। वहाँ उन्होंने एक हजार मुनियोंके साथ अनशन व्रत धारण किया। एक मासके बाद वैशाख वदि २ पूर्वाषाढा नक्षत्र-

में उन्हीं मुनियोंके साथ प्रभु मोक्षमें गये। इन्द्रादि देवोंने मोक्ष-कल्याणक मनाया।

२५ हजार पूर्व कुमार वयमें, ५० हजार पूर्व राज्य कालमें, २५ हजार पूर्व दीक्षा कालमें इस प्रकार प्रभुकी आयुके १ लाख पूर्व व्यतीत हुए। उनका शरीर ९ धनुष ऊँचा था।

सुविधिनाथजीके मोक्ष जानेके बाद नौ कोटि सागरोपम बीते, तब शीतलनाथजी मोक्षमें गये।

---

११ श्री श्रेयांसनाथ-चरित

भवरोगार्त्तजन्तूना-मगदङ्कारदर्शन'।
निःश्रेयसश्रीरमण' श्रेयांसः श्रेयसेऽस्तु व'॥

भावार्थ—जिनका दर्शन (सम्यक्त्व) संसाररूपी रोगसे पीड़ित जीवोंके लिए वैद्यके समान है और जो मोक्षरूपी लक्ष्मीके स्वामी हैं वे भी श्रेयांसनाथ भगवान तुम्हारे कल्याणके हेतु होवें।

पुष्करद्वीपमें कच्छ देश है। उसमें क्षेमा नामकी एक नगरी थी। वहाँका राजा नलिनगुल्म था।

१ प्रथम भव उसने बहुत दिनों तक राज्य किया। एक समय संसारसे उसको वैराग्य हुआ। उसने वज्रदत्त मुनिके पाससे दीक्षा ली और बीस स्थानककी आराधना कर तीर्थंकर गोत्र बाँधा।

२ दूसरा भव प्राण तज कर नलिनगुल्म शुक्र नामक दशवें देवलोकमें उत्पन्न हुआ।

वहाँसे च्यवकर सिंहपुरी नगरके राजा विष्णुकी रानीके उदरसे जेठ वदि ६ के दिन श्रवण नक्षत्रमें

३ तीसरा भव आया। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक मनाया। गर्भकाल पूरा होनेपर विष्णु माताकी कुक्षिसे भाद्रपद वदि १२ के दिन श्रवण नक्षत्रमें गेंडेके चिन्ह सहित पुत्ररत्नका जन्म हुआ। इन्द्रादि देवोंने जन्मकल्याणक किया। पुत्रका नाम श्रेयांस कुमार रखा गया। क्योंकि उनके जन्मसे राजाके घर सब श्रेय (कल्याण) हुआ था।

अनुक्रमसे प्रभु युवा हुए। तब पिताने अनेक राजकन्याओके साथ उनका पाणिग्रहण करा दिया। वे २१ लाख वर्षतक युवराज रहे और ४२ लाख वर्षतक उन्होंने राज्य किया। जब लोकान्तिक देवोंने आकर दीक्षा लेनेकी विनती की, तब प्रभुने वर्षीदान दिया और सहसाम्र वनमें जाकर फाल्गुन वदि १३ के दिन श्रवण नक्षत्रमें छट्ठ तपकर दीक्षा ली। इन्द्रादि देवोंने तपकल्याणक किया। दूसरे दिन उन्होने राजा नंदके यहाँपर पारणा किया। वहाँसे अन्यत्र विहार कर एक मास बाद वापिस वे उसी वनमें आये। अशोक वृक्षके नीचे कायोत्सर्ग धार शुक्लध्यानके साथ कर्मोंका नाश कर माघ वदि ऽऽ के दिन चन्द्र नक्षत्रमें प्रभु केवलज्ञानी हुए। इन्द्रादि देवोंने केवलज्ञान-कल्याणक किया।

श्रेयांसनाथजीके परिवारमें, ईश्वर नामका यक्ष और मानवी नामकी शासनदेवी हुई। इसी तरह ७६ गणधर, ८४ हजार साधु, १ लाख ३ हजार साध्वियाँ, १३ सौ चौदह पूर्वधारी, ६० हजार अवधिज्ञानी, ६० हजार मनःपर्ययज्ञानी, साढ़े ६० हजार केवली, ११ हजार वैक्रिय लब्धिधारी, ५ हजार वादलब्धि-धारी, २ लाख १९ हजार श्रावक और ४ लाख ४६ हजार श्राविकाएँ थे।

प्रभु अपना मोक्षकाल समीप जान सम्मेदशिखरपर गये। एक हजार मुनियोंके साथ उन्होंने अनशन व्रत लिया और एक मासके अन्तमें श्रावण सुदि ३ के दिन धनिष्ठा नक्षत्रमें प्रभु मोक्ष गये। इन्द्रादि देवोंने मोक्षकल्याणक उत्सव किया।

श्रेयांसनाथकी आयु ८४ लाख वर्षकी थी, उसमेंसे वे २१ लाख वर्ष कुमार वयमें रहे, ४२ लाख वर्ष राज्यमें रहे और २१ लाख वर्ष उन्होंने चारित्र पाला। इनका शरीर ८० धनुष ऊँचा था।

शीतलनाथजीके निर्वाणके बाद ६६ लाख ३६ हजार वर्ष १ सागरोपम न्यून एक कोटि सागरोपम बाद श्रेयांसनाथजी मोक्ष गये। इनके तीर्थमें त्रिपृष्ठ वासुदेव, अचल नामक बलदेव, और अश्वग्रीव प्रति वासुदेव हुए।

---

१ इसका दूसरा नाम 'मनुज' भी है। २ इसका दूसरा नाम श्रीवत्सा भी है।

१२ श्री वासुपूज्य--चरित

विश्वोपकारकीभूत--तीर्थकृतकर्मनिर्मितिः ।
सुरासुरनरैः पूज्यो, वासुपूज्यः पुनातु वः ॥

भावार्थ—जिन्होंने जगत्का उपकार करनेवाला तीर्थंकर नाम कर्म निर्माण किया है--उपार्जन किया है और जो देवता, असुर और मनुष्य सभीके पूज्य हैं, वे वासुपूज्य स्वामी तुम्हें पवित्र करें ।

पुष्करवर द्वीपमें मंगलावती नामक देश है । उसकी राजधानी रत्नसंचया नामकी नगरी थी ।

१ प्रथम भव उसमें पद्मोत्तर नामका राजा राज्य करता था । उसको संसारसे वैराग्य हुआ और उसने वज्र नामक गुरुके पाससे दीक्षा ले ली । आठ प्रवचन माता (५ सुमति ३ गुप्ति) को पाल कर और वीस स्थानककी आराधना कर उसने तीर्थंकर नाम कर्म बाँधा ।

२ द्वितीय भव प्राण तज कर पद्मोत्तरका जीव दशवे देव-लोकमें उत्पन्न हुआ ।

जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें चंपा नगरी थी । उस नगरीके राजा वासुपूज्यके जया नामकी रानी थी । पद्मोत्तर-

३ तीसरा भव का जीव स्वर्गसे च्यवकर जेठ सुदि ९ के दिन शतभिशाखा नक्षत्रमें जयादेवीके गर्भमें आया । इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक किया । नौ माह साढ़े सात दिन

बीतने पर फाल्गुन वदि १४ के दिन वरुण नक्षत्रमें जयावती-की कुक्षिसे महिषीलक्षण-युक्त पुत्रका जन्म हुआ। इन्द्रादि देवोंने जन्मकल्याणक किया। और उस बालकका नाम वासुपूज्य रखा गया। यौवन काल आनेपर पिताके आग्रह करने पर भी उन्होंने विवाह नहीं किया। और न राज्य ही लिया। वे बाल ब्रह्मचारी रहे। वे संसारको असार, और भोगोंको किंपाक फलके समान जानते थे। इसीसे उदास रहते थे।

एक दिन लोकान्तिक देवोंने आकर दीक्षा लेनेकी प्रार्थना की वासुपूज्य स्वामीने वर्षीदान देकर फाल्गुन वदि ३० के दिन वरुण नक्षत्रमें छट्ठ तप सहित दीक्षा ली। इन्द्रादि देवोंने तप-कल्याणक किया। दूसरे दिन महापुर नगरमें राजा सुनंदके यहाँ उन्होंने पारणा किया।

प्रभु एक मास छद्मस्थपनेमें विहार कर गृह-उद्यानमें आये। और पाटल (गुलाब) वृक्षके नीचे कायोत्सर्ग पूर्वक रहे। वहीं पर माघ सुदि २ के दिन शतभिषाका नक्षत्रमें प्रभुको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इन्द्रादि देवोंने ज्ञानकल्याणक किया। प्रभुने भव्य जीवोंको उपदेश दिया और नाना देशोंमें विहार किया।

उनके शासनमें ६६ गणधर, ७२ हजार साधु, १ लाख साध्वियाँ, ४ सौ चौदह पूर्वधारी, ५४ सौ अवधिज्ञानी, १ ८ मनःपर्ययज्ञानी, ६ हजार केवली, १ हजार वैक्रियक लब्धिधारी, ४ हजार ८ सौ वादी, १ लाख १५ हजार श्रावक, ४ लाख ३६ हजार श्राविकाएँ तथैव चण्डा नामकी शासन देवी, और कुमार नामक यक्ष थे।

-

मोक्षकाल निकट जान भगवान चंपा नगरीमें पधारे। वहाँ छः सौ मुनियोंके साथ अनशन व्रत ग्रहण कर एक मासके अन्तमें अषाढ सुदि १४ के दिन उत्तरा भाद्रपद नक्ष- त्रमें प्रभु मोक्षको गये। इन्द्रादि देवोंने निर्वाणकल्याणक किया।

प्रभु १८ लाख वर्ष कुमार वयमें और ५४ लाख वर्ष दीक्षापर्यायमें इस तरह ७२ लाख वर्षकी आयु समाप्तकर मोक्षमें गये। उनका शरीर ७० धनुप ऊँचा था।

श्रेयांसनाथके मोक्ष जानेके ५४ सागरोपम वीतने पर वासु- पूज्यजी मोक्षमें पधारे। इनके समयमें द्विपृष्ट वासुदेव, विजय वलभद्र और तारक प्रतिवासुदेव हुए थे।

---

१३ श्री विमलनाथ-चरित

विमलस्वामिनो वाचः, कतकक्षोदसोदराः।
जयंति त्रिजगच्चेतो–जलनैर्मल्यहेतवः॥

भावार्थ—कतक फलके चूर्ण जैसी, तीन लोकके प्राणियोंके हृदयरूपी जलको निर्मल वनानेवाली श्री विमलनाथ स्वामीकी वाणी जयवंती होव।

धातकी खण्डके प्राग् विदेहमें भरत नामका देश है। उसमें महापुरी नगरी थी। उसका राजा पद्मसेन था।

१ प्रथम भव उसको वैराग्य उत्पन्न हुआ। सर्व गुप्तमुनिके पास उसने दीक्षा ली। सम्यक् प्रकारसे चारि- त्रका पालन किया। और अर्हद्भक्ति आदि वीस स्थानककी

आराधनासे तीर्थंकर नाम बाँधा । फिर कालतक मुनिव्रत पालन किया ।

आयु पूर्ण होनेपर पद्मोत्तरका जीव सहस्रार स्वर्गमें बड़ा
२ दूसरा भव ऋद्धिवान देव हुआ । वहाँ पर नाना प्रकारके सुख भोगे ।

स्वर्गसे पद्मोत्तरका जीव च्यवकर कंपिला नगरके राजा कृतवर्माकी रानी श्यामाके गर्भमें वैशाख सुदि
३ तीसरा भव १२ के दिन भाद्रपदमें आया । इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक मनाया । गर्भका समय पूरा होनेपर माघ सुदि ३ के दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रमें वराह (सूअर) के चिन्ह युक्त पुत्रको श्यामा देवीने जन्म दिया । इन्द्रादि देवोंने जन्मकल्याणक मनाया । गर्भ समयमें माताके परिणाम निर्मल रहे थे इससे प्रभुका नाम विमलनाथ रखा गया । युवा होनेपर पिताने विमल कुमारका विवाह अनेक कन्याओंके साथ कर दिया । भगवान १५ लाख वर्ष तक युवराज पदमें रहे । ३ लाख वर्ष तक राज्य किया । फिर लोकान्तिक देवोंने आकर प्रार्थना की:—"हे प्रभु ! दीक्षा धारण कीजिये ।" भगवानने सांवत्सरी दान दे, एक हजार राजाओंके साथ छट्ठ तप सहित सहसाम्र वनमें दीक्षा धारण की । इन्द्रादि देवोंने तपकल्याणक मनाया । तीसरे दिन राजा जयके घर पारणा किया । दो वर्ष तक अनेक देशोंमें विहारकर प्रभु फिर उसी उद्यानमें आये और जंबू वृक्षके नीचे कायोत्सर्ग पूर्वक रहे । क्षपक श्रेणीमें आरूढ़ होकर उन्होंने घातिया कर्मोंका क्षय किया और चौथ

वदि ६ के दिन उत्तराभाद्रपद नक्षत्रमे केवलज्ञान पाया। इन्द्रादि देवोंने ज्ञानकल्याणक मनाया।

प्रभुके शासन में ५७ गणधर, ६८ हजार साधु, १ लाख ८ सौ साध्वियाँ, १ हजार एक सौ चौदह पूर्वधारी, ४ हजार ८ सौ अवधिज्ञानी, ९ हजार ५ सौ मनःपर्ययज्ञानी, ५ हजार ५ सौ वैक्रियलब्धिधारी, २ लाख ८ हजार श्रावक, ४ लाख ३४ हजार श्राविकाएँ, षडमुख नामक यक्ष, और विदितां शासन देवी थे।

अपना मोक्षकाल समीप जान प्रभु सम्मेदाचलपर आये और छः हजार मुनियोंके साथ एक मासका अनशनव्रत धारण कर आषाढ वदि ७ के दिन मोक्षमें गये। इन्द्रादि देवोंने मोक्ष-कल्याणक किया।

१५ लाख वर्ष कुमार वयमे, ३० लाख वर्ष तक राज्य कार्यमें, और १५ लाख वर्ष संयममें इस तरह ६० लाख वर्षकी आयु भोग प्रभु मोक्षमें गये। उनका शरीर ६० धनुष ऊँचा था।

वासुपूज्यजीके ३० सागरोपम बाद विमलनाथजी मोक्षमें गये।

इनके तीर्थमें स्वयंभू वासुदेव, भद्र नामक बलदेव और मेरक प्रति वासुदेव हुए।

---

१४ श्री अनन्तनाथ–चरित

स्वयंभूरमणस्पर्द्धि–करुणारसवारिणा ।
अनंतजिदनंता वः प्रयच्छतु सुखश्रियम् ॥

अर्थ—अपने करुणा–रसरूपी जलके द्वारा स्वयंभू रमण समुद्रसे स्पर्द्धा करनेवाले श्रीअनंतनाथ भगवान अनंत मोक्षसुखरूपी लक्ष्मी तुम्हें दें।

धातकी खण्डद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें अरिष्टा नामक नगरी थी। उसमें पद्मरथ राजा राज्य करता था। किसी
१ प्रथम भव कारण उसको संसारसे वैराग्य हुआ। उस
नामक आचार्यके समीप उसने दीक्षा ली। बीस स्थानककी आराधनासे उसने तीर्थंकर गोत्रका बंध किया।

अन्तसमयमें शरीर छोड़कर पद्मरथका जीव प्राणत नामक
२ दूसरा भव दसवें देवलोकमें पुष्पोत्तर विमानमें देवता हुआ।

जंबूद्वीपकी अयोध्या नगरीमें सिंहसेन राजा था। उसकी सुयशा नामकी रानी थी। उस रानीके गर्भमें
३ तीसरा भव पद्मरथका जीव देवलोकसे च्यव कर श्रावण
वदि ७ के दिन रेवती नक्षत्रमें आया। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक मनाया। गर्भावस्था पूर्ण होनेपर रानीने वैशाख सुदि १३ के दिन पुष्य नक्षत्रमें बाज पक्षीके लक्षणयुक्त पुत्रको जन्म दिया। इन्द्रादि देवोंने जन्मकल्याणक किया। गर्भकालमें पिताने अनंत शत्रु जीते थे, इससे इनका नाम

अनन्तनाथ रखा गया। शिशुकालको त्याग कर प्रभु युवा हुए। उस समय पिताने अनेक कन्याओंके साथ उनकी शादी की। साढे सात लाख वर्ष तक युवराज रहे। फिर पिताके आग्रहसे राजा बने। और १५ लाख वर्ष तक राज्य किया।

एक दिन लोकान्तिक देवोंने आकर दीक्षा लेनेकी प्रेरणा की। समय जान, वर्षीदान दे, सहसाम्रवनमें जा, वैशाख वदि १४ के दिन रेवती नक्षत्रमे प्रभुने छट्ट तप युक्त दीक्षा ली। इन्द्रादि देवोंने दीक्षाकल्याणक मनाया। दूसरे दिन राजा विजयके घर परमान्नसे (खीरसे) पारणा किया। प्रभु विहार करते हुए तीन वर्षके वाद वापिस उसी वनमें पधारे। अशोक वृक्षके नीचे कायोत्सर्ग ध्यानमें रहे। घाति कर्मोका नाश होनेसे वैशाख वदि १४ के दिन रेवती नक्षत्रमें भगवानको केवलज्ञान हुआ। इन्द्रादि देवोंने ज्ञानकल्याणक किया।

प्रभुके शासनमें--पाताल नामक यक्ष, अंकुशा नामकी शासन देवी, ५० गणधर, ६६ हजार साधु, ६२ हजार साध्वियाँ, ९ सौ चौदह पूर्वधारी, ४ हजार ३ सौ अवधिज्ञानी, ४ हजार ५ सौ मनःपर्ययज्ञानी, ५ हजार केवली, ८ हजार वैक्रियक लब्धि वाले, ३ हजार वादी, २ लाख ६ हजार श्रावक, और ४ लाख १४ हजार श्राविकाएँ थे।

मोक्षकाल समीप जान प्रभु सम्मेद शिखरपरगये और सात हजार साधुओंके साथ अनशन व्रत धारण कर चैत्र सुदि ५ के दिन पुष्य नक्षत्रमे मोक्षको पधारे। इन्द्रादि देवोंने निर्वाण-कल्याणक मनाया।

साढ़े सात लाख वर्ष कुमार वयमें, १५ लाख वर्ष राज्य कार्यमें और साढ़े सात लाख वर्ष दीक्षा पालनेमें इस तरह ३० लाख वर्षकी आयु पूर्ण कर प्रभु मोक्षमें गये। उनका शरीर ५० धनुष ऊँचा था।

विमलनाथजीका निर्वाण हुआ, उसके पीछे नौ सागरोपम बीतने पर अनन्तनाथजी मोक्षमें गये।

इनके तीर्थमें चौथा वासुदेव पुरुषोत्तम, चौथा बलदेव सुप्रभ और चौथा प्रतिवासुदेव मधु हुए।

१५ श्री धर्मनाथ-चरित

कल्पद्रुमसधर्माण-मिष्टप्राप्तौ शरीरिणाम्।
चतुर्धा धर्मदेष्टारं, धर्मनाथमुपास्महे॥

भावार्थ—जो प्राणियोंको इच्छित फलकी प्राप्तिमें कल्पवृक्षके समान हैं और जो दान, शील, तप और भावरूपी चार प्रकारके धर्मका उपदेश करनेवाले हैं उन श्री धर्मनाथप्रभुकी हम उपासना करते हैं।

धातकी खण्डके पूर्व विदेहमें भरतनामके देशमें भद्दिल नगर था। वहाँका राजा दृढ़रथ था। उसका संसारसे

१ प्रथम भव वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसी समय उसने विमलवाहन गुरुके पाससे दीक्षा ली। फिर क्रमशः

सफल चारित्र पाला, और बीस स्थानकी आराधनासे तीर्थंकर गोत्र बाँधा।

२ दूसरा भव—समाधिमरण करके दृढरथका जीव वैजयन्त नामक विमानमें देव हुआ।

रत्नपुर नगरके राजा भानुकी रानी सुव्रताके गर्भमें दृढरथ राजाका जीव वैजयन्त विमानसे च्यवकर
३ तीसरा भव वैशाख सुदि ७ के दिन पुष्य नक्षत्रमें आया। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक मनाया। गर्भ-कालको पूर्णकर सुव्रता रानीके उदरसे, माघ सुदि ३ के दिन पुष्य नक्षत्रमें, वज्र लक्षण-युक्त पुत्रका जन्म हुआ। इन्द्रादि देवोंने जन्म-कल्याणक मनाया। जब प्रभु गर्भमें थे उस समय माताको धर्म करनेका दोहला हुआ था इससे उनका नाम धर्मनाथ रखा गया।

उन्होंने यौवन कालमें पाणिग्रहण किया, ५ हजार वर्ष तक राज्य किया फिर लोकान्तिक देवोंके विनती करने पर वर्षीदान दे प्रकाञ्चन उद्यानमें जा, एक हजार राजाओंके साथ माघ सुदि १३ के दिन पुष्य नक्षत्रमें दीक्षा ली। इन्द्रादि देवोंने तप कल्याणक मनाया। दूसरे दिन धर्मसिंह राजाके यहाँ प्रभुने परमान्नसे (खीरसे) पारणा किया।

भगवान विहार करते हुए दो वर्ष बाद उसी उद्यानमें पधारे। उन्होंने दधिपर्ण वृक्षके नीचे ध्यान धरा। घातिया कर्मोंका क्षय होनेसे पौष सुदि १५ के दिन पुष्य नक्षत्रमें उन्हें केवल-ज्ञान हुआ। इन्द्रादि देवोंने ज्ञानकल्याणक मनाया। केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर दो वर्ष कम ढाई लाख वर्ष तक उन्होंने नाना देशोंमें विहार किया और प्राणियोंको उपदेश दिया।

धर्मनाथजीके संघमें ४३ गणधर, ६४ हजार साधु, ६२ हजार ४ सौ साध्वियाँ, ९ सौ चौदह पूर्वधारी, ३ हजार ६ सौ अवधिज्ञानी, ४ हजार ५ सौ मनःपर्ययज्ञानी, ४ हजार ५ सौ केवली, ७ हजार वैक्रियकलब्धिधारी, २ हजार ८ सौ वादी, २ लाख ४ हजार श्रावक और ४ लाख १३ हजार श्राविकाएँ थे। तथा किंनर यक्ष शासन देव, और कंदर्पा नामा शासन देवी थी।

भगवान, मोक्षकाल समीप जान सम्मेदशिखरपर आये और १०८ मुनियोंके साथ अनशन व्रत ग्रहणकर जेठ सुदि ५ के दिन पुष्य नक्षत्रमें मोक्ष गये। इन्द्रादि देवोंने मोक्षकल्याणक किया। प्रभु ढाई लाख वर्ष कुमारपनमें, ५ लाख वर्ष राज्यकार्यमें और ढाई लाख वर्ष साधुपनमें रहे। इस तरह इन्होंने १० लाख वर्षकी आयु पूर्ण की। इनका शरीर पैंतालीस धनुष ऊँचा था।

अनंतनाथजीके निर्वाण जानेके बाद चार सागरोपम बीतने पर धर्मनाथजी मोक्षमें गये।

इनके तीर्थमें पाँचवाँ वासुदेव पुरुषसिंह, सुदर्शन बलदेव, और निशुंभ प्रतिवासुदेव हुए।

---

१६ श्री शांतिनाथ-चरित

सुधासोदरवाग्ज्योत्स्ना-निर्मलीकृतदिङ्मुखः ।
मृगलक्ष्मातमः शान्त्यै, शान्तिनाथजिनोऽस्तु वः ॥

भावार्थ—जिनकी अमृतके समान वाणी सुनकर लोगोंके मुख उसी तरह प्रसन्न हुए हैं जैसे चाँदनीसे दिशाएँ प्रसन्न होती हैं-प्रकाशित होती हैं । और जिनके हिरनका चिन्ह है वे शान्तिनाथ भगवान तुम्हारे पापोंको उसी तरह नष्ट करें जैसे चंद्रमा अंधकारका नाश करता है ।

१ पहला भव (राजा श्रीषेण)

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रम रत्नपुर नामका शहर था । उसमें श्रीषेण नामका राजा राज्य करता था । उसके अभिनंदिता और शिखिनंदिता नामकी दो रानियाँ थीं । अभिनंदिताके इन्दुषेण और विंदुषेण नामके दो पुत्र हुए । वे जब बड़े हुए तब विद्वान और युद्ध व न्यायविशारद हुए ।

भरतक्षेत्रके मगध देशमें अचलग्राम नामका एक गाँव था । उसमें धरणीजट नामका एक विद्वान ब्राह्मण रहता था । वह चारों वेदोंका जानकार था । उसके यशोभद्रा नामकी स्त्री थी । उसके गर्भसे क्रमशः नंदिभूति और शिवभूति नामके दो पुत्र जन्मे । धरणीजटके घरमें एक दासी थी । वह सुंदरी थी । धरणीजटका मन विगड़नेसे उस दासीके गर्भसे एक लड़का जन्मा । उस लड़केका नाम कपिल रखा गया ।

धरणीजट नंदिभूति और श्रीभूतिको विद्या पढ़ाता था। कपिलकी तरफ कभी ध्यान भी नहीं देता था। परन्तु कपिल बुद्धिमान था—मेधावी था इस लिए वह उसका बाप जो कुछ यशोभद्राके लड़कोंको पढ़ाता था उसे ध्यानपूर्वक सुनकर याद कर लेता था। इस प्रकार कपिल पढ़कर धरणीजटके समान दिग्गज विद्वान हुआ।

विद्वान कपिल, निज घरमें, विद्वान होते हुए भी, अपना अपमान होता देख वहाँसे विदेशमें चला गया। दासीपुत्र समझकर धरणीजटने उसे जनेऊ न पहनाई, इसलिए उसने अपने आप यज्ञोपवीत धारण किया। चारों तरफ कपिलकी विद्वत्ताकी धाक बैठ गई। जहाँ जाता वहींके विद्वान लोग उसका आदर करते। कपिल फिरता फिरता रत्नपुर नगरमें पहुँचा। वहाँ सत्यकी नामका एक विद्वान ब्राह्मण रहता था उसके यहाँ अनेक विद्वान शिष्य पढ़ते थे। कपिल सत्यकीकी पाठशालामें गया। शिष्योंने उससे अनेक प्रश्न पूछे। कपिलने सबका यथोचित उत्तर दिया। सत्यकीने भी शास्त्रोंके अनेक गूढ़ार्थ पूछे। कपिलने सबका आशय भली प्रकार समझाया। इससे सत्यकी बड़ा खुश हुआ। उसने कपिलको, आदर करके अपने यहाँ रखा और अपनी शालाका मुख्य अध्यापक बना दिया। 'गुणोंकी कदर क्यों नहीं होती है?' सत्यकीका अपने पर प्रेम देख कपिल उसकी बड़ी सेवा करने लगा। उसके कामका सभी बोझा उसने उठा लिया।

एक बार सत्यकीकी पत्नी जंबूकाने कहा—"देखिये, अपनी

कन्या सत्यभामा अब जवान हो गई है। इसलिए उसकी शादीका कहीं इन्तजाम कीजिए। जिसके घर जवान कन्या हो, कर्ज हो, वैर हो और रोग हो उसे शांतिसे नींद कैसे आ सकती है ? मगर आप तो वेफिक्र हैं।"

सत्यकीने जवाब दिया:—"मैंने इसके लिए योग्य वर ढूँढ लिया है। कपिल मेरी निगाहमें सब तरहसे लायक है। अगर तुम्हारी सलाह हो तो सत्यभामाके साथ इसकी शादी कर दी जाय।"

जंबुकाको यह बात ठीक लगी। यह उसके लिए और भी संतोषकी बात हुई कि कपिलके साथ शादी होनेसे कन्या घरपर ही रहेगी। शुभ मुहूर्त्तमें दोनोंकी शादी हो गई। सुखसे उनके दिन बीतने लगे। विद्वत्ता और मिष्ट व्यवहारके कारण लोग उसको बहुत भेंटें देने लगे। जिससे उसके पास धन भी काफी हो गया। कुछ समयके बाद उसके सास ससुरका देहांत हो गया।

एक बार कपिल कहीं नाटक देखने गया था। रात अंधेरी थी। जोरसे पानी बरस रहा था। इसलिए लौटते समय कपिलने अपने कपडे उतारकर बगलमें दबाये और वह नंगा ही घरपर चला आया। अपने दालानमें आकर उसने दर्वाजा खुलवाया। सत्यभामाने दर्वाजा खोला और कहा:—"ठहरिए मैं सूखे कपड़े ले आती हूँ।" कपिलने कहा:—"मेरे कपड़े सूखे ही हैं। विद्याके बलसे मैंने उन्हें नहीं भीगने दिया।"

मगर घरमें आनेपर सत्यभामाने देखा कि कपिलका सिर गीला है और पैर भी गीले हैं। बुद्धिमती कपिला समझ

गई कि पतिदेव नेमे आये हैं और मुझे झूठ कहा है। पतिकी बुराईसे सत्यभामाके हृदयमें अश्रद्धा उत्पन्न हुई।

अचलग्राममें धरणीजड़ दैवयोगसे निर्धन हो गया। उसने सुना था कि कपिल रत्नपुरमें धनी हो गया है इसलिए वह धनकी आशासे कपिलके पास आया। कपिलने अपनी पत्नीसे कहा:—" मेरे पिताके लिए मुझसे असम ऊँचा आसन लगाना और उनकी अच्छी तरहसे सेवा-भक्ति करना। कपिलको भय था कि, कहीं मेरे पिता मुझसे पहले कर मेरी असलियत जाहिर न कर दें।

सत्यभामाको इस आदेशसे संदेह हुआ और कपिल जब भोजन करके चला गया तब उसने धरणीजड़को पूछा:—" पूज्यवर! आप सत्य बताइए कि आपका पुत्र शुद्ध कुलवाली कन्याके गर्भसे जन्मा है या नहीं? इनके आचरणोंसे मुझे शंका होती है। अगर आप झूठ कहेंगे तो आपको ब्रह्महत्याका पाप लगेगा।"

धरणीजड़ धर्मभीरु था। वह ब्रह्महत्याके पापके डरसे अवहेलना न कर सका। उसने सच्ची बात बता दी। साथ ही यह भी कह दिया कि मेरे जानेतक तू कपिलसे इस विषयकी चर्चा मत करना।

जब धरणीजड़ कपिलसे सहायतार्थ काफी धन लेकर अचल ग्राम चला गया तब सत्यभामा राजा श्रीषेणके पास गई और उसको कहा:—" मेरा पति दासीपुत्र है। अज्ञानमें मैं अब

तक इसकी पत्नी होकर रही। अब ब्रह्मचर्यव्रत लेकर अकेली रहना चाहती हूँ। कृपाकर मुझे उससे छुट्टी दिलाइए।"

राजाने कपिलको बुलाकर कहाः—"तेरी पत्नी अब संसार-सुख भोगना नहीं चाहती। इसलिए इसको अलहदा रह कर धर्मध्यान करने दे।" कपिलने कहाः—"राजन् पतिके जीते पत्नीका अलहदा रहना अधर्म है। स्त्रीका तो पतिकी सेवा करना ही धर्मध्यान है। मै अपनी पत्नीको अलहदा नहीं रख सकता।"

सत्यभामा बोलीः—"ये मुझे अलहदा न रहने देंगे तो मै आत्महत्या करूँगी। इनके साथ तो हरगिज न रहूँगी।"

राजा बोलाः—"हे कपिल! यह प्राण देनेको तैयार है। इससे तू इसको थोड़े दिन मेरी राणियोंके साथ रहने दे। वे पुत्रीकी तरह इसकी रक्षा करेंगी। जब इसका मन ठिकाने आ जाय तब तू इसे अपने घर ले जाना।"

इच्छा न होते हुए भी कपिलने सम्मति दी। सत्यभामा अनेक तरहके तप करती हुई अपना जीवन बिताने लगी।

कौशांबीके राजा बलके श्रीकांता नामकी एक कन्या थी। जवान होनेपर उसका स्वयंवर हुआ। श्रीषेणके पुत्र इन्दुषेणको कन्याने पसंद किया। दोनोंका ब्याह हुआ। श्रीकांता जब सुसरालमें आई तब उसके साथ अनंतमतिका नामकी एक वेश्या भी आई थी। उस वेश्याके रूपपर इंदुषेण और बिंदुषेण दोनों मुग्ध हो गये। फिर उसको पानेके लिए दोनोंने यह फैसला किया कि, हम द्वंद्व युद्ध करें। जो

बीला रहेगा या वेश्याको रखेगा। दोनों लड़ने लगे। माता-पिताने उन्हें बहुत समझाया। मगर वे न माने। तब भीखने जहर मिला हुआ फूल सूँघकर आत्महत्या कर ली। दोनों रानियोंने भी राजाका अनुसरण किया। सत्यभामाने भी वह सोचकर जहरवाला फूल सूँघ लिया कि अगर जीती रहूँगी तो अब कपिल दुष्ट अपने घर जरूर ले जायगा।

दोनों भाई युद्ध कर रहे थे उसी समय कोई विद्याधर विमानमें बैठकर आया। दोनोंको लड़ते देखकर वह नीचे आया और बोला—"विपर्यास मूर्खों! यह तुम्हारी बहन है। उसे जाने बिना कैसे उसे अपनी सुखसामग्री बनानेको लड़ रहे हो?" दोनों लड़ना बंद कर खड़े हो रहे और बोले:-बताओ यह हमारी बहन किस तरह है?"

विद्याधर बोला—"मेरा नाम मणिकुंडली है। मेरे पिताका नाम सुकुंडली है। पुष्कलावती प्रांतमें वैताढ्य पर्वत पर आदित्यनाम नामका नगर मेरे पिताकी राजधानी है। मैं विमानमें बैठकर अमितयश नामके जिन भगवानको वंदना करने गया था। वहाँ मैंने भगवानसे पूछा,—"मैं किस कर्मसे विद्याधर हुआ हूँ?" भगवानने जवाब दिया,—"वीतशोका नामकी नगरीमें रत्नध्वज नामका चक्रवर्ती राजा राज करता था। उसके कनकश्री और हेममालिनी नामकी दो रानियाँ थीं। कनकश्रीके कनकलता और पद्मलता नामकी दो लड़कियाँ हुईं। हेममालिनीके एक कन्या हुई। उसका नाम पद्मा था। पद्मा एक आर्याके पास धर्मध्यान और तप जप करने लगी। अंतमें

उसने दीक्षा ले ली। एक वार उसने चतुर्थ तप किया था। और दिशा फिरने गई थी। रस्तेमें उसने दो योद्धाओंको एक वेश्याके लिए लड़ते देखा। उसने सोचा, वह वेश्या भाग्यमती है, कि उसके लिए दो वीर लड़ रहे हैं। मेरे तपका मुझे भी यही फल मिले कि, मेरे लिए दो वीर लड़ें। अंतमें नियाणेके साथ मरकर वह देवलोकमें जन्मनेके वाद अव अनंतमतिका नामकी वेश्या हुई है। कनकलता और पद्मलता मर, भवभ्रमण कर, अव इन्दुषेण और विन्दुषेण नामके राजपुत्र हुए हैं। तुम कनकश्री थी। अभी इन्दुषेण और विन्दुषेण अनंतमतिकाके लिए लड़ रहे हैं। तुम जाकर उन्हें समझाओ। " इसी लिए में तुम्हारे पास आया हूँ।"

यह हाल सुनकर उनको वड़ा अफ्सोस हुआ। दुनियाकी इस विचित्रतासे उन्हें वैराग्य हुआ और उन्होंने धर्मरुचि नामक आचर्यके पाससे दीक्षा ले ली।

२ दूसरा भव

श्रीषेण, अभिनंदिता, शिखिनंदिता और सत्यभामाके जीव मरकर जंबूद्वीपके उत्तर क्षेत्रमें जुगलिया उत्पन्न हुए। श्रीषेण और अभिनंदिता पुरुष स्त्री हुए और शिखिनंदिता व सत्यभामा स्त्री पुरुष हुए। उनकी आयु तीन पल्योपमकी और उनका शरीर तीन कोस ऊँचा था।

३ तीसरा भव श्रीषेणादि चार युगलियोंकी मृत्यु हुई और वे प्रथम कल्पमें देव हुए।

भरत क्षेत्रमें वैताढ्य गिरिपर रथनुपुर चक्रवाल नामका शहर

था। उसमें ज्वलनजटी नामका विद्याधर राजा राज्य करता था। उसके अर्ककीर्ति नामका पुत्र और स्वयंप्रभा नामकी पुत्री थी। अर्ककीर्तिका ब्याह विद्याधरोंके राजा मेघवनकी पुत्री ज्योतिर्माला के साथ हुआ। श्रीषेण राजाका जीव सौधर्म कल्पसे च्यवकर ज्योतिर्मालाके गर्भमें आया।

चौथा भव (श्री-षेणका जीव अमिततेज हुआ)

ज्योतिर्मालाने उस रातको, अपने तेजसे आकाशको प्रकाशित करते हुए एक सूर्यको अपने मुखमें प्रवेश करते देखा। समय-पर पुत्रका जन्म हुआ। उसका नाम अमिततेज रखा गया। अमिततेजके दादा ज्वलनजटीने अर्ककीर्तिको राज्य देकर जगन्नंदन और अभिनंदन नामक चारण मुनिके पाससे दीक्षा ले ली।

सत्यभामाका जीव भी च्यवकर ज्योतिर्मालाके गर्भसे पुत्री रूपमें उत्पन्न हुआ। उसका नाम सुतारा रखा गया।

अर्ककीर्तिकी बहिन स्वयंप्रभाका ब्याह त्रिपृष्ठ वासुदेवके साथ हुआ था। अभिनंदिताका जीव सौधर्मकल्पसे च्यवकर स्वयंप्रभाके गर्भसे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ। उसका नाम श्रीविजय रखा गया। शिखिनंदिताका जीव भी प्रथम कल्पसे च्यवकर स्वयंप्रभाके गर्भसे पुत्री रूपमें उत्पन्न हुआ। उसका नाम ज्योतिः-प्रभा रखा गया। स्वयंप्रभाके एक विजयभद्र नामका तीसरा पुत्र भी जन्मा।

सत्यभामाके पति कपिलका जीव अनेक योनियोंमें फिरता

हुआ चमरचंचा नामकी नगरीमें अशनिघोष नामका विद्याधरोंका प्रसिद्ध राजा हुआ।

अर्ककीर्तिने अपनी पुत्री सुताराका व्याह त्रिपृष्ठके पुत्र श्रीविजयके साथ किया और त्रिपृष्ठने अपनी कन्या ज्योतिःप्रभाका व्याह अर्ककीर्तिके पुत्र अमिततेजके साथ कर दिया।

कुछ कालके बाद अर्ककीर्तिने अपने पुत्र अमिततेजको राज्य देकर दीक्षा ले ली।

त्रिपृष्ठका देहांत हो गया और उसके भाई अचल बलभद्रने त्रिपृष्ठके पुत्र श्रीविजयको राज्य देकर दीक्षा ले ली।

एक वार अमिततेज अपनी वहिन सुतारा और वहनोई श्रीविजयसे मिलनेके लिए पोतनपुरमें गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि सारे शहरमें आनंदोत्सव मनाया जा रहा है।

अमिततेजने पूछाः—" अभी न तुम्हारे पुत्र जन्मा है, न वसंतोत्सवका समय है न कोई दूसरा खुशीका ही मौका है फिर सारे शहरमें यह उत्सव कैसा हो रहा है ?"

श्रीविजयने उत्तर दियाः—" दस रोज पहले यहाँ एक निमित्तज्ञानी आया था। उसने कहा था कि, आजके सातवें दिन पोतनपुरके राजापर विजली गिरेगी। यह सुनकर मंत्रियोंकी सलाहसे मैंने सात दिनके लिए राज्य छोड दिया और राज्यसिंहासनपर एक यक्षकी मूर्तिको विठा दिया। मैं आंविलका तप करने लगा। सातवें दिन विजली गिरी और यक्षकी मूर्तिके टुकड़े हो गये। मेरी प्राणरक्षा हुई इसीलिए सारे शहरमें आनंद मनाया जा रहा है।"

यह सुन अमिततेज और ज्योतिप्रभाको बहुत खुशी हुई। थोड़े दिन रहकर दोनों पतीपत्नी अपने देशको चले गये।

एक बार श्रीविजय और सुतारा आनंद करने ज्योतिर्वन नामके वनमें गये। उस समय कपिलका जीव अशनिघोष मतारणी नामकी विद्याका साधनकर उधरसे जा रहा था। उसने सुताराको देखा। उसपर वह पूर्वभवके प्रेमके कारण मुग्ध हो गया और उसने उसको हर ले जाना स्थिर किया।

उसने विद्याके बलसे एक हरिण बनाया। वह बड़ा ही सुंदर था। उसका शरीर सोनेसा चमकता था। उसकी आँखें नील कमलसी चमक रही थीं। उसकी छलांगें हृदयको हर लेती थीं। सुताराने उसे देखा और कहाः–" स्वामी मुझे यह हरिण पकड़ दीजिए।"

श्रीविजय हरिणके पीछे दौड़ा। वह बहुत दूर निकल गया। इधर अशनिघोषने सुताराको उठा लिया और उसकी जगह बनावटी सुतारा छोड़ दी। वह चिल्लाई–" हाय ! मुझे सौंपने काट खाई।" यह चिल्लाहट सुनकर श्रीविजय पीछा आया। उसने बेहोश सुताराके अनेक इलाज किये। मगर कोई इलाज कारगर न हुआ। होता ही कैसे ? जब वहाँ सुतारा थी ही नहीं फिर इलाज किसका होता ?

थोड़ी देरके बाद उसने देखा कि, सुताराके प्राण निकल गये हैं। यह देखकर वह भी बेहोश हो गया। नौकरोंने उपचार किया तो वह होशमें आया। सचेत होकर वह अनेक तरहसे विलाप करने लगा। अंतमें एक बहुत बड़ी चिता तैयार

करा उसने भी अपनी पत्नीके साथ जल मरना स्थिर किया।
धू धू करके चिता जलने लगी।

उसी समय दो विद्याधर वहाँ आये। उन्होंने पानी मंत्रकर चितापर डाला। चिता शांत हो गई और उसमेंसे प्रतारणी विद्या अट्टहास करती हुई भाग गई। श्रीविजयने आश्चर्यसे ऊपरकी तरफ देखा। उसने अपने सामने दो युवकोंको खड़े पाया। श्रीविजयने पूछाः—" तुम कौन हो? यह चिता कैसे बुझ गई है? मरी हुई सुतारा कैसे जीवित हुई है और वह हँसती हुई कैसे भाग गई है? "

उनमेंसे एकने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक जवाब दियाः—
" मेरा नाम संभिन्नश्रोत है। यह मेरा पुत्र है। इसका नाम दीपशिख है। हम स्वामीसे आज्ञा लेकर तीर्थयात्राके लिए निकले थे। रास्तेमें हमने किसी स्त्रीके रुदनकी आवाज सुनी। हम रुदनकी तरफ गये। हमने देखा कि हमारे स्वामी अमित-तेजकी बहिन सुताराको दुष्ट अशनिघोष जबर्दस्ती लिये जा रहा है और वे रस्तेमें विलाप करती जा रही हैं। हमने जाकर उसका रस्ता रोका और उससे लड़नेको तैयार हुए। स्वामिनीने कहा,—" पुत्रो! तुम तुरत ज्योतिर्वनमें जाओ और उनके प्राण बचाओ। मुझे मरी समझकर कहीं वे प्राण न दे दें। उनको इस दुष्टताके समाचार देना। वे आकर इस दुष्ट पापीके हाथसे मेरा उद्धार करेंगे।" हम तुरत इधर दौड़े आये। और मंत्रबलसे हमने अग्निको बुझा दिया। बनावटी सुतारा जो मंत्रबलसे बनी हुई थी—भाग गई। "

यह हाल सुनकर श्रीविजयका क्रुद्ध क्रोधमें बदल गया। उसकी भ्रकुटि तन गई। उसके होंठ फड़कने लगे। वह बोला— "दुष्टकी यह मजाल! चलो मैं इसी समय उसे दंड दूँगा और सुताराको छुड़ा लाऊँगा।"

संभिन्नश्रोत बोला—स्वामिन्, आप हमारे स्वामी अमित-तेजके पास चलिए। उनकी मददसे हम स्वामिनी सुताराको शीघ्र ही छुड़ाकर ला सकेंगे। अशनिघोष केवल बलवान ही नहीं है, विद्यावान भी है। वह जब बलसे हमको न जीत सकेगा तो विद्यासे हमें परास्त कर देगा। हमारे पास उसके जितनी विद्या नहीं है।"

श्रीविजयको संभिन्नश्रोतकी बात पसंद आई। वह विद्याधरोंके साथ वैताढ्य पर्वतपर गया। अमिततेजने बड़े आदरसे उसका स्वागत किया और इस तरह आनेका कारण पूछा। संभिन्न-श्रोतने अमित तेजसे सारी बातें कहीं। सुनकर अमिततेजकी आँखें लाल हो आईं। उसके पुत्र क्रुद्ध होकर बोले:—"दुष्टकी इतनी हिम्मत कि वह अमित तेजकी बहनका हरण कर जाय! पिताजी! हमें आज्ञा दीजिए। हम जाकर दुष्टका दंड दें और अपनी फूफीको छुड़ा लावें।"

अमिततेजने श्रीविजयको शस्त्रावरणी (ऐसी विद्या जिससे कोई शस्त्र असर न करे) बंधनी (बाँधनेवाली) और मोक्षणी (बंधनसे छुड़ानेवाली) ऐसी तीन विद्याएँ दीं और फिर अपने पुत्र रश्मिवेग, रविवेग आदिको फौज देकर कहा:— "पुत्रो! अपने फूफाके साथ युद्धमें जाओ और दुष्टको दंड

देकर अपनी फूफीको छुड़ा लाओ। युद्धमें पीठ मत दिखाना। जीतकर लौटना या युद्धमें लड़कर प्राण देना "

श्रीविजय सहस्रावधी सेना लेकर चमरचंचा नगरी पर चढ़ गया। उसने नगरको घेर लिया और अशनिघोपके पास दूत भेजा। दूतने जाकर अशनिघोपको कहाः-" हे दुष्ट! चोरकी तरह तू हमारी स्वामिनी सुताराको हर लाया है। क्या यही तेरी वीरता और विद्या है ? अगर शक्ति हो तो युद्धकी तैयारी कर अन्यथा माता सुताराको स्वामी श्रीविजयके सपुर्द कर उनसे क्षमा माँग।"

अशनिघोपने तिरस्कारके साथ दूतको कहाः—" तेरे स्वामीको जाकर कहना, अगर जिंदगी चाहते हो तो चुपचाप यहाँसे लौट जाओ। अगर सुताराको लेकर जानेहीका हट हो तो मेरी तल्वारसे यमधामको जाओ और वहाँ सुताराकी इन्तजारी करो।"

दूतने आकर अशनिघोपका जवाब सुनाया। श्रीविजयने रणभेरी वजवा दी। अशनिघोपके पुत्र युद्धके लिए आये। अमिततेजके पुत्रोंने उन सबका संहार कर दिया। यह सुनकर अशनिघोप आया और उसने अमिततेजके पुत्रोंका नाश करना शुरु किया। तव श्रीविजय सामने आगया। उसने अशनिघोपके दो टुकड़े कर दिये। दो टुकड़ेके दो अशनिघोप हो गये। श्रीविज-यने दोनोंके चार टुकड़े कर डाले तो चार अशनिघोप हो गये। इस तरह जैसे जैसे अशनिघोपके टुकडे होते जाते थे वैसे ही

वैसे अशनिघोष बढ़ते जाते थे और वे श्रीविजयकी फौजका संहार करते जाते थे। इस तरह युद्धमें एक महीना बीत गया। श्रीविजय अशनिघोषकी इस मायासे व्याकुल हो उठा।

अमिततेज जानता था कि अशनिघोष बड़ा ही विद्यावाला है। इसलिए वह परविद्याछेदिनी महाज्वाला नामकी विद्या साधनेके लिए हिमवंत पर्वतपर गया। अपने पराक्रमी पुत्र सहस्ररश्मिको भी साथ लेता गया। वहाँ एक महीनेका उपवास कर वह विद्या साधने लगा। उसका पुत्र जाग्रत रहकर उसकी रक्षा करने लगा।

विद्या साधकर अमिततेज ठीक उस समय चमरचंचा नगरमें आ पहुँचा जिस समय श्रीविजय अशनिघोषकी मायासे व्याकुल हो रहा था। अमिततेजने आते ही महाज्वाला विद्याका प्रयोग किया। उससे अशनिघोषकी सारी सेना भाग गई। जो रही वह अमिततेजके चरणोंमें आ पड़ी। अमिततेज भाग लेकर भागा। महाज्वाला विद्या उसके पीछे पड़ी।

अशनिघोष भरतार्द्धमें सीमंत गिरिपर केवलज्ञान प्राप्त बलदेव मुनिकी शरणमें गया। अशनिघोषको केवलीकी सभामें बैठा देख महाज्वाला वापिस लौट आई। कारण–'केवलीकी सभामें कोई किसीको हानि नहीं पहुँचा सकता है।' महाज्वालाके मुखसे बलदेव मुनिको केवलज्ञान होनेकी बात सुनकर अमिततेज, श्रीविजयादि सभी विमानमें बैठकर केवलीकी सभामें गये। सुताराको भी वे अपने साथ लेते गये थे। अशनिघोष भाग गया था तब उन्होंने सुताराको पीछेसे छुड़ा ली थी।

जब केवली देशना दे चुके तब अशनिघोषने पूछाः—"मेरे मनमें कोई पाप नहीं था तो भी सुताराको हर लानेकी इच्छा मेरी क्यों हुई ?" केवलीने सत्यभामा और कपिलका पूर्व वृत्तांत सुनाया और कहाः—"पूर्वभवका स्नेह ही इसका मुख्य कारणथा।"

फिर अमिततेजने पूछाः—"हे भगवान ! मैं भव्य हूँ या अभव्य ?" केवलीने उत्तर दियाः—"इससे नवें भवमें तुम्हारा जीव पाँचवाँ चक्रवर्ती और सोलहवाँ तीर्थंकर होगा और श्रीविजय राजा तुम्हारा पहला पुत्र और पहला गणधर होगा।"

अशनिघोषने संसारसे विरक्त होकर वहीं बलभद्र मुनिसे दीक्षा ले ली। अमिततेजादि अपनी अपनी राजधानियोंमें गये। फिर अनेक बरसो तक धर्मध्यान, प्रभुभक्ति, तीर्थयात्रा और व्रत संयम करते रहे। अंतमें दोनोंने दीक्षा ले ली।

पाँचवाँ भव

आयु समाप्तकर अमिततेज और श्रीविजय प्राणत नामके दसवें कल्पमें उत्पन्न हुए। वहाँ वे सुस्थितावर्त और नंदितावर्त नामके विमानके स्वामी मणिचूल और दिव्यचूल नामके देवता हुए। वीस सागरोपमकी आयु उन्होंने सुखसे बिताई।

छठा भव (अपराजित बलदेव)

[इसमें अनंत वीर्य वासुदेव और दमितारी प्रति वासुदेवकी कथाएँ भी शामिल हैं।]

इस जम्बूद्वीपमें सीता नदीके दक्षिण तटपर धनधान्य पूर्ण एवं समृद्धि शालिनी शुभा नामक एक नगरी थी।

इस नगरमें स्तिमितसागर नामक राजा राज्य करता था। उसके धर्मधरा और अनुद्धरा नामकी दो रानियाँ थीं। रानी धर्मधरा देवीने बलदेवके जन्मकी सूचना देनेवाले चार स्वप्न देखे। पूर्व जन्मके अमिततेज राजाका जीव नंदितावर्त विमानसे च्यवकर उनकी कोखमें आया।

गर्भ समय पूर्ण होनेके बाद महादेवीके गर्भसे, श्रीवत्सके चिह्नवाला, श्यामवर्णी, एवं पूर्ण आयुवाला, एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ; जिसका नाम अपराजित रक्खा गया।

इधर अनुद्धरा देवीकी कूखसे पूर्व जन्मके विजय राजाका जीव आया। उसी रात को महादेवीने वासुदेवके जन्मकी सूचना करनेवाले सात महास्वप्न देखे। गर्भका समय पूरा होनेके बाद शुभ दिनको, महादेवी अनुद्धराके गर्भसे, श्याम वर्णी एक सुन्दर बालकका जन्म हुआ। राजाने जन्मोत्सव करके उसका नाम अनंतवीर्य रक्खा।

एक समय शुभा नगरीके उद्यानमें स्वयंप्रभ नामक एक महा मुनि आये। राजा स्तिमितसागर उस दिन फिरता हुआ उसी उद्यानमें जा निकला। वहाँ महा मुनिके दर्शन कर राजाको आनंद हुआ। मुनि ध्यानमें बैठे थे। इसलिए राजा उनके दर्शन करलेनेके बाद, हाथ जोड़ सामने बैठ गया। जब मुनिने ध्यान छोड़ा तब राजाने भक्तिपूर्वक उन्हें वन्दना की। मुनिने धर्मलाभ देकर धर्मोपदेश दिया। इससे राजाको वैराग्य हो गया। उसने अपनी राजधानीमें जाकर अपने पुत्र अनंतवीर्यको

राज्य दिया, फिर स्वयंप्रभ मुनिके पास जाकर दीक्षा ग्रहण की और चिर काल तक चारित्र पाला। एक वार मनसे चारित्रकी विराधना हो गई, इससे वह मरकर भुवनपति निकायमें चमरेन्द्र हुआ।

अनंतवीर्यने जबसे शासनकी वाग डोर अपने हाथमें ली, तबसे वह एक सच्चे नृपतिकी तरह राज्य करने लगा। उसका भ्राता अपराजित भी राज्य कार्यमें अनंतवीर्यका हाथ बँटाने लगा। एक समय कोई विद्याधर उनकी राजधानीमें आ निकला। उसके साथ उन दोनो भाइयोंकी मैत्री हो गई। इस कारणसे वह उनको म ाविद्या देकर चला गया।

अनंतवीर्यके यहाँ ववरी और किराती नामकी दो दासियाँ थीं। वे संगीत, नृत्य एवं नाट्यकलामें वड़ी निपुण थीं। वे समयपर अनंतवीर्य और अपराजितको अपनी विविध कलाओं द्वारा वडा आनन्द दिया करती थीं।

एक समय अनंतवीर्य वासुदेव और अपराजित वलदेव राजसभामें उन रमणियोंकी नाट्यकलाका आनन्द लूट रहे थे। चारों ओर हर्ष ही हर्ष था। उसी अवसरपर, दूसरोंको लड़ा देनेमें ख्यात, नारदका राजसभामें आगमन हुआ। मगर दोनों भाई नाटक देखनेमें इतने निमग्न थे कि वे नारद मुनिका यथोचित सत्कार न कर सके। वस फिर क्या था? नारद मुनि उखड़ पड़े और अपने मनमें यह सोचते हुए चले गये कि मैं इस अपमानका इन्हें अभी फल चखाता हूँ।

वसुदेवसे वे वैताढ्य गिरीपर गये और दमितारी नामक विद्याधरोंके राजाकी सभामें पहुँचे। राजाने अचानक मुनिका आगमन देखकर सिंहासन छोड़ दिया। उनका स्वागत करने के लिए वह सामने आया और उसने उन्हें, नम्रतापूर्वक अभिवादन कर, उचित आसनपर बिठाया। मुनिने आशीर्वाद देकर कुशल प्रश्न पूछा। यथोचित उत्तर देकर दमितारिने कहा:—" मुनिवर्य! आप स्वच्छन्द होकर सब जगह विचरते हैं और सब कुछ देखते और सुनते हैं। इस लिए कृपाकर कोई ऐसी आश्चर्य युक्त बात बतलाइये जो मेरे लिए नई हो।"

नारद तो यही मौका ढूँढ रहे थे, बोले—" राजन्! सुनो, एक समय मैं घूमता घामता शुभा नगरीमें जा निकला। वहाँ अनंतवीर्यकी सभामें बर्बरी और किराती नामकी दो दासियाँ देखीं। वे संगीत, नाट्य, एवं वाद्य कलामें बड़ी चतुर हैं। उनकी क्रिया देखकर मैं तो दंग रह गया। स्वर्गकी अप्सराएँ तक उनके सामने तुच्छ हैं। हे राजा! वे दासियाँ तेरे दरबारके योग्य हैं।"

इस तरहका विपरीत बोलकर नारद मुनि आकाश मार्गसे अपने स्थानपर गये। उनके जानेके बाद दमितारिने अपने एक दूतको बुलाया और धीरसे उसको कुछ हुक्म दिया। दूतने उसी समय शुभा नगरीको प्रस्थान किया और अनंतवीर्यकी राजसभामें जाकर कहा:—" राजन्! आपकी सभामें बर्बरी और किराती नामकी जो दासियाँ हैं। उन्हें हमारे स्वामी दमितारिके भेट करो क्योंकि वे गायनवादनकलामें अद्भुत हैं। और जो कोई अनोखी वस्तु अधीनस्थ राजाके यहाँ हो वह स्वामीके घर ही पहुँचनी चाहिए।"

दूतके ये वचन सुनकर अनंतवीर्यने कहाः—" हे दूत ! तू जा। हम विचार कर शीघ्र ही जवाब भेजेंगे।" दूत लौट गया और उसने राजाको कहाः—" लक्षणसे तो ऐसा मालूम होता है कि वे तुरत ही दासियोंको स्वामीके चरणोंमें भेज देंगे।"

दोनों भाइयोंके हृदयमें दमितारीकी इस अनुचित माँगसे क्रोधकी ज्वाला जल उठी; मगर दमितारी विद्याबलसे बली होनेके कारण वे उसको परास्त नहीं कर सकते थे। इसलिए थोड़ी देर चुपचाप सोचते रहे। फिर अनंतवीर्य बोलाः— " राजा दमितारी अपने विद्याबलसे हमें इस प्रकारकी घुड़कियाँ देता है। अगर हमारे पास भी विद्या होती तो उसे कभी ऐसा साहस न होता। अतः हमको भी चाहिये कि हम भी हमारे मित्र विद्याधरकी दी हुई विद्याकी साधना कर बलवान बनें।"

वे ऐसा विचार कर ही रहे थे कि विज्ञप्ति आदि विद्याएँ प्रकट हुईं। उन्होंने निवेदन किया.—" हे महानुभाव ! जिन विद्याओंके विषयमें आप अभी बातें कर रहे थे, हम वे ही विद्याएँ हैं। आपने हमें पूर्व जन्महीमें साध ली थीं। इसलिये अभी हम आपके याद करते ही आपकी सेवामें हाजिर हो गई हैं।" यह सुन दोनों भाइयोंको बड़ा आनंद हुआ। विद्याएँ उनके आधीन हुईं।

एक दिन दमितारीका दूत आकर राजसभामें बड़े अपमान जनक वचन बोलाः—" रे अज्ञान राजा ! तूने घमंडमें आकर स्वामीकी आज्ञाका उल्लंघन किया है और अभी तक अपनी दासियोंको नहीं भेजा है। जानता है इसका क्या फल होगा ?"

यह सुनकर अनंतवीर्यको यद्यपि क्रोध हो आया था, परन्तु उसने मनकी बूँद पी भी और गंभीर स्वरमें कहाः—"तुम ठीक कहते हो। इससे क्या फल होगा? राजाने रत्नाभूषण, हाथी, घोड़े आदि बड़ी २ मूल्यवान वस्तुएँ नहीं माँगी हैं। माँगी हैं केवल दासियाँ। राजाकी यह तुच्छ इच्छा भी क्या मैं पूरी न करूँगा? ठहर, मैं अभी ही तेरे साथ दासियोंको भेज रहा हूँ।"

विद्याके बलसे अनंतवीर्य और अपराजित बर्बरी और किरातीका रूप धारण कर दूतके साथ दमितारीकी राजसभामें उपस्थित हुए। दूतने अपने स्वामीको प्रणाम करनेके बाद उन दोनों नर्तकियोंको हाजिर किया। महाराजने सौम्य दृष्टिसे उनकी तरफ देखा और उनसे अपनी कला दिखलानेके लिए कहा।

महाराजकी आज्ञासे उन नर्तियोंने अपनी नाट्यकलाका अपूर्व परिचय देना आरंभ किया। रंगमंचपर नाना प्रकारके अभिनय दिखाकर उन्होंने दर्शकोंके हृदयपर विजय प्राप्त कर ली। उनकी कलामें ऐसी निपुणता देखकर दमितारी उत्साहके साथ बोलाः—"सचमुच ही संसारमें तुम दोनों रत्नके समान हो। हे नटियो! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम आनंदसे मेरी पुत्री कनकश्रीकी सखियाँ बनकर रहो और उसको नृत्य, गान आदिकी शिक्षा दो।"

पूर्ण यौवना सुंदरी कनकश्रीको कपटवेषी दोनों भाई अच्छी तरह नाट्यकला सिखाने लगे। बीच बीचमें अपराजित अनंतवीर्यके रूप, गुण एवं शौर्यकी प्रशंसा कर दिया करता था। एक दिन कनकश्रीने अपराजित से पूछा—"तुम जिसकी प्रशंसा

करती हो वह कैसा है? मुझे पूरा हाल सुनाओ।" उसने कहाः—"अनंतवीर्य शुभा नगरीका राजा है। उसका रूप कामदेवके जैसा है। शत्रुका वह काल है, याचकोंके लिए वह साक्षात लक्ष्मी है और पीडितोंके लिए वह निर्भय स्थान है। उसके मैं क्या बखान करूँ?" इस तरह अनंतवीर्यकी तारीफ सुनकर कनकश्री उसको देखनेके लिए लालायित हो उठी। उसके चहरेपर उदासी छा गई। यह देखकर अपराजित बोलाः—"भद्रे! सोच मत करो। अगर चाहोगी तो शीघ्र ही अनन्तवीर्यके दर्शन होंगे।"

कनकश्री बोलीः—"मेरे ऐसे भाग कहाँ हैं कि मुझे अनन्तवीर्यके दर्शन हों। अगर तू मुझे उनके दर्शन करा देगी तो मैं जन्मभर तेरा अहसान मानूगी।"

"अच्छा ठहरो! मैं अभी अनतवीर्यको लाती हूँ।" कह कर अपराजित बाहर गया और थोडी ही देरमें अनंतवीर्यको लेकर वापिस आया। कनकश्री उस अद्भुत रूपको देखकर मुग्ध हो गई। उसने अपना जीवन अनंतवीर्यको सौंप दिया।

अनंतवीर्य बोलाः—"कनकश्री! अगर शुभा नगरीकी महाराणी बनना चाहती हो तो मेरे साथ चलो।" कनकश्रीने उत्तर दियाः—"मेरे बलवान पिता आपको जगतसे विदा कर देंगे।"

अपराजित हँसा और बोलाः—"तुम्हारा पिता ही दुनियामें वीर नहीं है। अनंतवीर्यकी विशाल वीर भुजाओंकी तलवार तुम्हारा पिता न सह सकेगा। तुम बेफिक्र रहो और इच्छा हो

या शीघ्र ही शुभा नगरीको चली चलो।" "मैं तैयार हूँ।" कहकर कनकश्रीने अपनी सम्मति दी। "तब चलो।" कहकर अनंतवीर्य राजसभाकी ओर बढ़ा। कनकश्री भी उसके पीछे चली। अपराजित भी असली रूप धर उनके पीछे हो लिया। ये तीनों राजसभामें पहुँचे। राजा और दर्बारी सभी उन्हें आश्चर्यके साथ देखने लगे। अनंतवीर्य घन-गंभीर वाणीमें बोला—"हे दमितारी और उसके सुभटो! सुनो! हम अनंतवीर्य और अपराजित राजकन्या कनकश्रीको ले जा रहे हैं। तुमने हमारी दासियाँ चाही थीं। वे तुम्हें न मिलीं; मगर आज हम तुम्हारी राजकन्या ले जा रहे हैं। जिसमें साहस हो वह आवे और हमारा मार्ग रोके। तुम्हें हमने सूचना दे दी है। पीछेसे यह न कहना कि हम राजकन्याको चुराकर ले गये।" अनंतवीर्य कनकश्रीको उठाकर वहाँसे चल निकला। अपराजितने उसका अनुसरण किया।

दमितारीके क्रोधकी सीमा न रही। उसने तत्काल ही अपने सुभटोंको आज्ञा दी:—"वीरो! जाओ और उन दुष्टोंको शीघ्र ही पकड़कर मेरे सामने लाओ।"

आज्ञाकी देर थी। 'मारो' 'पकड़ो' की आवाजसे कानोंके पर्दे फटने लगे। कोलाहलपूर्ण एक विशाल सेनाने टिड्डीदलकी तरह अनन्तवीर्यका पीछा किया। अनन्तवीर्यने अपने विद्याबलसे सेना बना ली। वह दमितारिकी सेनासे दुगनी थी। अब घोर संग्राम होने लगा। रणांगनमें वीर योद्धा अपनी रणविद्याका परिचय देने लगे। मार काटके सिवाय वहाँ और कुछ नहीं

था। दमितारीकी सेना कटते कटते हतोत्साह हो गई। उसी समय वासुदेव अनन्तवीर्यने अपने पांचजन्य शंखकी नादसे शत्रुसेनाको बिल्कुल ही हतवीर्य कर दिया।

दमितारी अपनी फौजकी यह हालत देखकर रथपर चढ़कर रणांगणमें आया। उसने अनंतवीर्यको ललकारा। अनन्तवीर्य भी उससे कब हटनेवाले थे। दोनों वीर अपने २ दिव्य शस्त्रोंद्वारा युद्ध करने लगे। बहुत देर तक इसी तरह लड़नेके बाद दमितारिने अपने चक्रका सहारा लिया और उसको चलानेके पहले अनंतवीर्यसे कहाः—"रे दुर्मति! अगर जीवन चाहता है तो अब भी कनकश्रीको मुझे सोंप और मेरी आधीनता स्वीकार कर, वरना यह चक्र तेरा प्राण लिए बिना न रहेगा।"

ये वचन सुनकर अनतवीर्यने हँसकर उत्तर दियाः—"मूर्ख! तू किस घमंडमें भूला है? मैं तेरे चक्रको काटूंगा, तुझे मारूँगा और तेरी कन्याको लेकर विजय दुंदुभि बजता हुआ अपनी राजधानीमें जाऊँगा।" इतना सुनते ही दमितारीने वासुदेवपर अपना चक्र चला दिया। चक्र लगनेसे वासुदेव मूर्च्छित हो गया। अपराजितकी सेवा शुश्रूषासे वह वापिस होशमें आया। अब अनंतवीर्यने भी अपने चक्रका प्रयोग किया। चक्रने अपनी करतूत बतलाई। उसने दमितारीका शिरच्छेद कर दिया।

उसी समय आकाशमें आकर देवताओंने विद्याधरोंको अनन्तवीर्यका प्रभुत्व स्वीकार करनेकी सम्मति दी और कहाः—"हे विद्याधरो! यह अनंतवीर्य विष्णु (वासुदेव) है और अपराजित उनका भाई बलभद्र है। इनसे तुम कभी जीत न

सकोगे।" देवताओंकी यह वाणी सुनकर सबने उनकी मातहती स्वीकार कर ली।

फिर अनन्तवीर्य कनकश्री और अपराजितके साथ शुभापुरीको रवाना हुए। वे मार्गमें मेरु पर्वतपरसे गुजरे। विद्याधरोंने प्रार्थना की,—"पर्वतपरके चैत्योंके दर्शन करते जाइए।" तदनुसार अनन्तवीर्यने सबके साथ मेरु पर्वतपर जैन चैत्योंके दर्शन किये। वहाँ पर उन्हें कीर्तिधर नामक मुनिके भी दर्शन हुए। उसी समय उन मुनिके घाति कर्म नाश हुए थे और उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था। देवता उनको वन्दना करनेके निमित्त वहाँ आये हुए थे। अनन्तवीर्य आदि बहुत खुश हुए। वे मुनीको प्रदक्षिणा देकर पर्षदामें बैठे और देशना सुनने लगे। देशना खतम होनेके बाद कनकश्रीने मुनिसे प्रश्न किया—"भगवन! मेरे पिताका वध और मेरे बान्धवोंसे विरह होनेका क्या कारण है?"

मुनि बोले—"धातकी खण्ड नामक द्वीपमें शंखपुर नामक एक समृद्धिशाली गाँव था। उसमें श्रीदत्तानामकी एक गरीब स्त्री रहती थी। वह दूसरोंके यहाँ दासवृत्ति कर अपना निर्वाह किया करती थी।

एक समय श्रीदत्ता भ्रमण करती हुई देवगिरिपर चढ़ी। वहाँपर उसे सत्ययशा नामक महामुनिके दर्शन हुए। श्रीदत्ताने वंदना की और मुनिने 'धर्मलाभ' दिया। श्रीदत्ता बोली—"भगवन्! मैं अपने पूर्व जन्मके दुष्कर्मोंसे इस जन्ममें बड़ी दुःखी हूँ। इसलिये कोई ऐसा मार्ग मुझे बताइए जिससे मैं इस दुःखसे छूट जाऊँ।" कृपालु मुनिने उस दुःखी अबलाको धर्म

चक्रवाल नामका एक मंत्र बतलाकर कहाः—" हे स्त्री ! देवगुरुकी आराधनामें लीन होकर तू दो और तीन रात्रिके क्रमसे साढे तीस उपवास करना। इस तपके प्रभावसे तुझे फिर कभी ऐसा कष्ट सहन नहीं करना पड़ेगा।"

श्रीदत्ताने तप आरंभ किया। उसके प्रभावसे पारणेमें ही स्वादिष्ट भोजन खानेको मिला। अब दिन २ उसके घरमें समृद्धि होने लगी। उसके खान, पान, रहन, सहन, सभी बदल गये। एक दिन उसको जीर्ण शीर्ण घरमेंसे स्वर्णादि द्रव्यकी प्राप्ति हुई। इससे उसने चैत्यपूजा और साधु साध्वियोंकी भक्ति करनेके लिए एक विशाल उद्यापन (उजमणा) किया।

तपस्याके अंतमें वह किन्हीं साधुको प्रतिलाभित करनेके लिए दर्वाजेपर खड़ी रही। उसे सुव्रतमुनि दिखे। उसने बड़े भक्तिभावके साथ प्रासुक अन्नसे मुनिको प्रतिलाभित किया। फिर उसने धर्मोपदेश सुननेकी इच्छा प्रकट की। मुनिजीने कहाः—" साधु जब भिक्षार्थ जाते हैं तब कहीं धर्मोपदेश देने नहीं बैठते, इसलिए तू व्याख्यान सुनने उपाश्रयमें आना।" साधु चले गये। श्रीदत्ता व्याख्यान सुनने उपाश्रयमें गई और वहाँ उसने सम्यक्त्व सहित श्रावकधर्म स्वीकार किया।

धर्म पालते हुए एक बार श्रीदत्ताको सन्देह हुआ कि मैं धर्म पालती हूँ उसका फल मुझे मिलेगा या नहीं ? भावी प्रबल होता है। एक दिन जब वह सत्ययशा मुनिको वंदना करके घर लौट रही थी। उस समय उसने विमानपर बैठे हुए दो विद्याधरोंको आकाश मार्गसे जाते देखा। उनके रूपको देखकर

भीम्ना उनपर मोहित हो गई । बाद्में उसके हृदयमें धर्मके प्रति जो संदेह उत्पन्न हुआ था उसको निवारण किये बिना ही वह मर गई।

प्राचीन कालमें वैताढ्य गिरिपर शिवमन्दिर नामक बड़ा समृद्धि शाली नगर था। उसमें विद्याधरोंका शिरोमणि कनक पूज्य नामक राजा राज्य करता था। उसके वायुवेगा नामकी धर्मपत्नी थी। उस स्त्रीकी मैं कीर्तिधर नामक पुत्र हुआ। मेरे अनिलवेगा नामकी एक धर्मपत्नी थी। उसकी कोखसे दमितारी नामक पुत्र हुआ। यही छठा प्रति वासुदेव था।

एक समय विहार करते हुए भगवान शान्तिनाथ मेरे नगर की ओर होकर निकले और नगरके बाहर उपवनमें विराजमान हुए। मैंने भगवानका आगमन सुन, दौड़कर दर्शन किये। दर्शन मात्रसे मुझे संसारसे वैराग्य उत्पन्न हो गया और मैं दीक्षा लेकर इस पर्वतपर आया और तप करने लगा। अब घातिया कर्मोंके नाश होनेपर मुझे केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। उधर दमितारीके मदिरा नामकी रानीकी कोखसे श्रीदत्ताका जीव उत्पन्न हुआ और तुम उसकी पुत्री कनकश्रीके रूपमें विद्यमान हो। जिन धर्मके विषयमें तुम्हें सन्देह हुआ इसी कारणसे तुम्हें यह दुःख भोगना पड़ा है।"

मुनिसे अपने पूर्व भवकी कथा सुनते ही कनकश्रीको वैराग्य उत्पन्न हो गया। वह विनय पूर्वक अपने पतिसे निवेदन करने लगी:—"प्राणेश! उस जन्ममें मैंने ऐसे दुष्कृत्य किए जिससे ये फल भोग रही हूँ। न जाने आगे क्या होगे

वाला है। इसलिये मुझे शीघ्र ही दीक्षा ग्रहण करनेकी आज्ञा प्रदान कीजिए।" अपनी प्रियाकी यह प्रार्थना सुनकर अनंत-वीर्यको बड़ा विस्मय हुआ। तो भी उसने कहा:—"प्रिये! अपने नगरमें चलकर स्वयंप्रभ मुनिसे दीक्षा लेना।" कन-कश्रीने पतिकी बात मान ली।

सबके साथ अनंतवीर्य अपनी राजधानीमें पहुँचा। वहाँ जाकर क्या देखता है कि, दमितारीकी पहले भेजी हुई सेनासे घिरा हुआ उसका पुत्र अनंतसेन बड़ी वीरतासे लड़ रहा है। इस तरह अपने भतीजेको शत्रुके चंगुलमें देखकर अपराजितको बड़ा क्रोध आया। उसने क्षणभरमें सारी सेनाको मार भगाया। फिर वासुदेवने सबके साथ नगरमें प्रवेश किया। बड़े समा-रोहके साथ अनंतवीर्यका अर्द्ध-चक्रीपनका अभिषेक हुआ।

एक समय विहार करते हुए स्वयंप्रभ भगवान स्वेच्छासे शुभा नगरीके बाहर उद्यानमें आकर ठहरे। सब लोग दर्शनोंको गये। कनकश्रीने इस समय अपने पतिकी आज्ञासे दीक्षा ग्रहण कर ली। उसी दिनसे वह तप करने लगी और उसने क्रमसे एकावली, मुक्तावली, कनकावली, भद्र, महाभद्र और सर्वतोभद्र इत्यादि तप किये। अन्तमें वे केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष गईं।

वासुदेव अनंतवीर्य अपने भाई अपराजितके साथ राज्यलक्ष्मी भोगने लगे। अपराजितके विरता नामकी एक स्त्री थी। उससे सुमति नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। वह बाल्यावस्थाहीसे बड़ी धर्मनिष्ठा थी। वह श्रावकके बारह व्रत अखंड करती थी। एक दिन वह उपवासके उपरान्त पारणा करने बैठने ही वाली

थी कि उसे द्वारकी तरफसे एक मुनि आते हुए दिखे। उसने छ्ट उठके ही, अपने ही हाथसे अशनसे मुनिको प्रति लाभित किया। उसी वक्त वहाँ वसुधारादि पाँच दिव्य प्रकट हुए। 'त्यागी महात्माओंको दिया हुआ दान अनंतगुणा फल दायी होता है।' मुनि वहाँसे चले गये। इसके बाद रत्नवृष्टिकी खबर सुनकर बलभद्र और वसुदेव सुमतिके पास आये। इस घटनासे सबको विस्मय हुआ। बालिकाके अलौकिक कार्यसे प्रसन्न होकर दोनों भाइयोंने सोचा कि इस बालिकाके लिए कौनसा योग्य वर होगा चाहिए। आखिर उन्होंने महानन्द नामक मंत्रीसे सलाह करके स्वयंवर करनेका निश्चय किया।

अब स्वयंवरकी तैयारियाँ होने लगीं। एक विशाल मण्डपकी रचना हुई। सब राजाओंमें आर विद्याधरोंके यहाँ निमन्त्रण भेजे गये।

निश्चित दिनको बड़े २ राजा महाराजा एकत्रित हुए। सुमति भी सोलह शृंगार करके अपनी सखी सहेलियोंके साथ हाथमें वरमाला लिए हुए मण्डपमें उपस्थित हुई। उसने एक बार सबकी तरफ देखा। स्वयंवरमंडपमें उपस्थित सुमतिके, पाणिमार्थी उस कन्याकी अलौकिक मूर्तिको देखकर आश्चर्यमें डूब गये।

उसी समय मण्डपके मध्यमें स्वर्णसिंहासनपर विराजमान, एक देवी प्रकट हुई। देवीने अपनी दाहिनी भुजा उठाकर सुमतिको कहाः—"हुमे! पद्मश्री! विचार कर! अपने

पूर्व भवका स्मरण कर! यदि याद नहीं पडता हो तो सुन! पुष्करवर द्वीपार्द्धमें, भरतक्षेत्रके मध्यखण्डमें विशाल समृद्धि-वाला श्रीनंद नामक एक नगर था। उसमें महेन्द्र नामक राजा राज्य करता था। उसके अनंतमति नामकी एक रानी थी। उसके दो पुत्रियाँ हुई। उनमेसे कनकश्री नामकी कन्या तो मैं हूँ और धनश्री तू। जव हम दोनों युवतियाँ हुई तव एक समय दोनों प्रसंग वश गिरि पर्वतपर चढीं। वहाँ एक रम्य स्थानमें हमें नंदनगिरि नामक मुनिके दर्शन हुए। वडे भक्तिभावसे हमने उनकी देशना सुनी। फिर हमने गुरुजीसे निवेदन किया कि हमारे योग्य कोई आज्ञा दीजिए। तव गुरुजीने हमें योग्य समझ श्रावकके वारह व्रत समझाये हमने उन्हें, अंगीकार कर, निर्दोष पालना शुरू किया।

एक समय हम दोनों फिरती हुई अशोक वनमें जा निकलीं। उसी समय त्रिपृष्ट नगरका स्वामी विरांग नामक एक जवान विद्याधर हमको हर ले गया। परंतु उसकी स्त्री वज्रश्यालिकाने दयाकर हमें छोड़नेके लिए उसको मजबूर किया। उसने क्रुद्ध होकर हमें एक भयंकर वनमें ले जाकर फेंक दिया। हमारी हड्डियाँ पसलियाँ चूर चूर हो गई। अन्त समय जानकर हम दोनोंने अनशन व्रत लेकर नमोकार मंत्रका जाप आरंभ कर दिया। वहाँसे मरकर मैं सौधर्म देवलोकमें नवमिका नामक देवी हुई। तू भी वहाँसे मरकर कुवेर लोकपालकी मुख्य देवी हुई। वहाँसे च्यवकर तू वलभद्रकी पुत्री सुमति हुई है। देवलोकमें रहते समय हमारे वीचमें यह शर्त हुई थी कि जो पहले पृथ्वीपर

आवे उसे दूसरी अर्हत धर्मकी भक्तिकी याद दिलावे। इसीलिए मैं आज यहाँ आई हूँ। अब तू संसारमें न फँस और जीवनको सार्थक बनानेके लिये दीक्षा ग्रहण कर।"

इतना कहकर देवी मंडपको आलोकित करती हुई आकाश मार्गकी ओर चली गई। उधर वह गई और इधर सुमति पूर्व जन्मके वृत्तान्तकी याद आते ही मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़ी। कुछ सेवा शुश्रूषाके बाद जब उसे चेत आया तो वह समागतोंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक बोली—"मेरे पिता और भाईके तुल्य उपस्थित सज्जनो! आपको मेरे लिए यहाँ निमन्त्रण दिया गया है। मगर मैं इस संसारसे छूटना चाहती हूँ। इसलिए आप विवाहोत्सवकी जगह मेरा दीक्षोत्सव मनाकर मुझे उपकृत कीजिए और मुझे दीक्षा लेनेकी आज्ञा दीजिए।"

राजा प्रेम या विनय भरी वाणी सुनकर बोले:—"हे अनघे! ऐसा ही हो।' सुमति सात सौ कन्याओंके साथ सुव्रत मुनिसे दीक्षा ग्रहण कर, उग्र तप कर, केवलज्ञान पा अन्तमें मोक्ष गई।

कालान्तरमें वासुदेव अनन्तवीर्य चौरासी लाख पूर्वकी आयु भोगकर निकाचित कर्मसे प्रथम नरकमें गया। वहाँ बयालीस हजार वर्ष पर्यन्त नरकके नाना प्रकारके दुःख सहन किये। फिर वासुदेवभवके पिताने—जो धरणेंद्र हुए थे—वहाँ आकर उसकी वेदना शान्त की।

बंधुके शोकसे व्याकुल होकर बलभद्र अपराजितने भी तीन लाख पृथ्वीका राज्य अपने पुत्रको सौंप, जयधर गणधरके पास दीक्षा ग्रहण की। उनके साथ सोलह हजार राजाओंने भी

दीक्षा ली। इस तरह बलभद्र, चिरकाल तक तप करते रहे; अन्तमें अनशन कर मृत्युको प्राप्त हुए और अच्युत देवलोकमें इन्द्र हुए।

इधर अनंतवीर्यका जीव भी नरक भूमिमें दुष्कर्मोंके फल-भोग स्वर्णके समान शुद्ध हो गया। फिर वह नरकसे निकल कर, वैताढ्य पर्वतपर गगनवल्लभ नगरके स्वामी मेघवाहनकी मेघमालिनी पत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुआ। उसका नाम मेघनाद रक्खा गया। जब वह यौवनको प्राप्त हुआ तब मेघवाहनने उसको राज्य देकर दीक्षा ले ली।

राज्य करते हुए एक बार मेघनाद प्रज्ञप्ति विद्या साधने-के लिए मंदर गिरिपर गया। वहाँ नंदन वनमें स्थित सिद्ध पत्तनमें शाश्वत प्रतिमाकी पूजा करने लगा। उस समय वहाँ कल्पवासी देवताओंका आगमन हुआ। अच्युतेन्द्रने अपने पूर्व भवके भाईको देखकर, भ्रातृस्नेहसे, कहाः—"भाई! इस संसारका त्याग करो।"

उस समय वहाँ अमर गुरु नामक एक मुनि आये हुए थे। मेघनादने उनसे चरित्र अंगीकार किया।

एक समय मेघनाद मुनि नन्दन गिरि गये। रातमें ध्यानस्थ बैठे हुए थे, उस समय प्रति वासुदेवका पुत्र—जो उस समय दैत्य योनिमें था—वहाँ आ पहुँचा। अपने पूर्वजन्मके वैरीको देख-कर दैत्यको क्रोध हो आया। वह मुनिको उपसर्ग करने लगा। परन्तु मेघनाद मुनि तो पर्वतके समान स्थिर रहे। मुनिको शांत देखकर वह बड़ा लज्जित हुआ और वहाँसे चला गया।

जन्ममें मेघरथमुनिकी भवान्तरमें, अनशन करके मृत्युको प्राप्त हुए और अच्युत देवलोकमें इन्द्रके सामानिक देव हुए।

जंबूद्वीपके पूर्व विदेहमें सीता नदीके दक्षिण तीरपर मंगलावती नामका गांव है। उसमें रत्नसंचया नामकी नगरी थी। वहाँ क्षेमंकर नामका राजा राज्य करता था। उसके रत्नमाला नामकी रानी थी। अपराजितका जीव अच्युत लोकसे च्यवकर उसकी कोखसे पुत्ररूपमें जन्मा। उसका नाम वज्रायुध रखा गया। बड़े होनेपर लक्ष्मीवती नामकी राजकन्याके साथ उसका ब्याह हुआ। अनंतवीर्यका जीव अच्युतदेव लोकसे च्यवकर लक्ष्मीदेवीकी कोखसे जन्मा। सहस्रायुध उसका नाम रखा गया। जवान होनेपर उसका ब्याह कनकश्रीसे हुआ। उससे शतबल नामका एक पुत्र पैदा हुआ।

आठवाँ भव (वज्रायुध चक्रवर्ती)

एक बार राजा क्षेमंकर अपने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, मंत्री और सामंतोंके साथ सभामें बैठा हुआ था। उस समय ईशान कल्पके देवता भी चर्चा कर रहे थे। दौराने चर्चामें एक देवताने कहा कि पृथ्वीपर वज्रायुधके समान कोई सम्यक्त्वी और ज्ञानवान नहीं है। यह बात 'चित्रचूल' नामक देवताको न रुची। वह बोला,— ' मैं जाकर उसकी परीक्षा करूँगा। ”

वह, मिथ्यात्वी देवता, राजा क्षेमंकरकी राजसभामें आया और बोला— “ इस जगतमें पुण्य, पाप, जीव और परलोक कुछ नहीं हैं। प्राणी आस्तिकताकी बुद्धिसे व्यर्थ ही कष्ट पाते हैं।”

यह सुनकर वज्रायुध बोले— ' हे महानुभाव! आप

प्रत्यक्ष प्रमाणसे विपरीत ऐसे वचन क्या बोलते हैं? आपको आपके पूर्व जन्मके सुकृतोंका फल स्वरूप जो वैभव मिला है उसका विचार, अपने अवधिज्ञानका उपयोग कर कीजिए तो आपको मालूम होगा कि, आपका कहना युक्तियुक्त नहीं है। गये भवमें आप मनुष्य थे और इस भवमें देवता हुए हैं। अगर परलोक और जीव न होते तो आप मनुष्यसे देव कैसे बन जाते?"

देव बोलाः—"तुम्हारा कहना सत्य है। आज तक मैंने कभी इस बातका विचार ही न किया और कुशंकामें पड़ा रहा। आज मैं तुम्हारी कृपासे सत्य जान सका हूँ। मै तुमसे खुश हूँ। जो चाहो सो माँगो।"

वज्रायुद्ध बोलाः—"मैं आपसे सिर्फ इतना चाहता हूँ कि आप हमेशा सम्यक्त्वका पालन करें।" देव बोलाः—"यह तो तुमने मेरे ही स्वार्थकी बात कही है। तुम अपने लिए कुछ माँगो।" वज्रायुद्ध बोलाः—"मेरे लिए बस इतना ही बहुत है।" वज्रायुद्धको निःस्वार्थ समझकर देव और भी अधिक खुश हुआ। वह वज्रायुद्धको दिव्य अलंकार भेटमें देकर ईशानदेवलोकमें गया और बोलाः—"वज्रायुद्ध सचमुच ही सम्यक्त्वी है।"

एक बार वसंत ऋतुमें क्रीडा करने वनमें गया। वहाँ वह जब अपनी सात सौ राणियोंके साथ क्रीडा कर रहा था तब, विद्युद्दंष्ट्र नामका देवता—जो वज्रायुद्धका पूर्वजन्मका वैरी दमितारी था और जो अनेक भवोंमें भटककर देव हुआ था—उधरसे निकला। वज्रायुद्धको देखकर उसे अपने पूर्व भवका

बेर पर" आया। यह एक बहुत बड़ा पर्वत उठा लाया और उसे उसने वज्रायुधपर डाल दिया। वज्रायुधको भी उसने नागपाशसे बाँध लिया।

वज्रऋषभनाराच संहननके धारी वज्रायुधने उस पर्वतके टुकड़े कर डाले, नागपाशको छिन्नभिन्न कर दिया और आप सुखपूर्वक अपनी रानियों सहित बाहर आया। विद्युद्दंष्ट्र अपनी शक्तिको तुच्छ समझ वहाँसे चला गया। उसी समय ईशानेन्द्र नंदीश्वरद्वीप जाते हुए उधरसे आ निकला और वज्रायुधके जीव भावी तीर्थंकरकी पूजा कर चला गया। वज्रायुध अपने परिवार सहित नगरमें आया।

राजा क्षेमंकरको लोकांतिक देवोंने आकर दीक्षा लेनेकी सूचना की। उन्होंने वज्रायुधको राज्य देकर दीक्षा ली और तपसे घातिया कर्मोंका नाशकर वे जिन हुए।

वज्रायुधके अस्त्रागारमें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। फिर दूसरे तेरह रत्न भी क्रमशः उत्पन्न हुए। उसने छः खंड पृथ्वीको जीता और फिर अपने पुत्रको युवराजपदपर स्थापित कर वह सुखसे राज्य करने लगा।

एक बार वे राजसभामें बैठे थे तब एक विद्याधर 'बचाओ, बचाओ!' पुकारता हुआ उनके चरणोंमें आगिरा। वज्रायुधने उसको अभय दिया। उसी समय वहाँ तलवार लिए हुए एक देवी और गदा हाथमें लिए हुए एक देव उसके पीछे आये। देव बोला:—" हे नृप! इस दुष्टको हमें सौंपिए ताके हम इसे इसके पापका दंड दें। इसने विद्या साधती हुई मेरी इस पुत्रीको आकाशमें उठा लेजाकर घोर अपराध किया है।" वज्रायुधने

उन्हें उनके पूर्वजन्मकी बातें बताईं । इससे उन्होंने वैर भावको छोड़ दिया और मुनिके पाससे दीक्षा ले ली ।

फिर वज्रायुद्ध चक्रीने भी कुछ कालके बाद अपने पुत्र सहस्रायुद्धको राज्य देकर क्षेमंकर केवलीके पाससे दीक्षा ली । सहस्रायुद्धने भी कुछ काल बाद पिहिताश्रव मुनिके पाससे दीक्षा ली । अंतमें दोनों राजमुनियोंने ईपत्प्राग्भार नामके पर्वतपर जाकर पादोपगमन अनशन किया ।

आयुको पूर्णकर दोनों मुनि परम समृद्धिवाले तीसरे ग्रैवेयकमें अहमिंद्र हुए और पचीस सागरोपमकी आयु वहाँ पूरी की ।

९ वाँ भव (अहमिंद्र देव)

जंबूद्वीपके पूर्व विदेहके पुष्कलावती प्रांतमें सीतानदीके किनारे पुंडरीकिणी नामकी नगरी थी । उसमें घनरथ नामका राजा राज्य करता था । उसके प्रियमती और मनोरमा नामकी दो पत्नियाँ थीं । वज्रायुद्धका जीव ग्रैवेयक विमानसे च्यवकर महादेवी प्रियमतीकी कोखसे जन्मा, और सहस्रायुद्धका जीव च्यवकर मनोरमा देवीके गर्भसे जन्मा । दोनोंके नाम क्रमशः मेघरथ और दृढरथ रखे गये ।

१० दसवाँ भव (मेघरथ)

जब दोनों जवान हुए तब उनके ब्याह सुमंदिरपुरके राजा निहतशत्रुकी तीन कन्याओंके साथ हुए । मेघरथके साथ जिनका ब्याह हुआ उनके नाम प्रियमित्रा और मनोरमा थे और दृढरथके साथ जिसका ब्याह हुआ उसका नाम सुमति था ।

जब मेघरथ और दृढ़रथ ब्याह करने गये थे तबकी बात है। पुंडरीकिणीसे सुमंदिरपुर जाते हुए रस्तेमें सुरेन्द्रदत्त राजाका राज्य आया। उसने मेघरथको कहलाया कि, तुम मेरी सीमामें होकर मत जाना। कुमार मेघरथने इस बातको अपना अपमान समझा और सुरेन्द्रदत्तपर आक्रमण कर दिया। घोर युद्ध हुआ और सुरेन्द्रदत्तने हारकर आधीनता स्वीकार कर ली। वे उसका अपने साथ लेते गये। और वापिस लौटते समय सुरेन्द्रदत्तको उसकी राज्यगादी सौंपते आये।

एक बार राजा घनरथ अपने अन्तःपुरमें आनंदविनोद कर रहा था। उस समय सुसीमा नामकी एक वेश्या आई। उसके पास एक मुर्गा भी था। वह बोली:—"महाराज! मेरा यह मुर्गा अजित है। आजतक किसीके मुर्गेसे नहीं हारा। अगर किसीका मुर्गा मेरे मुर्गेको हरा दे तो मैं उसको एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ दूँ।"

रानी मनोरमा बोली:—"स्वामिन! मैं इससे बाजी बदनेकी बात तो नहीं करती परन्तु इसका घमंड तोड़ना चाहती हूँ। इसलिये अगर आज्ञा हो तो मैं अपना मुर्गा इसके मुर्गेसे लड़ाऊँ।"

राजाने आज्ञा दी। मनोरमाने अपना मुर्गा मँगवाया। दोनों मुर्गे लड़ने लगे। बहुत देरतक किसीका मुर्गा नहीं हारा। यद्यपि दोनों चोंचोंकी और ठेकरोंकी चोटोंसे लोहू लुहान हो गये थे तथापि एक दूसरेपर बराबर प्रहार कर रहे थे। कोई पीछे हटना नहीं चाहता था। राजाने कहा:—"इनमेंसे कोई किसीसे नहीं हारेगा। इसलिए इन्हें छुड़ा दो।"

तब मेघरथने पूछाः—"इनकी हारजीत कैसे मालूम होगी?" त्रिकालज्ञ राजाने जवाब दियाः—"इनकी हारजीतका निर्णय नहीं हो सकेगा। इसका कारण तुम इनके पूर्वभवका हाल सुनकर भली प्रकारसे कर सकोगे। सुनो,—

"रत्नपुर नगरमें धनवसु और दत्त नामके दो मित्र रहते थे। वे गरीब थे, इसलिए धन कमानेकी आशासे बैलोंपर माल लादकर दोनों चले। रस्तेमें बैलोंको अनेक तरहकी तकलीफें देते और लोगोंको ठगते वे एक शहरमें पहुँचे। वहाँ कुछ पैसा कमाया। महान लोभी वे दोनों किसी कारणसे लड पड़े और एक दूसरेके महान शत्रु हो गये। आखिर आर्तध्यानमें वैरभावसे मरकर वे हाथी हुए। फिर भैंसे हुए, मेंढे हुए और तब ये मुर्गे हुए हैं।"

अपने पूर्व जन्मका हाल सुनकर मुर्गोंको जातिस्मरण ज्ञान हुआ। उन्होंने वैर त्यागकर अनशन व्रत लिया और मरकर अच्छी गति पाई।

राजा घनरथने पुत्र मेघरथको राज्य देकर दीक्षा ले ली और तपकर मोक्षलक्ष्मी पाई।

मेघरथके दो पुत्र हुए। प्रियमित्रासे नंदिषेण और मनोरमासे मेघसेन। दृढरथकी पत्नी सुमतिने भी रथसेन नामक पुत्रको जन्म दिया।

एक दिन मेघरथ पोसा लेकर बैठा था उसी समय एक कबूतर आकर उसकी गोदमें बैठ गया और 'बचाओ! बचाओ!' का करुण नाद करने लगा। राजाने सस्नेह उसकी पीठपर हाथ फेरा और

कहा:–"कोई भय नहीं है। तू निर्भय रह।" उसी समय एक बाज आया और बोला:–"राजन्! इस कबूतरको छोड़ दो। यह मेरा भक्ष्य है। मैं इसको मारूँगा।"

राजाने उत्तर दिया:—"हे बाज! यह कबूतर मेरी शरणमें आया है। मैं इसको नहीं छोड़ सकता। शरणागतकी रक्षा करना क्षत्रियोंका धर्म है। और तू इस बिचारेको मारकर कौनसा बुद्धिमानीका काम करेगा? अगर तेरे शरीरपरसे एक पंख उखाड़ लिया जाय तो क्या यह बात तुझे अच्छी लगेगी?"

बाज बोला:—"पंख क्या पंखकी एक कली भी अगर कोई उखाड़ ले तो मैं सहन नहीं कर सकता।"

राजा बोला:—"हे बाज! अगर तुझे इतनीसी तकलीफ भी सहन नहीं होती है तो यह बिचारा प्राणांत पीडा कैसे सह सकेगा? तुझे तो सिर्फ अपनी भूख ही मिटाना है। अतः तू, इसको खानेके बजाय किसी दूसरी चीजसे अपना पेट भर और इस बिचारेके प्राण बचा।"

बाज बोला:—"हे राजा! जैसे यह कबूतर मेरे डरसे व्याकुल हो रहा है वैसे ही मैं भी भूखसे व्याकुल हो रहा हूँ। यह आपकी शरणमें आया है। कहिए मैं किसकी शरणमें जाऊँ? अगर आप यह कबूतर मुझे नहीं सौंपेंगे तो मैं भूखसे मर जाऊँगा। एकको मारना और दूसरेको बचाना यह आपने कौनसा धर्म अंगीकार किया है? एकपर दया करना और दूसरे पर निर्दय होना यह कौनसे धर्मशास्त्रका सिद्धांत है? हे राजा! महरबानी करके

इस पक्षीको छोडिए और मुझे बचाइए। मैं ताजा मांसके सिवा किसी तरहसे भी जिंदा नहीं रह सकता हूँ।"

मेघरथने कहा:—"हे बाज! अगर ऐसा ही है तो इस कबूतरके बराबर मैं अपने शरीरका मांस तुझे देता हूँ। तू खा और इस कबूतरको छोडकर अपनी जगह जा।"

बाजने यह बात कबूल की। राजाने छुरी और तराज़ मँगवाये। एक पल्डेमें कबूतरको रक्खा और दूसरेमें अपने शरीरका मांस काटकर रक्खा। राजाने अपने शरीरका बहुतसा मांस काटकर रख दिया तो भी वह कबूतरके बराबर न हुआ। तब राजा खुद उसके बराबर तुलनेको तैयार हुआ। चारों तरफ हाहाकार मच गया। कुटुंबी लोग जार जार रोने लगे। मंत्री लोग आँखोंमें आँसू भरकर समझाने लगे,—"महाराज! लाखोंके पालनेवाले आप, एक तुच्छ कबूतरको बचानेके लिए प्राण त्यागनेको तैयार हुए हैं, यह क्या उचित है? यह करोड़ों मनुष्योंकी बस्ती आपके आधारपर है; आपका कुटुंब परिवार आपके आधारपर है उनकी रक्षा न कर क्या आप एक कबूतरको बचानेके लिए जान गँवायेंगे? महारानियाँ,—आपकी पत्नियाँ, आपके शरीर छोड़ते ही प्राण दे देंगी, उनकी मौत अपने सिरपर लेकर भी, एक पक्षीको बचानेके लिए मनुष्यनाशका पाप सिरपर लेकर भी, क्या आप इस कबूतरको बचायँगे? और राजधर्मके अनुसार दुष्ट बाजको दंड न देकर, उसकी भूख बुझानेके लिए अपना शरीर देंगे? प्रभो! आप इस न्याय-असंगत कामसे हाथ उठाइए

और अपने शरीरकी रक्षा कीजिए। हमें तो यह पक्षी भी छद्मपूर्ण मालूम होता है। संभव है यह कोई देव या राक्षस हो। "

राजा मेघरथने गंभीर वाणीमें उत्तर दिया,–"मंत्रीजी, आप जो कुछ कहते हैं सो ठीक कहते हैं। मेरे राज्यकी, मेरे कुटुंबकी और मेरे शरीरकी मर्यादाकी एवं राजधर्मकी या राजन्यायकी दृष्टिसे आपका कहना बिलकुल ठीक जान पड़ता है। मगर इस कथनमें धर्मन्यायका अभाव है। राजा प्रजाका रक्षक है। प्रजाकी रक्षा करना और दुर्बलको जो सताता हो उसे दंड देना यह राजधर्म है–राजन्याय है। उसके अनुसार मुझे बाजको दंड देना और कबूतरको बचाना चाहिए। मगर मैं इस समय राज्यगद्दीपर नहीं बैठा हूँ; इस समय मैं राजदंड धारण करनेवाला मेघरथ नहीं हूँ। इस वक्त तो मैं पौषधशालामें बैठा हूँ; इस समय मैं सर्वत्यागी श्रावक हूँ। जबतक मैं पौषधशालामें बैठा हूँ और जबतक मैंन सामायिक ले रक्खी है तबतक मैं किसीको दंड देनेका विचार नहीं कर सकता। दंड देनेका क्या किसीका जरासा विघ्न हुसे ऐसा विचार भी मैं नहीं कर सकता। ऐसा विचार करना, सामायिकसे गिरना है, धर्मसे पतित होना है। ऐसी हालतमें मंत्रीजी! तुम्हीं कहो, दोनों पक्षियोंकी रक्षा करनेके लिए मेरे पास अपना बलिदान देनेके सिवा दूसरा कौनसा उपाय है? मुझे मनुष्य समझकर, कर्त्तव्यपरायण मनुष्य समझकर, धर्म पालनेवाला मनुष्य समझकर, शरणागत प्रतिपालक मनुष्य समझकर, यह कबूतर मेरी शरणमें आया है; मैं कैसे इसको त्याग सकता हूँ? और

इसी तरह बाजको भूखसे तड़पनेके लिए भी कैसे छोड़ सकता हूँ? इस लिए मेरा शरीर देकर इन दोनों पक्षियोंकी रक्षा करना ही मेरा धर्म है। शरीर तो नाशमान है। आज नहीं तो कल यह जरूर नष्ट होगा। इस नाशवान शरीरको बचानेके लिए मैं अपने यशःशरीरको, अपने धर्मशरीरको नाश न होने दूँगा।"

अन्तरिक्षसे आवाज आई,—"धन्य राजा! धन्य!" सभी आश्चर्यसे इधर उधर देखने लगे। उसी समय वहाँ एक दिव्य रूपधारी देवता आ खडा हुआ। उसने कहाः—"नृपाल! तुम धन्य हो। तुम्हें पाकर आज पृथ्वी धन्य हो गई। बड़ेसे लेकर तुच्छ प्राणी तककी रक्षा करना ही तो सच्चा धर्म है। अपनी आहुति देकर जो दूसरेकी रक्षा करता है वही सच्चा धर्मात्मा है।

"हे राजा! मैं ईशान देवलोकका एक देवता हूँ। एक बार ईशानेन्द्रने तुम्हारी, दृढ धर्मी होनेकी तारीफ की। मुझे उसपर विश्वास न हुआ और मैं तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिए आया। अपना संशय मिटानेके लिए तुम्हें तकलीफ दी इसके लिए मुझे क्षमा करो।"

देव अपनी माया समेटकर अपने देवलोकमें गया। दोनों पक्षियोंने राजाके मुखसे अपना पूर्वभव सुना कि, पहले वे एक सेठके पुत्र थे। दोनों एक रत्नके लिए लडे और लड़ते लड़ते आर्तध्यानसे मरकर ये पक्षी हुए है। यह सुनकर दोनोंने अनशन धारण किया और मरकर देवयोनि पाई।

एक बार मेघरथने अष्टम तप करके कायोत्सर्ग धारण

किया। रातके समय ईशानेन्द्रने अपने अन्तःपुरमें बैठे हुए 'नमो भगवते तुभ्यं' कहके नमस्कार किया। इन्द्राणियों-के पूछनेपर कि आपने अभी किसको नमस्कार किया है? इन्द्रने जवाब दिया—"पुंडरीकिणी नगरीके राजा मेघरथने अट्ठम तप कर अभी कायोत्सर्ग धारण किया है। वह इतना दृढ मनवाला है कि दुनियाका कोई भी प्राणी उसे अपने ध्यानसे विचलित नहीं कर सकता है।"

इन्द्राणियोंको यह प्रशंसा असह्य हुई। वे बोलीं:—"हम जाकर देखती हैं कि, वह कैसा दृढ मनवाला है।" इन्द्राणियोंने आकर और देवमाया फैलाकर मेघरथको ध्यानसे चलित करनेकी, रातभर अनेक कोशिशें कीं, अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्ग किए; परन्तु राजा अपने ध्यानसे न डिगा। सूर्य उदित होनेवाला है यह देख इन्द्राणियोंने अपनी माया समेट ली और ध्यानस्थ राजाको नमस्कार कर उससे क्षमा माँगी, फिर वे चली गईं।

ध्यान समाप्तकर राजाने दीक्षा लेनेका दृढ संकल्प कर लिया। एक बार घनरथ जिन विहार करते हुए उधरसे आये। मेघरथने अपने पुत्र मेघसेनको राज्य देकर दीक्षा ले ली। उनके भाई दृढरथने, उनके सात सौ पुत्रोंने और अन्य चार हजार राजाओंने भी उनके साथ दीक्षा ली। मेघरथ मुनिने बीस स्थानककी आराधना कर तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया। अन्तमें, मेघरथ और दृढरथ मुनिने, अम्बर तिलक पर्वतपर जाकर अनशन धारण किया।

मरकर मेघरथ और दृढरथ मुनि सर्वार्थसिद्धि देवलोकमें देवता हुए और वहाँपर तेतीस सागरोपमकी आयु सुखसे बिताई।

११ ग्यारहवाँ भव

इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें कुरुदेशके अन्दर हस्तिनापुर नामक एक बड़ा वैभवशाली नगर था। उसमें इक्ष्वाकु वंशी विश्वसेन नामक राजा राज्य करता था। वह राजा धर्मात्मा, प्रजापालक, पराक्रमी और वीर था। उसकी धर्मपत्नीका नाम अचिरा देवी था। महादेवी अचिरा बड़ी पति-परायणा और रूपगुण सम्पन्ना थी। नृपशिरोमणि विश्वसेन अपनी धर्मपत्नीके साथ साम्राज्य लक्ष्मी भोगते थे।

१३ तेरहवाँ भव (भगवान शान्तिनाथ)*

एक दिन अनुत्तर विमानमें मुख्य सर्वार्थसिद्धि नामके विमानसे च्यवकर पूर्वजन्मके राजा मेघरथका जीव महादेवीके कोखमें आया। उस समय रातको अचिराने चक्रवर्ती और तीर्थंकरके जन्मकी सूचना देनेवाले चौदह महा स्वप्न देखे। प्रातःकाल ही महादेवीने पतिसे स्वप्नोंका सारा वृतान्त वर्णन किया। राजाने कहाः—"हे महादेवी! तुम्हारे अलौकिक गुणों-वाला एक पुत्र होगा।"

राजाने स्वप्नके फलको जाननेवाले निमित्तियोंको बुलाकर स्वप्नका फल पूछा। उन्होंने उत्तर दियाः—"स्वामिन्! इन

* ये ही पाँचवें चक्रवर्ती भी थे

स्वर्गोंसे आपके यहाँ, एक ऐसा पुत्र पैदा होगा जो चक्रवर्ती भी होगा और तीर्थंकर भी।"

इन्द्रादिदेवोंके आसन काँपे और उन्होंने आकर प्रभुका गर्भ कल्याणक किया।

नौ मास पूरे होनेपर ज्येष्ठ मासकी वदि तेरसके दिन भरणी नक्षत्रमें अचिरादेवीके गर्भसे, स्वर्ण जैसी कान्तिवाले एक सुन्दर कुमारका जन्म हुआ। उसके जन्मसे नारकी जीवोंको भी क्षणभरके लिए सुख हुआ। इन्द्रादि देवोंने आकर प्रभुका जन्म कल्याणक किया। अचिरादेवीकी निद्रा भंग हुई। सब तरफ आनंदकी बधाइयाँ बँटने लगीं। घर २ में मंगलाचार होने लगे। भगवानका नाम शांतिनाथ रक्खा गया। धीरे २ शुक्लके चन्द्रमाके समान कुमार बढ़ने लगे। शैशव-कालकी मनोहर कृतियों द्वारा कुमार अपने मातापिताको आनन्द देने लगे। जब भगवान शान्तिनाथ युवावस्थाको प्राप्त हुए तब विश्वसेनने भगवान शांतिनाथका अनेकों राज-कन्याओंके साथ विवाह कर दिया। फिर विश्वसेनने कुमार शान्तिनाथको राज्य देकर अपना जीवन सार्थक बनानेके लिए व्रत ग्रहण किया।

भगवान शान्तिनाथने जब राज्यकी बागडोर अपने हाथमें ली। और न्यायपूर्वक राज्य करने लगे। उनके यशो-मति नामक एक पटरानी थी। उसकी कोखमें दृढ़रथका जीव सर्वार्थसिद्धि विमानसे च्यवकर आया। उसी रातको महारानीने स्वप्नमें मुँहमें चक्ररत्नको प्रवेश होते देखा।

यथा समय महादेवीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम चक्रायुध रक्खा गया। धीरे २ राजकुमार युवावस्थाको प्राप्त हो सब विद्याओंमें पारंगत हो गये। भगवान शान्तिनाथने राजकुमारका अनेक राजकुमारियोंके साथ विवाह कर दिया।

कालान्तरमें शान्तिनाथके शस्त्रागारमें चक्ररत्नका प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने चक्ररत्नके प्रभावसे छः खंड पृथ्वीको जीत लिया।

इसके उपरान्त भगवानने वर्षीदान दिया। फिर उन्होने सहसाम्र वनमें ज्येष्ठ कृष्णा, चतुर्दशीके दिन भरणी नक्षत्रमें एक हजार राजाओंके साथ दीक्षा ग्रहण की। इन्द्रादि देवोंने तप कल्याणकका उत्सव किया। दूसरे दिन भगवानने सुमित्र राजाके यहाँ पारणा किया। राजमन्दिरमें वसुधारादि पाँच दिव्य प्रकट हुए।

एक वर्ष तक अन्यत्र विहारकर भगवान फिर हस्तिनापुरके सहसाम्रवनमें आये। यहाँ पौष सुदि नवमीके दिन भरणी नक्षत्रमें उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। इन्द्रादि देवताओंने मिलकर समवसरणकी रचना की और ज्ञानकल्याणक मनाया। भगवानके शासनमें शूकरके वाहनवाला शासन देवता और कमलके आसन पर स्थित, हाथमें कमण्डल, पुस्तकादि धारण करनेवाली 'निर्वाणी' नामकी शासन देवी प्रकट हुई।

एक समय विहार करते २ भगवानने फिर हस्तिनापुरमें पदार्पण किया। इस समाचारको सुनकर उनका पोता कुरुचंद्र भगवानके दर्शनार्थ आया। उसने हाथ जोड़कर पूछः—"मैं पूर्व जन्मके किन कर्मोंसे इस जन्ममें राजा हुआ हूँ और मुझे

प्रति दिन पाँच अद्भुत वस्त्र और फलादि चीजें भेट स्वरूप क्यों मिलती हैं ? मैं इन वस्तुओंका भोग क्यों नहीं कर सकता हूँ ? क्यों इन्हें इष्ट जनोंके लिए रख छोड़ता हूँ ?" भगवानने उत्तर दिया:—"तुम्हें साम्राज्य लक्ष्मी मिली है इसका कारण यह है कि तुमने पूर्व जन्ममें एक मुनिको दान दिया था। फिर भगवानने विस्तार पूर्वक उसके पूर्वजन्मका वृत्तान्त इस तरह कहना आरंभ किया:—' भरतक्षेत्रके कोशल देशमें श्रीपुर नामक एक नगर था। उसमें सुधन, धनपति, धनद और धनेश्वर ये चार एकसी उमरवाले वणिक पुत्र रहते थे। एक समय ये चारों मित्र परदेशमें द्रव्योपार्जन करनेके लिए अपने घरसे रवाना हुए। उनके साथमें भोजनका सामान लेनेवाला द्रोण नामक एक सेवक था। मार्गमें जाते २ उन्हें एक वनमें एक मुनिका समागम हुआ। उन्होंने अपने भाजनमेंसे थोड़ा मुनि महाराजको देनेके लिए द्रोणसे कहा। द्रोणने बड़ी भक्तिसे मुनिजीको प्रतिलाभितकर आहार दिया। वहाँसे सब रत्नद्वीपमें पहुँचे और बहुतसा द्रव्योपार्जन कर अपने देशको लौटे।

द्रोण धर्मकरणी करके मरा। हस्तिनापुरमें राजाके यहाँ जन्मा। वही द्रोण तुम कुरुचन्द्र हो। चारोंमेंसे सुधन और धनद भी मरकर वणिक पुत्र हुए हैं। उनमेंसे सुधन कंपिल्यपुरमें पैदा हुआ है और धनद कृत्तिकापुरमें। पहलेका नाम है वसन्तदेव और दूसरेका नाम है कामपाल। धनपति और धनेश्वर मायाचारी थे इस लिए वे मरकर स्त्रीरूपमें वणिकके घर जन्मे हैं। उनका नाम मदिरा और केसरा है। पूर्व भवमें

प्रीति थी इससे इन चारोंका समागम हुआ है। वसन्तदेवके साथ केसराका ब्याह हुआ है और कामपालके साथ मदिराका। दोनों दम्पति अभी विद्यमान है और यहीं मौजूद हैं।

इतनी कथा कहकर भगवानने फिर आगे कहना आरंभ किया:- " हे राजा! पूर्व जन्मके स्नेहके कारण तुम्हें जो पाँच अद्भुत वस्तुओंकी भेट मिलती थी उनका उपयोग तुम नहीं कर सकते थे। अब अपने मित्रोंके साथ तुम उन वस्तुओंका उपभोग कर सकोगे। इतने दिनोंतक इष्ट मित्रोंको न जाननेसे तुम पदार्थोंके उपभोगसे वंचित रहे थे।"

वसंत, केसरा, कामपाल और मदिराने भी ये बातें सुनीं। वे कुरुचंद्रसे मिले। कुरुचंद्र उनको अपने घर ले गया और बड़ा-आदर सत्कार किया।

केवलज्ञानसे लगाकर निर्वाणके समय तक भगवान शान्तिनाथके परिवारमें, ६२ गणधर/ बासठ हजार आत्म नैष्ठिक मुनि, इकसठ हजार छः सौ साध्वियाँ, आठ सौ चौदह पूर्वधारी महात्मा, तीन हजार अवधिज्ञानी, चार हजार मनःपर्यवज्ञानी, चार हजार तीन सौ केवलज्ञानी, छः हजार वैक्रिय लब्धिवाले, दो हजार चार सौ वादलब्धिवाले, दो लाख नब्बे हजार श्रावक और तीन लाख तरानवे हजार श्राविकाएँ थीं।

भगवानने अपना निर्वाणकाल समीप जान समेतशिखर-पर पदार्पण किया। यहाँ नौ सौ मुनियोंके साथ अनशन किया एक मासके अन्तमें ज्येष्ठ मासकी कृष्णा त्रयोदशीके दिन भरणी नक्षत्रमें भगवान शान्तिनाथ उन मुनियोंके साथ मोक्ष गये।

इन्द्रादि देवोंने निर्वाण-कल्याणक किया। भगवानने पचीस हजार वर्ष कौमारावस्थामें पचीस हजार वर्ष युवराजावस्थामें, पचीस हजार वर्ष राजपाटपर और पचीस हजार वर्ष मुनिअवस्थामें, इस तरह एक लाख वर्षकी आयु भोगी। उनका शरीर चालीस धनुष ऊँचा था।

धर्मनाथजीके निर्वाण बाद पौन पल्योपम कम तीन सागरोपम बीते तब शान्तिनाथ भगवान मोक्षमें गये।

१७ श्री कुन्थुनाथ-चरित

श्रीकुन्थुनाथो भगवान्, सनाथोऽतिशयर्द्धिभिः।
सुरासुरनृनाथाना,-मेकनाथोऽस्तु वः श्रिये॥

भावार्थ—जिसको चौतीस अतिशयोंकी ऋद्धि प्राप्त है और जो इन्द्रों और राजाओंके नाथ हैं वे श्रीकुन्थुनाथ भगवान तुम्हारा कल्याण करें।

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें आवर्त नामक देश है। उसमें खड्गी नामकी नगरी थी। उसका राजा सिंहावह था। संसारसे वैराग्य होनेके कारण उसने संवराचार्यके पाससे दीक्षा ले ली। बीस स्थानककी आराधनाकर उसने तीर्थंकर गोत्र बाँधा

१ प्रथम भव

अन्तमें मरकर वह सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र देव हुआ।

२ दूसरा भव

१—ये चक्रवर्ती भी हुए थे।

भरतक्षेत्रके हस्तिनापुर नगरका राजा वसु था। उसके श्री नामकी रानी थी। वहाँसे च्यवकर सिंहावहका जीव श्रीरानीके गर्भमें श्रावण वदि ९ के दिन कृत्तिका नक्षत्रमें आया। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक मनाया।

३ तीसरा भव

समय पूरा होनेपर वैशाख सुदि १४ के दिन कृत्तिका नक्षत्रमें बकरेके चिन्हयुक्त, स्वर्णवर्णवाले, पुत्रको रानीने जन्म दिया। बालकका नाम कुन्थुनाथ रखा गया। कारण-गर्भ समयमें रानीने कुन्थु नामक रत्नसंचयको देखा था। इन्द्रादि देवोंने जन्मकल्याणक मनाया।

यौवनावस्था प्राप्त होने पर पिताकी आज्ञासे अनेक राज कन्याओंसे कुंथुनाथने ब्याह किया। २३ हजार साढ़े सात सौ वर्ष तक युवराज रहे। ४५०० सौ वर्ष बाद उनकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। उसीके बल छः सौ वर्षमें उन्होंने भरतखण्डके छः खण्ड जीते। २३ हजार साढ़े सात सौ वर्ष तक चक्रवर्ती रहे। पीछे लोकान्तिक देवोंने प्रार्थना की:-"हे प्रभु! दीक्षा धारण कीजिये।" तब प्रभुने वर्षीदान दे वैशाख वदि ५ के दिन कृत्तिका नक्षत्रमें एक हजार राजाओंके साथ सहसाम्र वनमें दीक्षा धारण की। इन्द्रादि देवोंने दीक्षाकल्याणक मनाया। दूसरे दिन भगवानने चक्रपुर नगरके राजा व्याघ्रसिंहके घर पारणा किया।

वहाँसे विहार कर सोलह वर्ष बाद प्रभु उसी वनमें पधारे। तिलक वृक्षके नीचे कायोत्सर्ग धारण कर, घातिया कर्मोंको क्षय

कर चैत्र सुदि ३ के दिन कृत्तिका नक्षत्रमें प्रभुने केवलज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रादि देवोंने ज्ञानकल्याणक मनाया और समोशरणकी रचना की।

उनके परिवारमें ३५ गणधर, ६० हजार साधु ६ हजार। ६ सौ साध्वियाँ, ६७० चौदह पूर्वधारी, ढाई हजार अवधि ज्ञानी, ३ हजार ३ सौ ४० मनःपर्ययज्ञानी ३ हजार दो सौ केवली ५ हजार एक सौ वैक्रिय लब्धिवाले, २ हजार वादी १ लाख ७९ हजार श्रावक, और ३ लाख ८१ हजार श्राविकाएँ थीं। इनके गंधर्व नामका यक्ष और बला नामकी शासन देवी थी।

क्रमसे विहार करते हुए मोक्षकाल समीप जान भगवान सम्मेदशिखरपर पधारे। वहाँ उन्होंने एक हजार मुनियोंके साथ एक मासका अनशन धारणकर वैशाख वदि १ के दिन कृत्तिका नक्षत्रमें कर्मनाश कर मोक्ष पाया। इन्द्रादि देवोंने निर्वाण कल्याणक मनाया। उनकी सम्पूर्ण आयु ९५ हजार वर्षकी थी। उनका शरीर ३५ धनुष ऊँचा था।

शान्तिनाथजीके निर्वाण जानेके बाद आधा पल्योपम बीतने पर कुंथुनाथजीने निर्वाण प्राप्त किया।

---

१८ श्री अरनाथ-चरितं

अरनाथस्तु भगवाँ,-श्चतुर्थारनभोरविः ।
चतुर्थ पुरुषार्थश्री,-विलासं वितनोतु वः ॥

भावार्थ—चौथा आरारूपी आकाशमें सूरजके समान (तपनेवाले) भगवान अरनाथ चतुर्थ पुरुषार्थ यानी मोक्षलक्ष्मी तुम्हे देवें ।

जंबूद्वीपके पूर्व विदेहमे सुसीमा नामकी नगरी थी। उसका राजा धनपति था । उसको संसारसे वैराग्य हुआ ।

१ प्रथम भव—उसने संवर नामक मुनिके पाससे दीक्षा ले ली। बीस स्थानकका तप कर तीर्थंकर गोत्र बाँधा ।

२ दूसरा भव—आयु पूर्णकर वह नवें ग्रैवेयकमें देव हुआ। वहाँसे च्यवकर धनपतिका जीव हस्तिनापुर नगरके राजा सुदर्शनकी रानी महादेवीकी कुक्षिमे फाल्गुन

३ तीसरा भव—सुदि २ के दिन जब चन्द्र रेवती नक्षत्रमें था, आया। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक मनाया।

गर्भकालके पूर्ण होनेपर मार्गशीर्ष सुदि १० के दिन रेवती नक्षत्रमें नंदवर्तना लक्षणवाले, स्वर्ण वर्णी पुत्रको महादेवीने जन्म दिया। गर्भकालमें माताने चक्र-आरा देखा था इससे पुत्रका नाम अरनाथ रखा गया।

युवावस्था प्राप्त होनेपर प्रभुने ६४०० राजकन्याओंके साथ ब्याह किया। २१ हजार वर्ष तक युवराज रहे। फिर उनकी आयु-

१—ये चक्रवर्ती भी हुए हैं।

भयासमें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। उस चक्रके साथ चार सौ वर्ष घूम कर भरतक्षेत्रके छः खण्डोंको विजय किया। प्रभु २१ हजार वर्ष तक चक्रवर्ती रहे।

फिर लोकान्तिक देवोंने विनती की,—"हे प्रभु! भव्य जीवोंके हितार्थ तीर्थ प्रवर्त्ताइए!" तब संवत्सरी दान दे, फागुन सुदि ११ के दिन रेवती नक्षत्रमें छठ तप युक्त, सहसाम्रवनमें जाकर प्रभुने दीक्षा ली। दूसरे दिन राजनगरके राजा अपराजितके यहाँ पर पारणा किया। फिर वहाँसे विहारकर तीन वर्ष बाद उसी उद्यानमें आये। आम्रवृक्षके नीचे कायोत्सर्ग ध्यान किया। कार्तिक सुदि १२ के दिन चन्द्र रेवती नक्षत्रमें था तब प्रभुको केवलज्ञान हुआ। इन्द्रादि देवोंने ज्ञानकल्याणक मनाया। प्रभुके संघमें पचास हजार साधु, साठ हजार साध्वियाँ ६१० चौदह पूर्वधारी, २६० अवधिज्ञानी, २५५१ मनःपर्यय ज्ञानी, २८ केवली, ७ हजार ३ सौ वैक्रियक लब्धिवाले, १ हजार छः सौ वादी, १ लाख ८४ हजार श्रावक, और ३ लाख ७२ हजार श्राविकाएँ तथा षण्मुख नामक यक्ष, और धारणी नामकी शासन देवी थी।

मोक्षकाल समीप जान प्रभु सम्मेद शिखरपर आये। और एक मासका अनशन धारण कर मार्गशीर्ष सुदि १० के दिन चन्द्र जब रेवती नक्षत्रमें था, १ हजार मुनियोंके साथ मोक्षमें गये। इन्द्रादि देवोंने मोक्षकल्याणक मनाया।

इनकी सम्पूर्ण आयु ८४ हजार वर्षकी थी। शरीरकी ऊँचाई ३० धनुषकी थी। कुंथुनाथजीके बाद हजार करोड़ वर्ष कम पल्योपमका चौथा अंश बीतने पर अरहनाथजी मोक्षमें गये।

---

१९ श्री मल्लिनाथ-चरित

जंबूद्वीपके अपर विदेहमें सलिलावती देश है। उसमें वीत शोका नामक नगरी थी। उसका राजा बल था,
१ प्रथम भव—उसकी भार्या धरणी थी। उसके महाबल नामका पुत्र हुआ। कमलश्री आदि पाँच सौ राजकन्याओंके साथ उसका विवाह हुआ। बलने दीक्षा ली। और महाबल राजा हुआ। उसके कमलश्रीसे बलभद्र नामका पुत्र हुआ। महाबलके अचल, धरण, पूरण, वसु, वैश्रमण और अभिचन्द्र ये छः राजा बालमित्र थे। एक बार महाबलने अपने मित्रोंके सामने दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की। यह बात सबको रुचि और सातों मित्रोंने एक साथ दीक्षा धारण की और ऐसी प्रतिज्ञा की, कि हम सब एकसी तपस्या करेंगे। इसके अनुसार सब तप करने लगे। उनमेंसे महाबलको अधिक फल पानेकी इच्छा थी, इससे पारणेके दिन वह, आज मेरे शिरमें दर्द है, आज मेरे पेटमें दर्द है, आदि कहकर बहाने बनाता था और पारणा नहीं करके अधिक तपस्या कर लेता था।

इस प्रकार मायाचार करके तप करनेसे उसने स्त्रीवेद, तथा बीस स्थानकी आराधना करनेसे तीर्थंकर गोत्र बाँधा।

२ दूसरा भव—आयुके अन्तमें मरकर महाबलका जीव वैजयंत अनुत्तरमें देव हुआ।

जंबूद्वीपके दक्षिण भरतमें मिथिला नगरी थी। उसका राजा कुंभ था। उसकी रानीका नाम प्रभावती

१ तीसरा भव—था। स्वर्गसे महाबलका जीव च्यवकर फाल्गुन सुदि १४ के दिन अश्विनी नक्षत्रमें प्रभावतीके गर्भमें आया। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक मनाया।

समयपर पूर्ण दिन पर मार्गशीर्ष सुदि ११ के दिन अश्विनी नक्षत्रमें प्रभावती देवीके गर्भसे कुंभलक्षण युक्त, नील वर्णी पुत्रीका जन्म हुआ। जब पुत्री गर्भमें थी, तब माताको मालतीपुष्पोंकी शय्यापर सोनेकी इच्छा हुई थी, इसलिए उसका मल्लिकुमारी नाम रखा गया। इन्द्रादि देवोंने जन्मकल्याणक मनाया। ये क्रमशः बढ़ती हुई युवा हुई।

मल्लिकुमारीके पूर्वभवके मित्रोंमेंसे अचलका जीव साकेत नगरीमें प्रतिबुद्ध नामक राजा हुआ। धरणका जीव चंपानगरीमें चन्द्रछाया नामक राजपुत्र हुआ। पूरणका जीव श्रावस्ती नगरीमें रुक्मी नामक राजा हुआ। वसुका जीव बनारसी नगरीमें शंख नामक राजा हुआ। वैश्रमणका जीव हस्तिनापुरमें अदीनशत्रु नामक राजा हुआ और अभिचन्द्रका जीव कांपिल्यपुर नगरमें जितशत्रु नामक राजा हुआ। इन छहों राजाओंने पूर्व भवके स्नेहसे मल्लिकुमारीके साथ विवाह करनेकी इच्छासे अपने २ दूत भेजे।

मल्लिकुमारीने अवधिज्ञानसे यह जानकर कि मेरे पूर्व भवके

१ श्री—शोभिमान पृ

छहों मित्रोंको अशोकवाटिकामें ज्ञान होनेवाला है, अशोक वाटिकाके अन्दर एक खण्डका महल तैयार कराया। उसमें एक मनोहर रत्नमयी सिंहासन बनवाया, और उसमें एक मनोज्ञ स्वर्ण-प्रतिमा रखवाई। वह पोली थी। उसके मस्तकमें छेद रखवाया, और उसपर स्वर्णकमलका ढक्कन लगवाया। फिर वह हमेशा ढक्कन उठाकर अपने आहारमेंसे एक-एक ग्रास उसमें डालने लगी।

जिस मकानमें प्रतिमा रखवाई थी, वह छोटा था। उसके छः दरवाजे बनवाये। हरेक दरवाजेपर ताला डलवा दिया। उन दर्वाजोंके आगे एक-एक कोठड़ी और बनवाई। प्रतिमाके पीछे की तरफ भी एक दर्वाजा बनवाया, वह प्रतिमासे बिलकुल सटा हुआ था।

दूत कुंभराजाके पास मल्लिकुमारीको माँगने पहुँचे। कुंभने अपमान कर उन्हें निकाल दिया। उन छहों राजाओंने सोचा, कुंभराजाने हमारा अपमान किया है। इसलिए उसको इसका दण्ड देना ही चाहिये। उन्होंने परस्पर सलाह कर बदला लेनेके लिये मिथिला नगरीपर चढ़ाई कर दी।

कुंभ राजाने युद्धकी तैयारी की। मल्लिकुमारीने कहा:— "पिताजी! आप व्यर्थ ही नरहत्या न करिये, कराइए। राजाओं-को मेरे पास मिलनेको भेज दीजिये। मैं सबको ठीक कर दूँगी।

अभिमानी राजाने सशंक नेत्रोंसे अपनी कन्याकी तरफ देखा। पुत्रीकी आँखोंमें वह पवित्र तेज था कि जिसे देखकर उसका संदेह मिट गया।

राजा कुंभने छहों राजाओंको मल्लिकुमारीसे मिलनेका संदेशा भेजा। राजा लोग मिलने आये। दासियोंने छहों राजाओंको छहों छोटी कोठड़ियोंमें अन्दर प्रतिमावाले कमरेके दर्वाजेके बाहर खड़ा कर दिया। किवाड़ सीखचेवाले थे। इसलिए उन्हें प्रतिमा साफ दिख रही थी। राजा लोग उस रूपको देखकर दंग रह गये। वे समझे यही मल्लिकुमारी है।

राजा कुछ बोलें इसके पहले ही मल्लिकुमारीने उस प्रतिमाके सिरसे ढक्कन हटा दिया। ढक्कन हटते ही बदबू सब तरफ फैल गई। राजा अपनी नाक कपड़ेसे पकड़कर भागने लगे। तब मल्लिकुमारी बोली—"हे राजाओ! इस मूर्तिमें प्रति दिन केवल एक-एक ग्रास डाला गया है। उसकी दुर्गंधको भी आप लोग यदि सहन नहीं कर सकते हैं तो मेरे शरीरकी दुर्गंध को, जिसमें प्रति दिन न जाने कितने ग्रास डाले गये हैं और जो महादुर्गंध धाम हो गया है, आप कैसे सहन कर सकेंगे? ज्ञानी पुरुष इस शरीरमें मोह नहीं करते। और आप लोगोंने तो तीसरे भवमें मेरे साथ दीक्षा ली थी। आप उसे क्यों स्मरण नहीं करते हैं और क्यों नहीं संसारकी मायासे छूटते हैं?" उन लोगोंने जब मल्लिकुमारीके ये वचन सुने तो उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हो आया। उनने अपने पूर्व भव जाने और प्रभुको पहचाना। वे हाथ जोड़कर कहने लगे—"हे भगवन्! आपने हम लोगोंकी आँखें खोल दीं। हमें आज्ञा दीजिए हम क्या करें?" प्रभु बोले—"जब तुम्हारी

इच्छा हो, तभी संसारसे छूटनेका प्रयत्न करना"। फिर प्रभुने उनको विदा किया।

उसी समय लोकान्तिक देवोंने आकर विनती कीः—"हे प्रभु! अब तीर्थ प्रवर्ताइए।" तब प्रभुने वर्षीदान दे, छट्ठ तप कर मार्गशीर्ष सुदि ११ के दिन अश्विनी नक्षत्रमें सहस्राम्र वनमें जा एक हजार पुरुषों और तीन सौ स्त्रियोंके साथ दीक्षा ग्रहण की। इन्द्रादि देवोंने दीक्षाकल्याणक मनाया।

उसी दिन प्रभुको मनःपर्यय और केवलज्ञान प्राप्त हुए। दूसरे दिन विश्वसेन राजाके घरपर पारणा किया। इन्द्रादि देवोंने ज्ञानकल्याणक मनाया।

प्रभुके तीर्थमें कुबेर नामका यक्ष, और वैराट नामकी शासनदेवी थी। उनके परिवारमें—२८ गणधर, ४० हजार साधु, ५५ हजार साध्वियाँ, ६६८ चौदह पूर्वधारी, २ हजार २ सौ अवधिज्ञानी, १७५० मनःपर्ययज्ञानी, २ हजार २ सौ केवली, २ हजार ९ सौ वैक्रियलब्धिवाले, एक हजार चार सौ वादी, १ लाख ८३ हजार श्रावक और ३ लाख ७० हजार श्राविकाएँ थीं।

मल्लिनाथ अपना निर्वाणकाल समीप जान सम्मेद शिखरपर आये। पाँच सौ साधुओं और पाँच सौ साध्विओंके साथ उन्होंने अनशन ग्रहण किया। एक मासके बाद फाल्गुन सुदि १२ के दिन चन्द्र नक्षत्रमें वे मोक्ष गये। इन्द्रादि देवोंने मोक्ष कल्याणक मनाया।

इनकी कुल आयु ५५ हजार वर्षकी थी, उसमेंसे १००

वर्ष कुमरावस्थामें और शेष दीक्षा पर्यायमें बिताई। इनका शरीर २५ धनुष ऊँचा था।

अरनाथके निर्वाण जानेके बाद कोटि हजार वर्ष पीछे मल्लिनाथभी मोक्षमें गये।

२० श्री मुनिसुव्रत-चरित

जंबूद्वीपके अपर विदेहमें भरत देश है। उसमें चंपा नामकी नगरी थी। उसमें सुरश्रेष्ठ नामक राजा

१ प्रथम भव—राज्य करता था। उसने नंदन मुनिका उपदेश सुनकर उनसे दीक्षा ले ली। अर्हत-भक्ति आदि बीस स्थानककी आराधना करनेसे तीर्थंकर गोत्र बाँधा।

१ दूसरा भव—मरकर वह प्राणत देवलोकमें गया।

भरत क्षेत्रके मगधदेश में राजगृही नामकी नगरी है। उसमें हरिवंशका राजा सुमित्र राज्य करता था उसके

१ तीसरा भव—पद्मावती नामकी रानी थी। स्वर्गसे सुरश्रेष्ठका जीव च्यवकर श्रावण सुदि १५ के दिन श्रवण नक्षत्रमें पद्मावती देवीके गर्भमें आया। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक मनाया।

गर्भ-कालके समाप्त होने पर जेठ वदि ९ के दिन श्रवण नक्षत्रमें सुमित्र राजाके यहाँ पुत्ररत्नका जन्म हुआ। इन्द्रादि देवोंने जन्मकल्याणकका उत्सव धूमधामसे मनाया। इनके

कछुएका चिन्ह था। गर्भकालमें माता मुनियोंकी तरह सुव्रता (अच्छे व्रत पालनेवाली) हुई थी। इससे पुत्रका नाम मुनिसुव्रत रखा गया। पुत्रके युवा होनेपर पिताने उनका प्रभावती आदि अनेक राजकन्याओंके साथ ब्याह कराया। प्रभावतीसे सुव्रत नामक पुत्र हुआ।

राजा सुमित्रने दीक्षा ली। मुनिसुव्रत राजा हुए और १५ हजार वर्षतक राज्य किया। फिर लोकान्तिक देवोंने प्रार्थना की जिससे इन्होंने वर्षीदान दे, सुव्रत पुत्रको राज्य सौंप, फाल्गुन वदि ८ के दिन श्रवण नक्षत्रमें नीलगुहा नामक उद्यानमें एक हजार राजाओंके साथ दीक्षा धारण की। इन्द्रादि देवोंने दीक्षाकल्याणक मनाया। दूसरे दिन मुनिसुव्रत स्वामीने ब्रह्मदत्त राजाके यहाँ पारणा किया।

चिर काल तक अन्यत्र विहारकर वे वापिस उसी उद्यानमें आये। चंपा वृक्षके नीचे उन्होंने कायोत्सर्ग धारण किया और घातिया कर्मोंका नाशकर फाल्गुन वदि १२ के दिन श्रवण नक्षत्रमें केवलज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रादि देवोंने ज्ञानकल्याणक मनाया।

एक समय विहार करते हुए प्रभु भृगुकच्छ (भड़ूच) नगरमें आये। वहाँ समोशरणकी रचना हुई, प्रभु उपदेश देने लगे। उस नगरका राजा जितशत्रु घोड़ेपर चढ़कर दर्शनार्थ आया। राजा अन्दर गया। घोड़ा बाहर खड़ा रहा। घोड़ेने भी कान ऊँचे कर प्रभुका उपदेश सुना। उपदेश समाप्त होनेपर गणधरने पूछाः—"इस समोशरणमें किसने धर्म पाया?" प्रभुने उत्तर

दिया—"जितशत्रु राजाके घोड़ेके सिवा और किसीने भी धर्म धारण नहीं किया"। जितशत्रु राजाने पूछा:-"यह घोड़ा कौन है सो कृपा करके कहिए।" प्रभुने उत्तर दिया—

"पद्मनी खण्ड नगरमें जिनधर्म नामका एक सेठ था। उसका सागरदत्त नामका मित्र था। वह हमेशा जैनधर्म सुनने जाया करता था। एक दिन उसने व्याख्यानमें सुना कि जो अर्हत-बिम्ब बनवाता है, वह जन्मान्तरमें संसारका मंथन करनेवाले धर्मको पाता है। यह जानकर सागरदत्तने एक जिन-प्रतिमा बनवाई और धूम धामसे साधुओंके पाससे उसकी प्रतिष्ठा कराई।

सागरदत्त मिथ्यात्वी होनेसे पहले उसने नगरके बाहर एक शिवका मंदिर बनवाया था। एक बार उत्तरायण पर्वके दिन सागरदत्त वहाँ गया। उस मन्दिरके पुजारी पूजाके लिए पहिलेके रक्खे हुए घीके घड़े जल्दी-जल्दी खींचकर उठा रहे थे। बहुत दिन तक एक जगह रखे रहनेसे घड़ोंके नीचे जीव पैदा हो गये थे इस लिए उन्हें खींचकर उठानेसे कीड़े मर जाते थे। और कई उनके पैरोंके नीचे कुचले जाते थे। यह देखकर सागरदत्त उन कीड़ोंको अपने कपड़ेसे एक तरफ हटाने लगा। उसे ऐसा करते देख एक पुजारी बोला-"अरे तुझे इन सफेदपोश यतियोंने यह नई शिक्षा दी है क्या?" और तब उसने पैरोंसे और भी कई कीड़ोंको कुचल दिया। सागरदत्त दुखी होकर पुजारियोंके आचार्यके पास गया। आचार्यने उस पापकी उपेक्षा की। तब सागरदत्तने विचारा,-

यह भी निर्दयी है। ऐसे गुरुकी शिक्षासे दुर्गतीमें जाना पड़ेगा। ऐसा गुरु पत्थरकी नाव है। आप संसार-समुद्रमें डूबेगा, और दूसरोंको भी डुबायेगा। यद्यपि उसकी शिवपर अश्रद्धा हो गई थी तो भी वह लोकलाजसे शिव-पूजा करता रहा। इस तरह श्रद्धा ढीली होनेसे उसे सम्यक्त्व न हुआ, और वह मरकर घोड़ा हुआ है। मैं इसको बोध करानेके लिये ही यहाँपर आया हूँ। पूर्व भवमें इसने दयामय धर्म पाला था इससे यह क्षण-मात्रमें धर्म पाया है।"

यह सुनकर राजाने उस घोड़ेको छोड़ दिया। उसी समयसे भड़ूच शहरमें अश्वावबोध नामका तीर्थ हुआ।

मुनिसुव्रत स्वामीके तीर्थमें वरुण नामका यक्ष और नरदत्ता नामकी शासन देवी हुई। उनके संघमें १८ गणधर, ३० हजार साधु, ५० हजार साध्वियाँ, ५०० चौदह पूर्वधारी, १८०० अवधिज्ञानी, १५०० मन पर्यय ज्ञानी, १८०० केवली, २००० वैक्रियक लब्धिवाले, १२०० वादलब्धिवाले, १ लाख ७२ हजार श्रावक, और ३ लाख ५० हजार श्राविकाएँ थे।

निर्वाण काल समीप जानकर प्रभु सम्मेदशिखरपर पधारे। और एक हजार मुनियोंके साथ एक मासका अनशन धारण कर जेठ वदि ९ के दिन अश्विनी नक्षत्रमें मोक्ष गये। इन्द्रादि देवोंने मोक्षकल्याणक मनाया।

प्रभुने साढ़े सात हजार वर्ष कौमारावस्थामें साढे सात हजार वर्ष राज्य कार्यमें और १५ हजार वर्ष व्रत पालनेमें, इस

थाएर ३० हजार बरसकी आयु पूर्ण की। उनके शरीरकी ऊँचाई २० धनुष थी।

मल्लिनाथजीके निर्वाण जानेके बाद चौवन लाख बरस बीतनेपर मुनिसुव्रत स्वामी मोक्षमें गये।

मुनिसुव्रत स्वामीके समयमें महापद्म नामका चक्रवर्ती हो गया है।

---

२१ श्री नमिनाथ-चरित

जंबूद्वीपके पश्चिम महाविदेहमें कौशांबी नामकी नगरी थी। उसमें सिद्धार्थ राजा राज्य करता था। किसी

१ प्रथम भव—कारणसे उसको संसारसे वैराग्य हुआ और उसने सुदर्शन मुनिके पाससे दीक्षा ली एवं बीस स्थानककी आराधनासे तीर्थंकर गोत्र बाँधा।

२ दूसरा भव—अन्तमें शुभध्यान पूर्वक मरकर वह अपराजित देवलोकमें गया।

वहाँसे च्यवकर सिद्धार्थका जीव मिथिला नगरीके राजा

३ तीसरा भव—विजयकी रानी वप्राके गर्भमें आश्विन सुदि १५ के दिन अश्विनी नक्षत्रमें, आया। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक मनाया।

गर्भका समय पूरा होनेपर वप्रा देवीने, श्रावण वदि ८ के दिन अश्विनी नक्षत्रमें नील कमल लक्षणयुक्त, स्वर्णवर्णी पुत्र-

को जन्म दिया । इन्द्रादि देवोंने जन्मकल्याणक मनाया।
जिस समय प्रभु गर्भमें थे, उस समय मिथिलाको शत्रुओंने घेर लिया था, उन्हें देखनेके लिए वप्रा देवी महलकी छतपर गई। उन्हें देखकर गर्भके प्रभावसे शत्रु राजा विजय नृपके चरणोंमें आ नमे। इससे मातापिताने पुत्रका नाम नमिनाथ रखा। प्रभु अनुक्रमसे युवा हुए। अनेक राजकन्याओंके साथ उन्होंने ब्याह किया। ढाई हजार वर्षके बाद राजा हुए और पाँच हजार वर्ष तक राज्य किया। फिर लोकान्तिक देवोंकी विनतीसे प्रभुने वर्षीदान दिया, सुप्रभ पुत्रको राज्य सौंपा और सहसाम्र वनमें जाकर दीक्षा धारण की। इन्द्रादि देवोंने तपकल्याणक मनाया। दूसरे दिन प्रभुने वीरपुरके राजा दत्तके घर पारण किया।

प्रभु वहाँसे विहारकर पुनः नौ मासके बाद उसी उद्यानमें आये और बोरसली वृक्षके नीचे कायोत्सर्ग धारण कर मार्गशीर्ष वदि ११ के दिन अश्विनी नक्षत्रमें केवलज्ञान पाये।

नमि प्रभुके तीर्थमें भ्रकुटि नामक यक्ष और गांधारी नामक शासन देवी थी। उनका संघ इस प्रकार था—१७ गणधर, २० हजार साधु, ४१ हजार साध्वियाँ, ४५० चौदह पूर्वधारी, १ हजार छः सौ अवधिज्ञानी, १२ सौ ८ मनः पर्ययज्ञानी, १६०० केवली, ५ हजार वैक्रियक लब्धिवाले, १ हजार वादलब्धिवाले, ३ लाख ४८ हजार श्राविकाएँ और १ लाख ७० हजार श्रावक।

विहार करते हुए अपना मोक्षकाल समीप जान प्रभु सम्मेद शिखरपर आये। वहाँ एक हजार मुनियोंके साथ एक मासका

अनशन धारणकर वैशाख वदि १० के दिन अश्विनी नक्षत्रमें मोक्ष गये। इन्द्रादि देवोंने निर्वाणकल्याणक मनाया। इनकी आयु कुल १० हजार बर्षकी थी और शरीर-ऊँचाई १५ धनुषकी।

मुनिसुव्रत स्वामीके निर्वाण जानेके छः लाख बर्ष बाद नमिनाथजी मोक्षमें गये।

इनके समयमें हरिषेण और जय नामक चक्रवर्ती हुए हैं।

२२ श्री नेमिनाथ चरित

जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें अचलपुर नामक नगर था। उसका राजा विक्रमधन था। उसके धारणी नामकी १ प्रथम भव- रानी थी। रानीने एक रात्रिमें स्वप्न देखा कि एक पुरुषने फलोंवाले आम्र वृक्षको हाथमें लेकर कहा कि, यह वृक्ष तुम्हारे आँगनमें रोपा जाता है। जैसे २ समय बीतेगा वैसे ही वैसे यह अधिक फलवाला होगा और भिन्न २ स्थानोंपर नौ बार लगेगा। सवेरे शय्या छोड़ कर रानी उठी और नित्य कृत्योंसे निवृत्त हो उसने स्वप्नका फल राजासे पूछा। राजाने शीघ्र ही स्वप्ननिमित्तिकको बुलाकर स्वप्नका फल कहनेकी आज्ञा दी। उसने कहा—" हे राजन तुम्हारे अधिक गुणवान पुत्र होगा। और नौ बार वृक्ष रोपेगा इसका फल केवली गम्य है। "

यह सुनकर राजा और रानी हर्षित हुए। समयके पूर्ण

होने पर रानीने पुत्ररत्नको जन्म दिया । पुत्रका नाम ' धन ' रखा गया । शिशु कालको त्यागकर उसने यौवनावस्थामें पदार्पण किया ।

कुसुमपुर नगरमें सिंह नामक राजाकी विमला रानीके धनवती नामकी कन्या थी ।

एक दिन वसंत ऋतुमें युवती धनवती सखियोंके साथ, उद्यानकी शोभा देखनेको गयी । उस उद्यानमें घूमते हुए राजकुमारीने, अशोक वृक्षके नीचे हाथमें चित्र लेकर खड़े हुए एक चित्रकारको देखा । धनवतीकी कमलिनी नामक दासीने उसके हाथसे चित्र ले लिया । वह एक अद्भुत रूपवान राजकुमारका चित्र था । सखीने वह चित्र राजकुमारीको दिया। उसको देखकर आश्चर्यके साथ राजकुमारीने पूछाः—" यह चित्र किसका है ? सुर-असुर मनुष्योंमें ऐसा रूपवान कौन है ?"

यह सुन, चित्रकार हँसा और बोलाः—" अचलपुरके राजा विक्रमधनके युवा पुत्र (धनकुमार) का यह चित्र है ।" राजकुमारी उस रूपपर मोहित हो गई । और उसने प्रतिज्ञा की कि मैं धन कुमारको छोड अन्य किसीके साथ शादी- नहीं करूँगी । कन्याके पिताको यह बात मालूम हुई । उसने अपना दूत व्याहका संदेश लेकर अचलपुरके राजा विक्रम- धनके यहाँ भेजा । वहाँ जाकर उसने राजाका संदेशा कह सुनाया । राजाने भी स्वीकारता दे दी । धनकुमार और धन- वतीका व्याह हो गया । दोनों पति-पत्नी आनंदसे समय व्यतीत करने लगे । एक बार वसुंधर नामक मुनिसे विक्रम

पवनने रात्रिके स्वप्नका फल पूछा। मुनिने उत्तर दिया—"नौ भव कर तुम्हारा पुत्र मोक्षमें जायगा।"

वसंत ऋतुमें धनकुमार धनवतीके साथ एक सरोवरपर गया। वहाँ उन्होंने एक स्थानपर एक मुनिराजको अचेत पड़े देखा। अनेक शीतोपचार कर उन्होंने उनकी मूर्च्छा दूर की। मुनिके सचेत होने पर राजकुमारने प्रणाम कर उनके अचेत होनेका कारण पूछा। मुनिने सुमधुर स्वरमें कहा—" हे राजन्! मैं अपने गुरुके साथ विहार कर रहा था, इस जंगलमें रस्ता भूल गया। भटकते हुए । भूख, प्यास और थकानसे मुझे मूर्च्छा आ गई।" फिर मुनिराजने श्रावकधर्मका उपदेश दिया। जिससे धनकुमारने सम्यक्त्व सहित श्रावकधर्म स्वीकार कर लिया। राजकुमार महलोंमें गया और मुनि अन्यत्र विहार कर गये।

राजकुमारने चिरकाल तक संसारका सुख भोग, अपने पुत्रको राज्य सौंप, वसुंधर नामक मुनिके पाससे दीक्षा ली और चिरकाल तक मुनिव्रत पाला।

२ दूसरा भव—अनशन सहित प्राण तजकर धनकुमारका जीव सौधर्म देवलोकमें देव हुआ।

धनकुमारका जीव वहाँसे च्यवकर वैताढ्य पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें सुरतेज नामक नगरके खेचर

३ तीसरा भव—राजा शीरकी रानी विद्युन्मतिके गर्भसे जन्मा। उसका नाम चित्रगति रखा गया।

धनवतीका जीव उसी पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें शिवमंदिर नगर

के राजा अनंगसिंहकी रानी शशिप्रभाके गर्भसे पुत्री रूपमें जन्मा। उसका नाम रत्नवती रखा गया।

चक्रपुर नगरके राजा सुग्रीवके दो रानियाँ थीं। एक यशस्वी और दूसरी भद्रा। यशस्वी रानीके सुमित्र नामक पुत्र था और भद्राके पद्मकुमार। सुमित्र कुमार धर्मात्मा और सदाचारी था और पद्मकुमार था मिथ्यात्वी, अहंकारी और व्यसनी।

एक दिन दुष्ट भद्रा रानीने, यह विचारकर कि यदि सुमित्र जीता रहेगा तो मेरे पुत्र पद्मको राज्य नहीं मिलेगा, सुमित्रको जहर दे दिया। विपके पीते ही सुमित्र पृथ्वीपर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। जहर सारे शरीरमें व्याप्त हो गया। जब यह खबर सुग्रीव राजाको मिली तो वे मंत्री सहित वहाँ आये। अनेक तरहके उपचार किये पर विपका असर कम न हुआ। राजा बडे दुखी हुए। सारे नगरमें भद्राकी अपकीर्ति फैल गई। वह कहीं चुपचाप भाग गई।

चित्रगति विद्याधर विमानमें बैठ आकाशमें फिरने निकला था। घूमते २ वह उसी नगरमें आ निकला। कोलाहल सुनकर उसने विमान नीचे उतारा। पूछने पर लोगोंने उसे विपकी बात सुनाई। उसने जल मंत्र कर सुमित्रपर छिड़का। राजकुमार सचेत हो गया और आश्चर्यसे इधर उधर देखने लगा। राजाने कहाः—"हे पुत्र! तेरी अपर माताने (सोतेली माँने) तुझको विप दिया था। इन महापुरुषने तुझको जीवदान दिया है।" फिर सुमित्र और उसके पिताने अनेक प्रका-

एक कायर मनुष्योंमें छुपाया प्रकट की और कुछ दिन अपने यहाँ रहनेकी उससे विनती की। चित्रगति उत्तरनेमें अपनेको असमर्थ बता सुमित्रको अपना मित्र बना चला गया।

एक दिन उद्यानमें सुयशा नामक केवली पधारे। राजा परिवार सहित उनको वंदना करने गये। वंदना करके राजा यथास्थान बैठ गये। फिर हाथ जोड़ उनसे पूछा—"हे भगवन्! मेरी दूसरी माँ मरकर कहाँ पर गई?" केवली बोले—"वह यहाँसे भागकर वनमें गई पर चोरोंने उसके आभूषण छीन लिये और उसे एक भीलको सौंप दिया। भीलने उसे एक वणिकको बेच दिया। वह रास्तेमें जा रही थी कि जंगलमें आगसे जल गई और मरकर प्रथम नरकमें गई है। यह उसके बुरे कर्मोंका फल है।"

राजा सुग्रीवको वैराग्य हो गया। उसने उसी समय सुमित्रको राज्य सौंपकर दीक्षा ले ली और केवलीके साथ विहार किया। सुमित्र अपने स्थानको गया।

सुमित्रकी बहिन कलिंग देशके राजाके साथ ब्याही गई थी। उसको अनंगसिंह राजाका पुत्र, रत्नावतीका भाई कमल, हरकर ले गया। इस समाचारसे सुमित्र बहुत क्रुद्ध हुआ और वह युद्धकी तैयारी करने लगा। यह खबर एक विद्याधरके मुखसे चित्रगतिने सुनी। तब चित्रगतिने पत्नीके साथ पत्र सँदेसा सुमित्रके पास भेजा—"हे मित्र! आप कष्ट न करें। मैं थोड़े ही दिनोंमें आपकी बहिनको छुड़ा लाऊँगा।" फिर

चित्रगति अपनी सेना लेकर शिवपुर गया। चित्रगति और कमलमें घोर युद्ध होने लगा।

युद्धमें कमल हार गया, तब उसका पिता अनंगसिंह आया और उसने चित्रगतिको ललकारा,–“ छोकरे! भाग जा! नहीं तो मेरा यह खड्ग अभी तेरा सिर धड़से जुदा कर देगा।” चित्रगतिने हँसकर विद्यावलसे चारों तरफ अंधेरा कर दिया; अनंगसिंहके पाससे खड्ग छीन लिया और वह कुछ न कर सका। चित्रगति फिर सुमित्रकी वहनको लेकर वहाँसे चला गया। थोड़ी देरके वाद जव अंधेरा मिटा तव उसने चारों तरफ देखा तो मालूम हुआ कि चित्रगति तो चला गया है, वह पछताने लगा। फिर उसे मुनिके वचन याद आये कि, जो पुरुप तेरे हाथसे खड्ग छीनेगा वही तेरा जामाता होगा। मगर अव उसे वह कहाँ ढूंढता? वह अपने घर गया।

चित्रगतिने सुमित्रको इसकी वहिन लाकर सौंप दी। सुमित्रने उपकार माना। सुमित्र पहिले ही संसारसे उदास हो रहा था इस घटनाने उसके मनसे संसारकी मोहमाया सर्वथा निकाल दी और उसने सुयशा मुनिके पाससे दीक्षा ले ली। चित्रगति अपने देशको चला गया।

सुमित्र मुनि अनेक वरसों तक विहार करते हुए मगध देशमें आये और एक गाँवके वाहर एकान्तमें कायोत्सर्ग करके रहे। सुमित्रका सापत्न भाई पद्म–जो सुमित्रके गद्दी वैठनेपर देश छोड़कर चला गया था–भटकता हुआ वहाँ आ निकला। उसने सुमित्र मुनिको अकेले देखा। उसे विचार आया,–यही

पुरुष है जिसके कारणसे मेरी माता भागी और बुरी हालतमें दुःख झेलकर मरी, यही पुरुष है जिसके सबबसे मैं बन बन, और गाँव गाँव मारा मारा फिर रहा हूँ। आज मैं इससे बदला लूँगा। उसने धनुषपर बाण चढ़ाया और खींचकर मुनिकी छातीमें मारा। मुनिका ध्यान भंग हो गया। उन्होंने अपनी छातीमें बाण और सामने अपना भाई देखा। मुनिको स्नयाल आया,—भाई! मैंने इसको राज्य न देकर इसका बड़ा अपकार किया था। उन्होंने कहना चाहा,—भाई! मुझे क्षमा करो! मगर बोला न गया। बाणके घावने असर किया। वे जमीनपर गिर पड़े। दुष्ट पद्म खुश हुआ। मुनिने भाईसे और जगतके सभी जीवोंसे क्षमा माँगी और संथारा कर लिया। अर्हत अर्हत कहते हुए वे मरकर ब्रह्मलोकमें इन्द्रके सामानिक देव हुए।

पद्म वहाँसे भागा। अंधेरी रातमें कहीं सर्पपर पैर पड़ गया। सर्पने उसे काट खाया और वह मरकर सातवें नरकमें गया।

सुमित्रकी मृत्युके समाचार सुनकर चित्रगतिको बड़ा खेद हुआ। वह यात्राके लिए अपने पिताके साथ सिद्धायतनपर गया। उस समय और भी अनेक विद्याधर वहाँ आये हुए थे। अनंगसिंह भी अपनी पुत्री रत्नावतीके साथ वहाँ आया था। चित्रगति जब प्रभुकी पूजा स्तुति कर चुका तब देवता बने हुए सुमित्रने उसपर फूलोंकी वृष्टि की। अनंगसिंहने चित्रगतिको वहाँ पूरा परिचय पाया।

अपने देख आकर अनंगसिंहने चित्रगतिके पिता श्रीसूर

चक्रवर्त्तीको विवाहका संदेशा कहलाया । श्रीसूरने संदेशा स्वीकारा और चित्रगतिके साथ रत्नावलीका विवाह कर दिया । वह सुखसे दिन विताने लगा ।

श्रीसूर राजाने चित्रगतिको राज्य देकर दीक्षा ले ली । चित्र-गति न्यायसे राज्य करने लगा । एक वार उसके आधीन एक राजा मर गया । उसके दो पुत्र थे । वे दोनों राज्यके लिए लड़ने लगे । चित्रगतिने उनको समझाकर शांत किया । कुछ दिनके वाद उसने सुना कि दोनों भाई एक दिन लड़कर मारे गये हैं । इस समाचारसे उसे संसारसे वैराग्य हो गया और उसने, पुरंदर नामक पुत्रको राज्य देकर, पत्नी रत्नवती और अनुज मनोगति तथा चपलगतिके साथ दमधर मुनिके पाससे दीक्षा ले ली ।

चिर काल तक तपकर चित्रगति महेन्द्र देवलोकमें परमर्द्धिक देवता हुआ । उसके दोनों भाई और उसकी पत्नी भी उसी देवलोकमें देवता हुए ।

४ चौथा भव—

पूर्व विदेहके पद्म नामक प्रांतमें सिंहपुर नामका अपराजित शहर था । उसमें हरिनंदी नामका राजा राज्य करता था । उसके प्रियदर्शना नामकी रानी थी । चित्रगतिका जीव देवलोकसे चयकर प्रिय-दर्शनाके गर्भसे जन्मा । उसका नाम अपराजित रखा गया ।

५ पाँचवाँ भव—

जब वह बडा हुआ तब, विमलबोध नामक मंत्री-पुत्रके साथ उसकी मित्रता हो गई । एक दिन दोनों मित्र घोडोंपर सवार होकर फिरनेको निकले । घोडे वेकाबू हो गये और

भागे हुए एक जंगलमें जाकर ठहरे। वे घोड़ोंसे उतरे और जंगलकी शोभा देखने लगे। उसी समय एक पुरुष 'बचाओ! बचाओ!' पुकारता हुआ आकर अपराजितके चरणोंमें गिर पड़ा। अपराजितने उसे अभय दिया। विमलबोध बोला- "कुमार! बेजाने किसीको अभय देना ठीक नहीं है। कौन जाने यह पुरुष कुछ गुनाह करके आया हो।"

अपराजित बोला- "क्षत्रिय शरणमें आये हुएको अभय देते हैं। शरणागतके गुणदोष देखना क्षत्रियोंका काम नहीं है। उनका काम है केवल शरणमें आये हुएकी रक्षा करना।"

इतनेहीमें 'मारो! मारो!' पुकारते हुए कुछ सिपाही आये और बोले- "मुसाफिर! इसे छोड़ दो। यह लुटेरा है।" अपराजित बोला- "यह मेरी शरणमें आया है। मैं इसे नहीं छोड़ सकता।" तब हम इसे जबर्दस्ती पकड़कर ले जायँगे!" कहकर एक सिपाही आगे बढ़ा। अपराजितने, तलवार खींचकर और कहा- "खबरदार! आगे बढ़ा तो प्राण जायँगे।" सब सिपाही आगे आये और अपराजितपर आक्रमण करने लगे। अपराजित अपनेको बचाता रहा। जब सिपाहियोंने देखा कि इसको हराना कठिन है तो वे भाग गये। कौशलेशके पास जाकर उन्होंने फर्याद की।

कौशलपतिने लुटेरेके रक्षकको पकड़ लाने या मार डालनेके लिए फौज भेजी। अपराजितने सैकड़ों सिपाहियोंको यमधाम पहुँचाया। उसके बलको देखकर सेना भाग गई। तब राजा खुद फौजके साथ आया। घुड़सवारों और हाथीसवारोंने

अपराजितको चारों तरफसे घेर लिया। अपराजित भी घोड़ेपर सवार होकर अपना रणकौशल बताने लगा। अपराजितने खांडा और भाला चलाते हुए अनेकोंको धराशायी किया। कौशलपति एक हाथीपर बैठा हुआ था। अपराजितने हाथीपर भाला चलाया। महावत मारा गया। हाथी घूम गया। दूसरा हाथी सामने आया। अपराजित छलांग मारकर उस हाथीपर जा चढ़ा और उसके सवार व महावत दोनोंको मार डाला। राजा 'शाबाश! शाबाश!' पुकार उठा। वीर हमेशा वीरोंकी प्रशंसा करते हैं। चाहें वह शत्रु ही क्यों न हो।

कौशलपतिको उसके मंत्रीने कहाः-"महाराज! यह वीर तो अपने मित्र हरिनंदीका पुत्र है। अजानमें हम युद्ध कर रहे हैं। युद्ध रोकिए।"

राजाने युद्ध रोक दिया और कुमारको अपने पास बुलाया। स्नेहके साथ उसके सिरपर हाथ फेरा और कहाः-"तुम्हारी वीरता देखकर मैं बड़ा खुश हूँ। यह जानकर तो मुझे अधिक खुशी हुई है कि तुम मेरे मित्र हरिनंदीके पुत्र हो।" उसे और विमलबोधको लेकर वह शहरमे गया। राजाने डाकूको माफ कर दिया। और अपराजितके साथ अपनी कन्या कनकमालाका ब्याह कर दिया। अपने मित्र हरिनंदीको भी इसकी सूचना कर दी और यह भी कहला दिया कि अपराजित थोडे दिन कौशलमें ही रहेगा।

एक दिन रातमें अपराजित अपने मित्र विमलबोधको लेकर

किसीका कद बगैर कुछ पाप कम पड़ा। रस्तेमें उसने दुःख रुदन सुना,–"हाय! पृथ्वी क्या आज पुरुषविहीन हो गई है! मेरे! कोई मुझे इस दुष्टसे बचाओ।" अपराजित चौंक पड़ा। उसने घोड़ेको आवाजकी तरफ घुमा दिया। जहाँसे आवाज आई थी वहाँ दोनों मित्र पहुँचे। उन्होंने देखा कि अग्निकुंडके पास एक पुरुष एक स्त्रीको चोटी एक हाथसे पकड़े और दूसरे हाथमें तलवार उठाये उसे मारनेकी तैयारीमें है।"

अपराजितने ललकारा:–" नामर्द! औरतोंपर तलवार चलाता है? अगर कुछ दम हो तो पुरुषोंके साथ दो दो हाथ कर।" वह पुरुष स्त्रीको छोड़कर अपराजितपर झपटा। अपराजितने उसका वार खाली दिया। दोनों थोड़ी देर तक असियुद्ध करते रहे। उसकी तलवार टूट गई, तो अपराजितने भी अपनी तलवार डाल दी और दोनों बाहुयुद्ध करने लगे। अपराजितसे अपनेको हारता देख उस विद्याधरने मायासे अपराजितको नागपाशमें बाँध लिया। पूर्व पुण्यसे बली बने हुए अपराजितने पाशको तोड़ डाला और खड्ग उठाकर उसपर आघात किया। वह जख्मी होकर गिरा और बेहोश हो गया। विमलबोध और अपराजितने उपचार करके उसको होश कराया। जब उसे होश आया तब अपराजित बोला:–"और भी कुछ लेनेकी इच्छा हो तो, मैं तैयार हूँ।" वह बोला:–"मैं पूरी तरहसे हार गया हूँ। आप मेरी वेर्समें दवा है, वह घिसकर मेरे घावपर लगा दीजिए ताकि मेरे घाव भर जायँ।" अपराजितने औषध लगाई और वह अच्छा हो गया।

अपराजितके पूछनेपर विद्याधर बोलाः-"मेरा नाम सूर्य-कान्त है और इस युवतिका नाम अमृतमाला है। इसने ज्ञानीसे सुना कि, इसका ब्याह हरिनंदी राजाके पुत्र अपराजितके साथ होना बदा है तबसे यह उसीके नामकी माला जपती है। मैंने इसे देखा और मेरे साथ ब्याह करनेके लिए इसको उड़ा लाया। मैंने बहुत विनती की; मगर यह न मानी। बोली:-"इस शरीरका मालिक या तो अपराजित ही होगा या फिर अग्निहीसे यह शरीर पवित्र बनेगा।" मेरी बात न मानी इसलिए मैंने इसको अग्निके समर्पण करना स्थिर किया। इसी समय तुम आये और इसकी रक्षा हो गई।"

विमलबोध बोलाः-"ये ही हरिनंदीके पुत्र अपराजित है। भाग्यमें जो लिखा होता है वह कभी नहीं मिटता।" उसी समय रत्नमालाके मातापिता भी ढूँढते हुए वहाँ आ गये। उन्होंने यह सारा हाल सुना और वहीं कन्याको अपराजितके साथ ब्याह दिया। अपराजित यह कहकर वहाँसे विदा हुआ कि जब मैं बुलाऊँ तब इसे मेरी राजधानीमें भेज देना।

वहाँसे चलकर दोनों मित्र एक जंगलमें पहुँचे। धूप तेज थी। प्याससे अपराजितका हलक सूखने लगा। विमलबोध उसको एक झाड़के नीचे बिठाकर पानी लेने गया। वापिस आकर देखता क्या है कि वहाँ अपराजितका पता नहीं है। वह चारों तरफ ढूँढने लगा, परन्तु अपराजितका कहीं पता न चला। बिचारा विमलबोध आक्रंदन करता हुआ इधर उधर भटकने लगा। कई दिन ऐसे ही निकल गये। एक दिन एक गाँवमें

वह उदास बैठा था, उसी समय उसके सामने दो पुरुष आये और उसका नाम पूछा। उसने नाम बताया, तब वे बोले— "हम भुवनभानु नामक विद्याधरके नौकर हैं। हमारे राजाके कमलिनी और कुमुदिनी नामकी दो पुत्रियाँ हैं। उनके लिए अपराजित ही योग्य वर है। यही बात निमित्तियाने कही थी। इसलिए अपराजितको लानेके लिए हमें हमारे मालिकने भेजा। हमने तुम्हें वनमें देखा और हम अपराजितको उठा ले गये; मगर अपराजित तुम्हारे बगैर मौन धारकर बैठा है। अब तुम चलो और हमारे स्वामीकी इच्छा पूरी करो।"

विमलबोध आनंदपूर्वक उनके साथ गया। दोनों मित्र मिलकर बहुत खुश हुए। फिर भुवनभानुकी कन्याओंके साथ अपराजितकी शादी हो गई। कुछ दिनके बाद अपराजित वहाँसे भी रवाना हो गया।

दोनों मित्र आगे चले। और श्रीमंदिरपुर पहुँचे। वहाँ उन्होंने शहरमें कोलाहल और उदासी देखी। पूछनेसे मालूम हुआ कि यहाँके दयालु राजाके कोई छुरी मार गया है। उसका घाव भयानक हो गया है। अनेक इलाज किये मगर अबतक कोई आराम नहीं हुआ। अब जान पड़ता है राजा न बचेगा।

अपराजितको दया आई। वह मित्र सहित राजमहलमें पहुँचा। उसने सूर्यकांतकी दी हुई ओषधि घिसकर लगाई और राजा अच्छा हो गया। राजाने उसका हाल जानकर अपनी कन्या रंभा उसके साथ ब्याह दी।

कुछ दिनके बाद अपराजित वहाँसे मित्र सहित रवाना हुआ और कुंडिनपुर पहुँचा। वहाँ स्वर्णकमलपर बैठे देशना देते हुए एक मुनिको उसने देखा। उन्हें वंदनाकर वह बैठा और धर्मोपदेश सुनने लगा। देशना समाप्त होनेपर अपराजितने पूछा:– "भगवन् मैं भव्य हूँ या अभव्य? केवलीने जवाब दिया:– "हे भद्र! तू भव्य है। इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें बाईसवाँ तीर्थंकर होगा और तेरा मित्र मुख्य गणधर होगा।" यह सुनकर दोनोंको आनद हुआ।

जनानंद नामके नगरमें जितशत्रु नामका राजा था। उसके धारिणी नामकी रानी थी। रत्नवती स्वर्गसे च्यवकर धारिणीके गर्भसे जन्मी। उसका नाम प्रीतिमती रखा गया। वह सब कला-ओंमें निपुण हुई। उसके आगे अच्छे अच्छे कलाकार भी हार मानते थे। इसलिए उसके पिता जितशत्रुने प्रीतिमतीकी इच्छा जानकर सब जगह यह प्रसिद्ध कर दिया कि जो पुरुष प्रीति-मतीको जीतेगा उसीके साथ उसका ब्याह होगा। और अमुक समयमें इसका स्वयंवर होगा। उसीमें कलाओंकी परीक्षा होगी।

स्वयंवरमंडप सजाया गया। अनेक राजा और राजकुमार वहाँ जमा हुए। प्रीतिमतीने उनसे प्रश्न किये; परन्तु कोई जवाब न दे सका। अपराजित भी भेस बदले हुए वहाँ आ पहुँचा था। जब उसने देखा कि सब राजा लोग निरुत्तर हो गये हैं, तब उससे न रहा गया। वह आगे आया और उसने प्रीतिमतीके प्रश्नोंका उत्तर दिया। प्रीतिमती हार गई और उसने अपरा-जितके गलेमें वरमाला डाल दी। जितशत्रु चिन्तामें पड़ा,–अफसोस!

मेरी भूलसे और अपनी हठसे आज यह सोनेकी प्रतिमा, इस अज्ञान राहगीरकी पत्नी होगी। भाग्य!

दूसरे राजा लड़नेको तैयार हुए। अपराजितने उन सबको पराजित कर दिया। सोमप्रभने अपने भानजेको पहचाना और उसे गले लगाया। फिर उसने जितशत्रु वगैरासे अपराजितका परिचय करा दिया। उसका परिचय पाकर सबको बड़ा आनंद हुआ। धूमधामके साथ अपराजित और प्रीतिमतीका ब्याह हो गया। जितशत्रुके मंत्रीकी कन्याके साथ विमलबोधकी भी शादी हो गई। दोनों सुखसे दिन बिताने लगे।

कई दिनके बाद हरिनंदीका एक आदमी वहाँ आया। उसे देखकर अपराजितको बड़ी खुशी हुई। वह उससे गले मिलकर माता पिताका हाल पूछने लगा। आदमीने कहा:–" आपके वियोगमें वे मरणासन्न हो रहे हैं। कभी कभी आपके समाचार सुनकर उनको नये जीवनका अनुभव होता है। अभी आपकी शादीके समाचार सुनकर वे बड़े खुश हुए हैं, आपको देखनेके लिए आतुर हैं। और इसलिए उन्होंने बुलानेके लिए मुझे यहाँ भेजा है। मन्न अब चलिए माता-पिताको अधिक दुःख न दीजिए।

अपराजितको मातापिताका हाल सुनकर दुःख हुआ। वह अपनी पत्नियोंको लेकर राजधानीमें गया। मातापिता पुत्रको और पुत्रवधुओंको देखकर आनंदित हुए।

मनोगति और चपलगतिके जीव माहेन्द्र देवलोकसे चयकर अपराजितके अनुज बंधु हुए।

राजा हरिनंदीने अपराजितको राज्य देकर दीक्षा ली और तप करके वे मोक्ष गये।

एक वार अपराजित राजा फिरते हुए एक बगीचेके अंदर जा पहुँचा। वह बगीचा समुद्रपाल नामक सेठका था। सुख-सामग्रियोंकी उसमें कोई कमी न थी। सेठका लड़का अनंगदेव वहाँ क्रीडामें निमग्न था। राजाके आनेकी बात जानकर उसने उनका स्वागत किया। राजाको यह जानकर परम संतोष हुआ कि मेरे राजमें ऐसे सुखी और समृद्ध पुरुष हैं। दूसरे दिन राजा जब फिरने निकला तब उसने देखा कि लोग एक मुर्देको लेजा रहे हैं। वह अनंगपालका मुर्दा था। राजाको बड़ा खेद हुआ। जीवनकी अस्थिरताने उसको संसारसे विरक्त कर दिया। कल शामको जो परम स्वस्थ और सुखमें निमग्न था आज शामको उसका मुर्दा जा रहा है। यह भी कोई जीवन है ?

राजाने प्रीतिमतीसे जन्मे हुए पद्मनाभके पुत्रको राज्य देकर दीक्षा ली। उसके साथ ही उसके भाइयोंने और पत्नी प्रीति-मतीने भी दीक्षा ले ली।

६ छठा भव— वे सभी तपकर कालधर्मको प्राप्त हुए और आरण नामके ग्यारहवें देवलोकमें इन्द्रके सामानिक देव हुए।

भरत क्षेत्रके हस्तिनापुरमें श्रीषेण नामका राजा था। उसकी श्रीमती नामकी रानी थी। इसके गर्भसे अपरा-

७ सातवाँ भव—जितका जीव चयकर उत्पन्न हुआ। उसका नाम (शख राजा) शख रखा गया। बड़ा होनेपर वह बड़ा विद्वान

और वीर हुआ। विमलबोधका जीव भी चयकर श्रीषेण राजाके मंत्री गुणनिधिके घर उत्पन्न हुआ। उसका नाम मतिप्रभ रखा गया। शंख और मतिप्रभकी आपसमें बहुत मित्रता हो गई।

एक बार राजा श्रीषेणके राज्यमें समरकेतु नामका डाकू लोगोंको लूटने और सताने लगा। प्रजा पुकार करने आई। राजा उसको दंड देनेके लिए जानेकी तैयारी करने लगा। कुमार शंखने पिताको आग्रहपूर्वक रोका और आप उसको दंड देने गया।

डाकूको परास्त किया। वह कुमारकी शरणमें आया। कुमारने उसका सारा धन उन मनुष्योंको दिला दिया जिनको उसने लूटा था। फिर डाकूको माफ कर उसे अपनी राजधानीमें ले चला।

रस्तेमें शंखका पड़ाव था। वहीं रात्रिमें उसने किसी स्त्रीका करुण रुदन सुना। वह खड्ग लेकर उधर चला। रोती हुई स्त्रीके पास पहुँचकर उससे रोनेका कारण पूछा। स्त्रीने उत्तर दिया:–"अंगदेशमें जितारी नामके राजाकी कन्या यशोमती है। उसे श्रीषेणके पुत्र शंखपर प्रेम हो गया। जितारीने कन्याकी इच्छाके अनुसार उसकी सगाई कर दी। विद्याधर मणिशेखरने जितारीसे यशोमतीको माँगा। राजाने इन्कार किया। तब विद्याधर अपने विद्याबलसे उसको हरकर ले चला। मैं भी कन्याके लिपट रही। इसलिए वह दुष्ट मुझको इस जंगलमें डालकर चला गया। यही कारण है कि मैं रो रही हूँ।"

शंखकुमार उस धायको अपने पड़ावमें जानेकी आज्ञा कर यशोमतीको ढूँढने निकला। एक पर्वतपर उसने यशोमतीके साथ

विद्याधरको देखा और ललकारा। विद्याधरके साथ शंखका युद्ध हुआ। अन्तमें विद्याधर हार गया और उसने यशोमती शंखको सौंप दी। शंखके समान पराक्रमी वीरको कई विद्याधरोंने भी अपनी कन्याएँ अर्पण कीं। शंख सबको लेकर हस्तिनापुर गया। मातापिताको अपने पुत्रके पराक्रमसे बहुत आनंद हुआ।

शंखके पूर्व जन्मके बंधु सूर और सोम भी आरण देवलोकसे चयकर श्रीषेणके घर यशोधर और गुणधर नामके पुत्र हुए।

राजा श्रीषेणने पुत्रको राज्य देकर दीक्षा ली। जब उन्हें केवलज्ञान हुआ तब राजा शंख अपने अनुजों और पत्नी सहित देशना सुनने गया। देशनाके अंतमें शंखने पूछाः— "भगवन् यशोमतीपर इतना अधिक स्नेह मुझे क्यों हुआ?"

केवलीने कहाः—"जब तू धनकुमार था तब यह तेरी धनवती पत्नी थी। सौधर्म देवलोकमें यह तेरा मित्र हुआ। चित्रगतिके भवमें यह तेरी रत्नवती नामकी प्रिया थी माहेंद्र देवलोकमें यह तेरा मित्र थी। अपराजितके भवमें यह तेरी प्रीतिमती नामकी प्रियतमा थी। आरण देवलोकमें तेरा मित्र थी। इस भवमें यह तेरी यशोमती नामकी पत्नी हुई है। इस तरह सात भवोंसे तुम्हारा संबंध चला आ रहा है। यही कारण है कि तुम्हारा आपसमें बहुत प्रेम है। भविष्यमें तुम दोनों अपराजित नामके अनुत्तर विमानमें जाओगे और वहाँसे चयकर इसी भरतखंडमें नेमिनाथ नामके चौवीसवें तीर्थंकर होगे और

यह राजीमती नामकी स्त्री होगी। तुमसे ही ब्याह करना स्थिरकर यह कुमारी ही तुमसे दीक्षा लेगी और मोक्षमें जायगी।"

शंखको वैराग्य हुआ और उसने दीक्षा ले ली। उसके अनुजोंने, मित्रोंने और पत्नीने भी दीक्षा ली। बीस स्थानका आराधन कर उसने तीर्थंकर गोत्र बाँधा।

८ आठवाँ भव— अंतमें पादोपगमन अनशन कर शंख मुनि सबके साथ अपराजित नामके चौथे अनुत्तर विमानमें उत्पन्न हुए।

भरत खंडके सौरिपुर नगरमें समुद्रविजय नामके राजा थे। उनकी पत्नीका नाम शिवादेवी था। शिवा-

९ नवाँ भव। देवीको चौदह महा स्वप्न आए और शंखका (अरिष्ट नेमि) जीव अपराजित विमानसे चयकर कार्तिक वदि १२ के दिन चित्र नक्षत्रमें शिवादेवीकी कोखमें आया। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक मनाया। क्रमसे नौ महीने और आठ दिन पूरे होने पर श्रावण सुदि ५ के दिन चित्र नक्षत्रमें शिवादेवीने पुत्ररत्नको जन्म दिया। इन्द्रादि देवोंने जन्म कल्याणक मनाया। उनका लक्षण शंखका और वर्ण श्याम था। स्वप्नमें माताने अरिष्ट रत्नमयी चक्रधारा देखी थी इसलिए उनका नाम अरिष्टनेमि रक्खा।

समुद्रविजयके एक भाई वसुदेव थे। उनके श्रीकृष्ण और बल-देव नामके दो पुत्र थे। श्रीकृष्णकी वीरता तो जगप्रसिद्ध है। वे

१-श्रीकृष्णका एवं उनके जानेके लिए आगे दिए हुए वसुदेव चरित्रको देखो।

वसुदेव थे। श्रीकृष्ण और अरिष्टनेमि चचेरे भाई थे। श्रीकृष्ण बड़े थे और अरिष्टनेमि छोटे। श्रीकृष्णकी एक बहुत बड़ी व्यायाम-शाला थी। उसमें खास खास व्यक्तियाँ ही जा सकती थीं। उसमें रखे हुए आयुधोंका उपयोग करना हरेकके लिए सरल नहीं था। उसमें एक शंख रक्खा हुआ था। वह इतना भारी था कि अच्छे अच्छे योद्धा भी उसे उठा नहीं सकते थे, बजानेकी तो बात ही क्या थी?

एक दिन अरिष्टनेमि फिरते हुए कृष्णकी आयुधशालामें पहुँच गये। उन्होंने इतना बडा शंख देखा और कुतूहलके साथ सवाल कियाः—"यह क्या है? और यहाँ क्यों रक्खा गया है?"

नौकरने जवाब दियाः—"यह शंख है। पाचजन्य इसका नाम है। यह इतना भारी है कि श्रीकृष्णके सिवा कोई इसे उठा नहीं सकता है।"अरिष्टनेमि हँसे और शंख उठाकर बजाने लगे। शंखध्वनि सुनकर शहर काँप उठा। श्रीकृष्ण विचारने लगे, ऐसी शंखध्वनि करनेवाला आज कौन आया है? इन्द्र है या चक्रवर्तीने जन्म लिया है? उसी समय उनको खबर मिली कि, यह काम अरिष्टनेमिका है। उन्हें विश्वास न हुआ। वे खुद गये। देखा कि अरिष्टनेमि इस तरह शंख बजा रहे हैं मानो कोई बच्चा खिलौनेसे खेल रहा है।

कृष्णको शंका हुई, कि क्या आज सबसे बलशाली होनेका मेरा दावा यह लडका खारिज कर देगा? उन्होंने इसका फैसला कर लेना ठीक समझकर अरिष्टनेमिसे कहाः—"भाई! आओ!

आज हम कुश्ती करें। देखें कौन बली है।" अरिष्टनेमिने विवेक किया:—"बंधु! आप बड़े हैं, इसलिए हमेशा ही बली हैं।" श्रीकृष्णने कहा:—"इसमें क्या हर्ज है? थोड़ी देर खेल ही हो जायगा।" अरिष्टनेमि बोले:—"धूलमें लोटनेकी मेरी इच्छा नहीं है। मगर बलपरीक्षाका मैं दूसरा उपाय बताता हूँ। आप हाथ लंबा कीजिये। मैं उसे झुकाता हूँ। और मैं लंबा करूँ आप उसे झुकावें। जो हाथ न झुका सकेगा वही कम ताकत-वाला समझा जायगा।"

श्रीकृष्णको यह बात पसंद आई। उन्होंने हाथ लंबा किया। अरिष्टनेमिने उनका हाथ इस तरह झुका दिया जैसे कोई बेंतकी पतली लकड़ीको झुका देता है। फिर अरिष्टनेमिने अपना हाथ लंबा किया; परंतु श्रीकृष्ण उसे न झुका सके। वे सारे बलसे उसको झुकाने लगे पर वे इस तरह झूल गये जैसे कोई लोहेके डंडेपर झूलता हो। श्रीकृष्णका सबसे अधिक बलशाली होनेका खयाल जाता रहा। उन्होंने सोचा,—दुनियामें एकसे एक अधिक बलवान हमेशा जन्मता ही रहता है। फिर बोले,—"भाई! तुम्हें बधाई है! तुम पर कुटुंब योग्य अभिमान कर सकता है।"

अरिष्टनेमि युवा हुए; परंतु यौवनका मद उनमें न था। जवानी आई मगर जवानीकी ऐयाशी उन्माद उनके पास न थी। वे उदास, दुनियाके कामोंमें निरुत्साह, सुखसामग्रियोंसे बेपरवाह और एकांत सेवी थे। उनको अनेक बार राग-रंगमें लगानेकी कोशिश की गई, मगर सब बेकार हुई।

शादी करनेके लिए उन्हें कितना मनाया गया मगर वे राजी न हुए।

श्रीकृष्णके अनेक रानियाँ थीं। एक दिन वे सभी जमा हो गई और अरिष्टनेमिको छेड़ने लगीं। एक बोलीः-"अगर तुम पुरुष न होते तो ज्यादा अच्छा होता।" दूसरीने कहाः-"अजी इनके मन लायक मिले तब तो ये शादी करें न ?" तीसरी बोलीः-"बिचारे यह सोचते होंगे कि, वहू लाकर उसे खिलायँगे क्या ? जो आदमी हाथपर हाथ धरे बैठा रहे वह दुनियामें किस कामका है ?" चौथीने उनकी पीठपर मुक्का मारा और कहाः-"अजब गूँगे आदमी हो जी ! कुछ तो बोलो। अगर तुम कुछ उद्योग न कर सकोगे तो भी कोई चिंताकी बात नहीं है। कृष्णके सैकड़ों रानियाँ हैं। वे खाती पहनती हैं तुम्हारी स्त्रीको भी मिल जायगा। इसके लिए इतनी चिंता क्यों ?" पाँचवींने थनककर कहाः-"माँ बाप बेटेको व्याहनेके लिए रात दिन रोते हैं; मगर ये हैं कि इनके दिल पर कोई असर ही नहीं होता। जान पड़ता है विधाताने इनमें कुछ कमी रख दी है।" छठीने चुटकी काटी और कहाः—"ये तो मिट्टीके पुतले हैं।"

अरिष्टनेमि हँस पड़े। इस हँसीमें उल्लास था, उपेक्षा नहीं। सब चिल्ला उठीं,—'मंजूर !' 'मंजूर !' एक बोलीः—"अब साफ कह दो कि शादी करूँगा।" दूसरीने कहाः—"नहीं तो पीछेसे मुकर जाओगे।" तीसरीने ताना माराः-"हाँजी वे पेंदेके आदमी हैं। इनका क्या भरोसा ?" चौथी बोलीः—"माता

पिलकी तो यह बात सुनकर चोंकि सिख जायँगी !" पीछकी ने कहा—" श्रीकृष्ण इस खुशीमें हजारों रुपये देंगे !" उन्होंने कहा—"अब जल्दीसे ही कह दो वरना पूँछ मेंज ?" अरिष्ट-नेमि बोला—"जाओ, मुझे दिक न करो ! तुम्हारी इच्छा हो सो करो !"

सब दौड़ गईं। कोई समुद्रविजयके पास गई, कोई माताजी-के पास गई और कई श्रीकृष्णके पास गईं। महलोंमें और बाहरमें धूम मच गई। राजा समुद्रविजयने तत्काल श्रीकृष्णको कहीं सगाई और ब्याह साथ ही साथ नक्की कर आनेके लिए भेजा। श्रीकृष्ण मथुराके राजा उग्रसेनकी पुत्री राजीमतीके साथ सगाई कर आये और कह आये कि हम थोड़े ही दिनोंमें ब्याहका नक्की कर लिखेंगे। तुम ब्याहकी तैयारी कर रखना।

कृष्णके सौरिपुर आते ही समुद्रविजयने जोशी बुलाये और उन्हें कहा—"इसी महीनेमें अधिकसे अधिक जल्दीसे जल्दीमें ब्याहका मुहूर्त निकालो।" जोशीने उत्तर दिया—"महाराज! अभी तो चौमासा है। चौमासेमें ब्याह शादी वगैरा कार्य नहीं होते। समुद्रविजय अधीर होकर बोले—" सब हो सकते हैं। वे क्या कहते हैं कि, हमें न करो। बड़ी कठिनतासे अरिष्टनेमि शादी करनेको राजी हुआ है। अगर वह फिर मुकर जायगा तो कोई उस न मना सकेगा।"

जोशीने,—"जैसी महाराजकी इच्छा।" कहकर सावन सुदि ६ का मुहूर्त निकाला। घर घर बंदनवार बँधे और राजमहलोंमें ब्याहके गीत गाए जाने लगे। ब्याहवाले दिन बड़ी धूमके साथ

बरात रवाना हुई। अरिष्टनेमिका वह अलौकिक रूप देखकर सब मुग्ध हो गये। स्त्रियाँ ठगीसी खड़ी उस रूपमाधुरीका पान करने लगीं।

बरात मथुराकी सीमामें पहुँची। राजीमतीको खबर लगी। वह श्रृंगार अधूरा छोड़ बरात देखनेके लिए छतपर दौड़ गई। गोधूलिका समय था। अस्त होते हुए सूर्यकी किरणें नेमिनाथजीके मुकुटपर गिरकर उनके मुखमंडलको सूर्यकासा तेजोमय बना रहा था। राजीमती उस रूपको देखनेमें तल्लीन हो गई। वह पासमें खड़ी सखि-सहेलियोंको भूल गई, पृथवी, आकाशको भूल गई, अपने आपको भी भूल गई। उसके सामने रह गई केवल अरिष्टनेमिकी त्रिभुवन-मन-मोहिनी मूर्ति। बरात महलके पास आती जा रही थी और राजीमतीका हृदय आनंदसे उछल रहा था। उसी समय उसकी दाहिनी आँख और भुजा फड़की। राजीमती चौंक पड़ी मानो किसीने पीठमें मुक्का मारा है। सखियाँ पास खड़ी थीं। एकने पूछा:-"बहिन! क्या हुआ?" राजीमतीने गद्गद कंठ होकर कहा:—"सखि! दाहिनी आँख और भुजाका फडकना किसी अशुभकी सूचना दे रहा है। मेरा शरीर भयके मारे पानी पानी हुआ जा रहा है।" सखियोंने सान्त्वना दी:-"अभी थोड़ी ही देरमें शादी हो जायगी। बहिन घबराओ नहीं। आँख तो बादीसे फड़कने लगी है। चलो अब नीचे चलें। बारात बिल्कुल पास आ गई है।" राजीमती बोली:—"ठहरो, बरातको और पास आ जाने दो; तब नीचे चलेंगी।" राजीमती फिर बरातकी तरफ देखने लगी।

शिवाकी तो यह बात सुनकर बाँछें खिल जायँगी।” पाँचवीं ने कहा:—“ श्रीकृष्ण इस खुशीमें हजारों द्रव्य देंगे।” छठीने कहा:—“अब जल्दीसे ही कह दो वरना पहुँ मैं ?” अरिष्टनेमि बोले:—“जाओ, मुझे दिक न करो! तुम्हारी इच्छा हो सो करो।”

सब दौड़ गईं। कोई समुद्रविजयके पास गई, कोई शिवादेवी-के पास गई और कई श्रीकृष्णके पास गईं। महलोंमें और शहरमें धूम मच गई। राजा समुद्रविजयने तत्काल श्रीकृष्णको कहीं सगाई और ब्याह साथ ही साथ पक्की कर आनेके लिए भेजा। श्रीकृष्ण मथुराके राजा उग्रसेनकी पुत्री राजीमतीके साथ सगाई कर आये और कह आये कि हम थोड़े ही दिनोंमें ब्याहका मिती कर लिखेंगे। तुम ब्याहकी तैयारी कर रखना।

कृष्णके सौरीपुर जाते ही समुद्रविजयने जोशी बुलाये और उन्हें कहा:—“इसी महीनेमें अधिकसे अधिक जल्दी महीनेमें ब्याहका मुहूर्त निकालो।” जोशीने उत्तर दिया—“महाराज! अभी तो चौमासा है। चौमासेमें ब्याह शादी वगैरा कार्य नहीं होते। समुद्रविजय अधीर होकर बोले:—“ सब हो सकते हैं। वे क्या कहते हैं कि, देर न करो। बड़ी कठिनतासे अरिष्टनेमि शादी करनेको राजी हुआ है। अगर यह फिर मुकर जायगा तो कोई उसे न मना सकेगा।”

जोशीने,—“जैसी महाराजकी इच्छा।” कहकर सावन सुदि ६ का मुहूर्त निकाला। घर घर बंदनवार बँधे और राजमहलमें ब्याहके गीत गाये जाने लगे। ब्याहवाले दिन बड़ी धूमके साथ

बरात रवाना हुई। अरिष्टनेमिका वह अलौकिक रूप देखकर सब मुग्ध हो गये। स्त्रियाँ ठगीसी खड़ी उस रूपमाधुरीका पान करने लगीं।

बरात मथुराकी सीमामें पहुँची। राजीमतीको खबर लगी। वह शृंगार अधूरा छोड़ बरात देखनेके लिए छतपर दौड़ गई। गोधूलिका समय था। अस्त होते हुए सूर्यकी किरणें नेमिनाथजीके मुकुटपर गिरकर उनके मुखमंडलको सूर्यकासा तेजोमय बना रहा था। राजीमती उस रूपको देखनेमें तल्लीन हो गई। वह पासमें खड़ी सखि-सहेलियोंको भूल गई, पृथवी, आकाशको भूल गई, अपने आपको भी भूल गई। उसके सामने रह गई केवल अरिष्टनेमिकी त्रिभुवन-मन-मोहिनी मूर्ति। बरात महलके पास आती जा रही थी और राजीमतीका हृदय आनंदसे उछल रहा था। उसी समय उसकी दाहिनी आँख और भुजा फड़की। राजीमती चौंक पड़ी मानो किसीने पीठमें मुक्का मारा है। सखियाँ पास खड़ी थीं। एकने पूछा:-"बहिन! क्या हुआ?" राजीमतीने गद्गद कंठ होकर कहा:—" सखि! दाहिनी आँख और भुजाका फडकना किसी अशुभकी सूचना दे रहा है। मेरा शरीर भयके मारे पानी पानी हुआ जा रहा है।" सखियोंने सान्त्वना दी:-"अभी थोडी ही देरमें शादी हो जायगी। बहिन घबराओ नहीं। आँख तो वादीसे फड़कने लगी है। चलो अब नीचे चलें। बारात बिल्कुल पास आ गई है।" राजीमती बोली:—"ठहरो, बरातको और पास आ जाने दो; तब नीचे चलेंगी।" राजीमती फिर बरातकी तरफ देखने लगी।

नेमिनाथका रथ ज्योंही महलके पास पहुँचा त्योंही उनके कानोंमें पशुओंका आर्तनाद पड़ा। वे चौंककर इधर उधर देखने लगे और बोले—"सारथी! पशुओंकी यह कैसी आवाज आ रही है?" सारथीने जवाब दिया—"यह पशुओंका आर्तनाद है। ये कह रहे हैं, हे दयालु! हमें छुड़ाओ! हमने किसीका कुछ अपराध नहीं किया। क्यों बेफायदा हमारे प्राण लिये जाते हैं?" नेमिनाथजीने पूछा—"इनके प्राण क्यों लिए जायँगे?" सारथीने जवाब दिया—"आपके बरातियोंके लिए इनका भोजन होगा।"

"क्या कहा? मेरे ही कारण इनके प्राण लिये जायँगे? ऐसा नहीं हो सकता!" कहकर उन्होंने अपना रथ पशुशालाकी तरफ घुमानेका हुक्म दिया।" सारथीने रथ पशुशालामें पहुँचा दिया। नेमिनाथजी रथसे उतर पड़े और उन्होंने पशुशालाका फाटक खोल दिया। पशु अपने प्राण लेकर भागे। क्षण वारमें पशुशाला खाली हो गई। सभी स्तब्ध होकर यह घटना देखते रहे।

नेमिनाथजी पुनः रथपर सवार हुए और हुक्म दिया—"वापस घर चलो। ब्याह नहीं करूँगा।" सारथी यह हुक्म सुनकर विस्मित सा हो रहा। फिर आवाज आई,—"रथ चलाओ! क्या देखते हो?" सारथीने लाचार होकर रथ लौटाया। समुद्रविजयजी, माता शिवादेवी, बंधु श्रीकृष्ण और दूसरे सभी हितैषियोंने आकर रथको घेर लिया। मातापिता रोने लगे। हितैषी समझाने लगे; मगर अरिष्टनेमि स्थिर थे। श्रीकृष्ण

बोले:—" भाई ! तुम्हारी कैसी दया है ? पशुओंकी आर्त वाणी सुनकर तुमने उन्हें सुखी करनेके लिए उनको मुक्त कर दिया; मगर तुम्हारे मातापिता और स्वजनसंबंधी रो रहे हैं तो भी उनका दुःख मिटानेकी बात तुम्हें नहीं सूझती। यह दया है या दयाका उपहास ? पशुओंपर दया करना और मातापिताको रुलाना, यह दयाका सिद्धांत तुमने कहाँसे सीखा ? चलो शादी करो और सबको सुख पहुँचाओ। "

नेमिनाथ बोले:—"पशु चिल्लाते थे, किसीको बंधनमें डाले बिना अपने प्राणोंकी रक्षा करनेके लिए और मातापिता रो रहे हैं, मुझे संसारके बंधनोंमें बाँधनेके लिए। हजारों जन्म बीत गये। कई बार शादी की, मातापिताको सुख पहुँचाया, स्वजन संबंधियोंको खुश किया; परंतु सबका परिणाम क्या हुआ ? मेरे लिए संसार भ्रमण। जैसे जैसे मैं भोगकी लालसामें फँसता गया, वैसे ही वैसे मेरे बंधन दृढ होते गये। और माता पिता ? वे अपने कर्मोंका फल आप ही भोगेंगे। पुत्रोंको ब्याहने पर भी मातापिता दुखी होते हैं, बली और जवान पुत्रोंके रहते हुए भी मातापिता रोगी बनते हैं, एवं मौतका शिकार हो जाते हैं। प्राणियोंको संसारके पदार्थोंमें न कभी सुख मिला है और न भविष्यमें कभी मिलेहीगा। अगर पुत्रको देखकर ही सुख होता हो तो मेरे दूसरे भाई हैं। उन्हें देखकर और उनको ब्याहकर वे सुखी हों। बंधु ! मुझे क्षमा करो। मैं दुनियाके चक्करसे बिल्कुल बेजार हो गया हूँ। अब मैं हरगिज इस चक्करमें न

रहूँगा। मैं इस चक्करमें घुमानेवाले कर्मोंका नाश करनेके लिए संयमरत्न ग्रहण करूँगा और उनसे निश्चिंत होकर शिवरमणीके साथ शादी करूँगा।"

मातापिताविने समझ लिया,—अब नेमिनाथ न रुकेंगे। इनको रोक रखना व्यर्थ है। सबने रथको रस्ता दे दिया। नेमिनाथ सौरिपुर पहुँचे। उसी समय लोकांतिक देवोंने आकर प्रार्थना की,—"प्रभो! तीर्थ प्रवर्ताइए।" नेमिनाथ तो पहिले ही तैयार थे। उन्होंने वार्षिक दान देना आरंभ कर दिया।

इस तरफ जब राजीमतीको यह खबर मिली कि नेमिनाथजी शादी करनेसे मुखमोड़, संसारसे उदास हो, दीक्षा लेनेके इरादेसे सौरीपुर लौट गये हैं तो उसके हृदयपर बड़ा आघात लगा। वह मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ी। जब शीतोपचार करके वह होशमें आई गई तो करुण आक्रंदन करने लगी। सखियाँ उसे समझाने लगीं,—"बहिन! व्यर्थ क्यों रोती हो? स्नेह-हीन और निर्दय पुरुषके लिए रोना तो बहुत बड़ी भूल है। तुम्हारा उसका संबंध ही क्या है? न उसने तुम्हारा हाथ पकड़ा है, न सप्तपदी पढ़ी है और न तुम्हारे घर आकर उसने तोरण ही बाँधा है। वह तुम्हारा कौन है जिसके लिए ऐसा विलाप करती हो? शांत हो। तुम्हारे लिए सैकड़ों राजकुमार मिल जायँगे।"

राजीमती बोली:—"सखियो! यह क्या कह रही हो कि वे मेरे कौन हैं? वे मेरे देवता हैं, वे मेरे जीवन-धन हैं, वे मेरे इस लोक और परलोकके साधक हैं।

उन्होंने मुझको ग्रहण नहीं किया है, परन्तु मैंने उनके चरणोंमें अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है। देवता भेट स्वीकार करें या न करें। भक्तका काम तो सिर्फ भेट अर्पण करना है। अर्पण की हुई वस्तु क्या वापिस ली जा सकती है? नहीं बहिन! नहीं! उन्होंने जिस संसारको छोड़ना स्थिर किया है मैं भी उस संसारमें नहीं रहूँगी। उन्होंने आज मेरा कर ग्रहण करनेसे मुख मोड़ा है; परन्तु मेरे मस्तकपर वासक्षेप डालनेके लिए उनका हाथ जरूर बढ़ेगा। अब न रोऊँगी। उनका ध्यान कर अपने जीवनको धन्य बनाऊँगी।"

राजीमतीने हीरोंका हार तोड़ दिया, मस्तकका मुकुट उतार कर फैंक दिया, जेवर निकाल निकालकर डाल दिये, सुंदर वस्त्रोंके स्थानमें एक सफेद साड़ी पहन ली और फिर वह नेमिनाथके ध्यानमें लीन हो गई।

वार्षिक दान देना समाप्त हुआ। नेमिनाथजीने सहस्राम्र वनमें जाकर सावन सुदि ६ के दिन चित्रा नक्षत्रमें दीक्षा ली। इन्द्रादि देवोंने आकर दीक्षाकल्याणक किया। उनके साथ ही एक हजार राजाओंने भी दीक्षा ली। दूसरे दिन प्रभुने वरदत्त ब्राह्मणके घर क्षीरसे पारणा किया।

नेमिनाथजीके छोटे भाई रथनेमिने एक वार राजीमतीको देखा। वह उसपर आसक्त हो गया और उसको वशमें करनेके लिए उसके पास अनेक तरहकी भेटें भेजने लगा। राजीमती यद्यपि किन्हीं भेटोंका उपभोग नहीं करती थी तथापि उन्हें यह सोचकर रख लेती थी कि ये मेरे प्राणेश्वरके अनुजकी

भेजी हुई भेटें हैं। कभी कभी वह समुद्रविजयकी और शिवादेवीके पास जाती। वहाँ रथनेमि भी उससे मिलता और हँसी मजाक करता। वह निष्कम्प भावसे उसके परिहासका उत्तर देती और अपने घर लौट जाती। इससे रथनेमि समझता कि, यह भी मुझपर अनुरक्त है।

एक दिन एकांतमें रथनेमिने कहा—" हे स्त्रियोंके गौर वक्ष्य राजीमती! तुम इस वैरागीके वेषमें रहकर क्यों अपना यौवन गुमाती हो? मेरा भाई जड़मूर्ख था। वह तुम्हारी कदर न कर सका। तुम्हारे इस रूपपर, इस हास्यपर और इस यौवनपर हजारों राज, हजारों ताज और वैराग्यके भाव न्योछावर किये जा सकते हैं। मैं तुम्हारे चरणोंमें अपना जीवन समर्पण करनेको तत्पर हूँ; मैं तुमसे शादी करूँगा। तुम मुझपर प्रसन्न होओ और यह वैरागियोंका भेस छोड़ दो।"

राजीमती इसके लिए तैयार न थी। उसके हृदयमें एक आघात लगा। वह मूर्च्छितसी बैठी रही। जब उसका जी कुछ ठिकाने आया तब वह बोली—" रथनेमि! मैं फिर किसी वक्त इसका जवाब दूँगी।"

राजीमती बड़ी चिन्तामें पड़ी। उसे एक उपाय सूझा। उसने मींढल पिसवाया और उसको पुड़ियामें बाँधकर रथनेमिके घरका रस्ता लिया। जब वह पहुँची तबयोगसे रथनेमि अकेला ही उसे मिल गया। वह बोली—" रथनेमि! मुझे बड़ी भूख लगी है। मेरे लिए कुछ खानेको मँगवाओ।"

रथनेमिने तुरत कुछ दूध और मिठाई मँगवाये। राजीमतीने

उन्हें खाया और साथ ही मींढलकी फाकी भी ले ली। फिर बोली—"एक परात मँगवाओ।" परात आई। राजीमतीने जो कुछ खाया पिया था सब वमन कर दिया। फिर बोलीः—"रथनेमि! तुम इसे पी जाओ।" वह क्रुद्ध होकर बोलाः—"तुमने क्या मुझे कुत्ता समझा है?" राजीमती हँसी और बोलीः—"तुम्हारी लालसा तो ऐसी ही मालूम होती है। मुझे नेमिनाथने वमन कर दिया है। तुम मेरी लालसा कर रहे हो। यह लालसा वमित पदार्थ खानेहीकी तो है। हे रथनेमि! तुमने मेरा जवाब सुन लिया। बोलो अब तुम्हारी क्या इच्छा है?"

रथनेमिने लज्जित होकर सिर झुका लिया। राजीमती रथनेमिको अनेक तरहसे उपदेश दे अपने घर चली गई और फिर कभी वह रथनेमिके घर न गई। वह रात दिन धर्मध्यानमें अपना समय बिताने लगी।

नेमिनाथ प्रभु चोपन दिन इधर उधर विहार कर पुनः सहसाम्र वनमें आये। वहाँ उन्होंने अतस वृक्षके नीचे तेला करके काउसग्ग किया। उन्हें आसोज वदि ३० की रातको चित्रा नक्षत्रमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इन्द्रादि देवोंने आकर ज्ञान-कल्याणक मनानेके लिए समवशरणकी रचना की।

ये समाचार श्रीकृष्ण, समुद्रविजय वगैराको भी मिले। वे सभी धूम धामके साथ नेमिनाथ भगवानको वाँदने आये। और वंदनाकर समवशरणमें बैठे। भगवानने देशना दी। देशना सुनकर अनेकोंने यथायोग्य नियम लिये।

श्रीकृष्णने पूछाः—"प्रभो! वैसे तो सभी तुमपर स्नेह

रखते हैं, परन्तु रानीमती तुम्हें सबसे ज्यादा चाहती है। इसका क्या कारण है?" प्रभुने धन और धनवतीके भवसे भवसकके नवों भवोंकी कथा सुनाई। उसे सुनकर सबका संदेह जाता रहा। प्रभुसे वरदत्त आदि अनेक पुरुषोंने और स्त्रियोंने भी दीक्षा ली और अनेक पुरुष स्त्रियोंने श्रावक श्राविकाके व्रत लिए। इस तरह चतुर्विध संघकी स्थापना कर प्रभु वहाँसे विहार कर गये।

भगवान नेमिनाथ विहार करते हुए भद्दिलपुर नगरमें पहुँचे। वहाँ देवकीजीके छः पुत्र-जो सुलसाके घर बड़े हुए थे-रहते थे। उन्होंने धर्मोपदेश सुनकर दीक्षा ली। एक बार वे सभी द्वारका गये। वहाँ गोचरीके लिए फिरते हुए दो साधु देवकीजीके घर पहुँचे। उन्हें देखकर देवकीजी बहुत प्रसन्न हुईं और प्रासुक आहार पानी दिये।

उनके जाने बाद दूसरे दो साधु आये। वैसा ही रूप रंग देखकर देवकीजीको आश्चर्य हुआ। फिर सोचा, शायद अधिक साधु होनेसे और आहारपानीकी जरूरत होगी इसलिए फिरसे ये आये हैं। देवकीजीने उन्हें आहारपानी दिया। थोड़ी देरके बाद और दो साधु आये। वही रूप, वही रंग, वही चाल, वही आवाज। देवकीजीसे न रहा गया। उनने पूछाः-"मुनि राज! आप क्या रस्ता भूल गये हैं कि बार बार यहीं आते हैं?"

उन्होंने कहा-"हम तो पहली ही बार यहाँ आये हैं।" देवकीजीको और भी आश्चर्य हुआ। वे बोलीं:-"तो क्या मुझे भ्रम हुआ है? नहीं भ्रम नहीं हुआ। वे भी बिल्कुल तुम्हारे ही जैसे

थे।" साधु बोलेः—"हम छः भाई हैं। सभी एकसे रूप रंगवाले हैं और सभीने दीक्षा ले ली है। हमारे चार भाई पहले आये होंगे। इसलिए तुम्हें भ्रांति हो गई है।" देवकीजीने उनका हाल पूछा। उन्होंने अपना हाल सुनाया। सुन-कर देवकीजीको दुःख हुआ। वे रोने लगीं,—"हाय! मेरे कैसे खोटे भाग हैं कि मैं अपने एक भी बच्चेका पलना न बाँध सकी। उनके बालखेलसे अपने मनको सुखी न बना-सकी। इतना ही क्यों? मैं सबको पीछे भी न पा सकी।"

साधुओंने समझायाः—"खेद करनेसे क्या फायदा है? यह तो पूर्व भवकी करणीका फल है। पूर्व भवमे तुमने एक बाईके सात हीरे चुरा लिये थे। वह विचारी कल्पांत करने लगी। जब वह बहुत रोई पीटी तब तुमने उसे एक हीरा वापिस दिया। इसी हेतुसे तुम्हारे सातों पुत्र तुमसे छूट गये। एक हीरा तुमने वापिस दिया था इसलिए तुम्हारा एक पुत्र तुमको पीछा मिला है।" मुनिराज चले गये। देवकीजी अपने पूर्व भवके बुरे कर्मोंका विचार कर मन ही मन दुखी रहने लगी।

एक बार श्रीकृष्णने माताको उदासीका कारण पूछा। देवकीजीने उदासीका कारण बताया और कहाः—"जबतक मैं बच्चेको न खिलाऊँगी तबतक मेरा दुःख कम न होगा।" श्रीकृष्णने माताको संतोष देकर कहाः—"माता कुछ चिंता न करो। मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।"

फिर श्रीकृष्णने नैगमेषी देवताकी आराधना की। देवताने प्रत्यक्ष होकर कहाः—"हे भद्र! तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।

रखते हैं; परन्तु राजीमती तुम्हें सबसे ज्यादा चाहती है। इसका क्या कारण है ?” प्रभुने धन और धनवतीके भवसे आरंभकर नवों भवोंकी कथा सुनाई। उसे सुनकर सबका संदेह जाता रहा। प्रभुसे वरदत्त आदि अनेक पुरुषोंने और स्त्रियोंने भी दीक्षा ली और अनेक पुरुष स्त्रियोंने श्रावक श्राविकाके व्रत लिए। इस तरह चतुर्विध संघकी स्थापना कर प्रभु वहाँसे विहार कर गये।

भगवान नेमिनाथ विहार करते हुए भद्दिलपुर नगरमें पहुँचे। वहाँ देवकीजीके छः पुत्र–जो सुलसाके घर बड़े हुए थे–रहते थे। उन्होंने धर्मोपदेश सुनकर दीक्षा ली। एक बार वे सभी द्वारका गये। वहाँ गोचरीके लिए फिरते हुए दो साधु देवकीजीके घर पहुँचे। उन्हें देखकर देवकीजी बहुत प्रसन्न हुईं और प्रासुक आहार पानी दिये।

उनके जाने बाद दूसरे दो साधु आये। वैसा ही रूप रंग देखकर देवकीजीको आश्चर्य हुआ। फिर सोचा, शायद अधिक साधु होनेसे और आहारपानीकी जरूरत होगी इसलिए फिरसे ये आये हैं। देवकीजीने उन्हें आहारपानी दिया। थोड़ी देरके बाद और दो साधु आये। वही रूप, वही रंग, वही चाल, वही आवाज। देवकीजीसे न रहा गया। उनने पूछा–“ मुनि-राज! आप क्या रस्ता भूल गये हैं कि बार बार यहीं आते हैं ?”

उन्होंने कहा–“ हम तो पहली ही बार यहाँ आये हैं। देव-कीजीको और भी आश्चर्य हुआ। वे बोलीं–“ तो क्या मुझे भ्रम हुआ है ? नहीं भ्रम नहीं हुआ। ये भी बिल्कुल तुम्हारे ही जैसे

थे।" साधु बोलेः—"हम छः भाई हैं। सभी एकसे रूप रंगवाले हैं और सभीने दीक्षा ले ली है। हमारे चार भाई पहले आये होंगे। इसलिए तुम्हें भ्रांति हो गई है।" देवकीजीने उनका हाल पूछा। उन्होंने अपना हाल सुनाया। सुनकर देवकीजीको दुःख हुआ। वे रोने लगीं,—"हाय! मेरे कैसे खोटे भाग हैं कि मैं अपने एक भी बच्चेका पलना न बाँध सकी। उनके बालखेलसे अपने मनको सुखी न बना-सकी। इतना ही क्यों? मैं सबको पीछे भी न पा सकी।"

साधुओंने समझायाः—"खेद करनेसे क्या फायदा है? यह तो पूर्व भवकी करणीका फल है। पूर्व भवमें तुमने एक बाईके सात हीरे चुरा लिये थे। वह बिचारी कल्पांत करने लगी। जब वह बहुत रोई पीटी तब तुमने उसे एक हीरा वापिस दिया। इसी हेतुसे तुम्हारे सातों पुत्र तुमसे छूट गये। एक हीरा तुमने वापिस दिया था इसलिए तुम्हारा एक पुत्र तुमको पीछा मिला है।" मुनिराज चले गये। देवकीजी अपने पूर्व भवके बुरे कर्मोंका विचार कर मन ही मन दुखी रहने लगी।

एक बार श्रीकृष्णने माताको उदासीका कारण पूछा। देवकीजीने उदासीका कारण बताया और कहाः—"जबतक मैं बच्चेको न खिलाऊँगी तबतक मेरा दुःख कम न होगा।" श्रीकृष्णने माताको संतोष देकर कहाः—"माता कुछ चिंता न करो। मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।"

फिर श्रीकृष्णने नैगमेषी देवताकी आराधना की। देवताने प्रत्यक्ष होकर कहाः—"हे भद्र! तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।

कुमारी माताके गर्भसे एक पुत्र जन्मेगा; परन्तु जवान होने पर वह दीक्षा ले लेगा।"

देवता चला गया। समयपर देवकीजीके गर्भसे एक पुत्र जन्मा। उसका नाम गजसुकुमाल रखा गया। मातापिताके हर्षका ठिकाना न था। दोनोंको कभी बालक खिलानेका सौभाग्य न मिला था। आज यह सौभाग्य पाकर उनके आनंदकी सीमा न रही। कालोंका दान दिया, सारे कैदियोंको छोड़ दिया और यहाँ किसीको दुखी-दरिद्र पाया उसे निहाल कर दिया।

गजसुकुमाल युवा हुए। माता पिताने, उनकी इच्छा न होते हुए भी दो कन्याओंके साथ उनका ब्याह कर दिया। एक राजपुत्री थी। उसका नाम प्रभावती था। दूसरी सोमशर्मा ब्राह्मणकी पुत्री थी। उसका नाम सोमा था। कुछ दिनके बाद नेमिनाथ भगवानका समवसरण द्वारकामें हुआ। सभी यादवोंके साथ गजसुकुमाल भी प्रभुकी वंदना करने गये। देशना सुनकर गजसुकुमालको वैराग्य हो आया और उन्होंने मातापिताकी आज्ञा लेकर प्रभुसे दीक्षा ले ली। उनकी दोनों पत्नियोंने भी स्वामीका अनुसरण किया।

जिस दिन दीक्षा ली थी उसी रातको गजसुकुमाल मुनि मसाणमें जाकर ध्यानमग्न हुए। सोमशर्मा किसी कामसे बाहर गया हुआ था। उसने लौटते समय गजसुकुमाल मुनिको देखा। उन्हें देखकर उसे बड़ा क्रोध आया, इस पाखंडीने दीक्षा लेनेकी इच्छा थी तो भी

इसने शादी की और मेरी पुत्रीको दुःख दिया। इसको इसके पाखंडका दंड देना ही उचित है। वह मसानमें जलती हुई चितामेंसे मिट्टीके एक ठीकरेमें आग भर लाया और वह ठीकरा गजसुकुमाल मुनिके सिरपर रख दिया। गजसुकुमालका सिर जलने लगा; परन्तु वे शांतिसे ध्यानमें लगे रहे। इससे उनके कर्म कट गये। उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। उसी समय उनका आयुकर्म भी समाप्त हो गया और वे मरकर मोक्ष गये।

दूसरे दिन श्रीकृष्णादि यादव प्रभुको वंदना करने आये। गजसुकुमालको वहाँ न देखकर श्रीकृष्णने उनके लिए पूछा। भगवानने सारा हाल कह सुनाया। सुनकर उन्हें बड़ा क्रोध आया। भगवानने उन्हें समझाया,–"क्रोध करनेसे कोई लाभ नहीं है।" मगर उनका क्रोध शांत न हुआ। जब वे वापिस द्वारकामें जा रहे थे तब उन्होंने सामनेसे सोमशर्माको आते देखा। श्रीकृष्णका क्रोध द्विगुण हो उठा। वे उसे सजा देनेका विचार करते ही थे कि, सोमशर्माका सिर अचानक फट गया और वह जमीनपर गिर पड़ा। उसको सजा देनेकी इच्छा पूरी न हुई। उन्होंने उसके पैरोंमें रस्सी बँधवाई, उसे सारे शहरमें घसीटवाया और तब उसको पशुपक्षियोंका भोजन बननेके लिए जगलमें फिकवा दिया।

गजसुकुमालकी दशासे दुखित होकर अनेक यादवोंने, वसुदेवके विना नौ दशार्हाने, प्रभुकी माता शिवादेवीने, प्रभुके सात सहोदर भाइयोंने, श्रीकृष्णके अनेक पुत्रोंने, राजीमतीने, नंदकी कन्या एकनाशाने और अनेक यादव स्त्रियोंने दीक्षा

ली । उसी समय श्रीकृष्णने नियम लिया था कि, मैं अबसे किसी कन्याका ब्याह न करूँगा, इसलिए उनकी अनेक कन्याओंने भी दीक्षा ले ली । कनकवती, रोहिणी और देवकीके सिवा वसुदेवकी सभी पत्नियोंने दीक्षा ली ।

कनकवती संसारमें रहते हुए भी वैराग्यमय जीवन बिताने लगी । इससे उनके घातिया कर्मोंका नाश हुआ और उन्हें केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई । फिर वे अपने आप दीक्षा लेकर वनमें गई । एक महीनेका अनशन कर उन्होंने मोक्ष पाया ।

एक बार श्रीकृष्णने प्रभुसे पूछा:—" भगवन् ! आप चौमासेमें विहार क्यों नहीं करते हैं ? " भगवानने उत्तर दिया— " चौमासेमें अनेक जीवजंतु उत्पन्न होते हैं । विहार करनेसे उनके नाशकी संभावना रहती है । इसीलिए साधुलोग चौमासेमें विहार नहीं करते हैं । श्रीकृष्णने भी नियम लिया कि मैं भी अबसे चौमासेमें कभी बाहर नहीं निकलूँगा ।

एक बार नेमिनाथ प्रभुके साथ जितने साधु थे उन सबको श्रीकृष्ण द्वादशावर्त वंदना करने लगे । उनके साथ दूसरे राजा और वीरा नामका जुलाहा—जो श्रीकृष्णका बहुत भक्त था—भी वंदना करने लगे । और तो सब थककर बैठ गये; परन्तु वीरा जुलाहा तो श्रीकृष्णके साथ वंदना करता ही रहा । जब वंदना समाप्त हो चुकी तो श्रीकृष्णने प्रभुसे विनती की—" आज मैं इतना थका हूँ कि जितना ३६० युद्ध किये उसमें भी नहीं थका था । " प्रभुने कहा—" आज तुमने बहुत पुण्य उपार्जन किया है । तुमने क्षायिक

सम्यक्त्व हुआ है, तुमने तीर्थंकर नामकर्म बाँधा है, सातवीं नारकीके योग्य कर्मोंको खपाकर तीसरी नारकीके योग्य आयुकर्म बाँधा है। उसे तुम इस भवके अंतमें निकाचित करोगे।"

श्रीकृष्ण बोलेः—"मैं एक बार और वंदना करूँ कि जिससे नरकायुके योग्य जो कर्म हैं वे सर्वथा नष्ट हो जायँ।" भगवान बोलेः—"अब तुम जो वंदना करोगे वह द्रव्यवंदना होगी। फल भाववंदनाका मिलता है द्रव्यवंदनाका नहीं। तुम्हारे साथ वीरा जुलाहेने भी वंदना की है मगर उसको कोई फल नहीं मिला। कारण उसने वंदना करनेके इरादेसे वंदना नहीं की है; केवल तुम्हें खुश करनेके इरादेसे तुम्हारा अनुकरण किया है।" श्रीकृष्ण अपने घर गये।

एक बार विहार करते हुए प्रभु गिरनारपर गये। वहाँसे रथनेमि आहारपानी लेने गये थे; मगर अचानक बारिश आ गई और रथनेमि एक गुफामें चले गये। राजीमती और अन्य साध्वियाँ भी आहारपानी लेकर लौट रही थीं; बरसातके कारण सभी इधर उधर हो गई। राजीमती उसी गुफामें चली गई जिसमें रथनेमि थे। उसे मालूम नहीं था कि रथनेमि भी इसी गुफामें हैं। वह अपने भीगे हुए कपड़े उतारकर सुखाने लगी। रथनेमि उसे देखकर कामातुर हो गये और आगे आये। राजीमतीने पैरोंकी आवाज सुनकर झटसे गीला कपड़ा ही वापिस ओढ लिया। रथनेमिने प्रार्थना की,—"सुंदरी! मेरे हृदयमें आगसी लग रही है। तुम तो सभी जीवोंको सुखी करनेका नियम ले चुकी हो। इसलिए मुझे भी सुखी करो।"

धर्मात्मा—संयमधारिणी राजीमती—बोलीः—" रथनेमि ! तुम मुनि हो, तुम तीर्थंकरके भाई हो, तुम उच्च वंशकी सन्तान हो, तुम्हारे मुखमें ऐसे वचन नहीं शोभते। ये वचन तो पतित, नीच और असंयमी लोगोंके योग्य हैं, ये तो संयमकी विराधना करनेवाले हैं, ऐसे वचन उच्चारण करना और ऐसी कुत्सित लालसा रखना मानो अपने पशु स्वभावका प्रदर्शन कराना है। मुनि ! प्रभुके पास जाओ और प्रायश्चित्त लो। "

रथनेमि मोहमुग्ध हो गये थे। उन्हें होश आया। वे अपने पतनपर पश्चात्ताप कर राजीमतीसे क्षमा माँग प्रभुके पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने प्रभुके सामने अपने पापोंकी आलोचना कर प्रायश्चित्त लिया। फिर वे चिर काल तक तपस्या कर, केवलज्ञान पा मोक्षमें गये।

अन्यदा प्रभु विहारकर द्वारिका आये। तब विनयी कृष्णने देशनाके अंतमें पूछा—" हे करुणानिधि ! कृपा करके बताइए कि, मेरा और द्वारकाका नाश कैसे होगा?" भगवान बोले— " भावी प्रबल है। वह होकर ही रहता है। सौरीपुरके बाहर पराशर नामक एक तपस्वी रहता है। एक बार वह यमुना द्वीप गया था। वहाँ उसने किसी नीच कन्यासे संभोग किया। उससे द्वीपायन नामका एक पुत्र हुआ है। वह पूर्ण संयमी और तपस्वी है। यादवोंके स्नेहके कारण वह द्वारकाके पास ही वनमें रहता है। शांब आदि यादव कुमार एक बार वनमें जायँगे और मदिरासे मत्त होकर उसे मार डालेंगे। वह मरकर

अग्निकुमार देव होगा और सारी द्वारकाको और यादवोंको जलाकर भस्म कर देगा। तुम जंगलमें अपने भाई जराकुमारके हाथसे मारे जाओगे।"

बलदेवके सिद्धार्थ नामका सारथी था। उसने बलदेवसे कहाः—"स्वामिन्! मुझसे द्वारकाका नाश न देखा जायगा। इसलिए कृपाकर मुझे दीक्षा लेनेकी अनुमति दीजिए।" बलदेव बोलेः—"सिद्धार्थ! यद्यपि तेरा वियोग मेरे लिए दुःखदायी होगा; परन्तु मैं शुभ काममें विघ्न न डालूँगा। हाँ तपके प्रभावसे तू मरकर अगर देवता हो तो मेरी मदद करना।" उसने यह बात स्वीकार की और दीक्षा ले ली।

भगवानके इतना परिवार था वरदत्तादि ग्यारह गणधर, १८ हजार महात्मा साधु, चालीस हजार साध्वियाँ, ४ सौ चौदह पूर्वधारी, १५ सौ अवधिज्ञानी, १५ सौ वैक्रिय लब्धिवाले १५ सौ केवली, १ हजार मनःपर्ययज्ञानी, ८ सौ वादलब्धिवाले, १ लाख ६९ हजार श्रावक और ३ लाख ३९ हजार साध्वियाँ। इसी तरह गोमेध नामका यक्ष और अंबिका नामकी शासनदेवी थे।

विहार करते हुए अपना निर्वाणकाल समीप जान प्रभु रैवतगिरि (गिरनार) पर गये और वहाँ ५३६ साधुओंके साथ पादोपगमन अनशन कर आषाढ शुक्ला ८ के दिन चित्रा नक्षत्रमें मोक्ष गये। इन्द्रादि देवोंने निर्वाणकल्याणक मनाया।

राजीमती आदि अनेक साध्वियाँ भी केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्षमें गई। राजीमतीकी कुल आयु ९०१ वर्षकी थी। वे ४

सौ वर्ष कुमारावस्थामें, एक वर्ष संयम लेकर छद्मस्थावस्थामें और ५ सौ वर्ष केवली अवस्थामें रही थीं।

भगवान नेमिनाथ तीन सौ वर्ष कुमारावस्थामें और ७ सौ वर्ष साधुपनायमें रह, १ हजार वर्षकी आयु बिता, नमिनाथजी-के मोक्ष जानेके बाद पाँच लाख वर्ष बीते तब, मोक्ष गये। उनका शरीरमान १० धनुष था।

भगवान नेमिनाथके तीर्थमें नवें वासुदेव कृष्ण, नवें बलदेव बलभद्र और नवें प्रति-वासुदेव जरासंध हुए हैं।

२३ श्रीपार्श्वनाथ-चरित

कमठे धरणेन्द्रे च, स्वोचितं कर्म कुर्वति ।
प्रभुस्तुल्यमनोवृत्तिः, पार्श्वनाथः श्रियेऽस्तु वः ॥

भावार्थ—अपने स्वभावके अनुसार कार्य करनेवाले कमठ और धरणेन्द्रपर समान भाव * रखनेवाले पार्श्वनाथ प्रभु तुम्हारा कल्याण करें।

जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें पोतनपुर नामका नगर था। उसमें अरविंद नामका राजा राज्य करता था।

१ प्रथम भव (मरुभूति) उसके परम श्रावक विश्वभूति नामक ब्राह्मण

* कमठने प्रभुको दुःख दिया था और धरणेन्द्रने प्रभुकी दुःखसे रक्षा की थी; परंतु भगवानने न कमठपर रोष किया था और न धरणेन्द्रपर प्रसन्नता दिखाई थी। दोनोंपर उनके द्वेष और रागरहित समान भाव थे।

पुरोहित था। उसकी अनुद्धवा नामकी पत्नीके गर्भसे कमठ और मरुभूति नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए।

वे जब जवान हुए तब मातापिताने उनका व्याह करवा दिया। कमठकी स्त्रीका नाम वरुणा था और मरुभूतिकी स्त्रीका नाम वसुन्धरा। वसुन्धरा दोनोंमें अधिक रूपवती थी। भाइयोंमें कमठ लंपट था और मरुभूति सदाचारी।

समयपर विश्वभूति और अनुद्धरा दोनों स्वर्गवासी हुए। कमठ संसाररत और क्रियाशील मनुष्य था। वह राजाकी नौकरी करने लगा। संसारविमुख मरुभूति धर्मध्यानमें लीन हुआ और ब्रह्मचर्य पालन करता हुआ प्रायः पौषधशालामें रहने लगा। युवती वसुंधरा अपने यौवनको भोगविहीन जाते देख, मन ही मन दुःखी होती; परन्तु अपने पतिके धर्ममय जीवनमें विघ्न डालनेका यत्न न करती। इतना ही क्यों? वह भी यथासाध्य अपना समय धर्मकार्योंमें विताती। लंपट कमठको अपने भाईकी वैराग्यदशाका हाल मालूम हुआ। उसने वसुन्धरापर डोरे डालने आरंभ किये। एक दिन उसने वसुन्धराको एकांतमें पकड़ लिया। भोगकी इच्छा रखनेवाली वसुंधरा भी थोडा विरोध करनेके बाद उसके आधीन हो गई। उसने अपना शील भोगेच्छाके अर्पण कर दिया। अब तो वे प्रायः विषयभोगमें लीन रहने लगे।

कमठकी स्त्री वरुणाको यह हाल मालूम हुआ। उसने दोनोंको बहुत फटकारा; परन्तु उनपर इसका कोई असर न हुआ। तब उसने यह बात अपने देवर मरुभूतिसे कही। मरु-

मुनिने यह बात न मानी और अपनी आँखसे यह बात देखनी चाही। वरुणाने एक दिन मरुभूतिको छुपा रक्खा और अपने पति और देवरानीकी भ्रष्ट लीला उसे दिखा दी। मरुभूतिको बड़ा क्रोध आया और उसने सवेरे ही जाकर राजासे फर्याद की। धर्म और न्यायके प्रेमी राजाको यह अनाचार असह्य हुआ, और उसने कमठका काला मुँह करवा, उसका सिर मुँडवा, उसे गधेपर बिठवा, सारे शहरमें फिरवा, शहर बाहर निकलवा दिया। वह मरुभूतिपर अत्यंत क्रुद्ध हो, वनमें जा, बालतप करने लगा।

सरल परिणामी मरुभूति जब उसका क्रोध कम हुआ तो सोचने लगा,—मैंने यह क्या अनर्थ किया? जीवको अपने पापोंका फल आप ही मिल जाता है। मेरे भाईको भी अपने पापोंका फल आप ही मिल जाता। मैंने क्यों राजासे फर्याद की? न मैं फर्याद करता न मेरे भाईको दंड मिलता। चलूँ, जाकर भाईसे क्षमा माँगूँ। मरुभूतिने जाकर राजासे अपने मनकी बात कही। राजाने उसको बहुत समझाया कि दुष्ट स्वभाववाले कभी सामान्य गुण नहीं समझते हैं। अभी वह तुमपर बहुत गुस्से हो रहा है। सम्भव है वह तुमपर वार करे; परन्तु वह यह कहकर चला गया कि, अगर वह अपना दुष्ट स्वभावको नहीं छोड़ता है तो मैं अपने सरल स्वभावको क्यों छोड़ूँ?

मरुभूति ज्योंही कमठके पास पहुँचा त्योंही कमठका क्रोध भभक उठा। और वह मरुभूतिका तिरस्कार करने लगा। मरुभूतिने नम्रतापूर्वक क्षमा माँगी और नमस्कार किया।

इसको कमठने अपना उपहास समझा। वह और भी अधिक खीझ गया। उसने पासमें पड़ा हुआ एक बड़ा पत्थर उठा लिया और मरुभूतिके सिरपर दे मारा। इसका सिर फट गया। वह पीडासे व्याकुल हो छटपटाने लगा और आर्त ध्यानमें मरा।

अंतमे आर्तध्यानमें मरा इससे वह पशु योनिमें जन्मा और

२ दूसरा भव (हाथी) विंध्यगिरिमे यूथपति हाथी हुआ।

एक दिन पोतनपुरके राजा अरविंद अपनी छतपर बैठे हुए थे। आकाशमें घनघोर घटा छाई हुई थी। बिजली चमक रही थी। इन्द्रधनुष तना हुआ था। आकाश बड़ा सुहावना मालूम हो रहा था। उसी समय जोरकी हवा चली। मेघ छिन्न भिन्न हो गये। बिजलीकी चमक जाती रही और इन्द्रधनुषका कहीं नाम निशान भी न रहा। राजाने सोचा, जीवनकी सुख-घन-घटा भी इसी तरह आयुसमाप्तिकी हवासे नष्ट हो जायगी। इसलिए जीवनसमाप्तिके पहले जितना हो सके उतना धर्म कर लेना चाहिये। राजा अरविंदने समंतभद्राचार्यके पाससे दीक्षा ले ली।

एक दिन अरविंद मुनि सागरदत्त सेठके साथ अष्टापदजी पर वंदना करने चले। रस्तेमें उन्होंने एक सरोवरके किनारे पड़ाव डाला। सभी स्त्री पुरुष अपने अपने काममें लगे। अरविंद मुनि एक तरफ कायोत्सर्ग ध्यानमें लीन हो गये।

मरुभूति हाथी सरोवरपर आया। पानीमें खूब कल्लोलें कर वापिस चला। सरोवरके किनारे पड़ावको देखकर

वह उसी तरफ भपटा। कइयोंको पैरों तले रौंदा और कइयोंको सूंडमें पकड़कर फेंक दिया। लोग इधर उधर अपने प्राण लेकर भागे। अरविंद मुनि ध्यानमें लीन खड़े रहे। हाथी उनपर भपटा; मगर उनके पास जाकर एकदम रुक गया। मुनिके तपके सामने हाथीकी क्रूरता जाती रही। वह मुनिके चरणोंकी तरफ चुपचाप देखने लगा।

मुनि कायोत्सर्ग पारकर बोले—"हे मरुभूति! अपने पूर्व भवको याद कर। मुझ अरविंदको पहचान। अपने बुरे परिणामोंका फल हाथी होकर भोग रहा है। अब हत्याएँ करके क्या पापको और भी बढ़ाना चाहता है?" मरुभूतिको मुनिके उपदेशसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। वह मुनिसे श्रावक व्रत अंगीकार कर रहने लगा। कमठकी स्त्री वरुणा भी हथिनी हुई थी। उसने भी सारी बातें सुनीं और उसे भी जातिस्मरण ज्ञान हो आया। सेठके साथके अनेक मनुष्य उपदेश प्रभाव देखकर मुनि हो गये। संघ यहाँसे अष्टापदकी तरफ चला गया।

अब मरुभूति संयमसे रहने लगा। वह सूर्यके आतपसे तपा हुआ पानी पीता और पृथ्वीपर गिरे हुए सूखे पत्ते खाता। ब्रह्मचर्यसे रहता और कभी किसी प्राणीको नहीं सताता। रातदिन वह सोचता,— मैंने कैसी भूलकी कि, मनुष्यभव पाकर उसे व्यर्थ खो दिया। मगर मैंने पहले समझकर संयम धारण कर लिया होता तो यह पशुपर्याय मुझे नहीं मिलती।

संयमके कारण उसका शरीर सूख गया था। उसकी शक्ति क्षीण हो गई थी। वह ईर्या समितिके साथ चलता था और

एक कीड़ीको भी तकलीफ न हो इस वातका पूरा ध्यान रखता था।

एक दिन पानी पीने गया। वहाँ दलदलमें फँस गया। उससे निकला न गया। उधर कमठके उस हत्यारे कामसे सारे तापस उससे नाराज हुए और उसे अपने यहाँसे निकाल दिया। वह भटकता हुआ मरकर साँप हुआ। वह साँप फिरता हुआ वहाँ आ निकला जहाँ मरुभूति हाथी फँसा हुआ था। उसने मरुभूतिको देखा और काट खाया।

३ तीसरा भव (सहस्रार देवलोकमें देव)

मरुभूतिने अपना मृत्युकाल समीप जान सब माया ममतादिका त्याग कर दिया। मरकर वह सहस्रार देवलोकमें सत्रह सागरोपमकी आयुवाला देव हुआ। हथिनी वरुणी भी भावतप कर मरी और दूसरे देवलोकमें देवी हुई। फिर वह दूसरे देवलोकके देवोंको छोड सहस्रार देवलोकमें मरुभूतिके जीव देवकी देवांगना वनकर रही। कमठका जीव भी मरकर पाँचवें नरकमें सत्रह सागरोपमकी आयुवाला नारकी हुआ।

४ चौथा भव (किरणवेग)

प्राग्विदेहके सुकच्छ नामक प्रांतमें तिलका नामकी नगरी थी। उसमें विद्युद्गति नामका खेचर राजा था। उसकी रानी कनकतिलकाके गर्भसे, मरुभूतिका जीव देवलोकसे चयकर, पैदा हुआ। मातापिताने उसका नाम किरणवेग रखा। युवा होनेपर पद्मावती आदि राजकन्याओंसे उसका

व्याप्त किया गया। कुछ कालके बाद विद्युद्गतिने किरणवेगको राज्य देकर दीक्षा ले ली।

किरणवेगकी पट्टरानी पद्मावतीके गर्भसे किरणतेज नामका पुत्र पैदा हुआ। एक बार सुरगुरु नामक मुनि उस तरफ आये। उनकी देशना सुनकर किरणवेगको वैराग्य हो आया और उसने दीक्षा ले ली।

किरणवेग मुनि श्रुतधारी हुए। गुरुकी आज्ञा लेकर एकल विहार करने लगे। अपनी आकाशगमनकी शक्तिसे वे पुष्कर द्वीपमें गये। वहाँ शाश्वत अर्हतोंको नमन कर वैताढ्य गिरिके पास हेमगिरि पर्वतपर तीव्र तप करते हुए समताभें मग्न रहकर अपना काल बिताने लगे।

कमठका जीव पाँचवें नरकसे निकलकर उसी हिमगिरिकी गुफामें एक भयंकर सर्पके रूपमें जन्मा था। वह यमराजकी तरह प्राणियोंका नाश करता हुआ वनमें फिरने लगा। एक वक्त वह फिरता हुआ उस गुफामें चला गया जहाँ किरणवेग मुनि ध्यानमें लीन थे। उन्हें देखकर उसे पूर्व जन्मका वैर याद आया। उसने उनको लिपट कर चार पाँच जगह शरीरमें काटा। उनके सारे शरीरमें भयंकर जहर व्याप्त हो गया।

मुनि सोचने लगे,—यह सर्प मेरा बड़ा उपकार करनेवाला है। मुझे जल्दी या देरमें अपने कर्म काटने ही थे। इस सर्पने मुझे मेरे कर्म काटनेमें बड़ी मदद दी है। उन्होंने चौरासी लाख जीवयोनिके जीवोंको खमाया और चारों तरहके आहारोंका

त्याग कर दिया। कुछ देरके बाद वे ऐसे मूर्च्छित हुए कि फिर न उठे।

मरुभूतिका जीव किरणवेगके भवमें शुभ भावोंसे मरा और बारहवें देवलोकमें जंबू द्रुमावर्त नामके विमानमें बाईस सागरोपमकी आयुवाला देवता हुआ और सुख भोगने लगा।

५ पाँचवाँ भव (बारहवें देवलोकमें देव)

कमठका जीव महासर्पकी योनिमें जलकर मरा और तमः-प्रभा नामके नरकमें, बाईस सागरोपमकी आयु और ढाई सौ धनुषकी कायावाला नारकी जीव हुआ।

जंबूद्वीपके पश्चिम महाविदेहमें सुगंध नामका प्रांत है। उसमें शुभंकरा नामकी एक नगरी थी। उसमें वज्रवीर्य नामका राजा राज्य करता था। उसकी लक्ष्मीवती नामकी रानीके गर्भसे मरुभूतिका जीव देवलोकसे चयकर जन्मा। उसका नाम वज्रनाभ रक्खा गया। युवा होनेपर ब्याह हुआ। कुछ कालके बाद वज्रवीर्य राजाने वज्रनाभको राज्य देकर दीक्षा लेली।

६ छठा भव (वज्रनाभ राजा)

वज्रनाभके कुछ कालके बाद चक्रायुध नामका पुत्र हुआ। जब वह बड़ा हुआ तब राजा वज्रनाभने चक्रायुधको राज्य देकर क्षेमंकर मुनिके पाससे दीक्षा ले ली। अनेक तरहकी तपस्याएँ करनेसे मुनिको आकाशगमनकी लब्धि मिली। एक बार वज्रनाभ मुनि आकाशमार्गसे सुकच्छ नामके प्रांतमें गये।

कमठका जीव भी नरकसे निकलकर सुकच्छ प्रांतके ज्वलन गिरिके भयंकर जंगलमें भीलके घर जन्मा। उसका नाम

कुरंगक रखा गया। जब वह जवान हुआ तब महान शिकारी बना।

वज्रनाभ मुनि फिरते हुए ज्वलनगिरिकी गुफामें जाकर कायोत्सर्ग करके रहे। नाना भाँतिके भयावने पशुपक्षी रातभर बोलते और उनके आसपास फिरते रहे; परन्तु मुनि स्थिर रहे और ध्यानसे चलित न हुए। सवेरे ही जिस समय वे कायोत्सर्ग छोड़कर गुफामेंसे निकले उसी समय कुरंगक नामका भील भी धनुषबाण लेकर घरसे रवाना हुआ। उसे सामने मुनि दिखे। उन्हें देखकर भीलको बड़ा गुस्सा आया। इस भिक्षुकने सवेरे ही सवेरे मेरा शकुन बिगाड़ दिया है, यह सोचकर उसने उन्हींको सबसे पहले अपने बाणका निशाना बनाया। बाण लगते ही वे अर्हत पुकारकर पृथ्वीपर गिर पड़े। सब जीवोंसे उन्होंने क्षमा मांगी और मनको सब तरहके व्यापारोंसे हटाकर आत्मध्यानमें लीन कर दिया।

राजर्षि वज्रनाभ शुभ ध्यान पूर्वक मरकर मध्यग्रैवेयक देव लोकमें ललितांग नामक देव हुए। कम-

• सातवाँ भव (ललितांग देव) ठका जीव कुरंगक भील भी जन्मभर शिकारमें जीवन बिता अशुभ ध्यानसे मरा और रौरव नामके सातवें नरकमें नारकी हुआ।

जंबूद्वीपके पूर्वविदेहमें पुराणपुर नामका नगर है। उसमें इन्द्रके समान प्रतापी कुलिशबाहु नामकी

८ आठवाँ भव
(सुवर्णबाहु)

राजा राज्य करता था। उसकी सुदर्शना नामकी रानीके गर्भसे, वज्रनाभका जीव देवलोकसे चयकर उत्पन्न हुआ। उसका नाम सुवर्णबाहु रक्खा गया।

जब सुवर्णबाहु जवान हुए तब उनके पिता कुलिशबाहुने उन्हें राज्यगद्दीपर बिठाकर, दीक्षा ले ली।

एक दिन सुवर्णबाहु घोडेपर सवार होकर फिरने निकला। घोडा बेकाबू हो गया और राजाको एक वनमें ले गया। उसके साथी सब छूट गये। एक सरोवरके पास जाकर घोड़ा खडा हो गया। सुवर्णबाहु थक गया था। घोड़ेसे उतर पड़ा। उसने सरोवरसे निर्मल जल पिया, घोडेको पिलाया, और तब घोड़ेको एक वृक्षसे बाँधकर पासके बागकी शोभा देखने लगा।

उस बागमें एक तपस्वी रहते थे। उन्होंने हिरणों और खरगोशोंके बच्चे पाल रक्खे थे। वे इधर उधर किलोंले कर रहे थे। राजाको देखकर झौंपड़ीकी तरफ दौड़ गये। आश्रमके अंदर सुंदर पुष्पोंके पौंदे थे। उनमें यौवनोन्मुखी कुछ कन्याएँ जलसिंचन कर रही थीं। उन कन्याओंमें एक बहुत ही सुंदरी थी। फिरते हुए सुवर्णबाहुकी नजर उसपर अटक गई। वह एक वृक्षकी ओटमें छिपकर उस रूपसुधाका पान करने लगा और सोचने लगा,-यह अमृतका सरोत यहाँ कहाँसे आया? यह तापसकन्या तो नहीं हो सकती। यह कोई स्वर्गकी अप्सरा है या नागकन्या है?

उसी समय एक भँवरा गूँजता हुआ आया और उस बालाके

मुखपर मँडराने और अधरसका पान करनेकी कोशिश करने लगा। वह उसको हटाती; परन्तु वह बार बार लौट आता था। इससे घबराकर वह पुकारी—"अरे कोई मेरी इस भ्रमर-त्राससे रक्षा करो! रक्षा करो!" उसके साथकी एक कन्या बोली:—"सखि! सुवर्णबाहुके सिवा तुम्हारी रक्षा करे ऐसा कोई पुरुष दुनियामें नहीं है। इसलिए तुम उन्हींको पुकारो।" सुवर्णबाहु तो इनसे बातें करनेका मौका ढूँढ ही रहा था। वह तुरत यह कहता हुआ झाड़की आड़से निकल आया कि,—"जबतक कुलिश बाहुका पुत्र सुवर्णबाहु मौजूद है, तबतक किसकी मजाल है कि, तुम्हें दुःख दे।" फिर उसने एक दुपट्टेके पल्लेसे भँवरेको मारा। भँवरा बेचारा चिल्लाता हुआ वहाँसे चला गया।

अचानक एक पुरुषको सामने देखकर सभी बालाएँ ऐसी घबरा गईं जैसे शेरको सामने देखकर मनुष्य व्याकुल हो जाते हैं। वे मर्यादित खड़ी हुई पृथ्वीकी तरफ देखने लगीं। सुवर्णबाहुने उनको सान्त्वना देते हुए बड़े मधुर शब्दोंमें कहा:—"बालाओ! डरो मत। मैं तुम्हारा रक्षक हूँ। कहो, तुम यहाँ निर्विघ्न तप कर सकती हो न? तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं है?" राजाके सुमधुर शब्दोंसे उनका भय कम हुआ। एक बोली:—"जबतक पृथ्वीपर सुवर्णबाहु राजा राज्य करता है, तबतक किसे अपना जीवन भारी होगा कि वह हमारे तपमें विघ्न डालेगा? अतिथि, आइए! बैठिए!"

एक बालाने कदंब पेड़के नीचे आसन बिछा दिया। सुवर्णबाहु उसपर बैठ गये। दूसरीने पूछा:—"महाशय, आप कौन

हैं ? और इस वनमें आनेका आपने कैसे कष्ट क्रिया है ? ”
सुवर्णवाहु वड़े संकोचमें पड़े। वे कैसे कहते कि, मैं ही सुवर्ण-
वाहु हूँ और अपनेको दूसरा कोई वताकर मिथ्या वोल-
नेका दोप भी कैसे करते ? उन्हें चुप देखकर तीसरी
वोलीः—“ वहिन ! ये तो खुद सुवर्णवाहु राजा है।
क्या तुमने इनको यह कहते नहीं सुना कि,–“ जव तक
सुवर्णवाहु मौजूद है तवतक किसकी मजाल है सो तुम्हें दुःख
दे ?” फिर राजासे पूछाः–“ महाराज ! हमारी असभ्यता क्षमा
कीजिए और कहिए आप ही महाराज सुवर्णवाहु हैं न ? ”
राजाने मुस्कुरा दिया। वालाओंको निश्चय हो गया कि ये ही
महाराज सुवर्णवाहु हैं।

राजाने सबसे अधिक सुंदरी वालाकी तरफ संकेत करके
पूछाः–“ ये वाला कौन हैं ? ये तापसकन्या तो नहीं मालूम
होतीं। इनका शरीर पौदोंको जलसिंचन करनेके कामका नहीं
है। कहो ये कौन हैं ? ”

एक वाला दीर्घ निःश्वास डालकर वोलीः–“ ये रत्नपुरके
राजा खेचरेन्द्रकी कन्या हैं। इनका नाम पद्मा है और इनकी
माताका नाम रत्नावली है। जव खेचरेंद्रका देहांत हो गया
तव उनके पुत्र राज्यके लिए आपसमें लडने लगे। इससे सारे
देशमें वलवा मच गया। रत्नावली अपनी कन्याको, लेकर
अपने कुछ विश्वस्त मनुष्योंके साथ वहाँसे निकल भागी और
यहाँ, तापसोंके कुलपति गालव मुनिके आश्रममें, आ रहीं।
आश्रममें रहनेवाले सभी स्त्रीपुरुषोंको काम करना पडता है।

इसलिए हमारी सखी राजकुमारी पद्माको भी काम करना पड़ता है। कल इधर कोई दिव्य ज्ञानी आये थे और उन्होंने कहा था—"रत्नावती! तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारी कन्या चक्रवर्ती सुवर्णबाहुकी रानी होगी। उसे उसका घोड़ा बेकाबू होकर यहाँ ले आयगा।" महाराज! ज्ञानीकी बात आज सच हुई है।"

राजाने पूछा—"श्रीमतीजी! आपका नाम क्या है? और गालव मुनि अभी कहाँ गये हैं?" उसने उत्तर दिया—"महाराज! मेरा नाम मंदा है। गालव मुनि उन्हीं ज्ञानी मुनिको पहुँचाने गये हैं, जिनका मैंने अभी जिक्र किया है।"

इतनेहीमें दूर घोड़ोंकी टापें सुनाई दीं और धूल उड़ती नजर आई। राजाने समझा,—सम्भवतः मेरे आदमी ढूंढ़ते हुए आ पहुँचे हैं। यहाँ उनसे मिलकर उन्हें संतोष हुआ। सुवर्णबाहु चले। सुनंदा पद्माको लेकर झोंपड़ीमें गई। राजा अपने आदमियोंको बाहर सरोवरके किनारे बैठनेकी सूचना कर वापिस बगीचेमें आ बैठा।

मंदाने जाकर गालव ऋषिको—जो उसी समय लौटकर आ गये थे—सुवर्णबाहुके आनेके समाचार सुनाये। गालव मुनि खुश हुए। वे रत्नावती, पद्मा और मंदाको लेकर राजाके पास आये। राजाने उठकर उन्हें नमस्कार किया और कहा:—"ऋषिवर! आपने क्यों तकलीफ की? मैं ही खुद आपके पास हाजिर हो जाता।"

गालव ऋषि बोले:—"एक तो आप अतिथि हैं, दूसरे प्रजाके रक्षक हैं और तीसरे मेरी मानजी पद्माके स्वामी होने-

वाले हैं। इस तरह आप हर तरहसे पूज्य है इसी लिए तथैव पद्माका हाथ आपको पकड़ा देनेके लिए आया हूँ। इसे ग्रहणकर हमें उपकृत कीजिए।"

सुवर्णवाहुने पद्माके साथ गांधर्व विवाह किया। रत्नावली और गालव ऋषिने दोनोंको आशीर्वाद दिया। उसी समय पद्मोत्तर नामक खेचरेंद्रका लड़का जो रत्नावलीका सोतेला पुत्र था वहाँ आ पहुँचा। रत्नावलीने उसे सुवर्णवाहुका हाल सुनाया। पद्मोत्तर सुनकर वड़ा प्रसन्न हुआ। वह सुवर्णवाहुके पास गया और वोलाः-"हे देव! मैं आपहीके पास जा रहा था। सद्भाग्यसे आपके यहीं दर्शन हो गये। कृपा करके आप वैताढ्य गिरिपर मेरी राजधानीमें चलिए और मुझे उपकृत कीजिए।"

सुवर्णवाहु अपनी सेनाके साथ वैताढ्य गिरिपर गये। पद्मा, रत्नावली आदि भी उनके साथ गई। कुछ समय वहाँ रह, दूसरी कई विद्याधर-कन्याओंसे व्याहकर सुवर्णवाहु पीछे अपनी राजधानी पुराणपुरमें आये।

जव उन्हें राज्य करते कई वरस वीत गये, तव चक्र आदि चौदह रत्न प्राप्त हुए। उन्होंने छः खंड पृथ्वीको जीता और वे चक्रवर्त्ती वनकर राज्य करने लगे।

एक वार जगन्नाथ तीर्थंकरका पुराणपुरके उद्यानमें समोसरण हुआ। देवता आकाशसे विमानोंमें वैठ वैठकर आ रहे थे। सुवर्णवाहुने अपनी छतपर वैठे हुए उन विमानोंको देखा। विमान कहाँ जा रहे हैं, यह जानकर उन्हें वड़ा हर्ष हुआ। वे भी परिवार सहित समवसरणमें गये। जव वे देशना सुनकर

जैसे वा देवताओंके विमानोंका विचार करने लगे। सोचते सोचते उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उन्हें अपने पूर्व भवका हाल मालूम हुआ और आत्मगत भगवका विचार कर वैराग्य हो आया। इससे उन्होंने पुत्रको राज्य देकर, जगन्नाथ तीर्थंकरके पाससे दीक्षा ले ली।

उग्र तपस्या कर, अर्हतभक्ति आदि बीस स्थानकोंकी आराधना कर उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म बाँधा और वे पृथ्वी मंडलपर जीवोंको उपदेश देते हुए भ्रमण करने लगे।

एक बार विहार करते हुए सुवर्णबाहु मुनि क्षीरगिरि नामक पर्वतके पासके क्षीरवणा नामक वनमें आये। वहाँ सूर्यके सामने दृष्टि रख, कायोत्सर्ग कर आतापना लेने लगे। कमठका जीव नरकसे निकलकर उसी वनमें सिंह रूपसे पैदा हुआ था। वह दो रोजसे भूखा फिर रहा था। उसने मुनिको देखकर घोर गर्जना की। मुनिने उसी समय कायोत्सर्ग पूरा किया था। शेरकी गर्जना सुन, अपने आयुकी समाप्ति समझ, उन्होंने संलेखना की, चतुर्विध आहारका त्याग किया और शरीरका मोह छोड़कर ध्यानमें मन लगा दिया। सिंहने छलांग मारी और मुनिको पकड़कर चीर दिया।

सुवर्णबाहु मुनि शुभ ध्यानपूर्वक मरकर महाप्रभ नामके विमानमें बीस सागरोपमकी आयुवाले देवता

९ नवाँ भव (महाप्रभ विमानमें देव) हुए। कमठका जीव सिंह मरकर चौथे नरकमें दस सागरोपमकी आयुवाला नारकी हुआ और वहाँकी आयु पूर्णकर, तिर्यंच योनिमें भ्रमण करने लगा।

१० दसवाँ भव (पार्श्वनाथ तीर्थंकर

जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वाराणसी (बनारस) नामका शहर है। उसमें अश्वसेन नामके राजा राज्य करते थे। उनकी रानी वामादेवी थीं। एक रातमें वामादेवीको तीर्थंकरके जन्मकी सूचना देनेवाले चौदह महास्वप्न आये। मरुभूतिका जीव महापद्म नामके देवलोकसे चयकर, चैत्र कृष्णा चतुर्थीके दिन विशाखा नक्षत्रमें वामादेवीके गर्भमें आया। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक मनाया।

गर्भकाल पूरा होनेपर पोस वदि १० के दिन अनुराधा नक्षत्रमें वामादेवीने सर्पलक्षणवाले पुत्रको जन्म दिया। इन्द्रादि देवोंने जन्मकल्याणक महोत्सव किया।

अश्वसेन राजाको पुत्रजन्मके समाचार मिले। उन्होंने लाखों लुटा दिये, कैदी छोड़ दिये और जिसने जो माँगा उसको वही दिया। एक बार जब बालक गर्भमें था तब वामादेवी सो रही थीं, और उनके पाससे एक भयंकर सर्प किसीको कष्ट पहुँचाये बिना फूत्कार करता हुआ निकल गया था, इसलिए मातापिताने पुत्रका नाम पार्श्व रक्खा।

क्रमशः वे जवान हुए। सब तरहकी विद्याएँ सीखे और आनंदसे दिन बिताने लगे।

एक दिन राजा अश्वसेन राजसभामें बैठे थे ...म कीं, उसी समय उन्हें किसी बाहरी राजदूतके आनेकी सूचना मिली। राजाने उसको अंदर बुलाया और उचित आसन देकर पूछाः—"तुम कौन हो और यहाँ किसलिए आये हो?"

राजदूतने उत्तर दिया:–" मैं कुशस्थल नगरसे आया हूँ। वहाँ पहले नरवर्मा नामके राजा राज्य करते थे। उन्होंने संसारको असार जानकर अपने पुत्र प्रसेनजितको राज गद्दी दी और उन्होंने दीक्षा ले ली। राजा प्रसेनजितके एक कन्या है। उसका नाम प्रभावती है। प्रभावतीने एक बार बनारसके राजकुमार पार्श्वनाथके रूप-लावण्यकी तारीफ सुनी और उसने अपना जीवन इनके चरणोंमें अर्पण करनेका संकल्प कर लिया। वह रात दिन उन्हींके ध्यानमें लीन हो आमोदप्रमोद छोड़ एक त्यागिनीकी तरह जीवन बिताने लगी। राजा प्रसेनजितको जब ये समाचार मिले तो उसने प्रभावतीको स्वयंवराकी तरह बनारस भेजनेका संकल्प कर लिया।

कलिंगदेशमें यवन नामका राजा राज्य करता है। वह बड़ा पराक्रमी है। उसने जब ये समाचार सुने तो वह बड़ा गुस्से हुआ और अपनी सभामें बोला—" मेरे ग्रहण करनेकी शक्ति मेरे सिवा इस भरतखंडमें दूसरे किस राजामें है? पार्श्वकुमार कौन है जो प्रभावतीको ग्रहण करेगा और कुशस्थलपतिकी क्या मजाल है कि वह प्रभावतीको पार्श्वकुमारके पास भेजेगा? सेनापति जाओ, और कुशस्थलको घेर लो। अगर प्रभावती बनारस भेजी जाय तो उसको पकड़कर मेरे पास भेज दो।" उसके सेनापतिने आकर कुशस्थलको घेर लिया। थोड़े दिनके बाद खुद राजा यवन भी आया और उसने कहलाया कि,–"या तो तुम प्रभावतीको मेरे हवाले करो या लड़ाईके लिए तैयार हो जाओ।"

राजा प्रसेनजितने अपनेको यवनके सामने लड़नेमें असमर्थ पा उत्तर दियाः-"मैं एक महीनेके बाद आपको निश्चित जवाब दूँगा।" और मुझे आपके पास रवाना किया। राजा यवनने शहरको इस तरह घेर रक्खा है कि, एक परिंदा भी न अंदर जा सकता है और न बाहर निकल सकता है। मैं बड़ी कठिनतासे आपके पास आया हूँ। मेरा नाम पुरुषोत्तम है और राजाका मैं मित्र हूँ। अब आपको जो ठीक जान पड़े सो कीजिए।"

राजदूतकी बातें सुनकर अश्वसेन बड़े क्रुद्ध हुए और बोलेः-"यवनकी यह मजाल कि, मेरी पुत्रवधूको रोक रक्खे। मैं उस दुष्टको दंड दूँगा। सेनापति जाओ! मेरी फौज तैयार करो! मैं आज ही रवाना होऊँगा।"

पवनवेगसे सारे शहरमें यह बात फैल गई। लोग यवन राजाके कृत्यको अपना अपमान समझने लगे और शहरके कई ऐसे लोग भी जो सिपाही न थे सिपाही बनकर लड़ाईमें जानेको तैयार हो गये।

जब पार्श्वकुमारको ये समाचार मिले तो वे अपने पिताके पास आये और बोले-"पिताजी! आपको एक मामूली राजापर चढ़ाई करनेकी कोई जरूरत नहीं है। ऐसोंके लिए आपका पुत्र ही काफी है। आप यहीं आराम कीजिए और मुझे आज्ञा दीजिए कि, मैं जाकर उसे दंड दूँ।"

बहुत आग्रहके कारण पिताने पार्श्वकुमारको युद्धमें जानेकी आज्ञा दी। पार्श्वकुमार हाथीपर सवार होकर रवाना हुए। पहले

पड़ावपर इन्द्रका सारथी रथ लेकर आया और उसने हाथ जोड़कर विनती की—“ स्वामिन् ! यद्यपि आप सब तरहसे समर्थ हैं, किसीकी सहायताकी आपको जरूरत नहीं है, तथापि अपनी भक्ति बतानेका मौका देखकर महाराज इन्द्रने अपना संग्राम करनेका रथ आपकी सेवामें भेजा है और मुझे सारथी बननेकी आज्ञा दी है। आप यह सेवा स्वीकार कर हमें उपकृत कीजिए।”

पार्श्वकुमारने इन्द्रकी यह सेवा स्वीकार की। उसी रथमें बैठकर वे आकाशमार्गसे कुशस्थलको गये। उनकी सेना भी उनके साथ ही पहुँची। देवताओंने पार्श्वकुमारकी छावनीमें इनके रहनेके लिए एक सात मंजिलका महल तैयार कर दिया।

पार्श्वकुमारने अपना एक दूत राजा यवनके पास भेजा। उसने जाकर कहाः-“ अश्वसेनके युवराज पार्श्वकुमारकी आज्ञा है कि, हे कलिंगाधिपति यवन ! तुम तत्काल ही अपने देशको छोड़ जाओ अगर ऐसा नहीं करोगे तो मेरी सेना तुम्हारा संहार करेगी इसका उत्तरदायित्व हमारे सिर न रहेगा। ”

राजा यवन क्रुद्ध होकर बोलाः—“हे दूत ! अपने राजकुमारको जाकर कहना कि, अपनी सुकुमार वयमें अपनेको मौतके मुँहमें न डाले। कलिंगकी सेनाके साथ लड़ाई करना अपनी मौतको बुलाना है। अगर अपनी जान प्यारी हो तो कल शामके पहले-तक यहाँसे छोड़ आप वरना परसों सबेरे ही कलिंगकी सेना तुम्हारा नाश कर देगी ! ”

दूत बोलाः—“ महाराज कलिंग ! मुझे आपपर दया आती है। जिन पार्श्वकुमारकी इन्द्रादि देव सेवा करते हैं

उनके सामने आपका लड़ाईके लिए खडे होना मानो शेरके सामने वकरीका खड़ा होना है। इसलिए आप अपनी जान वचाकर चले जाइए। वरना जिस मौतका आप वारवार नाम ले रहे हैं वह मौत आपको ही उठा ले जायगी।"

राजा यवनके दर्वारियोंने तलवारें खींच लीं और वे उस मुँहजोर दूतपर आक्रमण करनेको तैयार हुए। वृद्ध मंत्रीने उनको रोका और कहाः—"हे सुभटो! दूत अवध्य होता है। फिर यह तो एक ऐसे महान् वलशालीका दूत है जिसकी इन्द्रादि देव पूजा करते हैं। सच मुच ही हम उनके सामने तुच्छ हैं।" फिर दूतको कहाः—"तुम जाकर पार्श्वकुमारसे हमारा प्रणाम कहना और निवेदन करना कि, हम आपकी सेवामें शीघ्र ही हाजिर होंगे।" दूत चला गया। फिर मत्रीने राजा यवनको कहाः—"महाराज! अपने और दुश्मनके वलावलका विचार करके ही युद्ध आरंभ करना चाहिए। मैंने पता लगाया है कि, पार्श्वकुमार और उनकी सेनाके सामने हम और हमारी सेना विल्कुल नाचीज हैं। इसलिए हमारी भलाई इसीमें है कि, हम पार्श्वकुमारके पास जाकर उनसे सधी कर लें!"

राजा यवन वोला—"मंत्री! क्या मुझे और मेरी वहादुर सेनाको किसीके सामने सिर झुकाना पड़ेगा? मुझे यह वात पसंद नहीं है। इस अपमानसे लड़ाईमें मरना मैं अधिक पसंद करता हूँ।"

वृद्ध मंत्रीने अति नम्र शब्दोंमें विनती कीः—"महाराज! नीति यह है कि, अगर दुश्मन वलवान हो तो उससे मेल कर

लेना चाहिए। फिर पार्श्वकुमार तो सामान्य शत्रु नहीं हैं, ये तो देवविशेष हैं। सारी दुनियाके पूज्य हैं। इनसे संधी कर लेनेमें, इनकी सेवा करनेमें इस भव और पर भव दोनों भवोंमें कल्याण है।"

राजा यवनने मंत्रीकी बात मानकर कुशस्थलका घेरा उठा-लेनेका हुक्म दिया। फिर मंत्रीसहित वह पार्श्वकुमारकी सेवामें हाजिर हुआ। दयालु कुमारने उसे अभय देकर विदा किया।

घेरा उठ जानेपर कुशस्थलीके निवासियोंने शांतिका श्वास लिया। शहरके हजारों नरनारी अपने रक्षकके दर्शनार्थ उमड़ पड़े। राजा प्रसेनजित भी अनेक तरहकी भेटें लेकर पार्श्वकुमारकी सेवामें हाजिर हुआ और विनती की:-"आप मेरी कन्याको ग्रहण कर मुझे उपकृत कीजिए।" पार्श्वकुमार बोले-"मैं पिताजीकी आज्ञासे कुशस्थलीकी रक्षा करने आया था। ब्याह करने यहाँ नहीं आया। इसलिए महाराज प्रसेनजित मैं आपका अनुरोध स्वीकारनेमें असमर्थ हूँ।"

फिर पार्श्वकुमार अपनी फौजके साथ बनारस लौट गये। प्रसेनजित भी अपनी कन्या प्रभावतीको लेकर बनारस गया। महाराज अश्वसेनने पार्श्वकुमारका ब्याह प्रभावतीके साथ कर दिया। पतिपत्नी आनंदसे दिन बिताने लगे।

एक दिन पार्श्वकुमार अपने झरोखेमें बैठे हुए थे उस समय उन्होंने देखाकि, लोग फूलों भरी छाबें और मिठाई भरी थालियाँ अपने सिरोंपर रक्खे चले जा रहे हैं। पूछने पर उन्हें मालूम हुआ कि शहरके बाहर कोई कठ नामका तपस्वी

आया है और वह पंचाग्नि तपकी घोर तपस्या कर रहा है। उसीके लिए लोग ये भेटं लेजा रहे हैं। पार्श्वकुमार भी उस तपस्वीको देखनेके लिए गये।

यह कठ तपस्वी कमठका जीव था। जो सिंहके भवसे मर-कर अनेक योनियोंमें जन्मता और दुःख उठाता हुआ एक गाँवमें किसी गरीब ब्राह्मणके घर जन्मा। उसका जन्म होनेके थोड़े ही दिन बाद उसके मातापिताकी मृत्यु हो गई। वह निराधार, बड़ी तकलीफें उठाता इधर उधर ठुकराता बड़ा हुआ। जब वह अच्छी तरह भलाई बुराई समझने लगा तब उसने एक दिन किसीसे पूछाः—"इसका क्या कारण है कि मुझे तो पेटभर अन्न और बदन ढकनेको फटे पुराने कपड़े भी बड़ी मुश्किलसे मिलते हैं और कइयोंको मैं देखता हूँ कि उनके घरोंमें मेवे मिष्टान्न पड़े सड़ते है और कीमती कपड़ोंसे संदूकें भरी पडी हैं?" उसने जवाब दियाः-"यह उनके पूर्व भवमें किये तपका फल है।" उसने सोचा,—मैं भी क्यों न तप करके सब तरहकी सुख-सामग्रियाँ पानेका अधिकारी बनूँ। उसने घरबार छोड़ दिये और वह खाकी बाबा बन वनमें रहने, कन्दमूल खाने और पंचाग्नि तप करने लगा।

त्याग और संयम चाहे वे अज्ञानपूर्वक ही किये गये हों, कुछ न कुछ फल दिये बिना नहीं रहते। कठके इस अज्ञान तपने भी फल दिया। लोगोंमें उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी और वह पुजने लगा। उस समय वह फिरता फिरता बनारस आया था और शहरके बाहर धूनी लगाकर पंचाग्नि तप कर रहा था।

पार्श्वकुमार भी कठके पास पहुँचे । वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि, उसके चारों तरफ बड़ी बड़ी धूनियाँ हैं । उनमें बड़े बड़े लकड़ोंसे अग्निशिखा प्रज्वलित हो रही है । ऊपरसे सूरजकी तेज धूप झुलसा रही है और कठ पाँचों तरफकी तेज आगको सहन कर रहा है । लोग उसकी उस सहन शक्तिके लिए धन्य धन्य कर रहे हैं और भेंट पूजाएँ ला लाकर उसके आगे रख रहे हैं ।

पार्श्वकुमारने अवधिज्ञानसे देखा कि, इन लकड़ोंमेंसे एक लकड़ेमें सर्प झुलस रहा है । वे बोले-"हे तपस्वी ! तुम्हारा यह कैसा धर्म है कि, जिसमें दयाका नाम भी नहीं है । जैसे जलहीन नदी निकम्मी है और चन्द्रहीन रात्रि निकम्मी है इसी तरह दयाहीन धर्म भी निकम्मा है । तुम तप करते हो और इसमें जीवोंका संहार करते हो । यह तप किस कामका है ?"

कठ बोला-"राजकुमार तुम घोड़े कुदाना और ऐयाशी करना जानते हो । धर्मके तत्त्वको क्या समझो ? और मुझपर जीवोंको मारनेका दोष लगाना तो तुम्हारी अज्ञानता है ।"

पार्श्वकुमारने अपने आदमीको आज्ञा दी-"इस धूनीमेंसे यह लकड़ निकालकर चीर डालो ।" नौकरने आज्ञाका पालन किया । उसमेंसे एक तड़पता हुआ साँप निकला । कुमारने उसको नवकार मंत्र सुनवाया और पच्चखाण दिलाया । सर्प मरकर नवकार मंत्रके प्रभावसे भुवनपतिकी नागकुमार निकायमें, धरण नामका, इन्द्र हुआ ।

इस घटनासे कठकी प्रतिष्ठाको धक्का पहुँचा । इससे वह पार्श्वकुमारपर मन ही मन नाराज हुआ और अधिक घोर तप करने लगा । मगर अज्ञान तपके कारण उसे सम्यक् ज्ञान न हुआ और अंतमें मरकर भुवनवासी देवोंकी मेघकुमार निकायमें मेघमाली नामका देव हुआ ।

एक दिन लोकांतिक देवोंने आकर विनती की:—"हे प्रभो! तीर्थ प्रवर्ताइये।" प्रभुने अपने भोगावली कर्मोंको पूरे हुए जान वर्षी दान दिया । वर्षीदान समाप्त हुआ तब इन्द्रादि देवोंने और अश्वसेन आदि राजाओंने पार्श्वकुमारका दीक्षाभिषेक किया। फिर देव और मनुष्य सभी जिसे उठाकर ले जा सकें ऐसी विशाल नामकी पालकी (शिविका) में बैठकर प्रभु आश्रमपद नामक उद्यानमें आये । वहाँ सारे वस्त्राभूषणोंको त्याग, पंचमुष्टी लोचकर, प्रभुने पोस वदि ग्यारसके दिन चन्द्र जब अनुराधा नक्षत्रमें था दीक्षा ली । तीन सौ राजाओंने भी उनके साथ दीक्षा ली । दीक्षा लेते ही उन्हें मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ । सभी तीर्थंकरोंको दीक्षा लेते ही मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न होता है । इन्द्रादि देवोंने दीक्षाकल्याणक मनाया ।

दूसरे दिन कोपट गाँवमे धन्य नामक गृहस्थके घर पायसान्न (खीर) से पारणा किया । देवताओंने उसके यहाँ वसुधारादि पंच दिव्य प्रकट किये ।

प्रभु अनेक गाँवों और शहरोंमें विचरण करते हुए किसी शहरकी तरफ आ रहे थे कि जंगलहीमें सूर्यास्त हो गया । वहाँ पासहीमें कुछ तापसोंके घर भी थे । प्रभु एक कूएके पास वट वृक्षके नीचे कायोत्सर्ग कर ध्यानमें मग्न हो गये ।

कमठके जीवन—जो मेघमाली देव हुआ था—अपधिज्ञानसे पार्श्वनाथपर, जगलमें ध्यान, अपने पूर्व भवका वैर यादकर, दुःख देना स्थिर किया। उसने शेर, चीते, हाथी, बिच्छू, साँप वगैरा अनेक भयंकर प्राणी, अपनी देवमायासे पैदा किये। वे सभी गर्जन, तर्जन, चीत्कार, फुत्कार आदिसे प्रभुको डराने लगे परन्तु पर्वतके समान स्थिर प्रभु तनिक भी चलित न हुए। इससे सभी अदृश्य हो गये। जब इन प्राणियोंसे प्रभु न डरे तो मेघमालीने भयंकर मेघ पैदा किये। आकाशमें कालरात्रिके समान भयानक बिजली चमकने लगी, यह ब्रह्माण्डको फोड़ देगी ऐसी भीति उत्पन्न करनेवाली मेघोंकी गर्जना होने लगी और ऐसा घोर अंधकार हुआ कि आँखकी रोशनी कोई चीज देखनेमें असमर्थ थी। ऐसा मालूम होता था कि पृथ्वी और आकाश दोनों एक हो गये हैं।

अब मूसलधार पानी बरसने लगा। बड़े बड़े ओले गिरने लगे। जंगलके पशु पक्षी व्याकुल जलधारामें बह बहकर जाने लगे। पानी प्रभुके घुटने तक आया, कमरतक आया, छाती-तक आया। और होते होते नासिकातक पहुँच गया। वह वक्त करीब था कि प्रभुका शरीर सारा पानीमें डूब जाता और श्वासोश्वास बंद हो जाता, उसी समय सर्पके जीवको—जो धरणेंद्र हुआ था—यह बात मालूम हुई। वह तुरत अपनी रानियों सहित दौड़ पड़ा। उसकी गति ऐसी मालूम होती थी मानो वह मनसे भी जल्दी दौड़ जायगा।

उसने प्रभुके पास पहुँचते ही एक सोनेका कमल बनाया,

प्रभुको उसपर चढ़ाया और अपने फन फैलाकर तीन तरफसे प्रभुको ढक लिया। धरणेंद्रकी रानियाँ प्रभुके आगे नृत्य, नाट्यादिसे भक्ति करने लगी।

जब मेघमालीका उपद्रव बहुत देरतक शांत न हुआ तब धरणेंद्र क्रुद्ध होकर बोलाः—" हे मेघमाली! अपनी दुष्टता अब बंद कर। यद्यपि मैं प्रभुका सेवक हूँ, क्रोध करना मुझे शोभा नहीं देता, तो भी तेरी दुष्टता अब सहन न कर सकूँगा। प्रभुने तुझको पापसे बचाकर तुझपर उपकार किया था। तू उल्टा उपकारके बदले अपकार करता है। सावधान! अब अगर तुरत तू अपना उपद्रव बंद न करेगा तो तुझे इसकी सजा दी जायगी।"

मेघमाली अबतक पानी बरसानेमें लीन था। अब उसने धरणेंद्रकी बात सुनकर नीचे देखा। प्रभुको निर्विघ्न ध्यान करते देख वह सोचने लगा,—धरणेंद्र जैसे जिनकी सेवा करते हैं उनको सतानेका खयाल करना सरासर मूर्खता है। इनकी शक्तिके आगे मेरी शक्ति तुच्छ है। इनके सामने मै इसी तरह क्षुद्र हूँ जिस तरह हवाके सामने तिनका होता है। तो भी इन क्षमाशील प्रभुको धन्य है कि इन्होंने मेरे उपद्रवको सहन किया है। मेरा कल्याण इसीमें है कि, मै जाकर प्रभुसे क्षमा माँगू।

मेघमाली आकर प्रभुके चरणोंमें पड़ा, मगर समभावी प्रभु तो अपने ध्यानमें मग्न थे। उनके मनमें न तो वह उपद्रव कर रहा था तब रोप था न अब वह चरणोंमें आकर गिरा इससे तोप है। उनके मनमें उसकी दोनों कृतियाँ उपेक्षित हैं। मेघमाली

पश्चात्ताप करता हुआ वहाँसे चला गया। प्रभुको उपसर्ग रहित हुए समझ धरणेंद्र भी प्रभुको नमस्कार कर अपने स्थानपर चला गया। सवेरा हुआ और प्रभु वहाँसे विहार कर गये।

प्रभु विचरते हुए बनारसके पास आश्रमपद नामके उद्यानमें आये और धातकी वृक्षके नीचे कायोत्सर्ग करके रहे। वहाँ घनघ घाति कर्मोंका नाश हुआ और चैत्र वदि चौथके दिन, चंद्र जब विशाखा नक्षत्रमें था उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। दीक्षा लेनेके चौरासी दिन बाद प्रभुको केवलज्ञान हुआ। इन्द्रादि देवोंने प्रभुका केवलज्ञानकल्याणक किया।

राजा अश्वसेनको प्रभुके समवसरणके समाचार मिले। अश्वसेन वामादेवी और परिवार सहित समवसरणमें आये। प्रभुकी देशना सुनकर अश्वसेनने अपने छोटे पुत्र हस्तिसेनको राज्य देकर दीक्षा ली। माता वामादेवीने और पार्श्वप्रभुकी भार्या प्रभावती देवीने भी दीक्षा ली।

प्रभुके शासनमें पार्श्व नामक शासनदेव और पद्मावती नामा शासन देवी थे। उनके परिवारमें आर्यदत्त वगैरा दस गणधर, १६ हजार साधु, ३८ हजार साध्वियाँ, ३५० चौदह पूर्वधारी, १ हजार ४ सौ अवधिज्ञानी, साढ़े सात सौ मनःपर्ययज्ञानी, १ हजार केवली, ११ सौ वैक्रिय लब्धिवाले, १ लाख ६४ हजार श्रावक और ३ लाख ७७ हजार श्राविकाएँ थे।

अपना निर्वाण समय निकट जान भगवान सम्मेत शिखर पर गये। वहाँ तेतीस मुनियोंके साथ अनशन ग्रहण कर,

श्रावण शुक्ला ८ मीके दिन विशाखा नक्षत्रमें वे मोक्ष गये। इन्द्रादि देवोंने निर्वाणकल्याणक किया।

उनकी कुल आयु १०० बरसकी थी। उसमेंसे वे ३० बरस गृहस्थ पर्यायमें और ७० बरस साधु पर्यायमें रहे। श्रीनेमीनाथके निर्वाण पानेके बाद ८६ हजार ७ सौ ५० बरस बीते तब श्रीपार्श्वनाथ मोक्षमें गये। इनका शरीर प्रमाण ९ हाथका था।

भगवान महावीर

कृतापराधेऽपि जने, कृपामंथरतारयोः।
ईषद्बाष्पार्द्रयोर्भद्रं, श्रीवीरजिननेत्रयोः॥

भावार्थ-जिन आँखोंमें दया सूचित करनेवाली पुतलियाँ हैं और जो आँखें दयाके कारणसे आँसुओंसे भीग जाती हैं उन, भगवान महावीरकी, आँखोंका कल्याण हो। ×

× इस श्लोकके सम्बधमें एक ऐसी कथा प्रसिद्ध है कि 'संगम' नामके किसी देवताने महावीर स्वामीपर छः महीने तक उपसर्ग किये थे तो भी भगवान स्थिर रहे थे। उनकी दृढता देखकर वह बोला:-"हे देव! हे आर्य! आप अब स्वेच्छा पूर्वक भिक्षाके लिए जाइए। मैं आपको तकलीफ न दूँगा।" भगवान बोले:-"मैं तो स्वेच्छा पूर्वक ही भिक्षाके लिए जाता हूँ। किसीके कहनसे नहीं जाता।" 'संगम' देव अपने देवलोकको चला। उसे जाते देख, प्रभुकी आँखोंमें यह सोचकर आँसू आ गये कि बिचारे देवने मुझपर उपसर्ग कर बुरे कर्म बाँधे हैं और उनका फल दुःख इसे भोगना पड़ेगा।

जंबुद्वीपके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें महावप्र नामका प्रांत था। उसकी जयंती नामकी नगरीमें शत्रुमर्दन

१ प्रथम भव

नामका राजा राज्य करता था। उसके राज्यमें पृथ्वी प्रतिष्ठान नामके गाँवमें नयसार नामका स्वामीभक्त पटेल (जमैती) था। यद्यपि उसको साधु संगतिका लाभ नहीं मिला था। तथापि वह सदाचारी और गुणग्राही था। एक बार वह राज्यके काम लानेके लिए काष्ट मिलवानेका हुक्म पाकर जंगलमें गया।

भयानक जंगलमें जाकर उसने लकड़ कटवाए। जब दुपहरका वक्त हुआ तब सभी मजदूर अपने अपने टिफिन खोलकर खाने लगे। नयसारने सोचा,–गाँवमें मैं हमेशा अभ्यागतको खिलाकर खाता हूँ। आज मेरा मंद भाग्य है कि कोई अभ्यागत नहीं। देखूँ अगर कोई इधरसे मुसाफिर आता हो तो उसे ही खिलाकर फिर खाऊँ। वह इधर उधर किसी मुसाफिरकी तलाशमें फिरता रहा; परन्तु कोई मुसाफिर बहुत देर गुजर जानेपर भी उधरसे न निकला। वह दुर्भाग्यका विचार करता हुआ उस जगह आया जहाँ सब भोजन करने बैठे थे।

ज्योंही वह भोजन परोसकर खाना चाहता था त्योंही उस सामने कुछ मुनि आते हुए दिखाई दिये। नयसार, उठाया हुआ नवाला वापिस एक तरफ रखकर, उठा और मुनियोंके पास जाकर हाथ जोड़ बोला–"मेरा सद्भाग्य है कि, आपके इस भयानक जंगलमें, दर्शन हो गये। कृपानाथ! भोजन तैयार

है आइये और कुछ खाकर मुझे उपकृत कीजिए। क्षुधापीडित मुनियोंने शुद्ध आहार जानकर ग्रहण किया। जब मुनि आहार कर चुके तब समयसारने पूछाः—"महाराज! इस भयानक जंगलमें आप कैसे आ चढ़े? भयानक पशुओंसे भरे हुए इस जंगलमें शस्त्रधारी भी आते हिचकिचाते हैं। आपने यह साहस कैसे किया?" मुनि बोलेः—"हम वनजारेके साथ मुसाफिरी कर रहे थे। रस्तेमें एक गाँवमें हम आहारपानी लेने गये और [illegible] ने छूट गये। चलते हुए रस्ता भूलकर इस जंगलमें आ चढ़े हैं।"

"चलिए मैं गाँवका रस्ता बता दूँ।" कह समयसार साधुओंको रस्ता बताने गया। जब वे रस्तेपर पहुँच गये तब एक वृक्षके नीचे बैठकर मुनियोंने समयसारको धर्म सुनाया और समयसार धर्म ग्रहण कर सम्यक्त्वी बना। फिर साधु अपने रस्ते गये और समयसार भी लक्कड़ राजधानीमें रवाना कर अपने घर गया।

बहुत समय तक धर्म पाल अंतमें मरकर समयसारका जीव सौधर्मदेवलोकमें पल्योपमकी आयुवाला देवता हुआ।

मरीचिका भव

इसी भरतक्षेत्रमें विनीता नामकी नगरीमें भगवान ऋषभदेवके पुत्र भरत चक्रवर्ती राज्य करते थे। समयसारका जीव देवलोकसे उन्हींके घर पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ। अपने सूर्यके समान तेजसे वह चारों तरफ मरीचि (किरणें) फैलाता था, इससे उसका नाम मरीचि रक्खा गया। क्रमशः मरीचि जवान हुआ।

भगवान ऋषभदेवका सबसे पहला समवसरण विनीताके बाहर हुआ। मरीचि भी अपने कुटुंबके साथ समवसरणमें गया और देशना सुन, धर्म ग्रहणकर साधु हो गया।

जब गरमियोंके दिन आये तो समयपर आहारपानी न मिलनेसे, तेज धूपमें विहार करनेके दुःखसे और पसीनेके मारे कपड़ोंके मैले हो जानेसे मरीचिका मन बहुत व्याकुल हो उठा। वह सोचने लगा,—पर्वतके समान दुस्तर दीक्षाभार मैंने कहाँ ग्रहण किया? आखिरतक मुझसे इसका पालन न होगा। मगर गृहस्थ भी अब कैसे हुआ जाय? इससे तो लोक हँसाई होगी। मगर इस भारको हलका करनेका कोई रस्ता निकालना चाहिये। बहुत दिनतक विचार करनेके बाद उसने स्थिर किया,—

मुनि लोग त्रिदंडसे विरक्त हैं और मैं तो त्रिदंडके आधीन हूँ इसलिए मैं त्रिदंडधारी बनूँगा। केशलोच करनेसे महान पीडा होती है, मैं उस पीडाको सहन करनेमें असमर्थ हूँ इसलिए बाल उस्तरेसे मुँडवाया करूँगा और सिरपर शिखा भी रक्खूँगा। मुनि महाव्रतधारी होते हैं मैं अणुव्रतका पालन करूँगा। मुनि कपर्दकहीन होते हैं मैं अपनी जरूरतोंको पूरा करनेके लिए पैसा रक्खूँगा। मुनि मोहहीन होनेसे धूप और पानीसे बचनेके लिए कोई साधन नहीं रखते, मैं अपनी रक्षाके लिए छत्रीका उपयोग करूँगा और जूते पहनूँगा। मुनि शीलसे सुगंधित होते हैं, मैं सुगंधके लिए चंदनका तिलक लगाऊँगा। मुनि कषायरहित होनेसे श्वेतवस्त्र धारण करते हैं, मगर मैं तो

१ मन दंड, वचन दंड और कायदंड।

कषायवाला हूँ इसलिए काषाय (रंगीन) वस्त्र पहनूँगा। सचित्त जलसे अनेक जीवोंकी विराधना होती है इसलिए संकट सहकर भी मुनि सचित्त जल नहीं लेते; मगर मैं तो संकट सहनेमें असमर्थ हूँ इसलिए हमेशा सचित्त जलका उपयोग करूँगा। इस तरह सुखसे रहनेके लिए मरीचिने गृहस्थ और साधुके बीचका रस्ता निकाला और त्रिदंडी सन्यास ग्रहण किया।

ऐसा विचित्र वेष देखकर लोग उससे धर्म पूछते थे; मगर वह लोगोंको शुद्ध जैनधर्मका ही उपदेश देता था। जब कोई उसे पूछता कि, तुमने ऐसा विचित्र वेष क्यों बनाया है तो वह जवाब देता,—" मैं इतना कठिन तप नहीं कर सकता इसीलिए ऐसा वेष बनाया है।"

एक बार महाराज भरत चक्रवर्तीके प्रश्नपर भगवान ऋषभदेवने उनके बाद होनेवाले तीर्थंकरों और चक्रवर्तियों आदिके नाम बताये। भरतने पूछाः—"प्रभु इस समवशरणमें भी कोई ऐसा जीव है जो इस चौवीसीमें तीर्थंकर होगा?" भगवानने जवाब दियाः—" तुम्हारा पुत्र मरीचि भरतक्षेत्रमें महावीर नामका चौवीसवाँ तीर्थंकर होगा, पोतनपुरमें त्रिपृष्ठ नामका पहला वासुदेव होगा और महाविदेह क्षेत्रकी मूकापुरीमें प्रियमित्र नामका चक्रवर्ती होगा।" फिर भरत उठकर मरीचिके पास गये और वंदना करके उन्होंने सारा हाल कहा। सुनकर मरीचि खुशीसे नाचने लगा और कहने लगा,—"दुनियामें मेरे समान कौन कुलीन होगा कि जिसके पिता पहले चक्रवर्ती हैं,

जिसके द्वारा पहले तीर्थंकर हैं और जो खुद पहला वासुदेव, चौबीसवाँ तीर्थंकर व विदेहक्षेत्रमें चक्रवर्ती होगा।" इस तरह कुलका गर्व करनेसे उसने नीच गोत्र बाँधा।

भगवान मोक्षमें गये उसके बाद भी वह त्रिदंडीके वेषमें रहता था और शुद्ध धर्मका ही उपदेश करता था। एक बार बीमार हुआ; परन्तु उसे संयमहीन समझकर साधुओंने उसकी सेवा शुश्रूषा न की। इससे मरीचिके मनमें क्षोभ हुआ और सोचने लगा,—ये साधु लोग बड़े ही स्वार्थी निर्दय और दाक्षिण्यहीन हैं कि बीमारीमें भी मेरी शुश्रूषा नहीं करते। यह सच है कि, मैंने संयम छोड़ा है, परन्तु धर्म तो नहीं छोड़ा! मैंने विनयका तो त्याग नहीं किया! इनको क्या लोकव्यवहारका भी ज्ञान नहीं है! फिर सोचा,—मैं क्यों साधुओंको बुरा समझूँ! ये लोग जब अपने शरीरकी भी परवाह नहीं करते तो मुझ असंयमीकी परवाह न की इसमें कौनसी बुराई हुई? फिर सोचा,—मगर भविष्यके लिए तो मुझे इसका उपाय करना ही चाहिए। मैं अब रोगमुक्त होनेके बाद एक शिष्य बनाऊँगा।

मरीचि जब अच्छा हो गया तब उसके पास एक कपिल नामका पुरुष धर्मोपदेश सुनने आया। मरीचिने उसे अपना शिष्य बनाया और तभीसे त्रिदंडी धर्मकी हमेशाके लिए नींव पड़ गई। इस मिथ्याधर्मकी नींव डालनेसे मरीचिके जीवने कोटाकोटि सागरोपम प्रमाणका संसार उपार्जन किया।

अपने मिथ्या धर्मोपदेशकी आलोचना किये और मरकर मरीचिका जीव ब्रह्मदेवलोकमें देवता हुआ। कपिलने अपने मतका

खूब उपदेश दिया और आसूर्य आदिको अपना शिष्य बनाया कपिल भी मरकर देवता हुआ। वहाँ अवधिज्ञानसे अपने पूर्व जन्मका हाल जानकर वह पृथ्वीपर आया और उसने आसूर्य आदिको अपने मतका नाम बताया। तभीसे 'सांख्य दर्शन' प्रचलित हुआ। *

कौशिक ब्राह्मणका भव

ब्रह्मदेवलोकसे चयकर मरीचिका जीव कोल्लाक नामके गाँवमें अस्सी लाख पूर्वकी आयुवाला कौशिक नामका ब्राह्मण हुआ। उस भवमें भी उसने त्रिदंडी सन्यास धारण किया। उसके बाद मरीचिने अनेक भवोंमें भ्रमण किया।

विश्वभूतिका भव

राजगृहमें विश्वनंदी नामका राजा राज्य करता था। उसके प्रियंगु नामकी रानीसे विशाखनंदी नामका एक पुत्र था। राजाके विशाखभूति नामका छोटा भाई था। वह युवराज था। उसकी धारिणी नामा स्त्रीके गर्भसे, मरीचिका जीव, उत्पन्न हुआ। उसका नाम विश्वभूति रक्खा गया।

विश्वभूति युवा हुआ तबकी बात है। एक बार वह अपने जनाने सहित पुष्पकरंडक नामके राजाके सुंदर बागमें क्रीडा

---

* श्रीमद्भागवत हिन्दुधर्मका एक माननीय ग्रंथ है। उसमें सांख्यमतकी उत्पत्ति इस तरह लिखी है,—"मनुजीकी कन्या देवहूती थी। उसके साथ कर्दम ऋषिका व्याह हुआ। देवहूतीके गर्भसे नौ कन्याएँ और एक पुत्र हुआ। पुत्रका नाम कपिल था। कपिलजी चौबीस अवतारोंमेंसे पाँचवें अवतार हुए हैं। इन्होंने अपनी माता देवहूतीजीको ज्ञान करानेके लिए जो तत्त्वोपदेश दिया, वही तत्त्वोपदेश सांख्य दर्शनके नामसे प्रसिद्ध हुआ।"

जिसके दादा पहले तीर्थंकर हैं और जो खुद पहला वासुदेव, चोवीसवाँ तीर्थंकर व विदेहक्षेत्रमें चक्रवर्ती होगा।" इस तरह कुलका गर्व करनेसे उसने नीच गोत्र बाँधा।

भगवान मोक्षमें गये उसके बाद भी वह त्रिदंडीके वेशमें रहता था और शुद्ध धर्मका ही उपदेश करता था। एक बार बीमार हुआ, परन्तु उसे संयमहीन समझकर साधुओंने उसकी सेवा शुश्रूषा न की। इससे मरीचिके मनमें क्षोभ हुआ और सोचने लगा,–ये साधु लोग बड़े ही स्वार्थी निर्दय और दाक्षिण्यहीन हैं कि बीमारीमें भी मेरी शुश्रूषा नहीं करते। यह सच है कि, मैंने संयम छोड़ा है, परन्तु धर्म तो नहीं छोड़ा? मैंने विनयका तो त्याग नहीं किया? इनको क्या लोकव्यवहारका भी ज्ञान नहीं है? फिर सोचा,—मैं क्यों साधुओंको बुरा समझूँ? ये लोग जब अपने शरीरकी भी परवाह नहीं करते तो मुझ असंयमीकी परवाह न की इसमें कौनसी बुराई हुई? फिर सोचा,—मगर भविष्यके लिए तो मुझे इसका उपाय करना ही चाहिए। मैं अब रोगमुक्त होनेके बाद कुछ शिष्य बनाऊँगा।

मरीचि जब अच्छा हो गया तब उसके पास एक कपिल नामका पुरुष धर्मोपदेश सुनने आया। मरीचिने उसे अपना शिष्य बनाया और तभीसे त्रिदंडी धर्मकी हमेशाके लिए नींव पड़ गई। इस मिथ्याधर्मकी नींव डालनेसे मरीचिके जीवने कोट्याकोटि सागरोपम प्रमाणका संसार उपार्जन किया।

अपने मिथ्या धर्मोपदेशकी आलोचना किये बगैर मरकर मरीचिका जीव ब्रह्मलोकमें देवता हुआ। कपिलने अपने मतका

विश्वभूतिने उसी वक्त संभूति मुनिके पास जाकर दीक्षा ले ली। राजा विश्वनंदीको यह खबर मिली। उसे अपनी कृतिपर दुःख हुआ। उसने विश्वभूतिके पास जाकर क्षमा माँगी और उससे राज लेनेका आग्रह किया; परन्तु त्यागी विश्वभूतिने यह बात स्वीकार न की।

एक बार एकाकी विहार करते हुए विश्वभूति मुनि मथुरा आये। विशाखनंदी भी उस समय मथुरा आया था और शहरके बाहर उसका पड़ाव था। विश्वभूति मुनि एक महीनेके उपवासके बाद गोचरी लेने शहरमें जा रहे थे। जब वे विशाखनंदीके डेरेके पास पहुँचे तो नौकरोंने और उसने विश्वभूतिको पहचाना। विशाखनंदी मुनिको देख यह सोच उनपर गुस्से हुआ कि, इसीके कारणसे पिताजीने मेरा तिरस्कार किया था। इतने हीमें एक गाय दौड़ती हुई आई और विश्वभूति मुनिसे टकराई। मुनि गिर पड़े। विशाखनंदी और उसके नौकर हँस पड़े। वह मुनिको उद्देशकर बोलाः—"अरे! आज तेरा झाड़के फल गिरानेका बल कहाँ गया?" इस तिरस्कारसे मुनि गुस्से हुए। उन्होंने, उठकर, गायको सींग पकड़कर उठाया, घुमाया और आकाशमें उछाल दिया। इस पराक्रमको देख विशाखनंदी और उसके नौकर लज्जित हो गये। विश्वभूति मुनिने यह नियाणा किया कि, मेरे तपके प्रभावसे भवांतरमें मैं बहुत बलशाली होऊँ और मेरा अपमान करनेवाले विशाखनंदीको दंड दूँ।

मरीचिका जीव विश्वभूति मरकर महाशुक्र देवलोकमें उत्कृष्ट

महाशुक्रका भव आयुवाला देवता हुआ।

करने गया था। पीछेसे राजाका पुत्र विशालनंदी भी उसी वनमें क्रीडा करनेके इरादेसे पहुँचा; परन्तु विश्वभूतिको वहाँ जान उसे फाटकहीसे लौट आना पड़ा। उसने अपनी माताले यह बात कही। रानी नाराज हुई और उसने विश्वभूतिको किसी भी तरहसे, बागसे निकालनेके लिए राजाको, लाचार किया। राजाने फौज तैयार करनेका हुक्म दिया और सभामें कहा कि, पुरुषसिंह नामका सामंत बागी हो गया है। उसका दमन करनेके लिए मैं जाता हूँ। विश्वभूतिको भी यह खबर पहुँचाई गई। सरल स्वभावी विश्वभूति तुरत सभामें आया और राजाको रोक आप फौज लेकर गया।

जब वह पुरुषसिंहकी जागीरमें पहुँचा तो उसने पुरुषसिंहको आज्ञाधारक पाया। उसे आश्चर्य हुआ। वह वापिस आया और पुष्पकरंडक नामके बागमें गया, तो मालूम हुआ कि वहाँ राजपुत्र विशालनंदी आ गया है। विश्वभूति बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने द्वारपालोंको बुलाया और कहा–" देखो, मुझे धोखा दिया गया है। अगर मैं चाहूँ तो तुम्हारा और राजकुमारका क्षण भरमें नाश कर मुझे धोखा देकर इस बागसे निकालनेकी सजा दे सकता हूँ।" फिर उसने फलोंसे लदे हुए एक झाड़पर मुक्का मारा। झाड़के फल सब जमीनपर आ गिरे। फिर उसने द्वारपालोंको कहा–" देखो मेरी शक्ति! इन फलोंकी तरह ही मैं तुम लोगोंके सिर धड़से जुदा कर सकता हूँ; परन्तु मुझ यह कुछ नहीं करना है। जिस भोगके लिए ऐसा छल कपट और भेदद्रोह करना पड़े उस भोगको धिक्कार है!"

विश्वभूतिने उसी वक्त संभूति मुनिके पास जाकर दीक्षा ले ली। राजा विश्वनंदीको यह खबर मिली। उसे अपनी कृतिपर दुःख हुआ। उसने विश्वभूतिके पास जाकर क्षमा माँगी और उससे राज लेनेका आग्रह किया; परन्तु त्यागी विश्वभूतिने यह बात स्वीकार न की।

एक बार एकाकी विहार करते हुए विश्वभूति मुनि मथुरा आये। विशाखनंदी भी उस समय मथुरा आया था और शहरके बाहर उसका पडाव था। विश्वभूति मुनि एक महीनेके उपवासके बाद गोचरी लेने शहरमें जा रहे थे। जब वे विशाखनंदीके डेरेके पास पहुँचे तो नौकरोंने और उसने विश्वभूतिको पहचाना। विशाखनंदी मुनिको देख यह सोच उनपर गुस्से हुआ कि, इसीके कारणसे पिताजीने मेरा तिरस्कार किया था। इतने हीमें एक गाय दौड़ती हुई आई और विश्वभूति मुनिसे टकराई। मुनि गिर पड़े। विशाखनंदी और उसके नौकर हँस पड़े। वह मुनिको उद्देशकर बोलाः—"अरे! आज तरा झाड़के फल गिरानेका बल कहाँ गया?" इस तिरस्कारसे मुनि गुस्से हुए। उन्होंने, उठकर, गायको सींग पकड़कर उठाया, घुमाया और आकाशमें उछाल दिया। इस पराक्रमको देख विशाखनंदी और उसके नौकर लज्जित हो गये। विश्वभूति मुनिने यह नियाणा किया कि, मेरे तपके प्रभावसे भवांतरमें मैं बहुत बलशाली होऊँ और मेरा अपमान करनेवाले विशाखनंदीको दंड दूँ।

महाशुक्रका भव मरीचिका जीव विश्वभूति मरकर महाशुक्र देवलोकमें उत्कृष्ट आयुवाला देवता हुआ।

भरतक्षेत्रके पोतनपुर नामक नगरमें रिपुप्रतिशत्रु नामक राजा राज्य करते थे। उनकी पटरानी भद्राके निपुण वसुदेवका मन गर्भसे चार स्वप्नोंसे सूचित एक पुत्र जन्मा। उसका नाम 'अचल' रक्खा गया। उसके बाद भद्राने एक सुन्दरी कन्याको जन्म दिया। उसका नाम मृगावती रक्खा गया। धीरे २ यौवनने वसन्त ऋतुकी भाँति, मृगावतीपर अपना साम्राज्य स्थापित किया। महादेवी भद्राको, अपनी प्रिय पुत्रीको यौवनवती देख उसके विवाहकी चिंता हुई। एक दिन मृगावती अपने पिताको प्रणाम करने गई थी। उसके रूप लावण्यको देखकर राजा कामान्ध बना। मृगावतीको अपनी गोदमें बिठा कर उसके गालोंपर हाथ फेरने लगा। उसने मन ही मन उसके साथ विवाह करनेका निश्चय किया।

दूसरे दिन वह जब अपनी सभामें गया तब उसने शहरके सभी प्रतिष्ठित पुरुषोंको बुलाया और पूछा—"मेरे राज्यमें कोई रत्न उत्पन्न हो तो उसका स्वामी कौन है?" सबने कहा—"आप हैं।"

राजाने फिर पूछा—"मैं उसका स्वामी हो सकता हूँ?" सबने जवाब दिया—"हाँ महाराज, आप हो सकते हैं।" राजाने फिर पूछा—"सोचकर कहो, क्या मैं उस रत्नका उपभोग कर सकता हूँ?" वे क्या जानते थे कि राजा छल करके उनसे बातें पूछ रहा है। सबने शुद्ध भावसे कहा—"हाँ कृपानाथ, आप कर सकते हैं।" तब राजा बोला—"मेरे घर जन्मे हुए कन्या

रत्नसे मैं ब्याह करना चाहता हूँ।" राजाकी बात सुनकर सभी सन्नाटेमें आ गये। उनके मुँह उतर गये। किसीकी जवानमें शब्द नहीं था। राजा बोलाः—"तुम्हींने सम्मति दी है कि मेरे राज्यमें जो रत्न हो उसका मैं स्वामी हूँ। अव चुप क्यों हो? मैं इस समय तुम्हारी मौजूदगीमें गांधर्व विवाह करूँगा।" राजाने मृगावतीको बुलाकर शहरके सभी प्रतिष्ठित पुरुषोंकी उपस्थितिमें उससे गांधर्व विवाह कर लिया।

महादेवी भद्रा पतिके इस घृणित कार्यसे बड़ी लज्जित हुई और अपने पुत्र बलदेव अचलको साथ ले दक्षिणमें चली गई। राजकुमार अचलने अपने बल एवं पराक्रमसे माहेश्वरी नामक एक नया नगर बसाया। कुछ दिन वहाँ रह शहरको व्यवस्थित कर वह अपने पिताके पास चला गया। और पिताके दोषकी उपेक्षा कर वह भक्ति सहित उनकी सेवा करने लगा। शहरके लोग राजाको रिपु प्रतिशत्रुकी जगह प्रजापति कहकर पुकारने लगे, कारण वह अपनी प्रजा—सन्तानका पति हुआ था।

राजाने मृगावतीको पट्टरानी पदसे सुशोभित किया। कालान्तरमें मरीचिका (विश्वभूतिका) जीव महाशुक्र देवलोकसे चयकर उसके गर्भमें आया। उस रात महादेवीने वसुदेवके जन्मकी सूचना देनेवाले सात शुभ स्वप्न देखे। समयपर एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। उसके पृष्ठ भागमें तीन हड्डियाँ थीं, इसलिए उसका नाम त्रिपृष्ठ रक्खा गया। यही इस चौवीसीमें प्रथम वासुदेव हुआ है। राजकुमार अचल अपने भाईको खेलाता और आनंदसे दिन विताता। त्रिपृष्ठ बड़ा हुआ और दोनों

माइयोंमें गाढ़ी प्रीति हो गई। बड़े सुखसे शिशु वास्यकालको व्यतीत कर युवावस्थाको प्राप्त हुआ। जब वह जवान हुआ तब उसका शरीर प्रमाण अस्सी धनुष था।

उस तरफ रत्नपुर नगरके मयूरग्रीव नामक राजाकी नीलांजना नामक रानीके गर्भसे अश्वग्रीव नामक प्रति वासुदेवका भी जन्म हो चुका था। वह बड़ा पराक्रमी, एवं रणनिपुण था। धीरे २ उसकी वीरताकी धाक सब राजाओंपर बैठ गई। प्रायः सभी राजा उसके आधीन हो गये। समयपर प्रति वासुदेवका चक्र भी उसकी आयुधशालामें उत्पन्न हुआ। उसके प्रभावसे अश्वग्रीवने भरत क्षेत्रके तीन खंडोंपर विजय पताका फहरा दी। मागध वरदाम आदि तीर्थदेवोंसे भी उसने अपना आधिपत्य स्वीकार कराया।

एक बार उसने अश्वबिन्दु नामक नैमेत्तिकको बुलाकर अपना भविष्य पूछा। अश्वबिन्दुने बड़ी सावधानीके साथ कहा—"राजन आपके चंडवेग नामक दूतको जो पीटेगा और तुंगगिरिमें रहनेवाले केसरी सिंहको जो मार डालेगा उसीके हाथसे आपकी मौत होगी।" यह सुनकर अश्वग्रीव बड़ा चिन्तित हुआ। उसने शत्रुका पता लगानेके लिए तुंगगिरिके पासके शंखपुर प्रदेशमें शालीके खेत तैयार कराये और उनकी रक्षा करनेके लिए वह अपने अधीनस्थ राजाओंको भेजने लगा।

एक बार उसको पता लगा कि, पोतनपुरके दो राजकुमार बड़े बलवान हैं। उसे वहम हुआ कि, कहीं वे ही तो मेरे शत्रु नहीं हैं। उसने उनकी जाँच करनेके लिए अपने दूत चंडवेग-

को भेजा। चंडवेग बड़ा वीर पुरुष था। वह अपने दलबल सहित पोतनपुर पहुँचा और सीधा प्रजापतिकी राजसभामें चला गया। महाराज उस समय समस्त दर्बारियों और दोनों राजकुमारोंके साथ संगीतकी मधुर ध्वनि सुननेमें मग्न थे। चण्डवेग के अचानक सभामें प्रवेश करनेसे राग रंग बंद हो गये, सभामें सन्नाटा छा गया और प्रजापतिने उसका यथायोग्य सत्कार किया। त्रिपृष्ठ इस नवागंतुकपर बड़ा नाराज हुआ। उसने अपने एक मंत्रीसे पूछाः-"यह कौन है?" उसने जवाब दियाः-" यह अश्वग्रीव प्रति वासुदेवका पराक्रमी चण्डवेग दूत है।" अभिमानी त्रिपृष्ठने कहाः-"इस दुष्टको मैं जरूर दंड दूँगा। यह चाहे कितने ही बड़े राजाका दूत हो, मगर इजाजत लिए बिना सभामें आनेका इसे कोई हक नहीं था।" मगर वहाँ वह कुछ नहीं बोला। उसने अपने आदमियोंसे कहाः-"यह जब यहाँसे विदा हो तब तुम मुझे खबर देना।"

थोड़े दिनके बाद प्रजापतिने चंडवेगको विदा दी। राजकुमार त्रिपृष्ठको उसके जानेके समाचार दिये गये। दोनों भाइयोंने उसे मार्गमें जाते हुएको रोककर कहाः-" रे दुष्ट! रे मूर्ख! तूने घमंडके मारे नियमोंका उल्लंघन कर राजसभामें प्रवेश किया है और हमारे राग-रंगमें विघ्न डाला है इसलिए आज तुझे इसकी सजा दी जायगी।" त्रिपृष्ठने तलवार निकाली। अचलने उसे ऐसा करनेसे रोका और अपने आदमियोंको इशारा किया। आदमियोंने चंडवेगसे हथियार छीन लिये और उसे खूब पीटा। चंडवेगके साथी सभी भाग गये।

दूतकी ऐसी दुर्गति हुई सुनकर प्रजापतिको दुःख हुआ। उसने आदमी भेजकर दूतको वापिस बुलाया, लड़केकी ढिठाईके लिए दूतसे मर्षित किया और उसे अनेक तरहसे इनाम इकराम देकर सन्तुष्ट किया। और इस घटनाकी खबर अश्वग्रीवको न देनेका उससे वादा कराया।

अपमानित दूत अश्वग्रीवके पास पहुँचा। उसके पहले ही उसके साथियोंने जाकर पोतनपुरकी घटनाके समाचार सुना दिये थे। अपना वादा पूरा होनेका कोई उपाय न देख दूतने भी सारा वृत्तान्त सुना दिया। सुनकर अश्वग्रीवको क्रोध हो आया; परन्तु प्रजापतिकी क्षमायाचनाके समाचार सुनकर कुछ शान्ति भी हुई। उसने विचारा कि नैमित्तिककी एक बात तो सच्ची हुई है। अब दूसरी बातकी सत्यता जाननेके लिए भी उपाय करना चाहिए। उसने दूत भेजकर प्रजापतिको शाली-के खेतकी रक्षाके लिए जानेका आदेश दिया।

प्रजापतिने अश्वग्रीवकी आज्ञा दोनों कुमारोंको सुना दी। त्रिपृष्ठ यह सुनकर सिंहका वध करने जानेके लिए तैयार हो गया। दोनों भाइयोंने तुंगगिरिके खेतोंके पास जाकर डेरे डाले।

लोगोंके द्वारा सिंहकी अद्भुत शक्तिका पता लगा। बड़े बड़े बलवानोंको उसने पलक मारते मार गिराया था। अच्छे अच्छे बहादुर उसके ग्रास बन गये थे। ऐसे विकराल सिंहको मारना बड़ा कठिन काम था। परन्तु त्रिपृष्ठ एवं अचलकुमारने उसको उसकी गुफामें जा ललकारा। सिंहने देरी निगाह करके देखा और दो जवानोंको अपनी गुफाके सामने खड़ा देखकर वापिस जमहा-

हीसे आँखें बंद कर लीं । त्रिपृष्ठके नौकरोंनें चारों तरफसे चिल्लाना और पत्थर फैंकना आरंभ किया । यह बात शेरको असह्य हुई । उसने उठकर गर्जना की । उसकी गर्जना सुनकर त्रिपृष्ठके कई नौकर भयसे गिर पड़े, पक्षी पेड़ोंसे नीचे आ रहे और पशु खाना और चलना फिरना छोड़ ताकने लगे । यह सब हुआ; परंतु दो जवान तो उसकी गुफाके सामने कुछ दूर स्थिर खड़े ही रहे ।

शेरने गुफासे बाहर निकलकर खड़े हुए जवानोंपर छलांग मारी । त्रिपृष्ठने लपककर शेरके जबड़े पकडे और उसे चीर दिया । दो टुकड़े होने पर भी शेरका दम न निकला । वह तडप रहा था और यह सोचकर दुःखी था कि आज इस छोकरेने मुझे मार डाला । हजारों बड़े बड शस्त्रधारियोंको मैंने पलक मारते यमधाम पहुँचाया था उसी मुझको, इस छोकरेने क्षणभरमें चीरकर फैक दिया । त्रिपृष्ठके सारथीने–जो महावीरके भवमें गौतम गणधर हुए थे—कहा —" हे सिंह, जैसे तू पशुओंमें सिंह है वैसे ही ये त्रिपृष्ठ मनुष्योंमें सिंह हैं और वासुदेव हैं । तेरा सद्भाग्य है कि, तू इनके हाथसे मारा गया है ।" सिंहको यह सुनकर संतोष हुआ और वह मरकर चौथे नरकमें गया ।

त्रिपृष्ठने शेरका चमडा निकलवाया और उसे लेकर वह राजधानीको चला । अश्वग्रीवको यह खबर मिली । उसको निश्चय हो गया कि मेरी मौत आ गई है । उसने शंकामें जीवन बिताना ठीक न समझा और प्रजापतिको कहलाया कि, तुम्हारे लडकोंने जो बहादुरी की उससे मैं बहुत खुश हूँ । उन्हें शेरके चमड़ेके साथ मेरे पास भेज दो । मैं उनको इनाम दूँगा ।"

त्रिपृष्ठ बोले:—"अश्वग्रीवको कहना कि, जो राजा एक शेरको नहीं मार सका उस राजासे इनाम लेनेको त्रिपृष्ठ तैयार नहीं है। वीर वीरोंसे इनाम लेते हैं, मामूली आदमियोंसे नहीं।"

यह सुनकर अश्वग्रीवके दूतको क्रोध हो आया और वह बोला—"बदल लेकरो! तुम्हें मालूम नहीं है कि, तुम किसके—।" दूत अपनी बात पूरी भी न कर पाया था कि, त्रिपृष्ठके आदमियोंने उसे पीटपाटकर वहाँसे निकाल दिया।

अश्वग्रीवको जब ये समाचार मिले तो वह अपनी फौज लेकर आया। त्रिपृष्ठ भी फौज लेकर लड़ने निकला। थोड़ी देर तक फौजें लड़ती रहीं। फिर त्रिपृष्ठने कहलाया—"वृथा फौजका नाश किया जा रहा है। आओ तुम और मैं लड़कर लड़ाईका फैसला कर लें।" अश्वग्रीवने यह बात मान ली। दोनोंने भयंकर युद्ध किया और अंतमें अश्वग्रीव मारा गया।

अश्वग्रीवको मरा जान सभी राजाओंने आ आकर त्रिपृष्ठको अपना स्वामी स्वीकार किया और भेंटें दे देकर उसकी कृपा चाही। त्रिपृष्ठने सबको अभय किया। वहाँसे त्रिपृष्ठने जाकर भरतार्द्धको कोटिशिलाको क्षणमात्रमें अपने सिरसे भी ऊँचा उठाकर रख दिया और सारे भूखण्डको (?) अपने पराक्रमसे दबाकर पोतनपुरका रस्ता लिया। पोतनपुरमें देवताओंने और राजाओंने उन्हें अर्द्धचक्रीके पदपर अभिषिक्त किया।

पृथ्वीपर जो जो अमूल्य रत्न थे। वे सभी त्रिपृष्ठको मिले। भरतार्द्धमें जितने उत्तम गवैये थे वे भी त्रिपृष्ठके राज्यमें आ गये।

एक रातको गवैये गा रहे थे और त्रिपृष्ठ शय्यापर लेटा हुआ था। उसने अपने द्वारपालको हुक्म दिया, जब मुझे नींद आ जाय तब गवैयोंको छुट्टी दे देना।

त्रिपृष्ठ सो गया मगर मधुर संगीतके रसिया द्वारपालने गवैयोंको छुट्टी न दी। सवेरा हुआ। त्रिपृष्ठ जागा और उसने क्रोधसे पूछा:—"अभी तक गवैये क्यों गा रहे हैं।?" द्वारपालने डरते हुए जवाब दिया:—"प्रभो! मधुर गायनके लोभसे मैंने इन्हें छुट्टी न दी।" त्रिपृष्ठको और भी अधिक गुस्सा चढ़ा और उसने शीशा गरम करवाकर उसके कानमें ढलवा दिया। विचारा द्वारपाल त्रिपृष्ठके इस क्रूर कर्मसे तड़पकर मर गया।

त्रिपृष्ठने और भी ऐसे अनेक क्रूर कर्म किये थे। जिनसे उसने भयंकर असाता वेदनी कर्म बाँधा और अंतमें मरकर वह सातवें नरकमें गया। त्रिपृष्ठके भाई अचल बलभद्र वैराग्य पा, दीक्षा ले मोक्षमें गये।

मरीचिका जीव नरकसे निकलकर केशरीसिंह हुआ। फिर मनुष्य तिर्यंचादिके कई भवोंमें भ्रमणकर

चक्रवर्ती प्रियमित्रका भव अंतमें मनुष्य जन्म पाया। और शुभ कर्मोंका उपार्जन कर अपर विदेहमें, धनंजयकी राणी धारिणीके गर्भसे जन्मा और प्रियमित्र नाम रक्खा गया। युवा होनेपर उसने छः खंड पृथ्वीकी साधनाकी और देवताओंने तथा राजाओंने बारह बरस तक उत्सव कर उसे चक्रवर्तीपदसे सुशोभित किया।

अनेक वर्षों तक न्याय पूर्वक राज्यकर प्रियमित्रने पोट्टिल नामके आचार्यसे दीक्षा ली और तपकर वह शुक्रदेवलोकमें सर्वार्थ नामक विमानमें देवता हुआ।

राजा नंदनका भव

महाशुक्र देवलोकसे चयकर भरतक्षेत्रके छत्रा नामक नगरमें जितशत्रु राजाकी भद्रा नामा रानीके गर्भसे मरीचिका जीव जन्मा। नाम नंदन रक्खा गया। राजा जितशत्रुके दीक्षा लेनेपर नंदन राजसिंहासनपर बैठा। कई बरसों तक राज्यकर जब चौबीस लाख बरसकी आयु हुई तब उसने पोट्टिलाचार्यसे दीक्षा ली और बीस स्थानककी आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म बाँधा।

प्राणत नामक देवलोकमें देव

अंतमें नंदन मुनि आयुष्यके अंतमें अनशन ग्रहणकर प्राणत नामक देवलोकमें पुष्पोत्तर विमानमें देव हुए।

भगवान महावीरका भव

जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रके मगध प्रदेशमें ब्राह्मण कुंड नामका एक ब्राह्मणोंका गाँव था। उसमें कोडा-लस कुलका ऋषभदत्त नामक ब्राह्मण रहता था। उसके देवानंदा नामकी भार्या थी। वह जालंधर कुलमें जन्मी थी। उसको आषाढ सुदि ६ के दिन चंद्रमा जब हस्तोत्तर (उत्तराफाल्गुनी) नक्षत्रमें आया था तब चौदह महास्वप्न आये और मरीचिका जीव दसवें देवलोकसे चयकर देवानंदाकी कोखमें आया। सवेरे ही देवानंदाने

अपने पतिसे स्वप्नोंकी बात कही। ऋषभदत्तने कहा;—"तुम्हारे गर्भसे एक महान आत्मा जन्म लेगा। वह चारों वेदोंका पारगामी और परम निष्ठावान बनेगा।" यह सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई।

प्रभुके गर्भमें आनेके बाद ऋषभदत्तको बहुत मान और धन मिले।

जब देवानंदाके गर्भको बयासी दिन बीते तब सौधर्म देवलोकके इंद्रका आसन काँपा। सौधर्मेन्द्रने अवधिज्ञानसे प्रभुको देवानंदाके गर्भमें आया जान, सिंहासनसे उतरकर वंदना की। फिर वह सोचने लगा,—तीर्थंकर कभी तुच्छ कुलमें, दरिद्र कुलमें या भिक्षुक कुलमें उत्पन्न नहीं होते। वे हमेशा इक्ष्वाकु आदि क्षत्रिय वंशमें ही जन्मते हैं। महावीर प्रभु भिक्षुक कुलकी स्त्रीके गर्भमें आये, यह उन्हें, मरीचिके भवमें किये हुए, कुलाभिमानका फल मिला है। अब मैं उनको किसी उच्च क्षत्रिय वंशमें पहुँचानेका प्रयत्न करूँ।

इन्द्रने अपनी प्यादा सेनाके सेनापति नैगमेषी देवको बुलाया और हुक्म दिया:—"मगधमें[1] क्षत्रियकुंड[2] नामका नगर है। उसमें

१—ऋग्वेदमें इस देशका कीकट नामसे उल्लेख है। अथर्ववेदमें इसको मगध देश ही लिखा है। हेमचन्द्राचार्यने अपने कोशमें दोनों नाम दिये हैं। पन्नवणा सूत्रमें आर्य देश गिनाते समय मगध सबसे पहले गिनाया गया है। इस समयका बिहार प्रांत मगध देश कहा जा सकता है। इसमें जैनों और बौद्धोंके बहुतसे तीर्थ हैं। इससे वे उसे पवित्र मानते हैं।

२—बिहार प्रांतके बसाढ पट्टीके पास बसुकुंड नामका एक गाँव है। शोधक उसीको क्षत्रियकुंड बताते हैं।

बहुत रोई चिल्लाई; परन्तु सब बेकार था। गर्भस्थ बालक निकाल लिया गया था। उसका वापिस आना असंभव था।

आसोज वदि १३ के दिन चंद्रमा जब उत्तराषाढा नक्षत्रमें था तब नैगमेषी देवने मरीचिके जीवको त्रिशलादेवीके गर्भमें रक्खा। त्रिशलादेवीको चौदह महास्वप्न आये। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक मनाया।

गर्भको जब सात महीने बीते उसके बाद एक दिन गर्भस्थ महावीर स्वामीने सोचा कि, मेरे हिलनेसे माताको कष्ट होता है इसलिए वे गर्भावासमें योगीकी तरह स्थिर हो रहे। गर्भका हिलना बंद होनेसे त्रिशलादेवीको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने समझा कि, मेरा गर्भ नष्ट हो गया है। वे रोने लगीं। सारे महलोंमें यह खबर फैल गई। सिद्धार्थ आदि सभी दुखी हुए। गर्भस्थ अवधिज्ञानी प्रभुने मातापिताका दुःख जानकर अपना अंग-स्फुरण किया। गर्भ कायम जानकर माता पिताको और सभी लोगोंको बड़ा आनंद हुआ। माता-पिताने आनंदके अतिरेकमें लाखों लुटा दिये। प्रभुने गर्भ-वासहीमें मातापिताका अधिक स्नेह देखकर नियम किया कि जबतक मातापिता जीवित रहेंगे तबतक मैं दीक्षा नहीं लूँगा। अगर मैं दीक्षा लूँगा तो इन्हें दुःख होगा और ये असाता वेदनी कर्म बाँधेंगे।

विक्रम संवत ५४३ (शक स ६७८ और ईस्वी सन ६००) पूर्व चैत्रसुदि १३ के दिन आधी रातके समय, गर्भको जब ९ महीने और साढे सात दिन बीत चुके थे और चंद्र जब हस्तोत्तरा (उत्तराषाढा) नक्षत्रमें आया था तब त्रिशलादेवीने, सिंह लक्षणवाले पुत्ररत्नको जन्म दिया। उस समय छप्पन दिक्कुमारियोंने आकर प्रभुका और माताका सूतिका कर्म किया।

जन्म

सौधर्मेन्द्रका आसन काँपा। वह प्रभुका जन्म जानकर परिवार सहित सूतिका गृहमें आया। उन्होंने दूरहीसे प्रभुको और माताको प्रणाम किया। फिर इन्द्रने देवीको अवस्वापनिका निद्रामें सुलाया, माताकी बगलमें प्रभुका प्रतिबिंब रक्खा और प्रभुको उठा लिया।

उसके बाद इन्द्रने अपने पाँच रूप बनाये। एक रूपने प्रभुको गोदमें लिया, दूसरे रूपने प्रभुपर छत्र रक्खा, तीसरे और चौथे रूप दोनों तरफ चँवर ढुलाने लगे और पाँचवाँ रूप वज्र उछालता और नाचता कूदता आगे चला। इस तरह सौधर्मेन्द्र प्रभुको लेकर सुमेरु पर्वतपर पहुँचा और वहाँपर अतिपांडुकवला नामकी शिलाके ऊपर सिंहासनपर बैठा। दूसरे तरसठ

१ इसमें समय हमने मुनि श्री कल्याणविजयजी महाराजके 'वीरनिर्वाण संवत और जैनकालगणना' निबंधके आधार पर दिया है।

२ त्रिशलादेवी वैशालिके लिच्छवी राजा चेटककी बहिन थीं।

इन्द्र भी अपने आधीन देवताओंके साथ, स्नात्र करानेके लिए वहाँ आ पहुँचे।

आभियोगिक देव तीर्थजल ले आये और सब इन्द्रोंने, इन्द्राणियोंने और सामानिक देवोंने अभिषेक किया। सब दो सौ पचास अभिषेक हुए। एक अभिषेकमें चौसठ हजार कलश होते हैं।

इस अवसर्पिणी कालके चौवीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामीका शरीर–प्रमाण दूसरे तेईस तीर्थंकरोंसे बहुत ही छोटा था, इसलिए अभिषेक करनेकी सम्मति देनेके पहले इन्द्रके मनमें शंका हुई कि, भगवानका यह बाल-शरीर इतनी अभिषेक-जल-धाराको कैसे सह सकेगा?

जन्मोत्सव और बलप्रदर्शन

अवधिज्ञानसे भगवानने यह बात जानी और उन्होंने अपने बाएँ पैरके अंगूठेसे मेरु पर्वतको दबाया। पर्वत काँप उठा। प्रभुजन्म-महोत्सवके समय यह उपद्रव कैसे हुआ? इन्द्रने सोचा। उसे प्रभुका बल* विदित हुआ और उसने तत्कालही क्षमा माँगी।

---

* तीर्थंकरोंमें कितना बल होता है? इसका उल्लेख शास्त्रोंमें इस तरह किया गया है,—

बारह योद्धाओंका बल एक गोद्धा (बैल) में होता है, दस बैलोंका बल एक घोड़ेमें होता है, बारह घोड़ोंका बल एक भैंसेमें होता है, पन्द्रह भैंसोंका बल एक मत्त हाथीमें होता है, पाँच सौ मत्त हाथियोंका बल एक केसरी सिंहमें होता है, दो हजार केसरी सिंहोंका बल एक अष्टापद पक्षीमें होता है; दस लाख अष्टापदोंका बल एक बलदेवमें होता है, दो बलदेवोंका बल एक वासुदेवमें होता है, दो वासुदेवोंका बल एक चक्रवर्तीमें होता है, एक लाख चक्रवर्तियोंका बल एक नागेन्द्रमें होता है, एक करोड नागेन्द्रोंका

अभिषेक, भक्तिपूजनादिकी विधि समाप्त कर, इन्द्र प्रभुको वापिस त्रिशला देवीकी गोदमें सुला, प्रभु-प्रतिबिंब ले, माताकी अवस्वापनिका निद्रा हर, घरमें बत्तीस करोड़ मूल्यके रत्न, सुवर्ण, रजतादिकी वृष्टि करा, प्रभुको या प्रभुकी माताको कष्ट देनेका कोई प्रयत्न न करे ऐसी घोषणा करा, अपने स्थानपर गया।

सिद्धार्थ राजाने सवेरे ही प्रभुका जन्मोत्सव मनाया, कैदियोंको छोड़ दिया, प्रजाजनोंको–राज्यका कर्ज छोड़कर अथवा खजानेसे कर्ज चुकाकर–ऋणमुक्त किया, सब तरहके 'कर' छोड़ दिये और राज्यभरमें ऐसी व्यवस्था कर दी कि प्रजाजन दस दिनतक आनंदोत्सव करते रहें।×

बारहवें दिन सिद्धार्थ राजाने प्रभुका नाम 'वर्द्धमान' रक्खा; कारण जबसे भगवान गर्भमें आये तबसे सिद्धार्थ राजाके राज्यमें धन-धान्यादिकी वृद्धि हुई, प्रभु परास्त हुए और सब तरफ सुख शांति बढ़ी थी।

जब वर्द्धमान स्वामी आठ बर्षके हुए तबकी बात है। वे अपनी उमरके लड़कोंके साथ एक बगानमें वृक्षपर चढ़ना खेल खेल रहे थे। उस समय प्रसंगवश इन्द्रने वर्द्धमान स्वामीकी धीरता और वीरताके बखान किए। एक मिथ्यात्वी देवको मनुष्यकी वीरताके

इस एक इन्द्रके हाथसे इस देशके अनेकों स्थलोंका इस जिनेन्द्रोंकी भक्ति प्रभु बनाने शोभा है। इसी लिए तीर्थंकर अतुल बलधारी कहाते हैं।

× पुत्र जन्मोत्सवके समय, पुत्रराजके अभिषेकके समय और विवाहोत्सवके समय कैदियोंको छोड़नेकी और कर बंद करनेकी प्राचीन पद्धति थी।

वखान अच्छे न लगे। इसलिए वह तुरत वहाँ आया जहाँ सभी बालक खेल रहे थे।

जब देव पहुँचा तब वे आमलकी क्रीडा[1] करते थे। वर्द्धमान स्वामी और कई लड़के झाड़पर चढ़े हुए थे। देव भयंकर सर्पका रूप धरकर झाडके लिपट गया। उसे देखकर लड़के बहुत डरे। वर्द्धमान स्वामीने लडकोंको धीरज बँधाई। फिर प्रभु नीचे उतरे। उन्होंने सर्पको पूँछ पकडकर एक झटका मारा। वह ढीला पड़ गया और झाड़से उसके बंधन निकल गये। प्रभुने उसे तिनकेकी तरह एक तरफ फैंक दिया।

लडके फिर दूसरा खेल खेलने लगे। उसमें जीतनेवाला दूसरे लड़कोंपर सवारी करता था। वर्द्धमान स्वामी जीते। वे सब राजकुमारोंपर चढ चढ कर दाँव लेने लगे। लड़केका रूप धारण किये हुए देव भी उनके अंदर था। उसकी घोड़ा बननेकी पारी आई। वह प्रभुको लेकर भागा और इतना ऊँचा हो गया कि उसके कंधेपर बैठे हुए वर्द्धमान स्वामी ऐसे मालूम होने लगे मानों वे आकाश में पहुँच गये हैं। लड़के भयसे चिल्लाये। वर्द्धमान स्वामीने अपने ज्ञानबलसे उसकी दुष्टता

१ लडके झाडपर चढ़ते हैं, एक लडका उनको पकड़ता है। जब पकडनेवाला झाडपर चढता है तब दूसरे कुछ लडके नीचे कूदकर या उतरकर, पकड़नेवालेकी एक लकड़ी—जो अमुक गोल कुँडालेमें रहती है—दूर फेंक देते हैं। इससे पकडनेवाले लड़केको वह लकड़ी लेने जाना पड़ता है। जब तक वह लकडी कुंडालेमें नहीं होती तबतक वह किसीको नहीं पकड़ सकता। 'यही आमलकी क्रीड़ा' है।

जानी और उसके कंधेपर जोरसे एक घूँसा मारा। वह तुरतसे चिल्लाकर छोटे कदकोंसा हो गया। उसने प्रभुको कंधेसे उतारा और अपने असलरूपसे प्रभुको नमस्कार किया। फिर वह अपने स्थानपर चला गया।

अध्ययन

जब वे आठ बरसके हुए तब पाठशालामें भेजे गये। उस समय इन्द्रका आसन काँपा। उसने अवधिज्ञानसे प्रभुका पाठशाला भेजनेकी बात जानी। वह एक ब्राह्मणका रूप धरकर आया और उसने उपाध्यायसे कुछ प्रश्न पूछे। उपाध्याय जवाब न दे सका तब प्रभुने उसके प्रश्नोंके उत्तर दिये। यह देखकर सभी लोगोंको अचरज हुआ। फिर ब्राह्मणके रूपमें आये हुए इन्द्रने कहा—"हे उपाध्याय! महावीर सामान्य बालक नहीं हैं। ये तो पूर्वोपार्जित पुण्यके कारण महान ज्ञानवान हैं।"

उपाध्यायने भी महावीर स्वामीसे शब्द-व्युत्पत्ति आदि व्याकरण संबंधी अनेक प्रश्न पूछे। उसे उन सबका योग्य उत्तर मिला। इससे उसको बहुत संतोष हुआ और उसने प्रभुके उत्तरोंको जो उन्होंने इन्द्रको और उसको दिये थे—संग्रहकर, जगतमें जिनेन्द्र-व्याकरणके रूपमें प्रसिद्ध किया।

ब्याह और संतान

युवा होनेपर वर्द्धमान स्वामीका ब्याह राजा समरवीरकी पुत्री यशोदादेवीके साथ हुआ। वर्द्धमान स्वामीकी इच्छा शादी करनेकी न थी, परंतु माता पिताकी प्रसन्नताके लिए और

---

१ दिगंबर सम्प्रदायमें मान्यता है कि महावीर स्वामीका ब्याह नहीं हुआ था।

अपने भोगावली कर्मोंका उपभोग किये विना छुटकारा न था इस-लिए उन्होंने व्याह किया था ।

यशोदादेवीकी कोखसे प्रियदर्शना नामकी एक कन्या हुई थी । उसका व्याह जमाली नामक राजपुत्रके साथ हुआ था । जमाली महावीर स्वामीकी बहिन सुदर्शनाका पुत्र था ।

जब वर्द्धमान स्वामीकी आयु २८ वरसकी हुई तब उनके मातापिताके जीव मरकर अच्युत देवलोकमें गये । ×महावीर स्वामीके बडे भाई नंदिवर्द्धन राज्य-गद्दी पर बैठे ।

दीक्षा

कुछ दिनोंके बाद महावीर स्वामीने अपने बड़े भाई नंदिवर्द्धनसे दीक्षा लेनेकी आज्ञा माँगी । भाईने दुःखसे कहाः— " बंधु ! अभी मातापिताके वियोगका दुःख भी नहीं मिटा है, फिर तुम वियोग-दुःख देनेकी बात क्यों करते हो ? "

प्रभुने ज्येष्ठ बंधुकी बात मानकर और थोड़े दिन घरपर ही रहना स्थिर किया । घरपर वे भावयति होकर संयमसे समय बिताने लगे ।

एक वरसके बाद लोकांतिक देवोंकी प्रार्थनासे वर्षी दान देकर महावीर स्वामीने दीक्षा लेनेकी तैयारी की । नंदिवर्द्धनने ५० धनुष लंबी, ३६ धनुष ऊँची और २५ धनुष चौड़ी चंद्रप्रभा नामकी एक पालखी तैयार कराई । प्रभु उसमें

× सिद्धार्थकी आयु ८७ और त्रिशलादेवीकी ८५, नदीवर्द्धनकी ९८, यशोदा देवीकी ९०, सुदर्शनाकी ८५ प्रियदर्शनाकी ८५, वर्षकी थी । (म० च० पृ० २०८)

विराजमान हुए और इन्द्रादि देव उसे उठाकर ‘ ज्ञातखंड ’ नामके उपवनमें ले गये।

प्रभुने पालखीसे उतरकर वस्त्राभूषणोंका त्याग किया। इंद्रने उनके कंधेपर देवदूष्य वस्त्र डाला। प्रभुने पंच मुष्टि लोचकर सिद्धोंको नमस्कार किया और विक्रम संवत ५१२ (शक सं ६४८ ई स ५७) पूर्व मार्गशीर्ष कृष्ण दशमीके दिन चंद्र जब हस्तोत्तरा नक्षत्रमें आया था तब चारित्र ग्रहण किया। उसी समय प्रभुको मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ।

जिस समय महावीर स्वामीने दीक्षा ग्रहण की उस समय उनकी उम्र ३ बरसकी हो चुकी थी।

आधे देवदूष्य वस्त्रका दान

जब प्रभु विहार करनेके लिए चले तब रस्तेमें ‘ सोम ’ नामका एक ब्राह्मण मिला। वह बोला:-“ हे प्रभु ! आपके दानसे सारा जगत (ममपरेप !) दरिद्रतासे मुक्त हो गया है। मैं ही भाग्यहीन हूँ कि मेरी दरिद्रता अब तक न गई। प्रभो ! मेरी निर्धनता भी दूर कीजिए।

प्रभु बोले—“ हे विप्र ! मेरे पास इस समय कुछ नहीं है। देवदूष्य वस्त्र है। इसका आधा तू ले जा।” सोम ब्राह्मण आधा देवदूष्य वस्त्र फाड़कर ले गया। ब्राह्मण जब वह कपड़ा तुननेवालेके पास ले गया तब उसने कहा:—“ हे ब्राह्मण ! अगर तू इसका आधा भाग और ले आवेगा तो इसकी कीमत एक लाख दीनार (सोनेका सिक्का) मिलेगी।”

ब्राह्मण वापिस महावीर स्वामीके पास गया। उनके साथ साथ वह तेरह महीने तक फिरा। बादमें एक दिन प्रभु जब मोराक गाँवसे उत्तर चाँवाल नामके गाँवको जाते थे तब रस्तेमें 'सुवर्णवालुका' नामकी नदीके किनारे झाडोंमें उनका आधा देवदूष्य वस्त्र फँस गया। ब्राह्मणने तुरत दौड़कर वह वस्त्र उठा लिया। प्रभुने पीछे फिरकर देखा और ब्राह्मणको वस्त्र उठाते देख आगेका रस्ता लिया। ब्राह्मण वह वस्त्रार्द्ध लेकर तूननेवालेके पास गया। तूननेवालेने दोनों टुकड़ोंको बेमालूम तूना और तब एक लाख दीनारमें उस वस्त्रको बेच दिया। ब्राह्मण और तूननेवाला दोनोंने पचास पचास हजार दीनार ले लिये।

प्रभु दीक्षा लेकर पहले दिन कुर्मार[1] गाँवमें पहुँचे। वहाँ गाँवके बाहर कायोत्सर्ग करके रहे।

गवाल-कृत उपसर्ग

एक गवाला शामको वहाँ आया और अपने बैलोंको वहीं छोड़कर गाँवमें गायें दुहने चला गया। बैल फिरते हुए कहीं जंगलमें चले गये। जब गवाला वापिस आया तब वहाँ बैल नहीं थे। उसने महावीर स्वामीसे बैलोंके लिए पूछा; परंतु ध्यानस्थ वीरसे उसे कोई जवाब न मिला। वह बैलोंको ढूँढने जगलमें गया। सारी रात ढूँढता रहा; मगर उसे कहीं बैल न मिले। विचारा हारकर वापिम आया तो क्या देखता है कि बैल महावीर स्वामीके

१ क्षत्रियकुंड अथवा वैशालीसे नालन्दा जाते समय रस्तेमें लगभग १७-१८ माइल पर एक कुमार नामका गाँव है। संभवत यही गाँव पहले 'कुर्मार' नामसे प्रसिद्ध हो। (दश उपासको पेज ३९)

सामने बैठे हुए शुभध्यान कर रहे हैं। ग्वालेको बड़ा क्रोध आया। उसने सोचा,—ध्यानका ढोंग करनेवाले इसी बाबेने मेरे बैल छिपाये थे। इसका विचार बैल चुराकर भाग जानेका था। उसने प्रभुको अनेक भली बुरी बातें कहीं; परंतु प्रभु तो मौन ही रहे। वे जवाब भी क्या देते? उन्होंने तो रात भरके लिए कायोत्सर्ग कर दिया था। वह महावीर स्वामीको मारने दौड़ा।

इन्द्र बड़े तड़के उठकर सोचने लगा—भगवानने किस तरह यह रात बिताई। उसी समय उसने अवधिज्ञानसे ग्वालेको प्रभुपर झपटते देखा। तत्काल ही ग्वालेको अपने दिव्यबलसे वहीं स्तंभित कर इन्द्र प्रभुके पास पहुँचा और ग्वालेका तिरस्कार कर बोला:—"मूर्ख! क्या तू नहीं जानता कि ये सिद्धार्थ राजाके पुत्र वर्द्धमान स्वामी हैं?" वर्द्धमान स्वामीका नाम सुनते ही बिचारा ग्वाला भयभीत हुआ और वहाँसे चला गया।

स्वावलंबनका इन्द्रको उपदेश

जब प्रभुने कायोत्सर्गका त्याग किया तब इन्द्रने प्रदक्षिणा देकर वंदना की और कहा:—"प्रभो! बारह बरस तक आपपर निरंतर उपसर्ग होंगे इसलिए यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपकी सेवामें रहूँ।"

प्रभुने तत्क्षण गंभीर वाणीमें उत्तर दिया—"हे इन्द्र! अर्हंत कभी दूसरोंकी सहायता नहीं चाहते। अन्तरंग शत्रु काम आदिको जीतनेके लिए दूसरोंकी सहायता निकम्मी है।

कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त करनेके लिए किन्हीं तीर्थंकरने आज तक न किसीकी सहायता ली है और न भविष्यमें लेहींगे। वे हमेशा निजात्म-बलहीसे कर्मशत्रुओंका नाश कर मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त करते हैं।"

इन्द्र मौन हो गया। वह क्या बोलता? प्रभुका कथन स्वावलंबनका और उन्नत बननेका राजमार्ग है। इसके विपरीत वह क्या कहता? वह प्रभुको नमस्कार कर वहाँसे चला। जाते वक्त सिद्धार्थ नामके व्यंतर देवको उसने आज्ञा कीः-"तू प्रभुके साथ रहना और ध्यान रखना कि कोई इनपर प्राणांत उपसर्ग न करे।"

प्राणांत उपसर्ग होनेपर भी तीर्थंकर कभी नहीं मरते। कारण (१) उनके शरीर 'वज्रऋषभ नाराच' संहननवाले होते हैं (२) वे निरुपक्रम* आयुष्यवाले होते हैं।

दूसरे दिन छठका पारणा करनेके लिए कोल्लाक गाँवमें गये। वहाँ बहुल नामक ब्राह्मणके
छट्ट (बेला) का पारण
घर प्रभुने परमान्नसे (खीरसे) पारणा किया। देवताओने उसके घर वसुधारादि पाँच दिव्य प्रकट किये।

---

* आयु दो तरहकी होती है। एक सोपक्रम और दूसरी निरुपक्रम। सात तरहके उपक्रमोंमेंसे-घातोंमेसे किसी भी एक उपक्रमसे किसीकी आयु जल्दी समाप्त हो जाती है उसे सोपक्रम आयुवाला कहते हैं। व्यवहारकी भाषामें हम कहते हैं इसकी आयु टूट गई है। निरुपक्रम आयु कभी किसी भी आघातसे नहीं टूटती।

१—क्षत्रिय कुंडसे राजगृह जाते समय रस्तेमें कहीं यह गाँव होगा और अब इसका कोई निशान नहीं रहा है।

मक्खियोंका उपसर्ग

दीक्षाके समय प्रभुके शरीरपर देवताओंने गोशीर्ष चंदन आदि सुगंधित पदार्थोंका विलेपन किया था। इससे अनेक भौंरे और अन्य जीवजंतु प्रभुके शरीरपर आ आकर डंस मारते थे और सुगंधका रसपान करनेकी कोशिश करते थे। अनेक जवान प्रभुके पास आ आकर पूछते थे:–" आपका शरीर ऐसा सुगंधपूर्ण कैसे रहता है ? हमें भी वह तरकीब बताइए, वह ओषधि दीजिए जिससे हमारा शरीर भी सुगंधमय रहे।" परंतु मौनावलंबी प्रभुसे उन्हें कोई जवाब नहीं मिलता। इससे वे बहुत क्रुद्ध होते और प्रभुको अनेक तरहसे पीड़ा पहुँचाते।

अनेक स्वेच्छा–विहारिणी स्त्रियाँ प्रभुका त्रिभुवन–मन–मोहन रूपको देखकर काम पीड़ित होतीं और हरतरह प्रभु–अंग-संग चाहतीं; परंतु वह न मिलता। वे अनेक तरहसे प्रभुको उपसर्ग करतीं और अंतमें हार कर चली जातीं।

दुइज्जंतक तापसोंके आश्रममें

महावीर स्वामी विहार करते हुए मोराक नामक गाँवके पास आये। वहाँ दुइज्जंतक जातिके तापस रहते थे। उन तापसोंका कुलपति सिद्धार्थ राजाका मित्र था। उसने प्रभुसे मिलकर वहीं रहनेकी प्रार्थना की। प्रभु रात्रिकी प्रतिमा धारण कर वहीं रहे। दूसरे दिन सवेरे ही जब वे विहार करने लगे तब कुलपतिने आगामी चातुर्मास वहीं व्यतीत

करनेकी प्रार्थना की। प्रभुने वह प्रार्थना स्वीकारी। अनेक स्थलोंमें विहारकर चातुर्मासके आरंभमें प्रभु मोराक गॉवमे आये। कुलपतिने प्रभुको घासफूसकी एक झौंपडीमें ठहराया।

जंगलोंमें घासका अभाव हो गया था और वर्षासे नवीन घास अभी उगी न थी। इसलिए जंगलमें चरने जानेवाले ढोर जहॉं घास देखते वहीं दौड जाते। कई ढोर तापसोंके आश्रमकी ओर दौड पड़े और उनकी झौंपड़ियोंका घास खाने लगे। तापस अपनी झौंपड़ियोंकी रक्षा करनेके लिए डंडे ले ले-कर पिल पडे। ढोर सब भाग गये।

जिस झौंपड़ीमें महावीर स्वामी रहते थे, उस तरफ कुछ ढोर गये और घास खाने लगे। प्रभु तो निःस्वार्थ, परहित परा-यण थे। भला वे ढोरोंके हितमें क्यों बाधा डालने लगे? वे अपने आत्मध्यानमें लीन रहे और ढोरोंने उनकी झौंपड़ी-की घास खाकर आत्मतोष किया। तापस महावीर स्वामीकी इस कृतिको आलस्य और दंभपूर्ण समझने लगे और मन ही मन क्रुद्ध भी हुए। कुछ तापसोंने जाकर कुलपतिको कहा— "आप कैसे अतिथिको लाये हैं? वह तो अकृतज्ञ, उदासीन, दाक्षिण्यहीन और आलसी है। झौंपड़ीकी घास ढोर खा गये हैं और वह चुपचाप बैठा देखता रहा है। क्या वह अपनेको निर्मोही मुनि समझ चुप बैठा है? और क्या हम गुरुकी सेवा करनेवाले मुनि नहीं हैं?"

तापसोंकी शिकायत सुन कुलपति महावीर स्वामीके पास

आया। उसने प्रभुको उपालंभकी तरह कहा:—"तुमने इस झोंपड़ीकी रक्षा क्यों न की? तुम्हारे पिता सबकी रक्षा करते थे, तुम एक झोंपड़ीकी भी रक्षा न कर सके? पक्षी भी अपने घोंसलेको बचाते हैं पर तुम अपनी झोंपड़ीकी घास भी न बचा सके? आगेसे खयाल रखना।"

कुलपति चला गया। उस बेचारेको क्या पता था कि देह तकसे जिनको मोह नहीं है वे महावीर इस झोंपड़ीकी रक्षामें कब कालक्षेप करनेवाले थे? अहिंसाके परम उपासक, ढोरोंको घास चरनेसे वंचित कर कब उनका मन दुखानेवाले थे?

प्रभुने सोचा,—मेरे यहाँ रहनेसे तापसोंका मन दुखता है इस लिए यहाँ रहना उचित नहीं है। उसी समय प्रभुने निम्न लिखित पाँच नियम लिये—

१—जहाँ अप्रीति हो वहाँ नहीं रहना।
२—जहाँ रहना वहाँ खड़े हुए कायोत्सर्ग करके रहना।
३—प्रायः मौन धारण करके रहना।
४—कर—पात्रसे भोजन करना।
५—गृहस्थोंका विनय न करना।

भगवान मोराक गाँवसे विहार करके अस्थिक नामक

१—वर्द्धमान नामका एक गाँव था। उसके पास वेगवती नामकी नदी थी। धनदेव नामक एक व्यापारी गाड़ियाँ भरकर लाया। उस समय वेगवती नदीमें पूर था। सामान्य बैल मालसे भरी गाड़ी खींच कर नदी पार होनेमें असमर्थ थे। इसलिए उसने अपने एक बहुत बड़े हृष्ट पुष्ट बैलको लेकर पानीके आगे जोता। इस तरह उस बैलने पाँच सौ

शूलपाणि यक्षको प्रति-बोध (पहिला चौमास)

गाँवमें आये। और विक्रम संवत ५१३ पूर्वका पहला चौमासा यहीं किया। पन्द्रह दिन इस चौमासेके मोराक गाँवमें विताये थे। और शेप साढ़े तीन महीने अस्थिक गाँवमें विताये थे। गाँवमें आकर

गाड़ियाँ नदी पार कीं मगर वैलको इतनी अधिक महनत पड़ी कि वह खून उगलने लगा। धनदेवने गाँवके लोगोंको इकट्ठा कर उन्हें, प्रार्थना की'—" आप मेरे इस वैलका इलाज करानेकी कृपा करें। मैं इसके खर्चेके लिए आपको यह धन भेट करता हूँ।" लोगोंने उसकी प्रार्थना स्वीकार की और धन ले लिया। धनदेव चला गया। गाँवके लोग धन हजम कर गये। वैलकी कुछ परवाह नहीं की। वैल आर्त ध्यानमें मरकर व्यंतर देव हुआ। उसने देव होकर लोगोंकी क्रूरता, अपने विभग ज्ञानसे देखी और क्रुद्ध होकर गाँवमें महामारीका रोग फैलाया। लोग इलाज करके थक गये, मगर कुछ फायदा नहीं हुआ। फिर देवताओंकी प्रार्थना करने लगे। तब व्यंतर देव वोला'—" मैं वही वैल हूँ। जिसके लिए मिला हुआ 'धन तुम खा गये हो और जिसे तुमने भूखसे तड़पाकर मार डाला है। मेरा नाम शूलपाणि है। अब मैं तुम सबको मार डालूँगा।" लोगोंके बहुत प्रार्थना करनेपर उसने कहा—" मरे हुए मनुष्योंकी हड्डियाँ इकट्ठी करो। उसपर मेरा एक मंदिर बनवाओ। उसमें वैलके रूपमें मेरी मूर्ति स्थापन करो और नियमित मेरी पूजा होती रहे इसका प्रबंध कर दो।" गाँववालोंने शूलपाणिका मंदिर बनवा दिया और उसकी सेवा पूजाके लिए इन्द्रशर्मा नामके एक ब्राह्मणको रख दिया। तभीसे इस गाँवका नाम वर्द्धमानकी जगह अस्थिक गाँव हो गया।

[त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्रके गुजराती भाषांतरके फुट नोटमें लिखा है कि—" काठियावाड़का वढवाण शहर ही पुराना वर्द्धमान गाँव है। वहीं

शूलपाणि यक्षके मंदिरमें ठहरनेकी गाँवके लोगोंसे महावीर स्वामीने आज्ञा चाही। लोगोंने यक्षका भय बताकर कहा— " इस जगह जो कोई मनुष्य रातको ठहरता है उसे यक्ष मार डालता है, इसलिए आप अमुक दूसरे स्थानपर ठहरिए।"

निर्भय हृदयी महावीरने वहीं रहनेकी इच्छा प्रकट की और लाचार होकर गाँवके लोगोंने अनुमति दी।

भगवानको अपने मंदिरमें देख यक्ष बड़ा नाराज हुआ और उसने उनको अनेक तरहसे कष्ट पहुँचाया। श्रीमद् हेमचंद्राचार्यने उसका वर्णन इस तरह किया है—

" प्रभु जहाँ कायोत्सर्ग करके रहे थे वहाँ व्यंतरने अट्टहास्य किया। उस भयंकर अट्टहास्यसे चारों तरफ ऐसा मालूम होने लगा मानों आकाश फट गया है और नक्षत्र मंडल टूट पड़ा है। ××× मगर प्रभुके हृदयमें उसका कोई असर नहीं हुआ, तब उसने भयंकर हाथीका रूप धारण किया; परंतु महावीर स्वामीने उसकी भी परवाह न की। तब उसने भूमि और आकाशके मानदंड जैसे शरीरवाले पिशाचका रूप धरा; मगर

शूलपाणि यक्षका मंदिर भी है और उसकी प्रतिमा भी।" परंतु हमें यह अनुमान ठीक नहीं जान पड़ता। कारण (१) मोराक सन्निवेशमें था। भगवान चौमासेके १५ दिन बिताकर वहाँ उनके तीन महीने बितानेके लिए अस्थिकग्राममें आ नहीं सकते थे। उनको तो आगेके ज्यादा चौमासा उसीमें बीत जाता। (२) चौमासा समाप्त होनेपर फिर भगवान मोराक गाँवमें आते हैं। इससे साफ है कि अस्थि गाँव या वर्धमान पास कहीं मगधमें या इसके आसपास ही होना चाहिए।

प्रभु उससे भी न डरे । तब उस दुष्टने यमराजके पाशके समान भयंकर सर्पका रूप धारण किया । अमोघ विष-सरके समान उस सर्पने प्रभुके शरीरको दृढताके साथ कस लिया और डसने लगा । जब सर्पका भी कोई असर न हुआ तब उसने प्रभुके सिर, आँखें, मूत्राशय, नासिका, दाँत, पीठ और नाक इन सात स्थानोंपर पीडा उत्पन्न की । वेदना इतनी तीव्र थी कि, सातकी जगह एककी पीड़ा ही किसी सामान्य मनुष्यके होती तो उसका प्राणांत हो जाता; मगर महावीर स्वामीपर उसका कुछ भी असर न हुआ ।"

जब शूलपाणि प्रभुको कोई हानि न पहुँचा सका तब उसे अचरज हुआ और उसने प्रभुसे क्षमा माँगी । इन्द्रका नियत किया हुआ सिद्धार्थ नामका देव भी पीछेसे आया और उसने शूलपाणि यक्षको धमकाया । यक्ष शांत रहा । तब सिद्धार्थने उसे धर्मोपदेश दिया । यक्ष सम्यक्त्व धारण कर प्रभुकी भक्ति करने लगा ।

रातभर महावीर स्वामीका शरीर उपसर्ग सहते सहते शिथिल हो गया था इसलिए उन्हें सवेरा होते होते कुछ नींद आ गई । उसमें उन्होंने दस स्वप्न देखे ।

१—भगवानपर रातभर उपसर्ग हुए मगर सिद्धार्थ न मालूम कहाँ लापता रहा । जब कष्ट सहकर महावीरने कष्टदाताके हृदयको बदल दिया तब सिद्धार्थ देवता यक्षको धमकाने आया । इससे मालूम होता है कि कर्मके भोग भोगने ही पडते हैं किसीकी मदद कोई काम नहीं देती । मनुष्य आप ही शांतिसे कष्ट सहकर दुःखोंसे मुक्त हो सकता है ।

गाँवके लोग सबेरेही मंदिरमें आये। उन्होंने महावीर स्वामीको सुरक्षित और पूजित देखकर हर्षनाद किया। गाँवके लोगोंमें उत्पल नामका निमित्त ज्ञानी भी था। उसने महावीर स्वामीको, जो स्वप्न आये थे उनका फल, बगैर ही पूछे कहा। फिर सभी महावीर स्वामीके वंदन व उनकी तारीफ करते हुए अपने अपने घर गये।

१—स्वप्न और उनके फल इस प्रकार हैं—

(१) पहले स्वप्नमें ताड़वृक्षके समान पिशाचको मारा; इसका यह अभिप्राय है कि आप मोहका नाश करेंगे। (२) दूसरे स्वप्नमें सफेद पक्षी देखा, इससे आप शुक्ल ध्यानमें लीन होंगे। (३) तीसरे स्वप्नमें आपने आपकी सेवा करता हुआ कोकिल देखा; इससे आप द्वादशांगीका उपदेश देंगे। (४) चौथे स्वप्नमें आपने गायोंका समूह देखा जिससे आपके साधु, साध्वी और श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध संघ होगा। (५) पाँचवें स्वप्नमें आप समुद्र तैर गये—इसका मतलब यह है कि आप संसार-समुद्रको तैरेंगे। (६) छठे स्वप्नमें उगता सूर्य देखा; इससे थोड़े ही समयमें आपको केवलज्ञान प्राप्त होगा। (७) सातवें स्वप्नमें मानुषोत्तर पर्वतको आँतोंसे लिपटा हुआ देखा; इससे आपकी कीर्ति त्रिभुवनमें फैलेगी। (८) आठवें स्वप्नमें मेरु पर्वतके शिखरपर चढ़े; इससे आप समवसरणके अंदर सिंहासनपर बैठकर धर्मोपदेश देंगे। (९) नवें स्वप्नमें पद्म सरोवर देखा, इससे चारों देवता आपकी सेवा करेंगे। (१) दसवें स्वप्नमें फूलोंकी दो मालाएँ देखीं, इसका मतलब निमित्तज्ञानी न समझ सका इसलिए महावीर स्वामीने खुद बताया कि—मैं साधु और गृहस्थ—ऐसे दो प्रकार—धर्म बताऊँगा।

[नोट—स्वप्नोंका क्रम कल्पसूत्रके अनुसार दिया है। त्रिषष्टी शलाका पुरुष चरित्रमें दसवाँ स्वप्न चौथा है और नवाँ स्वप्न छठा है।]

महावीर स्वामीने अर्द्ध अर्द्ध मासक्षमण करके चातुर्मास व्यतीत किया। चौमासा समाप्त होनेपर वे अन्यत्र विहार कर गये।

जब प्रभु विहार करने लगे तब यक्षने महावीर स्वामीके चरणोंमें नमस्कार किया और कहा:—"हे नाथ! आपके समान कौन उपकारी होगा कि जिनने अपने सुखकी ही नहीं बल्के जीवनकी भी परवाह न करके मुझे सन्मार्गमें लगानेके लिए, मेरे स्थानमे रह कर मुझ पापीने जो कष्ट दिये वे सब शांतिसे सहे। प्रभो! मेरे अपराधोंको क्षमा कीजिए।" निर्वैर महावीर स्वामी उसे आश्वासन देकर अन्यत्र विहार कर गये।

दूसरेके दुःख का खयाल धारण कर रहे।

दीक्षा लियेको एक वरस हो जानेके वाद महावीर स्वामी विहार करते हुए फिर मोराक गॉव आये और गॉवके वाहर उद्यानमें प्रति

उस गॉवमें अच्छंदक नामका एक ज्योतिषी वसता था औः यंत्र मंत्रादिसे अपनी आजीविका चलाता था। उसका प्रभाव सारे गॉवमें था। (उसके प्रभावके कारण किसीने प्रभुकी पूजा प्रतिष्ठा नहीं की इसलिए) उसके प्रभावको सिद्धार्थ न सह सका इससे, और लोगोंसे प्रभुकी पूजा करानेके इरादेसे, उसने गॉवके लोगोंको चमत्कार दिखाया। इससे लोग अच्छंदक की

१—आधा महीना यानी पन्द्रह दिन उपवास करके पारणा करना, फिर पन्द्रह दिन उपवास करके पारणा करना। इस तरह चौमासेके साढे तीन महीनेमें प्रभुने केवल छ वार आहारपानी लिया था।

२—अच्छदकका पूरा हाल त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्रसे यहाँ अनुदित किया जाता है,—"उस समय उस (मोराक) गॉवमें अच्छदक नामका एक

उपेक्षा करने लगे। उसका मान घट गया और उसे रोटी मिलना भी कठिन हो गया। यह देखकर अच्छंदकको बड़ा दुःख हुआ। वह प्रभुके पास आया और दीन वचनोंमें बोला–" हे दयालु! आपकी तो जहाँ जायँगे वहीं पूजा होगी; परंतु मेरे लिए तो इस गाँवको छोड़कर अन्यत्र कहीं स्थान नहीं है। इसलिए आप कृपा कर कहीं दूसरी जगह चले जाइए।"

प्रभुने यह अभिग्रह ले ही रक्खा था कि, जहाँ अप्रीति उत्पन्न होगी—मेरे कारण किसीको दुःख होगा—वहाँ न रहूँगा। इसलिए वे तुरत वहाँसे उत्तर वाचाल नामक गाँवकी तरफ विहार कर गये।

चंडकौशिकका उद्धार

महावीर स्वामी विहार करते हुए श्वेतांबी नगरीकी तरफ चले। रस्तेमें गवालोंके लड़के मिले। उन्होंने कहा—" हे देवार्य! यह रस्ता सीधा श्वेतांबी जाता है, परंतु इसमें 'कनकखल' नामका तापसोंका आश्रम है। उसमें एक दृष्टिविष सर्प रहता है। उसके विषकी भयंकरताके कारण पशु पक्षी तक इस रस्तेसे नहीं जा सकते, मनुष्योंकी तो बात ही

खानेको रहता था। वह मंत्र, तंत्रादिसे अपनी आजीविका चलाता था। उसने [illegible] सिद्धार्थ व्यंतर [illegible] और वीर प्रभुकी पूजाकी अभिलाषासे सिद्धार्थने प्रभुके शरीरमें प्रवेश किया। फिर एक बैठे हुए आदमीको बुलाया और कहा—" आज तूने [illegible] (एक तपस्वी [illegible]) के साथ कंकूर (एक प्रकारका धान्य) का भोजन किया है।

क्या है ? इसलिए आप इस रस्तेको छोड़कर उस दूसरे रस्तेसे जाइए।"

अभी तू वैलोंकी रक्षा करने जा रहा है। यहाँ आते हुए तूने एक सर्पको देखा था और आज रातको सपनेमें तू खूब रोया था। गवाल! सच कह। मैंने जो कुछ कहा है वह यथार्थ है या नहीं ?" गवाला बोलाः- "बिलकुल सही है।" उसके बाद सिद्धार्थने और भी कई ऐसी बातें कहीं जिन्हें सुनकर गवालको बड़ा अचरज हुआ। उसने गाँवमें जाकर कहाः- "अपने गाँवके बाहर एक त्रिकालकी बात जाननेवाले महात्मा आये हैं। उन्होंने मुझे सब सच्ची सच्ची बातें बताई हैं।" लोग कौतुकसे फूल, अक्षत आदि पूजाका सामान लेकर महावीर स्वामीके पास आये। उन्हें देखकर सिद्धार्थ बोला - "क्या तुम मेरा चमत्कार देखने आये हो ?" लोगोंने कहा.-"हाँ।" तब सिद्धार्थने उन्हें कई ऐसी बातें बताई जिन्हें उन्होंने पहले देखीं, सुनीं या अनुभवी थीं। सिद्धार्थने कई भविष्यकी बातें भी बताईं। इससे लोगोंने बड़े आदरके साथ प्रभुकी पूजा वंदना की। लोग चले गये। लोग इसी तरह कई दिन तक आते रहे और सिद्धार्थ उन्हें नई नई बातें बताता रहा।

एक बार गाँवके लोगोंने आकर कहा -" महाराज! हमारे गाँवमें एक अच्छदक नामका ज्योतिषी रहता है। वह भी आपकी तरह जानकार है।" सिद्धार्थ बोला-" वह तो पाखंडी है। कुछ नहीं जानता। तुम्हारे जैसे भोले लोगोंको ठगकर पेट भरा करता है।" लोगोंने आकर अच्छदकको कहा-" अरे! तू तो कुछ नहीं जानता। भूत, भविष्य और वर्तमानकी सारी बातें जाननेवाले महात्मा तो गाँवके बाहर ठहरे हुए हैं।" यह सुन अपनी प्रतिष्ठाके नाशका खयालकर वह बोला-" हे लोगो! वास्तविक परमार्थको नहीं जाननेवाले तुम लोगोंके सामने ही वह बातें बनाता है। अगर वह मेरे सामने कुछ जानकारी जाहिर करे तो मैं समझूँ कि, वह सचमुच ही ज्ञाता है। मेरे साथ चलो। मैं तुम्हारे सामने ही आज उसका

उपेक्षा करने लगे। उसका मान घट गया और उसे रोटी मिलना भी कठिन हो गया। यह देखकर अच्छंदकको बड़ा दुःख हुआ। वह प्रभुके पास आया और दीन वाणीमें बोला—"हे दयालु! आपकी तो जहाँ जायँगे वहीं पूजा होगी; परंतु मेरे लिए तो इस गाँवको छोड़कर अन्यत्र कहीं स्थान नहीं है। इसलिए आप दया कर कहीं दूसरी जगह चले जाइए।"

प्रभुने यह अभिग्रह ले ही रक्खा था कि, जहाँ अप्रीति उत्पन्न होगी—मेरे कारण किसीको दुःख होगा—वहाँ मैं नहीं रहूँगा। इसलिए वे तुरत वहाँसे उत्तर वाचाल नामक गाँवकी तरफ विहार कर गये।

महावीर स्वामी विहार करते हुए श्वेतांबी नगरीकी तरफ चले। रस्तेमें ग्वालोंके लड़के मिले।

चंडकौशिकका उद्धार — उन्होंने कहा—"हे देवार्य! यह रस्ता सीधा श्वेतांबी जाता है; परंतु रस्तेमें 'कनकखल' नामका तापसोंका आश्रम है। उसमें एक दृष्टि विष सर्प रहता है। उसके विषकी भयंकरताके कारण पशु पक्षी तक इस रस्तेसे नहीं जा सकते, मनुष्योंकी तो बात ही

चलती रहता था। यह और, तापसोंसे अपनी आजीविका चलाता था। इसने महावीरको निश्चल और ध्यान न कर उनपर इसने और वीर प्रभुकी ध्यानकी अविचलतासे सिद्धार्थने प्रभुके शरीरमें प्रवेश किया। फिर एक जाते हुए ग्वालको बुलाया और कहा—"आज तूने सौवीर (एक तरहकी काँजी) के साथ कंगूर (एक तरहका धान्य) का भोजन किया है।

मींढा खो गया था ?" इन्द्रशर्माने जवाब दिया-"हाँ।" सिद्धार्थने कहा-"उस मींढेको अच्छदक मारकर खा गया है और उसकी हड्डियाँ बोरड़ीके झाडसे दक्षिणमें थोडी दूरपर गाड दीं हैं। जाओ देख लो।" कई लोग दौड़े गये। उन्होंने खड्डा खोदकर देखा और वापिस आकर कहा:-"वहाँ हड्डियाँ हैं।" सिद्धार्थ बोला -"उस पाखडीके दुश्चरित्रकी एक बात और है, मगर मैं वह बात न कहूँगा।" लोगोंके बहुत आग्रह करने पर सिद्धार्थ बोला:-"अपने मुँहसे वह बात मैं न कहूँगा, परतु अगर तुम जानना ही चाहते हो तो उसकी औरतसे पूछो।"

कुतूहली लोग अच्छदकके घर गये। अच्छदक अपनी स्त्रीको दुःख दिया करता था। इससे वह नाराज थी और उस दिन तो अच्छदक उसे पीट कर गया था, इससे और भी अधिक नाराज हो रही थी। इसलिए लोगोंके, पूछने पर उसने कहा -"उस कर्म-चाडालका नाम ही कौन लेता है ? वह पापी अपनी बहिनके साथ भोग करता है। मेरी तरफ तो कभी वह देखता भी नहीं है।" लोग अच्छदकको बुरा भला कहते हुए अपने घर गये। सारे गाँवमें अच्छदक पापीके नामसे प्रसिद्ध हुआ। गाँवमेंसे उसे भिक्षा मिलना भी बद हो गया।

फिर अच्छदक एकांतमें वीर प्रभुके पास गया और दीन होकर बोला.-"हे भगवन् ! आप यहाँसे कहीं दूसरी जगह जाइए। क्योंकि जो पूज्य होते हैं वे तो सभी जगह पुजते हैं, और मैं तो यहीं प्रसिद्ध हूँ। और जगह तो कोई मेरा नाम भी नहीं जानता। सियारका जोर उसकी गुफाहीमें होता है। हे नाथ ! मैंने अजानमें भी जो कुछ अविनय किया था उसका फल मुझे यहीं मिल गया है। इसलिए अब आप मुझपर कृपा कीजिए।" उसके ऐसे दीन वचन सुनकर अप्रीतिवाले स्थानका त्याग करनेका अभिग्रहवाले प्रभु वहाँसे उत्तर चावाल नामके गाँवकी तरफ विहार कर गये।"

[नोट—इस घटनाको पढकर खयाल होता है कि अध भक्तिके वश होकर भक्त लोग ऐसी बातें भी कर बैठते हैं जिनसे अपने आराध्य

मींढा खो गया था ?" इन्द्रशर्माने जवाब दियाः-"हाँ।" सिद्धार्थने कहा -"उस मींढेको अच्छदक मारकर खा गया है और उसकी हड्डियाँ बोरड़ीके झाडसे दक्षिणमें थोडी दूरपर गाड दी हैं। जाओ देख लो।" कई लोग दौड़े गये। उन्होंने खड्डा खोदकर देखा और वापिस आकर कहाः-"वहाँ हड्डियाँ हैं।" सिद्धार्थ बोला.-"उस पाखंडीके दुश्चरित्रकी एक बात और है, मगर मैं वह बात न कहूँगा।" लोगोंके बहुत आग्रह करने पर सिद्धार्थ बोलाः-"अपने मुँहसे वह बात मैं न कहूँगा, परतु अगर तुम जानना ही चाहते हो तो उसकी औरतसे पूछो।"

कुतूहली लोग अच्छदकके घर गये। अच्छदक अपनी स्त्रीको दुःख दिया करता था। इससे वह नाराज थी और उस दिन तो अच्छंदक उसे पीट कर गया था, इससे और भी अधिक नाराज हो रही थी। इसलिए लोगोंके, पूछने पर उसने कहा -"उस कर्म-चाडालका नाम ही कौन लेता है ? वह पापी अपनी बहिनके साथ भोग करता है। मेरी तरफ तो कभी वह देखता भी नहीं है।" लोग अच्छदकको बुरा भला कहते हुए अपने घर गये। सारे गाँवमें अच्छदक पापीके नामसे प्रसिद्ध हुआ। गाँवमेंसे उसे भिक्षा मिलना भी बन्द हो गया।

फिर अच्छदक एकांतमें वीर प्रभुके पास गया और दीन होकर बोला.- "हे भगवन्! आप यहाँसे कहीं दूसरी जगह जाइए। क्योंकि जो पूज्य होते हैं वे तो सभी जगह पुजते हैं, और मैं तो यहीं प्रसिद्ध हूँ। और जगह तो कोई मेरा नाम भी नहीं जानता। सियारका जोर उसकी गुफाहीमें होता है। हे नाथ! मैंने अजानमें भी जो कुछ अविनय किया था उसका फल मुझे यहीं मिल गया है। इसलिए अब आप मुझपर कृपा कीजिए।" उसके ऐसे दीन वचन सुनकर अप्रीतिवाले स्थानका त्याग करनेका आभि-ग्रहवाले प्रभु वहाँसे उत्तर चावाल नामके गाँवकी तरफ विहार कर गये।"

[नोट—इस घटनाको पढकर खयाल होता है कि अध भक्तिके वश होकर भक्त लोग ऐसी बातें भी कर बैठते हैं जिनसे अपने आराध्य

मींढा खो गया था ?" इन्द्रशर्माने जवाब दिया —" हाँ।" सिद्धार्थने कहा'—" उस मींढेको अच्छंदक मारकर खा गया है और उसकी हड्डियाँ बोरड़ीके झाड़से दक्षिणमें थोडी दूरपर गाड दीं हैं। जाओ देख लो।" कई लोग दौड़े गये। उन्होंने खड्डा खोदकर देखा और वापिस आकर कहाः—" वहाँ हड्डियाँ हैं।" सिद्धार्थ बोला —" उस पाखंडीके दुश्चरित्रकी एक बात और है, मगर मैं वह बात न कहूँगा।" लोगोंके बहुत आग्रह करने पर सिद्धार्थ बोला.—"अपने मुँहसे यह बात मैं न कहूँगा, परतु अगर तुम जानना ही चाहते हो तो उसकी औरतसे पूछो।"

कुतूहली लोग अच्छदकके घर गये। अच्छंदक अपनी स्त्रीको दुःख दिया करता था। इससे वह नाराज थी और उस दिन तो अच्छंदक उसे पीट कर गया था, इससे और भी अधिक नाराज हो रही थी। इसलिए लोगोंके, पूछने पर उसने कहा —" उस कर्म—चाडालका नाम ही कौन लेता है ? वह पापी अपनी बहिनके साथ भोग करता है। मेरी तरफ तो कभी वह देखता भी नहीं है।" लोग अच्छंदकको बुरा भला कहते हुए अपने घर गये। सारे गाँवमें अच्छदक पापीके नामसे प्रसिद्ध हुआ। गाँवमेंसे उसे भिक्षा मिलना भी बद हो गया।

फिर अच्छदक एकांतमें वीर प्रभुके पास गया और दीन होकर बोलाः— " हे भगवन् ! आप यहाँसे कहीं दूसरी जगह जाइए। क्योंकि जो पूज्य होते हैं वे तो सभी जगह पुजते हैं, और मैं तो यहीं प्रसिद्ध हूँ। और जगह तो कोई मेरा नाम भी नहीं जानता। सियारका जोर उसकी गुफाहीमें होता है। हे नाथ ! मैंने अजानमें भी जो कुछ अविनय किया था उसका फल मुझे यहीं मिल गया है। इसलिए अब आप मुझपर कृपा कीजिए।" उसके ऐसे दीन वचन सुनकर अप्रीतिवाले स्थानका त्याग करनेका अभिग्रहवाले प्रभु वहाँसे उत्तर चावाल नामके गाँवकी तरफ विहार कर गये।"

[नोट—इस घटनाको पढकर खयाल होता है कि अध भक्तिके वश होकर भक्त लोग ऐसी बातें भी कर बैठते हैं जिनसे अपने आराध्य

करनेके लिए उसी तरफसे जाना स्थिर किया। प्रभु जाकर चंडकौशिकके आश्रममें रहे। आश्रमके आसपासका सारा भूमि-भाग भयंकर हो गया था। कहीं न पशुओंका संचार था न पक्षियोंकी उड्डान। वृक्ष और लताएँ सूख गये थे। जलस्रोत वहते वंद हो गये थे और भूमि कंटकाकीर्ण हो गई थी। ऐसी भयावनी जगहमें महावीर ध्यानस्थ हो कर रहे।

सर्पको महावीरका आना मालूम हुआ। उसने प्रभुके सामने जाकर विजलीके समान तेजवाली दृष्टि डाली, मगर जैसे मिट्टीमें पड़कर विजली निकम्मी हो जाती है वैसे ही उसकी विष-दृष्टि निकम्मी हो गई। सर्पके हृदयमे आघात लगा। वह सोचने लगा, आज ऐसा यह कौन आया है कि जिसने मेरे प्राणहारी दृष्टि विषके प्रभावको निरर्थक कर दिया है। अच्छा, देखता हूँ कि मेरे काटनेपर यह कैसे वचता है! सर्पने जोरसे महावीरके पैरोंमें काटा, फिर यह सोचकर वह दूर हट गया कि यह हृष्ट पुष्ट देह, जहरका असर होनेपर कहीं मुझीपर न आ पडे। महावीर स्वामीके पैरसे बूँदें निकलीं। आश्चर्य था

फल, पत्र, पुष्प आदि लेने नहीं देता था। इससे सभी तापस नाराज होकर वहाँसे चले गये। एक दिन वह कहीं गया हुआ था तव कुछ राजकुमार श्वेताम्वी नगरीसे आकर वनके फल, पुष्पादि तोड़ने लगे। वापिस आकर उसने इन लोगोंको देखा और वह कुल्हाड़ी लेकर उन्हें मारने दौड़ा। रस्तेमें पैर फिसलकर एक खड्डेमें गिरा, उसके हाथकी कुल्हाडी उसके सिरपर पडी। सिर फूट गया और मरकर वहीं दृष्टि विष सर्प हुआ। उधरसे जो कोई जाता वह उसकी दृष्टिके विषसे मर जाता।

कि वे रक्तकी बूँदें दुग्धके समान सफेद थीं। चंडकौशिकने और भी जोरसे, अपनी पूरी ताकत लगाकर, महावीर स्वामीके पैरोंमें दाँत मारे, जितना जहर था, सारा वमन किया, और तब दूर हट गया। दाँत लगे हुए स्थानसे दो पतली धारायें बहीं। एक थी सफेद रक्तकी और दूसरी थी नीली जहरकी। सर्प हैरान था, क्रुद्ध था, बेबस था। उसने महावीर स्वामीके मुखकी तरफ देखा। वह शांत था, निर्विकार था। उसने नासिकाके अग्रभाग पर जमी हुई आँखोंको देखा, उनमें विश्व-प्रेमका अमृत भरा हुआ था। सर्पने वह अमृत पान किया। उसके हृदयकी कलुषता जाती रही। महावीर स्वामी ध्यानोत्सर्ग पार कर बोले:–" हे चंडकौशिक! समझ, विचार कर, मोहमुग्ध न हो। "

कलुषताहीन हृदयमें महावीर स्वामीके इस उपदेशने मानों बंजर भूमिको उर्वरा बना दिया। विचार करते करते उसे जातिस्मरण ज्ञान हो आया। उसको, अपने पूर्वभवोंकी भूलोंका ज्ञान हुआ। उसने शेष जीवन आत्मध्यानमें, अनशन करके बिताना स्थिर किया। महावीर स्वामीके प्रदक्षिणा देकर उसने अपना मुँह, इस खयालसे एक बिलमें डाल दिया कि कहीं मेरी नजरसे प्राणी मर न जाय। झाड़ोंपर चढ़कर ग्वालोंके लड़कोंने देखा कि, महावीर स्वामी अभी जिन्दा हैं और सर्प सिर नीचा किये उनके सामने पड़ा है। लड़कोंने समझा यह कोई भारी महात्मा मालूम होता है। उन्होंने दूसरे ग्वालोंको यह बात

कही। उन्हें भी कुतूहल हुआ। वे डरते डरते उस तरफ गये और दूर झाड़की आडमें खड़े होकर पत्थर फैंकने लगे। मगर पत्थर खाकर भी सर्प जब न हिला तब उन लोगोंको विश्वास हो गया कि सर्प निकम्मा हो गया है। यह बात सब तरफ फैल गई। वह रस्ता चालू हो गया। आते जाते लोग महावीर स्वामीको और सर्पको नमस्कार कर कर जाते। कई गवालोंकी स्त्रियाँ सर्पको स्थिर देख उसके शरीरपर घृत लगा गई। अनेक कीड़ियाँ आकर घृत खाने लगीं। घीके साथ ही साथ उन्होंने सर्पके शरीरको भी खाना आरंभ कर दिया। मगर सर्प यह सोच कर हिला तक नहीं कि, कहीं मेरे शरीरके नीचे दबकर कोई कीडी मर न जाय। वह इस पीड़ाको अपने पापोदयका कारण समझ चुपचाप सहता रहा। कीडियोंने उसके शरीरको छलनी बना दिया। एक कीड़ी अगर हमें काट खाती है तो कितनी पीडा होती है? मगर सर्पने पन्द्रह दिनतक वह दुःख शांतिसे सहा और अंतमें मरकर सहस्रार देवलोकमें देवता हुआ।

चंडकौशिकका उद्धार कर महावीर स्वामी उत्तर वाचाल नामक गाँवमें आये और एक पखवाडेका पारणा करनेके लिए गोचरी लेने निकले। फिरते हुए नागसेन नामा गृहस्थके घर पहुँचे। उस दिन नागसेन बड़ा प्रसन्न था, क्योंकि उसी दिन उसका कई बरसोंसे खोया हुआ लड़का वापिस आया था। उसने इसको धर्मका प्रभाव समझा और महावीर स्वामीको दूधसे प्रतिलाभित किया। देवताओंने उसके घर वसुधारादि पाँच दिव्य प्रकट किये।

उत्तर वाचालसे विहारकर प्रभु श्वेतांबी नगर पहुँचे। प्रभु नगरके बाहर रहे। श्वेतांबीका 'प्रदेशी' नामक राजा भक्त था। वह सपरिवार वंदना करने आया था।

महावीर स्वामी विहार करते हुए सुरभिपुरकी तरफ चले। रस्तेमें गंगा नदी आती थी। उसको सुदंष्ट्र नागकुमारका उपद्रव पार करनेके लिए सिद्धदत्त नामके नाविककी नौका तैयार थी। दूसरे मुसाफिरोंके साथ महावीर स्वामी भी नौकापर बैठे। नौका चली, उससमय किनारेपर उल्लू बोला। मुसाफिरोंमें खेमिल नामका शकुनशास्त्री भी था। उसने कहा:-"आज हमको रस्तेमें मरणांत कष्ट होगा; परन्तु इन महात्माकी कृपासे हम बच जायँगे।"

नौका चलते हुए पानीपर नाचती हुई चली जा रही थी। रस्तेमें सुदंष्ट्र नामक नागकुमार रहता था। उसने अवधिज्ञानसे जाना कि, ये जब त्रिपृष्ठ वासुदेव थे तब मैं सिंह था। इन्होंने उस समय मुझे बेमतलब मार डाला था। फिर उसने प्रभुको डुबाकर मार डालना स्थिर किया। उसने संवर्तक नामका महावायु चलाया। इससे अनेक झाड़ उखड़ गये, कई मकान गिर पड़े। नौका ऊँची उछल उछलकर पड़ने लगी। मारे भयके मुसाफिरोंके प्राण सूखने लगे और वे अपने इष्ट देवको याद करने लगे। महावीर शांत बैठे थे। उनके चेहरेपर भयका कोई चिन्ह नहीं था। उन्हें देखकर दूसरे मुसाफिरोंके हृदयमें भी कुछ धीरज

थी। नौका डूबूँ डूबूँ हो रही थी, उस समय कंबल और संबल नामके दो देवोंने अरिहंत पर होते उपसर्गको देखकर नौकाको सुरक्षित नदीके तीरपर पहुँचा दिया और धर्मका पालन कर प्रसन्नता अनुभव की।

१-मथुरामें जिनदास नामका एक सेठ रहता था। उसके साधुदासी नामकी स्त्री थी। उन्होंने परिग्रह-परिमाणका व्रत लिया था। उसमें ढोर पालनेका भी पच्चखाण था। इसलिए वे गाय भैंस नहीं पाल सकते थे। दूध एक अहीरणके यहाँसे मोल लेना पड़ता था। अहीरण नियमित अच्छा दूध देती थी। सेठानी उससे बहुत स्नेह रखती थी। और अक्सर उसको वस्त्रादि दिया करती थी। एक बार अहीरनके यहाँ विवाहका अवसर आया। नियमोंके कारण जिनदत्त और साधुदासी न जा सके, परंतु विवाहके लिए सामान जो चाहिए सो दिया। इस उपकारका बदला चुकानेके लिए अहीर अहीरन उनके यहाँ बैलोंकी एक सुंदर जोडी, सेठ सेठानीकी इच्छा न होते हुए भी, बाँध गये। बैलोंका नाम कंबल और शबल था। सेठने उन्हें अपने बालकोंकी तरह रक्खा। उनसे कभी कोई काम न लिया।

एक बार शहरमें भडीरवण नामके किसी यक्षका मेला था। उसमें लोग अक्सर पशुओंको दौडानेकी क्रीडा किया करते थे। जिनदासका एक मित्र उस दिन चुपचाप कंबल और शबलको खोल ले गया। बेचारे बैल कभी जुते नहीं थे, दौडे नहीं थे। उस दिन खूब जुते और दौड़े इससे उनकी हड्डियाँ ढीली हो गई। मित्र बैलोंको चुप चाप वापिस बाँध गया वे घर आकर पड रहे। जिनदास घर आया। उसने बैलोंकी खराब हालत देखी। उसने बैलोंको खिलाना पिलाना चाहा। मगर उनने कुछ न खाया पिया। पीछेसे उसे असली हाल मालूम हुआ। उसे बडा रंज हुआ। उसने बैलोंको पच्चखाण कराया और उनके जीवनकी अंतिम घडीतक सेठ उनको, पास बैठकर, नवकार मंत्र सुनाता रहा। इसके प्रभावसे वे मरकर नागकुमार नामके देव हुए।

नदीके तीरपर उतर कर प्रभु विहार कर गये। उनके पैरोंके चिन्होंको पीछेसे पुष्य नामके सामुद्रिकने देखा। उसने सोचा,–इधर चक्रवर्ती गये हैं। चलूँ उनकी सेवा करूँ और कुछ लाभ उठाऊँ। प्रभु स्थूणाक नामक गाँवके पास जा, कायोत्सर्ग कर रहे। पुष्य पदचिन्होंपर गया। मगर चिन्हवालोंको साधु देख दुखी हुआ। इन्द्रको यह बात मालूम हुई। उसने आकर सामुद्रिकको मनवांछित धन दिया और उसे प्रभुदर्शनका फल दिया।

पुष्य नामक सामुद्रिकको दर्शनसे लाभ।

प्रभु विहार करते हुए राजगृहमें आये और शहरके बाहर थोड़ी दूरपर नालंदा नामक स्थानमें एक जुलाहेके, कपड़े बुननेके बड़े स्थानमें, उसकी इजाजत लेकर रहे। और विक्रम संवत् ५१२ (ई. स. ५६९) पूर्व दूसरा चौमासा प्रभुने वहीं किया। प्रभुने मासक्षमण (एक महीनेका उपवास) कर कायोत्सर्ग किया। वहाँ गोशालक नामका

नालंदामें दूसरा चौमासा

१ मंखली नामक एक मंख [चित्रोंपर शिव वगैरा देवोंकी तसवीरें बताकर भीख माँगकर खानेवाली जाति विशेष।] था उसके भद्रा नामकी स्त्री थी। वे दोनों चित्र बेचते हुए एक बार सरवण गाँवमें गये। एक ब्राह्मणकी गोशालामें ठहरे। वहीं भद्राने पुत्र प्रसव किया। उसका नाम गोशालक रक्खा। यह जवान हुआ तब अपने मातापितासे लड़कर निकल गया और घूमता हुआ नालंदामें—जहाँ महावीर स्वामी ठहरे थे वहीं—पहुँचा। दूसरे दिन मासक्षमणका पारणा करने प्रभु विजय सेठके घर पारणा हुए,

मंख प्रभुके पास आकर ठहरा। महावीर स्वामीने मासक्षमणका पारणा विजय गृहपतिके घर कियाँ। देवताओंने पाँच दिव्य प्रकट किये। इससे गोशालक वड़ा प्रभावित हुआ। उसने प्रभुसे प्रार्थना की,-" आप मेरे धर्माचार्य हैं और मैं आपका धर्मशिष्य हूँ।" महावीर कुछ न वोले। तव वह खुद ही अपनेको उनका शिष्य वताने लगा। महावीर स्वामीने दूसरे मासक्षमणका पारणा आनंदके यहाँ और तीसरे मासक्षमणका पारणा सुनंदके यहाँ किया था। चौमासा समाप्त होनेपर महावीर वहाँसे विहार कर गये और चौथे मासक्षमणका पारणा कोल्लाक नामके गाँवमें वहुल नामक ब्राह्मणके घर किया।

एक वार कार्तिकी पूर्णिमाके दिन गोशालकने सोचा,-ये वड़े ज्ञानी हैं तो आज मैं इनके ज्ञानकी परीक्षा लूँ। उसने पूछाः-" हे स्वामी! आज मुझे भिक्षामें क्या मिलेगा?" सिद्धार्थने प्रभुके शरीरमें प्रवेश कर उत्तर दियाः-" विगड़कर

गोचरी लेने गये। सेठने भक्तिपूर्वक विधि सहित प्रभुको प्रतिलाभित किया और उसके घर रत्नवृष्टि आदि पंच दिव्य प्रकट हुए। गोशालक यह सव देख सुनकर प्रभुका, अपने मनहीसे, शिष्य हो गया।

१—भगवान महावीर नीच कुलवालेके घर भी आहार लेने जाया करते थे। इससे ऐसा जान पडता है कि उस समय नीच कुलवालेके यहाँसे शुद्ध आहार पानी लेनेमें कोई संकोच नहीं था। भगवती सूत्रमें लिखा है -" हे गोतम XXXX राजगृह नगरमें उच्च, नीच और मध्य कुलमें यावत्—आहारके लिए फिरते मैंनें विजयनामक गाथापतिके (गृहपतिके) घरमें प्रवेश किया।"

[श्रीरायचन्द्र जिनागम संग्रहका भगवती सूत्र, १५ वाँ शतक, पेज २७०]

सड़ा बना हुआ कोद्रव और कूरका धान्य तथा दक्षिणामें खोटा रुपया तुझे मिलेंगे।" गोशालकको दिनभर भटकनेपर भी शामको वही मिला। इसलिए गोशालकने स्थिर किया कि जो भविष्य होता है वही होता है।+

गोशालक रातको आया; मगर महावीर वहाँ न मिले। इस लिये वह अपनी चीजें ब्राह्मणोंको दे, सिर मुँडा कोल्लाक गाँवमें गया। वहाँ भगवानने गोशालकको शिष्यकी तरह स्वीकार किया।[1]

महावीर स्वामीने कोल्लाकसे स्वर्णखलको विहार किया। रस्तेमें कई ग्वाले एक हाँडीमें खीर बना रहे थे। गोशालकने कहा:-"प्रभो! आइए हम भी खीरका भोजन करें।" सिद्धार्थ बोला:-"हाँडी फूट जायगी और खीर नहीं बनेगी।" ऐसा ही हुआ। गोशालक विशेष नियतिवादी बना।

स्वर्णखलसे विहारकर प्रभु ब्राह्मण गाँव गये। वहाँ नंद और उपनंद नामके दो भाइयोंके मुहल्ले थे। प्रभु नंदके यहाँ छट्ठका पारणा करने गये। नंदने दही और भातसे प्रभुको प्रतिलाभित किया। गोशालक उपनंदके घर गया। उपनंदके कहनेसे दासी उसको बासी भात देने लगी। गोशालकने लेनेसे इन्कार किया। इसलिए उपनंदके कहनेसे दासीने वह भात गोशालकके सिर पर डाल दिया। गोशालकने शाप दिया:-

+ विशेषावश्यक, भगवती सूत्र और कल्पसूत्रमें इस घटनाका उल्लेख नहीं है। केवल त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्रमें ही है।

१ कल्पसूत्रमें लिखा है कि, भगवान कुछ न बोले, परन्तु भगवती सूत्र और त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्रमें गोशालकको शिष्य स्वीकारना लिखा है।

"अगर मेरे गुरुका तपतेज हो तो उपनंदका घर जल जाय।" एक व्यंतर देवने उपनंदका घर जला दिया।

चंपा नगरीमें तीसरा चौमासा।

ब्राह्मण गाँवसे विहार कर महावीर चंपा नगरी[1] गये। और विक्रम संवत ५११ (ई० सन् ५६८) पूर्वका चौमासा वहीं किया। वहाँ दो मासक्षमण करके चौमासा समाप्त किया।

चंपासे विहार कर प्रभु कोल्लाक गाँवमें आये और एक शून्य गृहमें कायोत्सर्ग करके रहे। गोशालक दर्वाजेके पास बैठा[2]।

कोल्लाकसे विहार कर महावीर पत्रकाल नामक गाँवमें आये

१—यह अंगदेशकी राजधानी थी। भागवतकी कथाके अनुसार हरिश्चन्द्रके प्रपौत्र चंपने इसको बसाया था। जैनकथाके अनुसार पिताकी मृत्युके शोकसे राजगृहमें अच्छा न लगनेसे कोणिक (अजातशत्रु) राजाने चंपेके एक सुंदर झाडवाले स्थानमें नई राजधानी बसाई और उसका नाम चंपा रक्खा। वैदिक, जैन और बौद्ध तीनों सम्प्रदायवाले उसे तीर्थस्थान मानते हैं। उसके दूसरे नाम अंगपुर, मालिनी, लोमपादपुरी और कर्णपुरी आदि हैं। पुराने जैनयात्री लिखते हैं कि चंपा पटणासे १०० कोस पूर्वमें है। उससे दक्षिणमें करीब १६ कोस पर मंदारगिरि नामका जैनतीर्थ है। वह अभी मंदारहिल नामक स्टेशनके पास है। चंपाका वर्तमान नाम चंपानाला है। वह भागलपुरसे तीन माइल है। उसके पास ही नाथनगर भी है। (महावारनी धर्मकथाओ, पेज १७५)

२—गावके ठाकुरका लड़का अपनी दासीको लेकर उस शून्य घरमें आया। अंधकारमें वहाँ किसीको न देख उसने अनाचारका सेवन किया। जाते समय गोशालकने दासीके हाथ लगाया। इससे युवकने उसे पीटा।

कुमार गाँवसे विहारकर महावीर चोराक गाँवमें आये। वहाँ कायोत्सर्ग करके रहे। सिपाही फिरते हुए आये और उन्हें किसी राजाके जासूस समझकर पकडा और पूछाः–"तुम कौन हो?" मौनधारी महावीर कुछ न बोले। गोशालक भी चुप रहा। इससे दोनोंको बाँधकर सिपाहियोंने उन्हें कूएमें डाला। फिर निकाला फिर डाला। इस तरह बहुतसी डुबकियाँ खिलाईं। फिर सोमा व जयंतिका नामकी साध्वियोंने–जो पार्श्वनाथके शासनकी थीं–उन्हें पहचाना और छुडाया।

चोराक गाँवसे विहार कर प्रभु पृष्ठचंपा नगरीमें आये और वि० स० ५१० (ई. सन ५६७)

पृष्ठचंपामें चौथा चौमासा

पूर्वका चौमासा वहीं किया वहाँ चार मासक्षमण (चार महीनेका उपवास) करके विविध प्रकारकी प्रतिमा–आसन–से वह चौमासा समाप्त किया।

वहाँसे विहार कर फिरते हुए महावीर कृतमंगल नामके शहरमें गये और वहाँ दरिद्र स्थविरोंके[1] मुहल्लेमें, एक मंदिरके अंदर, एक कोनेमें कायोत्सर्ग करके रहे।

मेरा शाप फला।" सिद्धार्थ बोला —"तेरा शाप नहीं फला, मुनि शुभ ध्यानसे मरे इससे देवता आये हैं। उसीका यह प्रकाश है।" कुतूहली गोशालक गया और सोते हुए शिष्योंको जगाकर उनका तिरस्कार कर आया।

१–आरंभी, परिग्रहधारी और स्त्रीपुत्रादिवाले पाखंडी रहते थे। वे दरिद्र स्थविर नामसे पहिचाने जाते थे। उनके मुहल्लेमें किसी देवताकी मूर्ति थी। उस मंदिरमें प्रभु गये उस दिन उत्सव था। इसलिए सभी सपरिवार वहाँ इकट्ठे हुए और गीत-नृत्यमें रात बिताने लगे। यह देख गोशालक

वहाँसे विहार कर प्रभु हरिद्रु नामक गाँवमें गये और वहाँ हरिद्रु वृक्षके नीचे प्रतिमा धारण कर रहे। वहाँ कोई संघ आया था और रातको आग जलाकर रहा था। वह सवेरे आग बुझाये विना लोग चले गये। आग सुलगती हुई भगवानके पास पहुँची। गोशालक भाग गया; परंतु प्रतिमाधारी भगवान वहाँसे न हटे और उनके पैर झुलस गये।

हरिद्रुसे विहार कर प्रभु लांगल गाँवमे गये और वहाँ प्रतिमा धारण कर वासुदेवके मंदिरमें रहे[1]।

हरिद्रुसे विहारकर प्रभु आवर्त्त नामक गाँवमें आये और वहाँ बलदेवके मंदिरमें प्रतिमा धारण कर रहे[2]।

आवर्त गाँवसे विहार कर प्रभु चोराक गाँवमे आये और वहाँ एकांत स्थानमें प्रतिमा धर कर रहे[3]।

करवा दिया। गोशालक स्थानपर पहुँचा। सिद्धार्थने उसे खीरकी सारी बात कही। उसने उल्टी की तो उसमेंसे नखोंके छोटे टुकडे आदि निकले। गोशालक बडा नाराज हुआ और पितृदत्तके घर गया, परतु घरका रूप बदल गया था इसलिए उसे घर न मिला। तब उसने शाप दिया.—"यदि मेरे गुरुका तप हो तो यह सारा मुहल्ला जल जाय।" किसी व्यतर देवने महावीर स्वामीकी महिमा कायम रखनेके लिए सारा मुहल्ला जला दिया।

१—यहाँ गोशालकने लडकोंको डराया, इसलिए उनके मातापिताने गोशालकको पीटा। वृद्धोंने प्रभुका भक्त जान छुडाया।

२—यहाँ भी बालकोंको डरानेसे गोशालक पीटा गया। कुछने सोचा इसके गुरुको मारना चाहिए। वे महावीरको मारने दौडे। तब किसी अर्हतभक्त व्यतरने बलदेवके शरीरमें प्रवेशकर महावीरकी रक्षा की।

३—गोशालक यहाँ भिक्षार्थ गया। एक जगह गोठके लिए रसोई हो रही थी। गोशालक छिपकर देखने लगा कि, रसोई हुई या नहीं? इसको छिपा देख लोगोंने चोर समझा और पीटा। गोशालकने शाप दिया—

वहाँसे विहार कर प्रभु कलंबुक नामक गाँवमें गये। वहाँ मेघ और कालहस्ति नामके दो भाई रहते थे। उस समय चोरोंको पकड़नेके लिए कालहस्ती जा रहा था। महावीर स्वामी और गोशालकको उसने चोर समझा और पकड़कर भाईके सामने खड़ा किया। मेघ महावीरको पहचानता था, इसलिए उसने उन्हें छोड़ दिया।

महावीर स्वामीने अवधिज्ञानसे जाना कि, अब तक मेरे बहुतसे कर्म बाकी हैं। वे किसी सहायकके बिना नाश न होंगे। आर्य देशमें सहायक मिलना कठिन जान उन्होंने अनार्य देशमें विहार करना स्थिर किया।

कलंबुक गाँवसे विहार कर प्रभु क्रमशः अनार्य लाढ देशमें पहुँचे। लाढ देशके निवासी क्रूरकर्मी थे। उन्होंने महावीरके ऊपर घोर उपसर्ग किये। उपसर्गोंको शांतिसे सहकर महावीरने अनेक अशुभ कर्मोंकी निर्जरा की। गोशालकने भी प्रभुके साथ अनेक कष्ट सहे।

पूर्णकलश नामक गाँवमें जाते समय चोर मिले। चोरोंने अपशकुन हुए जान दोनोंको मारनेके लिए तलवार निकाली। इन्द्रने चोरोंको मार डाला।

पूर्ण कलशसे विहार कर प्रभु भद्रिकपुर आये। और विक्रम

" अगर मेरे गुरुके तपका प्रभाव हो तो यह झोंपड़ी जल कर खाक हो जाय।" महावीरके भक्त व्यंतरने उसे जला दिया।

१—उपसर्गका अर्थ उपसर्ग-कष्ट है। जितने अधिक उपसर्ग होते हैं उतने ही अधिक कर्मी कर्मोंका नाश होता है। शर्त यह है कि उपसर्ग शांतिसे सहे जायँ।

२—कल्पसूत्रमें 'भद्रिकापुरी' और त्रिषष्टिशलाकामें 'भद्रिल नगरी' लिखा है।

संवत ५०९ (ई. स. ५६६)

महिलपुरमें पाँचवाँ चौमासा पूर्वका पाँचवाँ चौमासा वहीं चौमासी तप (चार महीनेका उपवास) करके विताया।

चौमासा समाप्त होनेपर तपका पारणा कर वहाँसे प्रभु कदली समागम गाँवमें आये और कायोत्सर्ग करके रहे। गोशालकने वहाँ सदाव्रतमें भोजन किया।

कदली समागमसे विहार कर प्रभु जंबूखंड गाँवमें गये। और वहाँसे तुंबाक[1] गाँवमें गये। वहाँ नंदीपेणाचार्य[2] भी अपने शिष्यों सहित ठहरे हुए थे।

जंबूखंडसे विहार कर महावीर कूपिका गाँव गये। वहाँ सिपाही दोनोंको गुप्तचर जानकर, हैरान करने लगे। प्रगल्भा और विजया नामकी दो साध्वियोंने-जो साधुपना न पाल सकनेके कारण परिव्राजिकाएँ हो गई थीं-उन्हें छुड़ाया।

कूपिका गाँवसे प्रभु विशालपुरकी तरफ चले। आगे दो रस्ते फटते थे। वहाँ गोशालक महावीर स्वामीसे अलग होकर राजगृहकी तरफ चला[3]। वे विशाली पहुँचे। वहाँ एक लुहारका

१— कल्पसूत्र और विशेषावश्यकमें इसका नाम क्रमश 'तम्राल' और 'तवाक' लिखा है।

२ नदीषेणाचार्य पार्श्वनाथकी शिष्य परपरामेंसे थे। गोशालकने इनके शिष्योंका भी मुनिचद्राचार्यके शिष्योंकी तरह अपमान किया था। नदीषेणाचार्य जिनकल्पकी तुलना करने किसी चौकमें कायोत्सर्ग कर रहे थे। चौकीदारोंने उन्हें चोर समझकर मार डाला।

३ गोशालक एक जगलमें पहुँचा। वहाँ चोरोंने उसे देखा। एक बोला "कोई द्रव्यहीन नग्न पुरुप आ रहा है।" दूसरे बोले-"वह द्रव्यहीन

भवन सूना पड़ा था। लुहार बीमार होनेसे, छः महीने हुए कहीं गया हुआ था। महावीर स्वामी लोगोंकी आज्ञा लेकर लुहारके मकानमें कायोत्सर्ग करके रहे। लुहार भी उसी दिन अच्छा होकर वापिस आया। अपने मकानमें साधुको देखकर उसने अपशकुन समझा। वह घन लेकर उन्हें मारने दौड़ा। इन्द्रने अपनी शक्तिसे वह घन उसीके सिरपर डाला और वह वहीं मर गया।

वैशालीसे विहार कर प्रभु ग्रामक गाँव आये और गाँवके बाहर उद्यानमें बिभेलक नामक यक्षके मंदिरमें कायोत्सर्ग करके रहे। यक्षको पूर्व भवमें सम्यक्त्वका स्पर्श हुआ था इसलिए उसने प्रभुकी पूजा की।

ग्रामक गाँवसे विहार कर प्रभु शालिशीर्ष नामक गाँवमें आये। वहाँ उद्यानमें प्रतिमा धरकर रहे। कटपूतना[1] नामकी वाण व्यंतरी ने रातभर प्रभुपर उपसर्ग किये। शांतिसे उपसर्ग सहन कर प्रभुने लोकावधि नामका अवधिज्ञान प्राप्त किया।

और अब है तो भी उसे छोड़ना नहीं चाहिए। संभव है वह कोई जासूस हो। फिर वे झाड़से उतरकर आये और एक एक कर उसपर सख्ती करने लगे। आखिर वह थककर गिर पड़ा तब चोर उसे छोड़कर चले गये। गोशालक महावीरको ढूँढनेके लिए पर्यटन करता हुआ छः महीनेके बाद पुनः उनसे जाकर भद्रिकापुरीमें मिला।

१—कटपूतना और महावीरका जीव जब त्रिपृष्ठ वासुदेव था तब उसकी विजयवती नामकी रानी थी। किसीसे उसे उचित आदर नहीं मिलता था। इससे वह रोष करके मरी थी। अनेक भव भ्रमणोंके बाद मनुष्य भवमें आई और वहाँ बालतप कर वाणव्यंतरी हुई। महावीरको देख पूर्वभवका वैर याद कर उसने महावीरपर उपसर्ग किये।

शालिशीर्षसे विहारकर प्रभु भद्रिकापुरीमें आये। वहाँ चार मासक्षमण कर वि० सं० ५०८

भद्रिकापुरीमें छठा चौमासा

(ई. स. ५६५) पूर्वका छठा चौमासा वहीं किया। वहींपर गोशालक भी छः महीनेके बाद पुनः महावीरके पास आ गया। वर्षाकाल वीतनेपर महावीरने नगरके बाहर पारणा किया।

आठ महीनेतक भगवानने मगध देशमें विविध स्थानोंमें निर्विघ्न विहार किया।

चौमासेके आरंभसे पहले महावीर आलभिका नगरीमें आये। और वि० स०५०७ (ई. स. ५६४) पूवका सातवाँ चौमासा वहीं व्यतीत किया। चौमासा पूर्ण होनेपर गाँवके वाहर चौमासी तपका पारणा किया।

आलभिका नगरीमें सातवाँ चौमासा

आलभिकासे विहारकर प्रभु गोशालक सहित कुंडक गाँवमें आये। वहाँ वासुदेवके मंदिरमें एक कोनेमें प्रतिमा धारण कर रहे[1]।

कुंडकसे विहार कर प्रभु मर्दन नामक गाँवमें आये और वहाँ वलदेवके मंदिरमें प्रतिमा धारण कर रहे[2]।

मर्दन गाँवसे विहार कर प्रभु बहुशाल नामक गाँवमें गये। वहाँ शालवन नामक उद्यानमें प्रतिमा धारण कर रहे। वहाँ एक व्यंतरीने अनेक तरहके उपसर्ग किये।

१—गोशालकने वहाँ वासुदेवकी मूर्तिकी कुचेष्टा की। उसी समय वहाँ पुजारी आया। उसन इसे नग्न जैन साधु समझ इसकी बुराई लोगोंको बतानेके लिये गाँवके लोगोंको बुलाया। लड़के और जवान उसे थपतियाने लगे। बूढोंने उसे पागल समझ छुड़वा दिया।

२—यहाँ भी गोशालक कुचेष्टा करनेसे पिटा।

विहार करते हुए प्रभु राजगृहमें पहुँचे और वि० सं० ५०६ (ई. स. ५६३) पूर्वका आठवाँ

राजगृहमें आठवाँ चौमासा

चौमासा चौमासी तप कर वहीं विताया।

विहार करते हुए प्रभु म्लेच्छ देशोंमें आये और वि० सं० ५०५ (ई. स. ५६२) पूर्वका

म्लेच्छ देशोंमे नवाँ चौमासा

नवाँ चौमासा वज्रभूमि, शुद्धभूमि और लाट वगैरा देशोंमें विताया।

यहाँ प्रभुको रहनेके लिए स्थान भी न मिला, इसलिए कहीं खंडहरमें और कहीं झाड़ तले रहकर वह चौमासा पूरा किया। इस चौमासेमें दुष्ट प्रकृति म्लेच्छ लोगोंने महीवीरको वहुत तकलीफ दी।

म्लेच्छ देशसे विहारकर महावीर सिद्धार्थपुर आये और सिद्धार्थपुरसे कूर्मग्रामको चले।

गोशालकका परिवर्तवाद

गाँवसे थोड़ी दूर रस्तेमें एक तिलका पौदा था। गोशालकने पूछाः— "स्वामी! यह तिलका पौदा फलेगा या नहीं?" प्रभुने उत्तर

आगे चलते हुए गवाले मिले। उनसे पूछाः—"हे म्लेच्छो! हे वद शकलो! वताओ यह रस्ता कहाँ जाता है?" उन्होंने कहा —"मुसाफिर वे फायदा गालियाँ क्यों देता है?" गोशालक वोला —"मैंने तो सच्ची बात कही है। क्या तुम म्लेच्छ और वद शकल नहीं हो?" इससे गवाल नाराज हुए और उन्होंने उसे बाँधकर एक झाड़ीमें डाल दिया। दूसरे मुसाफिरोंने दयाकर उसके बंधन खोले।

दिया—"हे भद्र! यह पौदा फलेगा और दूसरे सात फूलोंके जीव हैं वे इस पौदेकी फलीमें सात तिलरूपमें जन्मेंगे।" गोशालकने महावीर स्वामीकी वाणीको मिथ्या करनेके लिए उस पौदेको उखाड़कर दूसरी जगह रख दिया। उसी समय किसी देवताने महावीरकी वाणी सत्य करनेके लिए पानी बरसाया। महावीरस्वामी और गोशालक कूर्मग्राम चले गए। तिलका पौदा किसी गायके पैरसे जमीनमें घुस गया और धीरे धीरे वह पुनः पौदेके रूपमें आया और उसकी फलीमें सातों पुष्पोंके जीव तिल रूपमें उत्पन्न हुए। कूर्मग्रामसे विहारकर प्रभु जब वापिस सिद्धार्थपुर चले तब रस्तेमें तिलके पौदेवाली जगह आई। वहाँ गोशालकने कहा—"प्रभु, आपने कहा था कि तिलका पौदा फिर उगेगा और फूलोंके सात तिल होंगे; मगर ऐसा तो नहीं हुआ।" महावीर बोले—"हुआ है।" तब गोशालकने पौदा जाकर देखा और उसकी फली तोड़ी तो उसमेंसे सात तिल निकले। तब गोशालकने परिवर्तवादके सिद्धांतको स्थिर किया।

१—गोशालकने यह प्रश्न [illegible] सिद्धार्थ देखने दिया था। इस प्रश्नका उत्तर स्वयं महावीरने दिया।

२ भगवती सूत्रमें और आवश्यक सूत्रमें "किसी देवताने पानी बरसाया" ऐसा उल्लेख नहीं है। उसमें उसी समय पानी बरसना लिखा है।

३—जिस शरीरसे जीव मरता है पुनः उसीमें उत्पन्न होता है। इस तरहके सिद्धान्तको परिवर्तवाद कहते हैं।

प्रभु जब कूर्मग्राम पहुँचे तब वहाँ एक वैशिकायन नामका तपस्वी आया हुआ था और मध्यान्ह कालमें, दोनों हाथ ऊँचे कर सूर्यमंडलके सामने दृष्टि स्थिर कर आतापना ले रहा था। वह दयालु और समता

गोशालकको तेजोलेश्या प्राप्तिकी विधि बताई

१—चंपा और राजगृहके बीचमें एक गोवर नामका गाँव था। उसमें—गोशखी नामक कुन्बी रहता था। वह संतानहीन था। गोवर गाँवके पास ही एक खेटक गाँव था। लुटेरोंने उसे लूट लिया। गाँवके कई लोगोंको मार डाला। वेशका नामकी एक थोडे ही दिनकी प्रसूता सुंदर स्त्रीको भी वे पकडकर ले चले। बच्चेको लेकर वह जल्दी नहीं चल सकती थी, इस लिए लुटेरोंने बच्चेको रस्तेमें एक झाड़के नीचे रखवा दिया और वेशकाको चंपानगरीमें एक वेश्याके घर बेच दिया। थोड़े दिनोंमें वह एक प्रसिद्ध वेश्या हो गई।

लड़केको गोशखीने ले जाकर बच्चेकी तरह पाला। जब वह जवान हुआ तब घीकी गाड़ी भरकर चंपामें बेचनेके लिए आया। शहरमें वेश्याके घर जानेकी इच्छा हुई। उसने वेशकाके यहाँ जाना स्थिर किया। रातको जब वह चला तब रास्तेमें उसके पैर पाखानेसे भर गये, तो भी वह वापिस न फिरा। आगे उसने एक गाय व बछड़ेको खडा देखा। ये उसके कुल देवता थे जो उसे अधर्मसे बचानेके लिए आये थे। जवानने पैरका पाखाना बछड़ेके पोंछा। बछडा बोलाः—"माता! यह अधर्मी मेरे शरीरपर विष्टा पोंछ रहा है।" गायने जवाब दियाः—"यह महान अधर्मी अपनी माँके साथ भोग करने जा रहा है।" युवकको अचरज हुआ। उसने वेश्याको जाकर उसका असली हाल पूछा। वेश्याने बताया। फिर उसने आकर कुन्बीको पूछा। कुन्बीने भी उसे सही सही बातें बताईं। इससे उसका मन उदास हो गया और वह तप करने निकल गया। फिरता फिरता वह उस दिन कूर्मग्राममें आया था। उसकी माताका नाम वेशिका था इसीसे वह वैशिकायनके नामसे प्रसिद्ध हुआ। भगवतीसूत्र, विशेषावश्यक और कल्प सूत्रमें इसका नाम वेश्यायन लिखा है।

मावस्था मी था। पूपकी तेमीक कारण जीव जीवमें पसक सिरसे नूर्ये सिर पड़ती थीं, उन्हें उठाकर वह वापिस अपने सिरमें रख लेता था। प्रभुकी गोशालकने आकर उसे कहा:—"हे तापस! तू मुनि है, या मुनीक (पागल) है या जूओंका पलंग है?" तापस कुछ न बोला। इससे दूसरी, तीसरी और चौथी बार गोशालकने यही बात तापसको कही। अंतमें तापसको क्रोध आया और उसन गोशालकपर तेजोलेश्या रक्खी। महावीरने दया करके उसको शीत लेश्यासे बचा लिया।

गोशालकने पूछा:—"भगवन! तेजो लेश्या कैसे प्राप्त होती है?" महावीर स्वामीने उत्तर दिया—"हे गोशालक! जो मनुष्य नियम करके छट्ठका तप करता है और एक मुट्ठी उड़दके बाकले और एक चुल्लू जलसे पारणा करता है। इस तरह जो छः महीने तक लगातार छट्ठका तप करता है, उसे तेजो लेश्याकी लब्धि प्राप्त होती है।"

कूर्मग्रामसे विहारकर प्रभु सिद्धार्थपुर आये। गोशालक वहाँसे तेजोलेश्या प्राप्त करनेके तप करनेके लिए श्रावस्ती नगरी चला गया।

महावीर स्वामी सिद्धार्थपुरसे विहार कर वैशाली आये। यहाँ सिद्धार्थ क्षत्रियके मित्र शंख गणराजने सपरिवार आकर प्रभुकी वंदना की।

वैशालीसे विहारकर महावीर स्वामी वाणीजक गाँवको चले। रस्तेमें गंडिकीका नामकी एक नदी आती है। उसे एक

नौकामें बैठकर पार किया। उतरते समय उसने आपसे किराया माँगा। प्रभुके पास किराया कहाँ था? इसलिए नाविकने उन्हें रोक रक्खा। शंख गणराजके भानजे चित्रने आपको छुड़ाया। आप वाणीजक गाँवमें पहुँचे।

वहाँ आनंद नामक एक श्रावक रहता था। वह नियमित छट्ट तप करता था और उत्कृष्ट श्रावकधर्म पालता था। इससे उसको अवधिज्ञान हो गया था। उसने आकर प्रभुकी वंदना-स्तुति की।

वाणिजक गाँवसे विहार कर प्रभु श्रावस्ती नगरीमें आये और वि० सं० ५०४ (ई. म. ५६१) पूर्वका चातुर्मास वहीं बिताया।

श्रावस्ती नगरीमें दसवाँ चौमासा

चातुर्मास पूरा होनेपर प्रभु सानुयष्टिक गाँव आये। वहाँ भद्रा, महाभद्रा और सर्वतोभद्रा नामक प्रतिमाएँ अंगीकार कीं। और

१—विशेषावश्यकमें इस गाँवका नाम सानुलष्ठ लिखा है।

२—इन प्रतिमाओंको अंगीकार करनेकी विधि यह है-(१) भद्रा—छट्टका तप करे, एक पुद्गलपर दृष्टि स्थिर करे। पहले दिन दिनभर पूर्वकी तरफ मुँह रक्खे, पहली रात रातभर दक्षिणकी तरफ मुँह रक्खे, दूसरे दिन दिनभर पश्चिमकी तरफ मुख रक्खे और दूसरी रात रातभर उत्तरकी तरफ मुख रक्खे। (२) महा भद्रा—इसमें दशम तप (चार उपवास) करे। एक पुद्गलपर नजर रक्खे। पहले दिन दिनरात पूर्वकी तरफ मुँह रक्खे, दूसरे दिन दिनरात दक्षिणकी तरफ मुँह रक्खे, तीसरे दिन दिनरात पश्चिमकी तरफ मुँह रक्खे और चौथे दिन दिनरात उत्तरकी तरफ मुँह रक्खे। (३) सर्वतो भद्रा—इसमें बावीशम (दस उपवास) का तप करे। इसमें दस

पारणा किये बिना तीनों प्रतिमाएँ कीं। फिर पारणा करने आनंद नामक गृहस्थके घर गये। वहाँ उसकी बहुला नामकी दासी बासी अन्न फेंकने जाती थी। प्रभुको देखकर उसने कहा:-"हे साधो! तुम्हें यह अन्न कल्पता है?" महावीरने हाथ आगे किये। दासीने वह अन्न हाथमें रख दिया। प्रभुने उसे खाया। देवताओंने पाँच दिव्य प्रकट किये। वहाँके राजाने बहुलाको दासीपनसे मुक्त किया।

संगम देवकृत २ उपसर्ग

सानुयष्टिक गाँवसे विहारकर महावीर म्लेच्छोंसे भरी हुई दृढ भूमिमें आये। वहाँ पेढाला नामक गाँवके पास पेढाला नामक उद्यानके पोलास नामक चैत्यमें एक शिलापर, अष्टम तप सहित एक रात्रिकी प्रतिमासे रहे। उस समय सौधर्मेन्द्रने महावीर स्वामीको नमस्कार कर उनके धैर्यकी प्रशंसा की। संगम नामका एक देव उसको न सह सका। उसने महावीर स्वामीको ध्यानसे च्युत करना स्थिर किया। उसने १८ प्रतिकूल और २ अनुकूल उपसर्ग किये। प्रतिकूल उपसर्ग ये हैं।

दिन रात तक भी दिन रात एक दिशाकी तरफ मुँह रखके। आठ दिशाओंमें एक पुद्गलपर दृष्टि रखके। ऊर्ध्व और अधो दिशाओंके दिन ऊर्ध्व और अधो पुद्गलपर दृष्टि रखके।

१—(क) इससे मालूम होता है कि ढाई हजार बरस पहले, उस जमानेके समयमें भी गुलामीकी अन्यायी प्रथा भारतमें थी। (ख) कल्पसूत्रमें इस बातका उल्लेख नहीं है।

१ धूलकी बारिश बरसाकर उनको उसमें डुबो दिया।

२ सूईके समान तीक्ष्ण मुखवाली कीड़ियाँ महावीरके शरीर पर लगा दीं। उन्होंने शरीरको छलनी बना दिया।

३ प्रचंड डॉस पैदा किये। उनके काटनेसे महावीर स्वामीके शरीरमेंसे गायके दूध जैसा रक्त निकलने लगा।

४ 'उण्होला'[1] पैदा कीं। वे प्रभुके शरीरपर ऐसी चिपक गईं कि सारा शरीर उण्होलामय हो गया।

५ बिच्छू पैदा किये। उन्होंने तीक्ष्ण डंख मारे।

६ नकुल (न्योले) पैदा किये। उन्होंने मांस काटा।

७ भयंकर सर्प पैदा किये। उन्होंने चारों तरफसे लिपटकर शरीरको कस लिया और फिर फन मारना आरंभ किया।

८ चूहे पैदा किये। वे प्रभुके शरीरको काटकर उसपर पेशाब करने लगे।

९ मदोन्मत्त हाथी पैदा किया। उसने सूँडमें पकड़ पकडकर महावीरको उछाला।

१० हथिनी पैदा की। उसने भी बहुत प्रहार किये।

११ फिर उसने एक भयंकर पिशाचका रूप धारण किया।

१२ फिर उसने बाघका रूप धरा।

१३ प्रभुके माता पिता पैदा कर, उनसे करुण विलाप कराया।

१४ फिर एक छावनी बनाई। उसमेंके लोगोंने महावीर स्वामीके पैरोंके बीचमें आग जलाई और दोनों पैरोंपर बर्तन रखकर रसोई बनाई।

१—एक प्रकारकी कीड़ी। गुजरातीमें इसको घीमेल कहते हैं।

१५ फिर एक चांडाल बनाया। उसने प्रभुके शरीरपर नोचकर खानेवाले पक्षी छोड़े। उन्होंने प्रभुके शरीरको नोचा।

१६ प्रचंड पवन चलाया। उससे प्रभु मंदिरमें हवाके भयंकर झपाटोंसे इधरसे उधर पड़ पड़ कर टकराने लगे।

१७ वंटोलिया पवन चलाया। इससे चाकपर जैसे मिट्टीका पिंड फिरता है वैसे महावीर घूमे।

१८ हजार भारका एक कालचक्र बनाया और उसे महावीरके सरपर डाला इससे महावीर। घुटनोंतक जमीनमें धँस गये।

जब इन प्रतिकूल उपसर्गोंसे महावीर स्वामी विचलित नहीं हुए तो उसने दो अनुकूल उपसर्ग किये।

१९ उसने सुंदर प्रातःकाल किया। देवताकी ऋद्धि बताई और विमानमें बैठकर कहा—"हे महर्षि! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। जो माँगो सो दूँ। स्वर्ग, मोक्ष या चक्रवर्तीका राज्य। जो चाहिए सो माँग लो।"

२० एक ही समयमें छहों ऋतुएँ प्रकट कीं; फिर जगमन-मोहक देवांगनाएँ बताईं, जिन्होंने हाव, भाव कटाक्षसे उनको विचलित करनेका यत्न किया। ×

१ चमड़ेकी तरह छिपानेवाला वस्तु, मुदित वस्त्र

× त्रिषष्टिशलाकामें यह परिषह नहीं है। इसकी जगह उधेइयों और उधीलकोंकी जगह डंसक मच्छर चलाना लिखा है। कल्पसूत्रमें उपसर्गों और मीठे वचनोंमें है और उपसर्गोंमें लिखा है—"प्रभात करके संगमने महावीरसे कहा कि सवेरा हो जानेपर भी इस तरह ध्यानमें कहाँतक रहोगे!"

इस तरह रातभर उपसर्ग सहन करनेके बाद प्रभु वालुक गाँवकी तरफ चले। रस्तेमें संगमने पाँच सौ चोर पैदा किये और बहुतसा रेता बरसाया। चलते समय प्रभुके पैर पिंडलियों तक रेतामें घुसते जाते थे और चोर प्रभुको 'मामा' 'मामा' करके इतने जोरसे सीनेसे चिमटाते थे कि अगर सामान्य शरीर होता तो चूर चूर हो जाता।

इसी तरह उसने छः महीने तक अनेक तरहके उपसर्ग किये।

विशेष आवश्यकके अदर संगमने छः महीने तक क्या क्या उपसर्ग किये और महावीर स्वामीने कहाँ कहाँ विहार किया उसका उल्लेख है। हम उसका अनुवाद यहाँ देते हैं।

" भगवान वालुका गाँवमें पहुँचे और गोचरी गये। वहाँ उसने प्रभुको काणाक्षी रूप–काना–बना दिया, वहाँसे सुभोम गाँव गये, वहाँ हाथ पसारके माँगनेवाले बनाये, वहाँसे सुक्षेत्र गाँव गये। वहाँ विटका (नटका) रूप बना दिया। मलय गाँव गये। वहाँ पिशाचका रूप बताया। हस्तिशीर्ष गाँव गये वहाँ उनका शिवरूप (?) बनाया फिर प्रभु मसाणमें जाकर रहे। वहाँ संगमने हंसीकी और इन्द्रने आकर सुखसाता पूछी। प्रभु तोसलिया गाँव गये। वहाँ कुशिष्यका रूप धरकर संगमने एक सेंध लगाई। लोगोंने इन्हें पकड़कर पीटना आरंभ किया। घरमें महाभूति नामके इन्द्रजालिएने प्रभुको पहचानकर छुड़ाया। मोसली गाँव गये। वहाँ भी संगमने शिष्य बन सेंध लगाई। सिद्धार्थके मित्र सुमागधने उन्हें छुड़ाया। पुनः तोसली गाँवमें गये। वहाँ चोर समझकर पकड़े गये। लोग रस्सीसे बांधकर

झाड़पर लटकाने लगे। सात बार रस्सी टूट गई। इससे निर्दोष समझकर छोड़ दिया। वहाँसे सिद्धार्थपुर गये। वहाँ भी चोर समझकर पकड़े गये। वहाँ कौशिक नामक घोड़ेके व्यापारीने मुक्त कराया।"

इस तरह छः महीने तक अनेक उपसर्ग करके भी जब संगम प्रभुके मनको क्षुब्ध न कर सका तब उसने लाचार हो कर प्रभुसे कहा:-"हे क्षमानिधि! आप मेरे अपराध क्षमा कीजिए और जहाँ इच्छा हो वहाँ निःशंक होकर विहार करिए। गाँवमें जाकर निर्दोष आहारपानी लीजिए।" महावीर स्वामी बोले:-"हम निःशंक होकर ही इच्छानुसार विहार करते हैं। किसीके कहनेसे नहीं।"

फिर संगम देवलोकमें चला गया। प्रभु गोकुल गाँवमें गये। वत्सपालिका नामकी गवालिनने प्रभुको परमान्नसे प्रतिलाभित किया।

वहाँसे विहारकर प्रभु आलभिका नगर गये। वहाँ हरि नामका विद्युत्कुमारोंका इन्द्र प्रभुको नमस्कार करने आया और नमस्कार कर बोला:-"हे नाथ! आपने जो उपसर्ग सहे हैं उन्हें सुनकर ही हम काँप उठते हैं। सहन करना तो बहुत दूरकी बात है। अब आपको, थोड़े उपसर्ग और सहन करनेके बाद केवलज्ञान प्राप्त होगा।"

आलभिकासे विहारकर महावीर श्वेताम्बी नगरीमें आये। वहाँ हरिसह नामक विद्युत्कुमारेन्द्र वंदना करने आया।

श्वेतांबीसे विहार कर प्रभु श्रावस्ती नगरीमें आये। वहाँ प्रतिमा धारणकर रहे। उस दिन लोग स्वामी कार्तिकेयकी मूर्तिकी बड़ी धूमधामके साथ पूजा-अर्चा और रथयात्रा करनेवाले थे। यह बात शक्रेन्द्रको अच्छी न लगी। इसलिए उसने मूर्तिमें प्रवेश किया और चलकर प्रभुको वंदना की। भक्त लोगोंने भी महावीर स्वामीको, स्वामी कार्तिकेयका आराध्य समझकर उनकी महिमा की।

श्रावस्तीसे विहारकर प्रभु कौशांबी नगरीमें आये। वहाँ सूर्य और चंद्रमाने अपने विमानो सहित आकर प्रभुको वंदना की।

कौशांबीसे विहारकर अनेक स्थलोंमें विचरण करते हुए प्रभु वाराणसी (बनारस) पहुँचे। वहाँ शक्रेन्द्रने आकर प्रभुको वंदना की।

वहाँसे राजगृही पधारे। वहाँ ईशानेन्द्रने आकर वंदना की।

राजगृहीसे विहारकर प्रभु मिथिलापुरी पहुँचे। वहाँ राजा जनकने और धरणेंद्रने आकर प्रभुको वंदना की।

मिथिलापुरीसे विहारकर महावीर स्वामी वैशाली आये और

वैशालीमें ग्यारहवाँ चौमासा

वि० सं० ५०३ (ई. स. ५६०) पूर्वका ग्यारहवाँ चौमासा वहीं विताया। वहाँ उन्होंने समर नामके उद्यानमें, बलदेवके मंदिरके अंदर चार मास क्षमणकर प्रतिमा धारण की। भूतानंद नामक नागकुमारेन्द्रने आकर प्रभुको वंदना की।

वैशालीमें जिनदत्त नामका एक सेठ था। उसकी सम्पत्ति चली जानेसे वह 'जीर्णसेठ' के नामसे प्रसिद्ध हो गया था। वह हमेशा महावीर स्वामीके दर्शन करने आता था। उसके मनमें यह अभिलाषा थी कि प्रभुको मैं अपने घरपर पारणा कराऊँगा और धन्यजीवन होऊँगा।

चौमासा समाप्त हुआ। प्रभुने ध्यान तजा। जीर्णसेठने प्रभुको भक्ति सहित वंदनाकर विनती की—" प्रभो! आज मेरे घर पारणा करने पधारिए।" फिर उसने घर जाकर निर्दोष आहारपानी तैयार करा प्रभुके आनेकी, दर्वाजेपर खड़े होकर प्रतीक्षा आरंभ की।

साधु तो किसीका निमंत्रण ग्रहण नहीं करते। कारण, निमंत्रण ग्रहण करना मानो उद्दिष्ट—अपने लिए बनाया हुआ—आहार ग्रहण करना है। साधु कभी अपने लिए बनाया हुआ आहारपानी नहीं लेते। साधु—आचारके कठोर नियमपर चलनेवाले महावीर स्वामी भला कब जीर्ण सेठके घर जानेवाले थे!

समयपर प्रभु आहारके लिए निकले और फिरते हुए नवीन सेठके घर पहुँचे। सेठ धनांध था। वह किसीकी परवाह नहीं करता था। मगर उस समय किसी साधुको घरसे लौटा देना बहुत बुरा समझा जाता था इसलिए उसने अपनी दासीसे कहाः—" इसको भीख देकर तत्काल ही यहाँसे विदा कर।" वह काठके बर्तनमें कुल्हड़के उबाले हुए बाकले ले आई। एषणीय—निर्दोष आहार समझकर प्रभुने उसे

ग्रहण किया। देवताओंने उसके घर पंच दिव्य प्रकट किये। लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। वह मिथ्याभिमानी कहने लगा कि, मैंने खुद प्रभुको परमान्नसे पारणा कराया है।

जीर्णसेठ प्रभुको आहार करानेकी भावनासे बहुत देरतक खड़ा रहा। उसके अन्तःकरणमें शुभ भावनाएँ उठ रही थीं। उसी समय उसने आकाशमें होता हुआ दुंदुभि नाद सुना। 'अहोदान! अहोदान!' की ध्वनिसे उसकी भावना भग हुई। उसे मालूम हुआ कि, प्रभुने नवीन सेठके यहाँ पारणा कर लिया है। उसका जी बैठ गया और वह अपने दुर्भाग्यका विचार करने लगा। *

वैशालीसे विहार कर प्रभु अनेक स्थानोंमें भ्रमण करते हुए सुसुमारपुरमें आये और अष्टम तप सहित एक रात्रिकी

* महावीर स्वामीके विहार कर जानेके बाद पार्श्वनाथ भगवानके एक केवली शिष्य आये। उनसे राजाने और नगरजनोंने आकर वदना की और पूछा.—"हे भगवन! इस शहरमें सबसे अधिक पुण्य उपार्जन करनेवाला कौन है?" केवलीने उत्तर दिया:—"जीर्ण सेठ सबसे अधिक पुण्य पैदा करनेवाला है।" राजाने पूछा—"प्रभुको पारणा तो नवीन सेठने कराया है और अधिक पुण्य जीर्णसेठने कैसे पैदा किया?" केवलीने जवाब दिया — "भावसे तो जीर्ण सेठने ही पारणा कराया है और इसीसे उसने अच्युत देवलोकका आयु बाँधा है। नवीन सेठने भावहीन, दासीके द्वारा आहार दिया है, परतु तीर्थंकरको आहार दिया है इसलिए इस भवके लिए सुखदायक वसुधारादि पच दिव्य इसके यहाँ प्रकट हुए हैं।" यह है शुभ भावोंसे और शुभ भावरहित अरहतको पारणा करानेका फल।

प्रतिमा धार अशोक खंड नामक उद्यानमें अशोक वृक्षके नीचे स्थित हुए। यहाँ चमरेन्द्रने प्रभुकी शरणमें आकर अपना जीवन बचाया।

दूसरे दिन प्रतिमा त्यागकर क्रमशः विहार करते हुए प्रभु भोगपुर नामके नगरमें आये। उसी गाँवमें माहेन्द्र नामका कोई क्षत्रिय रहता था। उसे प्रभुको देखकर ईर्ष्या हुई। वह उन्हें लकड़ी लेकर मारने चला। उसी समय वहाँ सनत्कुमारेन्द्र आया था। उसने माहेन्द्रको धमकाया। फिर वह प्रभुको वंदन कर चला गया।

भोगपुरसे विहारकर प्रभु नंदी गाँव, और मेंढक गाँव होकर कौशाम्बी नगरीमें आये। उस दिन पोस वदि एकमका दिन था। प्रभुने भीषण नियम लिया—कठोर अभिग्रह किया,—कोई सती राजकुमारी हो, किसीका दासीपन उसे मिला हो, उसके पैरोंमें बेड़ी हो, सिर मुँडा हुआ हो, सूपमें उड़दके बाकले लेकर, ऐसी

१—बिभेल नामक गाँवमें एक धनिक रहता था। उसने सर्वस्व त्याग कर तापस व्रत लिया। उसके प्रभावसे मरकर वह चमरचंचा नगरीमें एक सागरोपमकी आयुवाला इन्द्र हुआ। उसने अवधि ज्ञानसे अपनेसे अधिक वैभवशाली और रूपवाली सौधर्मेन्द्रको देखा। इससे चमरेन्द्रको ईर्ष्या हुई। वह सौधर्मेन्द्रसे लड़ने सौधर्म देवलोकमें गया। सौधर्मेन्द्रने उसपर वज्र चलाया। वज्रको आते देख चमरेन्द्र भागा। वज्रने उसका पीछा किया। सौधर्मेन्द्र भी उसके पीछे चला। चमरेन्द्र लघु रूप धारकर प्रभुके पैरोंके बीचमें छिप गया। इन्द्रने अपने वज्रको पकड़ लिया और चमरेन्द्रको प्रभु-शरणागत समझकर क्षमा कर दिया।

हुई एक पैर दहेलीजके अंदर और एक बाहर रखे हुए मुझे आहार देनेको तैयार हो उसीसे मैं आहार लूँगा। आहारके लिए फिरते हुए करीब छः महीने गुजर गये तब प्रभुके अन्तराय कर्मके बंधन टूटे और धनावाह सेठके घर प्रभुका अभिग्रह पूरा हुआ।[२] उन्होंने बिना आहार छः महीनेमें पाँच दिन रहे तब ज्येष्ठ सुदि ११ के दिन,[१] उड़दके बाकलोंसे पारणा किया। देवताओंने वसुधारादि पंच दिव्य प्रकट किये।

१—यह मिति पोस वदि १ से छ महीनेमें पाँच दिन कम यानी पाँच महीने और दस दिनकी गिन्ती कर लिखी गई है।

२—चंपा नगरीमें दधिवाहन राजा था। उसकी राणी धारिणीकी कोखसे एक रूपवान और गुणवती कन्या जन्मी। उसका नाम वसुमति रक्खा गया। कोशांबीका राजा शतानीक था। उसकी रानी मृगावती पूर्ण धर्मात्मा थी। एक बार किसी कारणसे शतानीकने चंपा नगरीपर चढाई की। दधिवाहन हार गया। शहर लूटा गया। राणी धारिणी और उसकी कन्या वसुमतीको एक सैनिक पकड ले गया। रास्तेमें सैनिककी कुदृष्टि धारिणीपर पडी। धारिणीने प्राण देकर अपनी आबरू बचाई। वसुमती कोशांबीमें बेची गई। धनावाह सेठ उसको खरीदकर अपने घर ले गया। उसे पुत्रीकी तरह पालनेकी अपनी सेठानीको हिदायत की। वसुमतीकी वाणी चंदनके समान शीतलता उत्पन्न करनेवाली थी। इससे सेठने उसका नाम चंदनबाला रक्खा। इसी नामसे वह संसारमें प्रसिद्ध हुई। जब चंदनबाला बडी हुई, यौवनका विकास हुआ, सौन्दर्यसे उसकी देह कुंदनसी चमकने लगी तब मूलाको ईर्ष्या हुई। सेठका चंदनबालापर विशेष हेत देखकर उसे वहम भी हुआ। उसने एक दिन, जब धनावाह कहीं चला गया था, चंदनबालाको पकड़कर उसका सिर मुँडवा दिया और उसके पैरोंमें बेडी डालकर उसे गुप्त स्थानमें कैद कर दिया। धनावाहने वापिस आया तब

कोशांबीसे विहार कर प्रभु सुमंगल नामके गाँवमें आये। वहाँ सनत्कुमारेन्द्रने आकर प्रभुको वंदना की।

सुमंगल गाँवसे प्रभु सत्क्षेत्र गाँव आये। वहाँ माहेन्द्र कल्पके इन्द्रने आकर प्रभुको वंदना की।

सत्क्षेत्रसे प्रभु पालक गाँव गये। वहाँ भायल नामका कोई बनिया यात्रा करने जाता था। उसने प्रभुको आते देखा और अपशकुन समझ क्रुद्ध हो तलवार निकाली। सिद्धार्थ देवने उसकी तलवारसे उसीको मार डाला।

चंपानगरीमें बारहवाँ चौमासा।

पालक गाँवसे विहारकर प्रभु चंपानगरीमें आये और वि. सं. ५१२ (ई. सन ५५९) पूर्वका बारहवाँ चौमासा वहीं किया। वहाँ स्वातिदत्त नामक किसी ब्राह्मणकी यज्ञशालामें चार मास क्षपण कर रहे। वहाँ पूर्णभद्र और माणिभद्र नामके दो महर्द्धिक यक्ष आकर प्रभुकी पूजा किया करते थे। स्वातिदत्तने सोचा जिनकी देवता

चंदनबालाकी तलाश की। मूला सेठानी डरकर कहीं चली गई थी। लोगोंने ढूँढ़के चंदनबालाका पता बताया। सेठने उसे बाहर निकाला। खानेको उस समय उबले हुए उड़दके बाकले रक्खे थे, वे एक सूपमें डालकर उसे दिये और लुहारको बुलाने गया। चंदनबाला सूपकी-बाजु खड़ी हो किसी अतिथिकी प्रतीक्षा करने लगी। उसी समय महावीर स्वामी आ गये और उनका अभिग्रह पूरा हुआ। उन्होंने बाकलोंका पारणा किया। [नोट—इसकी विस्तृत और सुंदर कथा जैनमंदिर लाईब्रेरी द्वारा प्रकाशित "सतीरत्न" नामक पुस्तकमें पढ़िए।]

आकर पूजा करते हैं, वे कुछ ज्ञान जरूर रखते होंगे। इसलिए उसने आकर प्रभुसे जीवके संबंधमें प्रश्न किये और संतोषप्रद उत्तर पाकर स्वातिदत्त प्रभुका भक्त बन गया।

कानोंमें कीलें ठोकनेका उपसर्ग।

चंपानगरीसे विहारकर प्रभु जृंभक, मेढक गाँव होते हुए पण्मानि गाँव आये। वहाँ गाँवके बाहर कायोत्सर्ग करके रहे। उस समय, वासुदेवके भवमें शय्यापालक के कानमें तपाया हुआ शीशा डालकर जो असाता वेदनीय कर्म उपार्जन किया था वह उदयमें आया। शय्यापालकका वह जीव इसी गाँवमे गवाल हुआ था। वह उस दिन प्रभुके पास बैलोंको छोड़कर गायें दोहने गया। महावीर तो ध्यानमें लीन थे। वे कहाँ बैलोंकी रखवाली करते? बैल जंगलमें निकल गये। गवालने वापिस आकर पूछाः—"मेरे बैल कहाँ हैं?" कोई जवाब नहीं। "अरे क्या बहरा है?" कोई जवाब नहीं। "अरे अधम! कान हैं या फूट गये हैं?" कोई जवाब नहीं। "ठहर मैं तुझे बराबर बहरा बना देता हूँ।" कहकर वह गया और 'शरकट'[१] की सूखी लकड़ी काटकर लाया। उसको छीलकर बारीक कीलें बनाई और फिर उन्हें महावीर स्वामीके दोनों कानोंमें ठोक दीं। परंतु क्षमाके धारक महावीरने उसपर जरासा भी क्रोध न किया। वे इस तरह आत्मध्यानमें लीन रहे मानों कुछ हुआ ही नहीं है। कानोंसे बाहर निकला हुआ जो भाग था

१ इससे तीर बनते है।

कौशांबीसे विहार कर प्रभु सुमंगल नामके गाँवमें आये। वहाँ सनत्कुमारेन्द्रने आकर प्रभुको वंदना की।

सुमंगल गाँवसे प्रभु सत्क्षेत्र गाँव आये। वहाँ माहेन्द्र कल्पके इन्द्रने आकर प्रभुको वंदना की।

सत्क्षेत्रसे प्रभु पालक गाँव गये। वहाँ भायल नामका कोई बनिया यात्रा करने जाता था। उसने प्रभुको आते देखा और अपशकुन समझ क्रुद्ध हो तलवार निकाली। सिद्धार्थ देवने उसकी तलवारसे उसीको मार डाला।

चंपानगरीमें बारहवाँ चौमासा।

पालक गाँवसे विहारकर प्रभु चंपानगरीमें आये और वि सं ५ २ (ई. सन ५५९) पूर्वका बारहवाँ चौमासा वहीं किया। वहाँ स्वातिदत्त नामक किसी ब्राह्मणकी यज्ञशालामें चार मास क्षमण कर रहे। वहाँ पूर्णभद्र और माणिभद्र नामके दो महर्द्धिक यक्ष आकर प्रभुकी पूजा किया करते थे। स्वातिदत्तने सोचा किनकी देवता

चंदनबालाकी तलाश की। मूला मकान बंदकर कहीं चली गई थी। नौकरोंमें बूढ़े कामसेवकने चंदनबालाका पता बताया। सेठने उसे बाहर निकाला। सकोरेमें उस समय उसने जो उड़दके बाकले रक्खे थे, वे एक सूपमें डालकर उसे दिये और लुहारको बुलाने गया। चंदनबाला द्वारी-बैठ कहीं हो किसी अतिथिकी प्रतीक्षा करने लगी। उसी समय महावीर स्वामी आ गये और उनका अभिग्रह पूरा हुआ। उनके आनेसे पारणा किया। [नोट-इसकी विस्तृत और सुंदर कथा श्रीमंधर मार्दैया द्वारा प्रकाशित " श्रीरत्न " नामक पुस्तकमें पढ़िए।]

वहाँसे विहार कर प्रभु जृंभक नामक गाँवके पास आये।

केवलज्ञानकी प्राप्ति

और वहाँ ऋजुपालिका नदीके उत्तर तटपर शामाक नामक किसी गृहस्थके खेतमें, एक जीर्ण चैत्यके पास शाल-तरुके नीचे छट्ठ तप करके रहे और उत्काटिकासनसे आतापना करने लगे। वहाँ विजय मुहूर्त्तमें, शुक्ल ध्यानमें लीन महावीर स्वामी क्षपक श्रेणीमें आरूढ हुए और उनके चार घाति कर्मोंका नाश हो गया। वि० सं० ५०१ (ई. सन ५०८) पूर्व वैशाख सुदि १० के दिन चंद्र जब हस्तोत्तरा नक्षत्रमे आया था दिनके चौथे पहरमें महावीर स्वामीको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इन्द्रादि देवोंने आकर केवल-ज्ञान-कल्याणक मनाया। यहाँ समवशरणमे बैठकर प्रभुने देशना दी; परंतु वहाँ कोई विरति परिणामवाला न हुआ। यानी किसीने भी व्रत अंगीकार नहीं किया। देशना निष्फल गई। तीर्थकरोंकी देशना कभी निष्फल नहीं जाती परंतु महावीर स्वामीकी यह पहली देशना निष्फल गई। शास्त्रकारोंने इसे एक आश्चर्य माना है।

---

१ बगालमें पारसनाथ हिलके पास इस नामकी एक नदी है।

२ मनुष्य जैसे गाय दुहने बैठता है वैसे बैठकर ध्यान करनेको उत्कटिकासन कहते हैं।

१ शास्त्रोंमें ऐसे दस आश्चर्य माने गये है। वे इस प्रकार हैं।

(१) तीर्थंकर केवलीका पीडा—एक बार विहार करते हुए वीर प्रभु श्रावस्ती नगरीमें समोसरे। उसी समय गोशालक भी वहाँ आया। वह कहता था—"मैं जिन हूँ।" महावीर स्वामीको गौतम गणधरने पूछा —

उसे भी उसने काट डाला, जिससे कीलें आसानीसे न निकल सकें। ग्वाला चला गया।

पण्मानिसे विहार कर महावीर मध्यम अपापा नगरीमें आये। और सिद्धार्थ नामक वणिकके घर गोचरीके लिए गये। वहाँ उसने महावीरको आहारपानीसे, भक्तिसहित प्रतिलाभित किया। उस समय सिद्धार्थका खरक नामक एक वैद्य मित्र मौजूद था। उसने प्रभुके उतरे चहरेको देखकर रोगका अनुमान किया और जाँच करनेपर कानोंमें कीलें मालूम हुईं। उसने सिद्धार्थको यह बात कही। उसने महावीरका इलाज करनेकी ताकीद की।

प्रभु तो आहारपानी कर चले गये और उद्यानमें जाकर ध्यानरत हुए। खरक वैद्य और सिद्धार्थ सेठ दो संडासियाँ और दूसरी जरूरी दवाएँ लेकर प्रभुके पास गये। उन्होंने दोनों तरफ कानोंमें दवा लगाई और तब दोनोंने दोनों तरफ से संडासियोंसे पकड़कर कीलें खींच लीं। प्रभुके मुखसे सहसा एक चीख निकल गई। वैद्यने कानोंके घावोंमें संरोहिणी नामक औषध लगा दी। फिर वे प्रभुसे क्षमा माँगकर चले गये। अपने शुभाशयोंसे और शुभ कार्योंसे उन्होंने देवायुष्य बंध किया।

महावीर स्वामीपर यह आखिरी परिसह था। परिसहोंका आरंभ भी ग्वालेसे हुआ और अंत भी ग्वालेहीसे हुआ।

प्रभुके कानोंमेंसे जिस जंगलमें कीलें निकाली गई थीं उसका नाम महाभैरव हुआ। कारण कीलें निकालते समय प्रभुके मुखसे भैरवनाद (भयानक आवाज) हुआ था। लोगोंने उस जगह एक मंदिर भी बनवाया था।

वहाँसे विहार कर प्रभु जृंभक नामक गाँवके पास आये। और वहाँ ऋजुपालिका नदीके उत्तर तटपर शामाक नामक किसी गृहस्थके खेतमें, एक जीर्ण चैत्यके पास शाल-

केवलज्ञानकी प्राप्ति

तरुके नीचे छट्ठ तप करके रहे और उत्काटिकासनसे आतापना करने लगे। वहाँ विजय मुहूर्त्तमें, शुक्ल ध्यानमें लीन महावीर स्वामी क्षपक श्रेणीमें आरूढ हुए और उनके चार घाति कर्मोंका नाश हो गया। वि० सं० ५०१ (ई. सन ५०८) पूर्व वैशाख सुदि १० के दिन चंद्र जब हस्तोत्तरा नक्षत्रमें आया था दिनके चौथे पहरमें महावीर स्वामीको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इन्द्रादि देवोंने आकर केवल–ज्ञान–कल्याणक मनाया। यहाँ समवशरणमें बैठकर प्रभुने देशना दी; परंतु वहाँ कोई विरति परिणामवाला न हुआ। यानी किसीने भी व्रत अंगीकार नहीं किया। देशना निष्फल गई। तीर्थंकरोंकी देशना कभी निष्फल नहीं जाती परंतु महावीर स्वामीकी यह पहली देशना निष्फल गई। शास्त्रकारोंने इसे एक आश्चर्य माना है।

---

१ बंगालमें पारसनाथ हिलके पास इस नामकी एक नदी है।

२ मनुष्य जैसे गाय दुहने बैठता है वैसे बैठकर ध्यान करनेको उत्कटिकासन कहते हैं।

१ शास्त्रोंमें ऐसे दस आश्चर्य माने गये हैं। वे इस प्रकार हैं।

(१) तीर्थंकर केवलीका पीडा—एक बार विहार करते हुए वीर प्रभु श्रावस्ती नगरीमें समोसरे। उसी समय गोशालक भी वहाँ आया। वह कहता था—"मैं जिन हूँ।" महावीर स्वामीको गौतम गणधरने पूछा –

"क्या यह जिन है?" महावीरने कहा—"नहीं। यह मंखका पुत्र है। मेरेपास रह करके मेरे शिष्यकी तरह रहकर बहुश्रुत हुआ है।" गोशालकको यह बात मालूम हुई। इससे नाराज होकर उसने महावीर पर तेजोलेश्या रक्खी। इससे महावीरको छः महीने तक कष्ट उठाना पड़ा। तीर्थंकरोंको केवली होनेके बाद कभी कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ता; परंतु महावीरको उठाना पड़ा यह एक आश्चर्य हुआ।

(२) गर्भ हरण—पहले किसी जिनेश्वरका गर्भ संक्रमण नहीं हुआ, परंतु महावीरका हुआ। यह दूसरा आश्चर्य है।

(३) स्त्री तीर्थंकर—तीर्थंकर हमेशा पुरुष ही होते हैं परंतु मल्लिनाथजी स्त्री तीर्थंकर हुए। यह तीसरा आश्चर्य है।

(४) निष्फल देशना—तीर्थंकरोंका उपदेश कभी निष्फल नहीं जाता। मगर महावीर स्वामीका गया। यह चौथा आश्चर्य है।

(५) दो वासुदेवोंका मिलना—एक बार नारद पांडवोंकी महारानी द्रौपदीके पास मिलने चले गये। नारदका द्रौपदीने सम्मान नहीं किया। इससे नाराज होकर धातकी खंडके अमर कंकाके राजा पद्मोत्तरको द्रौपदीके रूपका वर्णन सुनाया। पद्मोत्तर देवकी सहायतासे सोती हुई द्रौपदीको उठा ले गया। कृष्णको यह बात मालूम हुई। वे पांडवों सहित गये और पद्मोत्तरको हराकर द्रौपदीको ले आये। आते समय उन्होंने शंखनाद किया। वहाँ कपिल वासुदेव था। उसने भी समुद्र किनारे आकर शंखनाद किया। इस तरह दो वासुदेव एक स्थानपर एकत्र हुए। यह पाँचवाँ आश्चर्य है।

(६) सूर्य और चंद्रका आना—कौशाम्बी नगरीमें सूरज और चाँद अपने मूल विमानों सहित महावीरके दर्शन करने आये थे। यह छठा आश्चर्य है।

(७) युगलियोंका इस क्षेत्रमें आना—कौशाम्बीका राजा वीरक नामके जुलाहेकी वनमाला नामकी सुंदर स्त्रीको उठा ले गया। जुलाहा दुःख

महावीर स्वामीपर तीन कारणोसे उपसर्ग किये गये। (१) उनकी महत्ताका नाश करनेके लिए। उपसर्गोंके कारण और कर्ता इनमें शूलपाणी और संगम इन दोनों देवोंके और चंडकौशिकके उपसर्ग हैं। (२) पूर्वभवका वैर लेनेके लिए। इनमें सुदंष्ट्रका,

और क्रोधसे पागलसा वनमाला वनमाला, पुकारता हुआ इधर उधर फिरने लगा। एक दिन वह राजमहलोंमें इसी तरह पुकारता हुआ गया। दैव-योगसे उसी समय राजा और वनमाला विजली पडनेसे मर गये। उनका मरना जान, वीरकका चित्त स्थिर हुआ। वह वैराग्यमय जीवन बिताने लगा।

राजा और वनमाला मरकर हरिवर्ष क्षेत्रमें युगलिया जन्मे। वीरक भी मरकर वहीं व्यंतरदेव हुआ। उसने विभगाज्ञानसे इस युगल जोड़ीको पहचाना और उनको, नरक गतिमें डालनेके इरादेसे, इस क्षेत्रमें ले आया और उनके शरीर व आयु कम कर दिये। उनके नाम हरि और हरिणी रक्खे। उन्हें सप्त व्यसनोंमें लीन किया। और तब वह अपने स्थानपर चला गया। हरि और हरिणी व्यसनोंमें तल्लीन मरे और नरकमें गये। इस तरह वीरकने उनसे वैर लिया। उनके वंशमें जो जन्मे वे हरिवंशके कहलाये।

युगलिये न कभी इस क्षेत्रमें आते हैं और न उनकी आयु या देह ही कम होते हैं, परतु ये दोनों बातें हुई। यह सातवाँ आश्चर्य है।

(८) चमरेंद्रका सुधर्म देवलोकमें जाना—पातालमें रहनेवाले असुर कुमारोंका इन्द्र कभी ऊपर नहीं जा सकता परतु चमरेंद्र गया। यह आठवाँ आश्चर्य है।

(९) उत्कृष्ट अवगाहनावालोंका एक समय मोक्षमें जाना—उत्कृष्ट अवगाहनावाले १०८ एक समयमें मोक्ष नहीं जाते, परतु इस-

बाणअभ्यंतरीका और कानोंमें कीलें ठोकनेवाले ग्वालके उपसर्ग हैं। (२) बाह्य कारण। लोगोंने, यह समझकर कि इन्होंने हमारी अमुक वस्तु दबा ली है, ये किसीके गुप्तचर हैं, अथवा इनका शकुन अशुभ हुआ है, इनको पानीमें डाला, पकड़ा या पीटनेको तैयार हुए या पीटा। इनमें ग्वालका ठारका और म्लेच्छोंके उपसर्ग हैं।

उपसर्ग करनेवालोंमें देव मनुष्य और तिर्यंच सभी हैं। इन उपसर्गोंमें अनेक उपसर्ग ऐसे हैं जिन्हें यदि महावीर चाहते तो टाल सकते थे। जैसे म्लेच्छोंके उपसर्ग और चंडकौशिकके उपसर्ग। उपसर्ग, यदि शांतिसे सहन किये जायँ तो कर्मोंको नाश करनेका रामबाण इलाज हैं। इस बातको महावीर जानते थे, और इसीलिए उन्होंने उनका आवाहन किया, शांतिसे उन्हें सहा अपने कर्मोंको क्षय किया, वे जगद्वंद्य बने और अनंत शांति एवं सुखके अधिकारी बने।

अवसर्पिणीमें ऋषभदेव भरत सिवाय उनके ९९ पुत्र और भरतके आठ पुत्र ऐसे १०८ उत्कृष्ट अवगाहनावाले एक समयमें मोक्ष गये। यह नवाँ आश्चर्य है।

(१०) असंयमियोंकी पूजा—आरंभ और परिग्रहके धारक ब्राह्मणोंकी कभी पूजा नहीं होती, परंतु नवें और दसवें जिनेश्वरके बीचके कालमें हुई। यह दसवाँ आश्चर्य है।

इनमेंसे ९ वाँ ऋषभदेवके समयमें, ७ वाँ चंद्रप्रभस्वामीके समयमें, ५ वाँ शीतलनाथस्वामीके तीर्थमें १० वाँ मल्लिनाथस्वामीके तीर्थमें १ वाँ मुनिसुव्रतस्वामीके तीर्थमें और शेष महावीरके समयमें ये दस आश्चर्य हुए। (कल्प सूत्र)

महावीर स्वामीने हमेशा शुभ मनोयोग, शुभ वचनयोग और शुभ काययोगसे प्रवृत्ति की। अशुभ मन, वचन और कायके योगोंको हमेशा रोका। कभी ऐसा विचार न किया जो दूसरेको हानि पहुँचानेका कारण हो, कभी ऐसा शब्द न बोले जिससे किसीका अन्तःकरण दुखी हो और कभी शरीरके किसी भी अंगको इस तरह काममें न लाये जिससे कि छोटेसे छोटे प्राणीको भी कोई तकलीफ पहुँचे। न कभी भयंकरसे भयंकर आघात और प्राणांत सङ्कटके सामने ही उन्होंने सिर झुकाया और न कभी स्वर्गीय प्रलोभनमें ही वे मुग्ध हुए। वे सदा कर्मोंको खपानेमें लीन रहे। बारह बरस तक उन्होंने बिना शस्त्र, बिना कषाय और बिना किसी इच्छाके भयंकर युद्ध किया। सारी दुनियाको अपनी अंगुलियोंपर नचानेवाले कर्मोंसे युद्ध किया, उन्हें हराया और विजेता बन महावीर कहलाये। केवलश्रीने—जो घातिकर्मोंकी आडमें खडी थी—आगे बढ़कर उन्हें वरमाला पहनाई। वे आत्मलक्ष्मीको प्राप्तकर जगत्का उपकार करनेके लिए समवसरणके सिंहासन पर जा विराजे।

उपमाएँ। महावीर स्वामीके गुणोंका उपमाएँ देकर, बहुत ही सुंदर वर्णन कल्पसूत्रमें किया गया है। उस का अनुवाद हम यहाँ देते हैं।

१—जैसे काँसेका पात्र जलसे नहीं लींपा जाता उसी तरह वे भी स्नेह—जलसे न लींपे गये। निर्लेप रहे।

२—जैसे पंकज रंगसे नहीं रँगा जाता वैसे ही प्रभु भी किसी दुनियवी रंगसे न रँगे गये। वे निरंजन रहे।

३—वे सभी स्थानोंमें प्रचलित रूपसे अस्खलित विहार करते थे और संयममें अस्खलित वर्तते थे इसलिए वे जीवकी तरह अस्खलित गतिवाले थे।

४—वे ग्राम, गाँव, कुल आदि किसीके भी आधारकी इच्छा नहीं रखते थे इसलिए वे आकाशकी तरह आधाररहित निरालंबी थे।

५—किसी भी एक जगहपर नहीं रहनेसे व वायुकी तरह बंधन-हीन थे।

६—अकलुषता मनमें किसी तरहकी मलिनता-न रखनेवाले होनेसे व शरद् ऋतुके-जलकी तरह निर्मल हृदयी थे।

७—सबे संबंधियोंका या कर्मोंका आक्रमण उनपर नहीं ठहर सकता था इसलिए व संसार-सरोवरमें कमलके समान थे।

८—कछुआ जैसे अपने अंगोंको छिपाकर रखता है, वैसे ही उन्होंने इन्द्रियोंको छुपाकर रखा था, इसलिए वे इन्द्रिय गोप्ता थे।

९—गेंडेके जैसे एक ही सींग होता है वैसे ही रागद्वेषहीन होनेसे वे गेंडेके सींगकी तरह एकाकी थे।

१०—परिग्रह रहित और अनियत निवास होनेसे वे पक्षीकी तरह स्वतंत्र थे।

११—प्रमाद भी प्रमाद नहीं करनेवाले भारंड पक्षीकी तरह वे अप्रमादी थे

११–कर्मरूपी शत्रुओंके लिए वे गजराज थे।

१२–स्वीकृत महाव्रतके भारको वहन करनेके लिए वे वृषभकी तरह पराक्रमी थे।

१३–परिसहादि पशुओंके लिए वे दुर्धर्ष सिंह थे।

१४–अंगीकार किये हुए तप और संयममें दृढ रहनेसे और उपसर्गरूपी झंझावातसे भी चलित न होनेसे वे निश्चल सुमेरु थे।

१५–हर्ष और विषादके कारण प्राप्त होते हुए भी विकार-हीन होनेसे वे गंभीर सागर थे।

१६–हरेकके अन्तःकरणको शांतिप्रदान करनेवाली भाव-नावाले होनेसे वे सौम्य चंद्रमा थे।

१७–द्रव्यसे शरीरकी कांतिद्वारा और भावसे उज्ज्वल भावनाद्वारा देदीप्यमान होनेसे वे प्रखर सूर्य थे।

१८–कर्ममलके नष्ट हो जानेसे वे निर्मल स्वर्ण थे।

१९–शीत उष्णादि सभी प्रतिकूल और अनुकूल परिसहोंको सहन करनेसे वे क्षमाशील पृथ्वी थे।

२०–ज्ञान और तपरूपी ज्वालासे प्रदीप्त वे जाज्वल्यमान अग्नि थे।

महावीर स्वामीने दीक्षा ली उसके बाद वे बारह वर्ष छः महीने और एक पक्ष तक यानी ४५१५ दिन तक छद्मस्थ रहे। इतने समयमें उन्होंने ३५१ तप किये, ४१६५ दिन निराहार रहे और ३५० दिन अन्न जल ग्रहण किया। उनका ब्योरा हम नीचे देते है।

तपोंके नाम	संख्या	सब मिलाकर दिनोंकी संख्या	पारणोंकी संख्या
पूर्ण छह मासी	१	१८०	१
पाँच दिन कम छह मासी	१	१७५	१
चौमासी	९	१०८०	९
त्रिमासी	२	१८०	२
अढ़ाई मासी	२	१५०	२
द्विमासी	६	३६०	६
डेढ़ मासी	२	९०	
मासिक	१२	३६०	१२
पाक्षिक	७२	१०८०	७२
अट्ठम	१२	३६	१२
छट्ठ	२२९	४५८	२२८F
भद्र प्रतिमा	१	२ } १६	१
महाभद्र प्रतिमा	१	४	१
सर्वतोभद्र प्रतिमा	१	१०	१
	३४९	४१६५ θ	३५० ×

F तप २२९ हैं परंतु पारणे २२८ ही हुए हैं। इसका कारण यह है कि आखिरी छट्ठ तपका पारणा कैवल्यप्राप्त होनेपर किया था।

× प्रतिमाओंमें दो पारणे अधिक माने गये हैं। परंतु ऐसा किये बिना दिनोंका हिसाब नहीं बढ़ता। गुणचंद्र महावीर स्वामि चरित्रके लेखक भी मंगलमय प्रत्यूषाम्नि भी ३५ पारणे ही माने हैं। यह गिन्ती तीस दिनका महीना मानकर की गई है।

θ आजकल यह ऐसा स्वाभाविक प्रश्न होती है कि मनुष्य अन्नजलके बिना भी कैसे रहता है? बेशक निर्बल मनवालोंके लिए यह बहुत कठिन बात है। जहाँ एक बार भूखा रहना भी बहुत कठिन मालूम होता है वहाँ इतने उपवासोंकी कल्पना भी कैसे की जा सकती है? परंतु अन्य धर्मोंके ग्रंथ और वर्तमानके उपवासचिकित्सा शास्त्री

कहते हैं कि यह कोई कठिन बात नहीं है। कुछ प्रमाण हमारे इस कथनकी पुष्टिके लिए हम यहाँ देते हैं।

(१) स्वायभू मनु नामके राजा हुए हैं। उन्हींसे मनुष्य सृष्टि चली है। उनको राज्य करते बहुत वरस बीत गये और जब उनका चौथापन आया तब उन्होंने वनमें जाकर घोर तप करना आरंभ किया। छ हजार वरस तक वे केवल जलपर रहे। फिर वे केवल वायुके आधारपर सात हजार वरस तक रहे।

(तुलसीकृत रामायण बालकांड)

(२) पं० रामेश्वरानदजी बंबईमें एक प्रसिद्ध वैद्य हैं। उन्होंने दस बरसमें ३८५ उपवास किये हैं। उनका ब्योरा इस प्रकार है—

(१) सन १९२२ में ता ११ से ३१ अक्टोबर तक २१
(२) सन १९२३ म ता १२ जनवरी से ता १४ फरवरी तक ३४
(३) सन १९२३ म ता. २७ अगस्तसे ता २५ सितंबर तक ३०
(४) सन १९२४ में ता ११ जनवरीसे ता १३ फरवरी तक ३४
(५) सन १९२५ म ता १ जनवरीसे ३१ जनवरी तक ३१
(६) सन १९२६ में ता २५ जूनसे ता २५ जुलाई तक ३०
(७) सन १९२७ म ता १५ जुलाईसे ता २३ अगस्त तक ४०
(८) सन १९२८ म ता २८ जुलाईसे ता १० सितंबर तक ४०
(९) सन १९२९ म ता १८ जनवरीसे ता २६ फरवरी तक ४०
(१०) सन १९३० म ता २६ जुलाईसे ता ८ सितंबर तक ४४
(११) सन १९३१ में ता ३० जूनसे ता १४ अगस्ततक ४५

कुल उपवास ३८९

इनकी उम्र सत्तर और अस्सीके बीचमें है।

३—श्रीयुत नाथुरामजी प्रेमीनें खाँसी और श्वासकी बीमारी किसी तरह अच्छी न होते देख २५ उपवास किये।

इस प्रयोगसे मालवार स्वामीका भोजन करनेका वार्षिक आसत (सरासरी) २८ दिन आता है।

४—श्रीनाथूरामजीके पुत्र हेमचंद्रसे सन १९१८ में १९ उपवास कराये गये। उस समय उसकी उम्र केवल १४ बरसकी थी।

(४) अलबर्ट वीर नामक सज्जन १८ बरसतक बीमारीके कारण बिस्तरपर पड़े रहे। किसी तरह अच्छे न हुए। उन्होंने ४९ दिनतक उपवास किया और वे बिल्कुल अच्छे हो गये।

(५) एक ईसाई महात्माके भिखारी स्त्री मर गई थी। वह बहुत दुखी हुआ। उसने मरनेका इरादा कर अन्नजल छोड़ दिया। ७ दिन-तक उपवास करनेपर भी वह न मरा। (उपवास चिकित्सा)

(६) आचार्य श्री वल्लभविजयजीके शिष्य तपस्वी गुणविजयजीने एक सालतक तेले तेलेके पारणेसे भोजन किया और इस तरह साल भरके ३६ दिनोंमेंसे केवल ९ दिन आहारपानी लिये और २७ दिन निराहार रहे।

(७) आयरलैंडके प्रसिद्ध देशभक्त टेरेन्स मेकस्विनी ७२ दिन तक अन्नजलके बगैर जीता रह सका।

(८) जतीन्द्रनाथ लाहोरकी जेलमें ४९ दिनतक बगैर अन्न जलके रह सका था। पीछे मरा।

(९) सन १९३१ में पूज्य जवाहरलालजीके शिष्य देवीलाल-जीने (?) उदयपुरमें ७१ दिनके और पूज्य चौथमलजीके २ शिष्योंने वर्षमें ५४ और ४९ दिनके उपवास किये थे।

इस तरह हम देखते हैं कि आज भी उपवास करना कोई असंभव बात नहीं है। मनकी दृढ़तावाला मनुष्य सरलतासे उपवास कर सकता है और उनसे वह मानसिक और शारीरिक रोगोंसे मुक्त हो सकता है।

महावीर स्वामीको केवलज्ञान होनेके बाद पहले दिन उन्होंने जो देशना दी वह निष्फल गई।

महावीर स्वामीको विद्वान शिष्योंकी प्राप्ति

वहाँसे विहारकर प्रभु अपापा नामक नगरमें आये। वहाँ शहरके बाहर महासेन वनमें देवताओंने समवसरणकी रचना की। बत्तीस धनुष ऊँचे चैत्यवृक्षके तीन प्रदक्षिणा दे, 'तीर्थायनमः' कह आर्हती मर्यादाके अनुसार प्रभु सिंहासनपर विराजे। नर, देव, पशु सभी अपने अपने स्थानोंपर बैठे। फिर महावीर स्वामीने संसारसागरसे तैरनेका मार्ग बताया। अनेक भव्य लोगोंने उस मार्गपर चलना स्थिर किया।

उन्हीं दिनों सोमिल नामके एक धनिक ब्राह्मणने अपापामें यज्ञ आरंभ किया था। यज्ञकर्म करानेके लिए इन्द्रभूति, अग्निभूति आदि ११ विद्वान ब्राह्मण आये थे। जिस समय यज्ञ चल रहा था उसी समय देवता महावीर स्वामीका दर्शन करने आ रहे थे। देवताओंको देख इन्द्रभूतिने ब्राह्मणोंको कहा:—"अपने यज्ञका प्रभाव तो देखो कि, मंत्रबलसे खिचे हुए देवता अपने विमानोंमें बैठ बैठकर चले आ रहे हैं।"

मगर देवता तो यज्ञभूमिको छोडकर आगे चले गये। तब बाहरसे आये हुए एक मनुष्यने कहा:—"शहरके बाहर एक सर्वज्ञ आये हुए हैं। देव उन्हींकी वंदना करने और उनका उपदेश सुनने जा रहे हैं। सर्वज्ञका नाम सुनते ही इन्द्रभूति क्रोधसे जल उठा। वह बोला:—"कोई पाखंडी

लोगोंको ठगता होगा। मैं अभी जाकर उसकी सर्वज्ञताकी पोल खोलता हूँ।"

क्रोधसे भरा हुआ। इन्द्रभूति समवसरणमें पहुँचा। मगर महावीरकी सौम्य मूर्ति देखकर उसका क्रोध मंद हो गया। उसके हृदयने पूछा:—"क्या सचमुच ही ये सर्वज्ञ हैं?" उसी समय सुधासी वाणीमें महावीर बोले:—"हे वसुभूतिसुत इन्द्रभूति! आओ।" इन्द्रभूतिको आश्चर्य हुआ,– ये मेरा नाम कैसे जानते हैं? उसके मनने कहा,–तुझे कौन नहीं जानता है? तू तो जगत्प्रसिद्ध है।

इतनेहीमें अत्यन्त गंभीर वाणी सुनाई दी:–"हे गौतम! तुम्हारे मनमें शंका है कि, जीव है या नहीं?" अपने हृदयकी शंका बतानेवालेके सामने इन्द्रभूतिका मस्तक झुक गया। मगर जब महावीरने शंकाका समाधान कर दिया तब तो इन्द्रभूति एक दम महावीरके चरणोंमें आ गिरे और उन्होंने अपने ५०० शिष्योंके साथ दीक्षा ले ली।

१–इन्द्रभूतिके पिताका नाम वसुभूति और माताका नाम पृथ्वी था। उनका गोत्र गौतम था और जन्म मगध देशके गोबर गाँवमें हुआ था। उनकी कुल आयु ९२ वर्षकी थी। वे ५ बरस गृहस्थ १ बरस छद्मस्थ साधु और १२ बरस केवली रहे थे। इन्द्रभूतिके दूसरे दो भाई और थे। उनके नाम अग्निभूति और वायुभूति थे। वे भी पीछेसे महावीरके शिष्य हुए थे। अग्निभूतिकी आयु ७४ बरसकी थी। वे ४६ बरस गृहस्थ १२ छद्मस्थ साधु और १६ बरस केवली रहे थे। वायुभूतिकी आयु ७ बरसकी थी। वे ४२ बरसतक गृहस्थ, १ बरस तक छद्मस्थ साधु और १८ बरस तक केवली थे।

इन्द्रभूतिके छोटे अग्निभूतिने सुना कि इन्द्रभूति महावीरका शिष्य हो गया है तो उसे बडा क्रोध आया। वह भी अपने पाँच सौ शिष्योंको साथ ले महावीरको परास्त करने गया। मगर समवसरणमें पहुँचनेपर उसका दिमाग भी ठंडा हो गया। महावीर बोलेः—"हे अग्निभूति! तुम्हारे मनमें शंका है कि कर्म है या नहीं? " अगर कर्म हो तो वह प्रत्यक्षादि प्रमाणसे अगम्य और मूर्तिमान है। जीव अमूर्त है। अमूर्त जीव मूर्तिमान कर्मको कैसे बाँध सकता है?"

तुम्हारी यह शंका निर्मूल है। कारण,—अतिशय ज्ञानी पुरुष तो कर्मकी सत्ता प्रत्यक्ष जान सकते हैं; परंतु तुम्हारे समान छद्मस्थ भी अनुमानसे इसे जान सकते हैं। कर्मकी विचित्रतासे ही संसारमें असमानता है। कोई धनी है और कोई गरीब; कोई राजा है और कोई रैयत, कोई मालिक है और कोई नौकर; कोई नीरोग है और कोई नौकर। इस असमानताका कारण एक कर्म ही है।

अग्निभूतिके हृदयकी शंका मिट गई और वे भी अपने ५०० शिष्योंके साथ महावीरके शिष्य हो गये।

'मेरे दोनों भाइयोंको हरानेवाला अवश्य सर्वज्ञ होगा' यह सोच, वायुभूति शांत मनके साथ अपने शिष्योंके साथ समवसरणमें गया और प्रभुको नमस्कार कर बैठा। महावीर बोलेः—"हे वायुभूति! तुम्हें जीव और शरीरके सबंधमें भ्रम है। प्रत्यक्षादि प्रमाण जिसे ग्रहण नहीं कर सकते वह

जीव शरीरसे भिन्न कैसे हो सकता है? जैसे पानीसे बुलबुला पैदा होता है और वह पानीहीमें लीन हो जाता है वैसे ही जीव भी शरीरहीसे पैदा होता है और उसीमें लीन हो जाता है। मगर तुम्हारी धारणा मिथ्या है। कारण,—

यह जीव देहसे भिन्न है। इच्छा वगैरा गुण प्रत्यक्ष होनेसे जीव स्वसंविद् है; यानी उसका खुदको अनुभव होता है। जीव देह और इन्द्रियसे भिन्न है। जब इन्द्रियाँ नष्ट हो जाती हैं तब यह इन्द्रियोंको स्मरण करता है और शरीरको छोड़ देता है।

वायुभूतिका संदेह जाता रहा और उसने भी अपने ५० शिष्योंके साथ दीक्षा लेली।

व्यक्तने जब ये समाचार सुने तो वे भी महावीरके पास गये। महावीर बोले—"हे व्यक्त, तुम्हारे दिलमें यह शंका है कि, पृथ्वी आदि पंचभूत हैं ही नहीं। वे हैं ऐसा जो भास होता है वह जलमें चंद्रमा होनेका भास होनेके समान है। यह जगत शून्य है। वेदवाक्य है कि 'इत्येष ब्रह्मविधिरञ्जसाविज्ञेयः' अर्थात यह सारा जगत स्वप्नके समान है। और इस वाक्यका तुमने यह अर्थ कर

१—ये कोल्लाक गाँवके रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम धनुर्मित्र और माताका नाम वारुणी था। इनका गोत्र भारद्वाज था। इनकी आयु ८० बरसकी थी। ये ५० बरस तक गृहस्थ, १२ बरस तक छद्मस्थ साधु और १८ बरस तक केवली रहे।

लिया है कि सब शून्य है—कुछ नहीं है। यह तुम्हारी भ्रांति है। असलमें इसका अभिप्राय यह है कि, जैसे सपनेके अंदर की बाते व्यर्थ होती हैं। इसी तरह इस दुनियाका सुख भी व्यर्थ होता है। यह सोचकर मनुष्यको आत्मध्यानमें लीन होना चाहिए।"

व्यक्तका संशय मिट गया और उनने भी अपने ५०० शिष्यों सहित महावीर स्वामीके पास दीक्षा ले ली।

व्यक्तके समाचार सुनकर उपाध्याय सुधर्मा भी महावीर स्वामीके पास गये। प्रभुने उनको कहाः—"हे सुधर्मा! तुम्हारे मनमें परलोकके विषयमें शंका है। तुम्हारी धारण है कि जैसे गेहूँ खादमें मिलकर गेहूँरूपमे और चावल खादमें मिलकर चावल रूपमे पैदा होता है वैसे ही मनुष्य भी मरकर मनुष्यरूपहीमें जन्मता है; परंतु यह तुम्हारी धारणा भूलभरी है। मनुष्य योग और कषायके कारण विविधरूप धारण करता है। वह जिस तरहकी भावनाओसे प्रेरित होकर आचरण करता है वैसा ही जन्म उसे मिलता है। यदि वह सरलता और मृदुताका जीवन विताता है तो वह फिरसे मनुष्य होता है, यदि वह कटुता और वक्रताका जीवन विताता है तो वह पशुरूपमें जन्मता है और यदि उसका जीवन परोपकार परायण होता है तो वह देव बनता है।"

---

१ इनके पिताका नाम धम्मिल और माताका नाम भद्रिला था। अग्निवैश्यायन गोत्रके ये ब्राह्मण थे और कोल्लाक गाँवके रहनेवाले थे। इनकी उम्र १०० बरसकी थी। ये ५० बरस तक गृहस्थ ४२ बरस तक छद्मस्थ साधु और ८ बरस तक केवली रहे।

सुधर्माकी शंका मिट गई और उन्होंने भी अपने ५० शिष्योंके साथ महावीर स्वामीके पाससे दीक्षा ले ली।

उनके बाद मंडिक[1] महावीरके पास आये। प्रभुने कहा— "हे मंडिक, तुमको बंध और मोक्षके विषयमें संशय है। यह संशय वृथा है। कारण, यह बात बहुत ही प्रसिद्ध है कि बंध और मोक्ष आत्माको होता है। मिथ्यात्व और कषायोंके द्वारा कर्मोंका आत्माके साथ जो संबंध होता है उसे बंध कहते हैं और इसी बंधके कारण जीव चार गतियोंमें परिभ्रमण करता है व दुःख उठाता है। सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रके द्वारा आत्माका कर्मोंसे जो संबंध छूट जाता है उसे मोक्ष कहते हैं। मोक्षसे प्राणीको अनंत सुख मिलता है। जीव और कर्मका संयोग अनादि सिद्ध है। अग्निसे जैसे सोना और मिट्टी अलग हो जाते हैं वैसे ही ज्ञान दर्शन और चारित्ररूप अग्निसे आत्मा और कर्म अलग हो जाते हैं।

मंडिकका संशय जाता रहा और उन्होंने अपने २५ शिष्योंके साथ दीक्षा ले ली।

---

१ मंडिकके पिताका नाम धनदेव और माताका नाम विजयदेवा था। ये मौर्य गाँवके रहनेवाले वशिष्ठ गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनका जन्म होते ही धनदेवकी मृत्यु हो गई थी। इसलिए विजया विजयदेवासे धनदेवके मौसियात भाई मौर्यने ब्याह कर लिया था। मंडिककी उम्र ८३ बरसकी थी। ये ५३ बरस गृहस्थ १४ बरस छद्मस्थ साधु और १६ बरस केवली रहे।

उनके बाद मौर्यपुत्र[1] अपने शिष्योंके साथ महावीरके पास आये। प्रभु बोलेः-"हे मौर्यपुत्र! तुमको देवताओंके विषयमें संदेह है। मगर वह संदेह मिथ्या है। इस समवसरणमें आये हुए इन्द्रादि देव प्रत्यक्ष हैं। इनके विषयमें शंका कैसी?" मौर्यपुत्रका भी संदेह मिट गया और उन्होंने भी अपने ३५० शिष्योंके साथ दीक्षा ले ली।

उनके बाद अकंपित[2] शिष्यों सहित प्रभुके पास आये। प्रभु बोलेः-"हे अकंपित! तुमको नारकी जीवोंके संबंधमें शंका है। परंतु नारकी जीव हैं। वे बहुत परवश हैं। इसलिए यहाँ नहीं आ सकते हैं और मनुष्य वहाँ जा नहीं सकते। इसलिए सामान्य मनुष्यको उनका ज्ञान नहीं हो सकता। सामान्य मनुष्य युक्तियोंसे उन्हें जान सकता है। क्षायिक ज्ञानवाला उन्हें प्रत्यक्ष देख सकता है। कोई क्षायिक ज्ञानवाला है ही नहीं

१ इनके पिताका नाम मौर्य और इनकी माताका नाम विजयदेवा था। ये मौर्य गाँवके रहनेवाले काश्यप गोत्रके ब्राह्मण थे। इनकी उम्र ८३ वरसकी थी। ये ६५ वर[illegible] गृहस्थ, २ वरस छद्मस्थ और १६ वरस केवली रहे थे। विजयदे[illegible] डिकके पिता धनदेवकी पत्नी थी, मगर विधवा हो जानेके बाद उसने मौर्यके साथ शादी कर ली थी। इससे जान पड़ता है कि उस समय ब्राह्मणोंमें भी विधवाका पुनर्लग्न करना अनुचित नहीं समझा जाता था।

२ अकंपितके पिताका नाम देव और इनकी माताका नाम जयती था। ये विमलपुरीके रहनेवाले गौतम गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनकी उम्र ७८ वरसकी थी। ये ४५ वरस गृहस्थ, ९ वरस छद्मस्थ और २१ वरस केवली रहे।

यह शंका भी बिलकुल व्यर्थ है। क्योंकि मैं क्षायिक ज्ञानी प्रत्यक्ष यहाँ मौजूद हूँ।"

अकंपितकी शंका मिट गई और उन्होंने अपने ३०० शिष्योंके साथ दीक्षा ले ली।

उनके बाद अचलभ्राता अपने शिष्यों सहित महावीरके पास आये। प्रभु बोले:—"हे अचलभ्राता! तुम्हें पाप पुण्यमें संदेह है। मगर यह शंका मिथ्या है। कारण, इस दुनियामें पाप पुण्यके फल प्रत्यक्ष हैं। संपत्ति, रूप, उच्च कुल, लोकमें सन्मान अधिकार आदि बातें पुण्यका फल हैं। इनके विपरीत दरिद्रता, कुरूप, नीच कुल, लोकमें अपमान इत्यादि बातें पापका फल हैं।"

अचल भ्राताकी शंका मिट गई और उन्होंने अपने ३०० शिष्योंके साथ दीक्षा ले ली।

उनके बाद मेतार्य प्रभुके पास आये। प्रभु बोले:—"हे मेतार्य! तुमको परलोकके विषयमें शंका है। तुम्हारा खयाल है कि, आत्मा पंच भूतोंका समूह है। उनका अभाव होनेसे

---

१ अचलभ्राताके पिताका नाम वसु और उनकी माताका नाम नंदा था। वे कोशल नगरीमें रहनेवाले हारीत गोत्रीय ब्राह्मण थे। उनकी उम्र ७२ बरसकी थी। वे ४६ बरस गृहस्थ १२ बरस छद्मस्थ और १४ बरस केवली रहे थे।

२ मेतार्यके पिताका नाम दत्त और इनकी माताका नाम वरुणा था। ये वत्स देशके तुंगिक नामक गाँवमें रहनेवाले कौण्डिन्य गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनकी उम्र ६२ बरसकी थी। वे ३६ बरस गृहस्थ १० बरस छद्मस्थ और १६ बरस केवली रहे थे।

३ हिन्दुशास्त्रोंमें पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाशको पंच भूत माना है।

यानी समूहके विखर जानेसे आत्मा भी नष्ट हो जाता है। जब आत्मा ही नहीं रहता तो फिर परलोक किसको मिलेगा? मगर तुम्हारी यह शंका आधारहीन है। कारण,-जीव पंच भूतोंसे जुदा है। पाँच भूतोंके एकत्र होनेसे कभी चेतना नहीं उपजती। चेतना जीवका धर्म है और वह पंच भूतोंसे भिन्न है। इसीलिए पच भूतोंके नष्ट होनेपर भी जीव कायम रहता है और वह परलोकमें,-एक देहको छोड़कर दूसरी देहमें जाता है। किसी किसीको जातिस्मरणज्ञान होनेसे पूर्व भवकी बातें भी याद आती है।"

मेतार्यकी शंका मिट गई और उन्होंने अपने ३०० शिष्योंके साथ प्रभुके पाससे दीक्षा ले ली। उनके बाद प्रभास[1] प्रभुके पास आये। प्रभु बोलेः-"हे प्रभास! तुम्हें मोक्षके संबंधमें संदेह है। मगर यह ठहर सके ऐसी शंका नहीं है। कारण,-जीव और कर्मके संबंधका विच्छेद ही मोक्ष है। मोक्ष और कोई दूसरी चीज नहीं है। वेदसे और जीवकी अवस्थाकी विचित्रतासे कर्म सिद्ध हो चुका है। शुद्ध ज्ञान, दर्शन और चारित्रसे कर्मोंका नाश होता है। इससे ज्ञानी पुरुषोंको मोक्ष प्रत्यक्ष भी होता है।"

प्रभासकीभी शंका मिट गई और उन्होंने भी अपने ३०० शिष्योंके साथ प्रभुके पाससे दीक्षा ग्रहण कर ली।

१-प्रभासके पिताका नाम बल और उनकी माताका नाम अतिभद्रा था। ये राजगृह नगरके रहनेवाले कौंडिन्य गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनकी उम्र ४० बरसकी थी। ये १६ बरस गृहस्थ ८ बरस छद्मस्थ और १६ बरस केवली रहे थे।

इस तरह ग्यारह प्रसिद्ध विद्वान ब्राह्मण महावीरके शिष्य हो गये। इससे महावीरके ज्ञानकी चारों तरफ धाक बैठ गई। ये ही ग्यारह महावीरके मुख्य शिष्य हुए और गणधर कहलाये।

चंदनबाला धनाभिक राजाके यहाँ थी। वे भी महावीर स्वामीके पास आकर दीक्षित हो गई। उनके साथ ही अनेक स्त्री पुरुषोंने दीक्षा ले ली। हजारों नरनारी जो दीक्षित न हुए उन्होंने पंच अणुव्रत धारण कर श्रावकव्रत अंगीकार किया।

इस तरह महावीर स्वामीका, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाका, चतुर्विध संघ स्थापित हुआ।

फिर प्रभुने गौतमादि गणधरोंको उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यात्मक त्रिपदीका उपदेश दिया और उससे गणधरोंने बारह अंगों और चौदह पूर्वोंकी रचना की। ग्यारह गणधरोंने इनकी रचना की। इनमेंसे अकंपित और अचल भ्राताकी वाचना एकसी, मेतार्य और प्रभासकी वाचना एकसी हुई

---

१ बारह अंग ये हैं—आचारांग (आयार) सूत्रकृतांग (सूयगड) ठाणांग समवायांग, भगवती अंग ज्ञाताधर्मकथा (नायधम्मकहा) उपासक (उवासगदसा) अंतकृत अनुत्तरोपपातिकदशा (अणुत्तरोववाइय) प्रश्न व्याकरण (पण्हावागरण) विपाकसूत्र (विवाग) और दृष्टिवाद (दिट्ठिवाय)।

२— चौदह पूर्वोंके नाम ये हैं—उत्पाद अग्रायणीय वीर्य प्रवाद, अस्तिनास्ति प्रवाद ज्ञान प्रवाद सत्य प्रवाद, आत्म प्रवाद कर्म प्रवाद, प्रत्याख्यान प्रवाद विद्या प्रवाद कल्याणक प्राणावाय, क्रियाविशाल और लोकबिन्दुसार। [ये दृष्टिवाद अंगके अंदर रखे गये हैं। इनकी रचना बारह अंगोंके पहले हुई इसलिये ये पूर्व कहलाये।]

और दूसरे सात गणधरोंकी-प्रत्येककी-भिन्न भिन्न वाचनाएँ हुईं। प्रभुने त्रिपदीका एकसा उपदेश दिया; परंतु हरेक गणधरने अपने ज्ञान-विकासके अनुसार उसे समझा और तदनुसार सूत्रोंकी रचना की। इससे भिन्न भिन्न वाचनाओंके अनुसार महावीर स्वामीके नौ गण[1] हुए। ग्यारह गणधरोंके और उनकी वाचनाओंके नाम एक साथ यहाँ लिखे जाते हैं।

(१) इन्द्रभूति-प्रसिद्ध नाम गौतम स्वामी। इनकी एक वाचना।
(२) अग्नि भूति। इनकी दूसरी वाचना।
(३) वायु भूति। इनकी तीसरी वाचना।
(४) व्यक्त। इनकी चौथी वाचना।
(५) सुधर्मा। इनकी पाँचवीं वाचना।
(६) मंडिक। इनकी छठी वाचना।
(७) मौर्यपुत्र। इनकी सातवीं वाचना।

(८) अकंपित। } इन दोनों गणधरोंकी समान वाचना
(९) अचल भ्राता। } होनेसे इनकी आठवीं वाचना।

(१०) तेतर्य। } इन दोनोंकी भी समान वाचना होनेसे
(११) प्रभास। } इनकी नवीं वाचना।

फिर समयको जाननेवाला इन्द्र उठा और सुगंधित रत्न-चूर्ण (वासक्षेप) से पूर्ण पात्र लेकर प्रभुके पास खड़ा रहा। इन्द्रभुति आदि गणधर भी मस्तक झुकाकर खड़े रहे। तब प्रभुने यह कहकर कि 'द्रव्य, गुण और पर्यायसे तुमको तीर्थकी

१–मुनियोंके समुदायको गण कहते हैं।

आज्ञा है।' पश्चात इन्द्रभूतिके मस्तकपर वासक्षेप डाला। फिर क्रमशः दूसरे गणधरोंके मस्तकोंपर डाला। बादमें देवोंने भी प्रसन्न होकर ग्यारहों गणधरोंपर वासक्षेप और पुष्पोंकी वृष्टि की।

इसके पश्चात प्रभु सुधर्मा स्वामीकी तरफ संकेतकर बोले,-"ये दीर्घजीवी होकर चिरकाल तक धर्मका उद्योत करेंगे।" फिर सुधर्मास्वामीको सब मुनियोंमें मुख्य नियतकर गणकी अनुज्ञा दी।

इसके बाद साध्वियोंमें संयमके उद्योगकी व्यवस्था करनेके लिए प्रभुने प्रथम साध्वी श्री चन्दनबालाको प्रवर्तिनी पदपर स्थापित किया।

इस तरह प्रथम पौरुषी (पहर) पूर्ण हुई। तब राजाने जो बलि तयार कराई थी उसे लेकर पूर्व द्वारसे आया। वह आकाशमें फेंकी गई। आधी देवताओंने ऊपरहीसे ले ली। आधी भूमिपर पड़ी। उसमेंसे आधी राजा और शेष दूसरे लोग ले गए।

प्रभु वहाँसे उठ और देवच्छंदमें जाकर बैठे। गौतमस्वामीने उनके चरणोंमें बैठकर देशना दी।

उसके बाद कुछ दिन वहीं निवासकर प्रभु अपने शिष्यों सहित अन्यत्र विहार कर गये।

राजा श्रेणिकको प्रतिबोध

कुशाग्रपुरमें राजा प्रसेनजित था। इसके अनेक पुत्र थे। उनमेंसे एकका नाम श्रेणिक था। श्रेणिकको भंभासार या बिंबसार भी कहते थे। श्रेणिकको बुद्धिमान और

वीर जानकर प्रसेनजितने राज्यगद्दी दी। प्रसेनजितने राजगृह[1] नगर वसाया था।

श्रेणिक बौद्ध धर्मावलंबी शिशुनाग वंशका था। उसकी पहिली शादी वेणातटपुरके भद्र नामक श्रेष्ठीकी कन्यासे हुई थी। उससे उसके अभयकुमार नामका एक पुत्र था।

अनेक वरसोंके वाद, जव अभयकुमार श्रेणिकका मंत्री था तव, श्रेणिकने वैशालीके अधिनायक चेटककी एक कन्या माँगी। चेटकने यह कहकर कन्या देनेसे इन्कार किया कि,–"हैहय वंशकी कन्या वाहीकुल (विदेहवंश) वालेको नहीं दी जा-सकती।" अभयकुमार युक्ति करके चेटककी सवसे छोटी कन्या चेल्लणाको हर लाया था। चेल्लणासे श्रेणिकके एक पुत्र हुआ। उसका नाम कोणिक[2] था।

---

१ कुशाग्रपुरमें वहुत आगलगनेसे प्रजा वहुत दुखी होती थी। इससे राजाने हुक्म निकाला कि जिसके घरसे आग लगेगी वह शहर बाहर निकाल दिया जायगा। दैवयोगसे राजाहीके यहाँसे इस वार आग लगी। अपने हुक्मके अनुसार व्यवहार करनेवाले न्यायी राजाने शहर छोड दिया और एक माइल दूर डेरे डाले। धीरे धीरे वहाँ महल वनवाये और लोग भी जा जाकर वसने लगे। आते जाते लोगोंसे कोई पूछता,–"कहाँ जाते हो?" वे जवाव देते,–"राजगृह (राजाके घर) जाते हैं।" इससे उस शहरका नाम राजगृह पड गया।

२–जैनशास्त्रोंमें इसका दूसरा नाम अशोकचद्र और वौद्धग्रथोंमें इसका नाम अजातशत्रु लिखा है। इसने अपने पिता राजा श्रेणिकको कैद करके मार डाला था। श्रेणिकका और इसका विस्तृत वृत्तान्त जैन-रत्नके अगले भागमें दिया जायगा।

रानी चेलना जैन थी और श्रेणिक बौद्ध। चेलणाके अनेक यत्न करनेपर भी श्रेणिक जैन नहीं हुआ। एक बार श्रेणिक बगीचेमें फिरने गया था। वहाँ एक युवक जैन मुनिको घोर तप करते देखा। उसके तप और त्यागको देखकर श्रेणिक का मन जैनधर्मकी ओर झुका। भगवान महावीर विहार करते हुए राजगृहीमें आये। श्रेणिक महावीरके दर्शन करने गया और उपदेश सुन परम श्रद्धावान श्रावक हो गया।

श्रेणिकके पुत्र, मेघकुमार, नंदीषेण आदिने, अपने माता पिताकी आज्ञा लेकर दीक्षा ले ली।

प्रभु विहार करते हुए, एक बार ब्राह्मणकुंड गाँवमें आये। देवताओंने समवशरण रचा। समवशरणमें देवानन्दा और ऋषभदत्त भी आये। महावीरको देखकर देवानन्दाके स्तनोंसे दूध झरने लगा। वह

ऋषभदत्त और देवानन्दाकी दीक्षा

एक टक महावीर स्वामीकी तरफ देखने लगी। गौतम गणधरने इसका कारण पूछा। महावीरने कहा:—“मैं बयासी दिन तक इसकी कोखमें रहा हूँ। इसी लिए वात्सल्य भावसे इसकी ऐसी हालत हुई है।”

फिर महावीर स्वामीने धर्मोपदेश दिया। देवानंदा और ऋषभदत्तने दुनियाको असार जानकर दीक्षा ले ली।

प्रभु विहार करते हुए एक बार क्षत्रियकुंड आये। वहाँ राजा नंदिवर्द्धन और प्रभुकी बहन सुदर्शना जमाली ' अपने परिवारों सहित

जमालीकी दीक्षा

समवशरणमें आये। प्रभुकी देशनासे वैराग्यवान होकर जमालीने पाँच सौ अन्य क्षत्रियों सहित दीक्षा ले ली।+

+ जमाली महावीरके भानजे थे। इन्हींके साथ महावीरकी पुत्री प्रियदर्शना व्याही गई थी। जमालीने दीक्षा लेनेके बाद ग्यारह अगोंका अध्ययन किया। तब प्रभुने उन्हें हजार क्षत्रिय मुनियोंका आचार्य बना दिया। वे छट्ठ अट्ठम आदिका तप करने लगे।

एक बार जमालीने अपने मुनिमडल सहित, स्वतत्ररूपसे विहार करनेकी आज्ञा माँगी। प्रभुने अनिष्टकी सभावनासे मौन धारण किया। जमाली मौनको सम्मति समझकर विहार कर गये। विहार करते हुए वे श्रावस्ती नगरी पहुँचे। नगरके बाहर 'तेंदुक' नामक उद्यानके 'कोष्ठक' नामक चैत्यमें रहे। विरस, शीतल, रुक्ष और असमय आहार करनेसे उन्हे पित्तज्वर आने लगा। एक दिन ज्वरकी अधिकताके कारण उन्होंने सो रहनेके लिए सथारा करनेकी अपने शिष्योंको आज्ञा दी। थोडे क्षण नहीं वीते थे कि, जमालीने पूछा —“ सथारा विछा दिया ? ” शिष्य बोले –“ विछा दिया। ” ज्वरार्त्त जमाली तुरत जहाँ सथारा होता था वहाँ आये। मगर सथारा होते देखकर वे बैठ गये और बोले-“ साधुओ ! आज तक हम भूले हुए थे। इस लिए असमाप्त कार्यको भी समाप्त हो गया कहते थे। यह भूल थी। जो काम समाप्त हो गया हो उसके लिए कहना चाहिए कि, हो गया। जिसको तुम कर रहे हो उसके लिए कभी मत कहो कि, वह हो गया है। तुमने कहा कि 'सथारा विछ गया है।' वस्तुत यह विछ नहीं चुका था। इस लिए तुम्हारा यह कहना असत्य है। उत्पन्न होता हो उसे उत्पन्न हुआ कहना, और जो अभी किया जाता हो उसके लिए हो चुका कहना, ऐसा महावीर कहते हैं वह, अयोग्य है। कारण इसमें प्रत्यक्ष विरोध मालूम होता है। वर्तमान और भविष्य क्षणोंके समूहके योगसे जो कार्य हो रहा है उसके लिए 'हो चुका' कैसे कहा जा सकता है ?

रानी चेलणा जैन थी और श्रेणिक बौद्ध । चेलणाके अनेक यत्न करनेपर भी श्रेणिक जैन नहीं हुआ । एक बार श्रेणिक बगीचेमें फिरने गया था । वहाँ एक युवक जैन मुनिको घोर तप करते देखा । उसके तप और त्यागको देखकर श्रेणिकका मन जैनधर्मकी ओर झुका । भगवान महावीर विहार करते हुए राजगृहीमें आये । श्रेणिक महावीरके दर्शन करने गया और उपदेश सुन परम श्रद्धावान श्रावक हो गया ।

श्रेणिकके पुत्र, मेघकुमार, नंदीषेण आदिने, अपने माता-पिताकी आज्ञा लेकर दीक्षा ले ली ।

प्रभु विहार करते हुए, एक बार ब्राह्मणकुंड गाँवमें आये ।

ऋषभदत्त और देवानंदाकी दीक्षा

देवताओंने समवशरण रचा । समवशरणमें देवानंदा और ऋषभदत्त भी आये । महावीरको देखकर देवानंदाके स्तनोंसे दूध झरने लगा । वह एक टक महावीर स्वामीकी तरफ देखने लगी । गौतम गणधरने इसका कारण पूछा । महावीरने कहा—“ मैं बयासी दिन तक इसकी कोखमें रहा हूँ । इसी लिए वात्सल्य भावसे इसकी ऐसी हालत हुई है । ”

फिर महावीर स्वामीने धर्मोपदेश दिया । देवानंदा और ऋषभदत्तने दुनियाको असार जानकर दीक्षा ले ली ।

प्रभु विहार करते हुए एक बार क्षत्रियकुंड आये । वहाँ

जमालीकी दीक्षा

राजा नंदिवर्द्धन और महावीरका जमाई जमाली ’ अपने परिवारों सहित

साथ दीक्षा ले ली। (भगवती सूत्रमे और विशेपावश्यक सूत्रमें इनका नाम प्रियदर्शना, ज्येष्ठा और अनवद्यांगी भी लिखा है।)

महावीरके प्रभावसे शत्रुओंमें मेल

एक वार विहार करते हुए महावीर स्वामी कोशांवी आये। उस समय कोशांवीको घेरकर उज्जयनीका राजा चंडप्रद्योत पड़ा हुआ था। महावीरके कोशांवीमें आनेके समाचार सुन कोशांवीकी महारानी

एक वार जमाली फिरते हुए श्रावस्तीमें गये। प्रियदर्शना भी वहीं 'ढक' नामक कुम्हारकी जगहमें अपनी एक हजार साध्वियोंके साथ उतरीं थीं। ढक श्रद्धावान श्रावक था। उसने प्रियदर्शनाको जैनमतमें लानेका निश्चय किया। एक दिन उसने प्रियदर्शनाके वस्त्रपर अगारा डाल दिया। प्रियदर्शना वोलीं:-"ढक! तुमने मेरा वस्त्र जला दिया।"

ढक वोला:-"मै आपकी मान्यताके अनुसार कहता हूँ कि आप मिथ्या वोलती हैं। कपडाका जरासा भाग जला है। इसे आप कपड़ा जला दिया कहती हैं। यह आपके सिद्धातके विरुद्ध है। आप जलते हुएको जल गया नहीं कहतीं। ऐसा तो महावीर स्वामी कहते हैं।"

प्रियदर्शना बुद्धिमान थीं। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। उन्होंने महावीरस्वामीके पास जाकर प्रायश्चित्त कर पुन' शुद्ध सम्यक्त्व धारण किया।

जमाली अत तक अपने नवीन मतकी प्ररूपणा करते रहे। इनके मतका नाम 'वहुरत वाद, था। इसका अभिप्राय यह है कि होते हुए कामको हुआ ऐसा न कहकर सपूर्ण हो चुकनेपर ही हुआ कहना। [इस सबंधमें विशेप जाननेके लिए विशेपावश्यक सूत्रमें गाथा २३०६ से २३३२ तक और भगवती सूत्रके नवें शतकके ३३ वें उद्देशकमें देखना चाहिए।]

साथ दीक्षा ले ली। (भगवती सूत्रमें और विशेषावश्यक सूत्रमें इनका नाम प्रियदर्शना, ज्येष्ठा और अनवद्यांगी भी लिखा है।)

एक वार विहार करते हुए महावीर स्वामी कोशांवी आये। उस समय कोशांवीको घेरकर उज्जयनीका राजा चंडप्रद्योत पड़ा हुआ था। महावीरके कोशांवीमे आनेके समाचार सुन कोशांवीकी महारानी

महावीरके प्रभावसे शत्रुओंमें मेल

एक वार जमाली फिरते हुए श्रावस्तीमें गये। प्रियदर्शना भी वहीं 'ढक' नामक कुम्हारकी जगहमें अपनी एक हजार साध्वियोंके साथ उतरीं थीं। ढक श्रद्धावान श्रावक था। उसने प्रियदर्शनाको जेनमतमें लानेका निश्चय किया। एक दिन उसने प्रियदर्शनाके वस्त्रपर अगारा डाल दिया। प्रियदर्शना वोलीं —"ढक! तुमने मेरा वस्त्र जला दिया।"

ढक वोला.—"मै आपकी मान्यताके अनुसार कहता हूँ कि आप मिथ्या वोलतीं हैं। कपडाका जरासा भाग जला है। इसे आप कपडा जला दिया कहती हैं। यह आपके सिद्धांतके विरुद्ध है। आप जलते हुएको जल गया नहीं कहतीं। ऐसा तो महावीर स्वामी कहते हैं।"

प्रियदर्शना बुद्धिमान थीं। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। उन्होंने महावीरस्वामीके पास जाकर प्रायश्चित कर पुन' शुद्ध सम्यक्त्व धारण किया।

जमाली अत तक अपने नवीन मतकी प्ररूपणा करते रहे। इनके मतका नाम 'बहुरत वाद, था। इसका अभिप्राय यह है कि होते हुए कामको हुआ ऐसा न कहकर सपूर्ण हो चुकनेपर ही हुआ कहना। [इस सबंधमें विशेष जाननेके लिए विशेषावश्यक सूत्रमें गाथा २३०६ से २३३२ तक और भगवती सूत्रके नवें शतकके ३३ वें उद्देशकमें देखना चाहिए।]

मृगावतीने निर्भय होकर किलेके फाटक खोल दिये और वह अपने परिवार सहित समवसरणमें गई। राजा चंडप्रद्योत भी प्रभुकी देशना सुनने गया। देशनाके अंतमें रानी मृगावतीने उठकर अपना पुत्र उदयन चंडप्रद्योतको सौंपा और कहा– "इसकी आप अपने पुत्रके समान रक्षा करें और मुझे दीक्षा लेनेकी आज्ञा दें। मैं इस संसारसे उदास हूँ।*

* मृगावती कोसांबीके राजा शतानीककी पत्नी थी। जैनधर्ममें उसकी पूर्ण श्रद्धा थी। एक बार राजा शतानीकने सुंदर चित्रशाला बनवाई। एक चित्रकार चित्रकारोंमें किसी यक्षकी कृपासे ऐसा होशियार था कि किसी भी व्यक्तिके शरीरका कोई अंग देखकर उसका सारा चित्र बना देता था। चित्रशालामें चित्र बनाते समय उसे अचानक मृगावती रानीके पैरका अंगूठा दिख गया। इससे उसने रानीका पूरा चित्र बना डाला। चित्र बनाते वक्त चित्रकी जाँघपर पीछीसे काले रंगकी बूँद गिर पड़ी। चित्रकारने उसे मिटा दी। दूसरी बार और गिरी जब तीसरी बार भी गिरी तब उसने सोचा इसकी यहाँ आवश्यकता होगी। उसने वह काला दाग न मिटाया। दाग जाँघपर काला तिल हो गया।

राजा शतानीक चित्रशाला तैयार होनेपर देखने आया। वहाँ उसने मृगावतीका चित्र जाँघके तिल सहित हूबहू देखा। इससे उसे चित्रकार और रानीके चरित्रपर वहम हुआ। उसने नाराज होकर चित्रकारको कतल करनेकी आज्ञा दी। दूसरे चित्रकारोंने राजासे प्रार्थना की—" महाराज! एक यक्षकी महरबानीसे यह किसी भी मनुष्यका एक अंग देखकर, हूबहू चित्र बना सकता है। यह निर अपराधी है। राजाने इसकी परीक्षा करनेके लिए किसी कुबड़ीका मुँह बताया। चित्रकारने उसका हूबहू चित्र बना दिया। इससे राजाकी शंका जाती रही। मगर राजाने यह विचार कर उसके दाहिने हाथका अंगूठा

चंडप्रद्योतके हृदयमेसे प्रभुके प्रभावके कारण कुवासना और द्वेष दोनों नष्ट हो गये । उसने उदयनको कोशांबीका राजा बनानेकी प्रतिज्ञा कर मृगावतीको दीक्षा लेनेकी आज्ञा दी ।

कटवा दिया कि, यह फिर कभी ऐसे सुंदर चित्र दूसरी जगह न बना सके ।

चित्रकार बडा दुखी हुआ, नाराज हुआ । उसने यक्षकी फिर आराधना की । यक्षने प्रसन्न होकर वर दिया,—" जा तू बायें हाथसे भी ऐसे ही सुंदर चित्र बना सकेगा । " चित्रकारने शतानीकसे वैर लेना स्थिर किया और मृगावतीका एक सुन्दर चित्र बनाया । फिर वह चित्र लेकर उज्जैन गया ।

उस समय उज्जैनमें चंडप्रद्योत नामका राजा राज्य करता था । वह बडा ही लपट था । चित्रकारके पास मृगावतीका चित्र देखकर वह पागलसा हो गया । उसने तुरत शतानीकके पास दूत भेजा और कहलाया कि, तुम्हारी रानी मृगावती मुझे सौंप दो, नहीं तो लड-नेको तैयार हो जाओ ।

स्त्रीको सौंपनेकी बात कौन सह सकता है ? शतानीकने चंडप्रद्यो-तके दूतको, अपमानित करके निकाल दिया । चंडप्रद्योत फौज लेकर कोशांबी पहुँचा; मगर शतानीक तो इसके पहले ही अतिसारकी बीमारी होनेसे मर गया था ।

चंडप्रद्योतको आया जान मृगावती बडी चिन्तामें पडी । उसे अपना सतीधर्म पालनेकी चिंता थी, अपने छोटी उम्रके पुत्र उदयनकी रक्षा कर नेकी चिन्ता थी। बहुत विचारके बाद उसने चंडप्रद्योतको छलना स्थिर-किया और उसके पास एक दूत भेजा । दूतने राजाको जाकर कहा—" महारानीने कहलाया है कि, मै निश्चिंत होकर उज्जैन आ सकूँ इसके पहले मेरे पुत्र उदयनको सुरक्षित कर जाना जरूरी समझती हूँ । इस लिए अगर आप कोशांबीके चारों तरफ पक्की दीवार बनवा दें तो मैं निश्चित होकर आपके साथ उज्जैन चल सकूँ । "

मृगावतीने प्रभुसे दीक्षा ली। उसके साथ ही चंडप्रद्योतकी आठ स्त्रियोंने भी दीक्षा ली। ये सब महासती चंदनाके पास रहीं।

पाँच सौ चोर एक जंगलमें किला बनाकर रहते थे और चोरी व लूटका धंधा करते थे।

९ चोरोंके सर्दारका दीक्षा लेना

एक बार उन चोरोंका सर्दार कौशांबीमें भगवान महावीरके समवसरणमें गया। वहाँ भगवानकी देशना सुनकर उसे वैराग्य हुआ और उसने दीक्षा ले ली। फिर वह वहाँसे चोरोंके पास गया और उन चोरोंको भी, उपदेश देकर, दीक्षा दे दी।

विषयांध चंडप्रद्योत इस जालमें फँस गया और उसने कौशांबीके चारों तरफ पक्का कोट बनवा दिया। जब कोट बनकर तैयार हो गया तब मृगावतीने चारों तरफके दर्वाजे बंद करवा दिये और दीवारोंपर अपने सुभट चढ़वा दिये।

अब चंडप्रद्योतकी आँखें खुलीं परंतु कोई उपाय नहीं था। वह शहरको घेरकर पड़ा रहा। कई महीने बीत गये।

भगवान महावीर विहार करते हुए कौशांबीमें पधारे। प्रभुका आगमन सुनकर मृगावती अपने परिवार सहित समवसरणमें गई। चंडप्रद्योत भी समवसरणमें गया। प्रभुके दर्शनकरके और उनकी देशना सुनकर उसके वैर और काम शांत हो गये।

मृगावतीने अवसर देख अपना पुत्र उदयन चंडप्रद्योतको सौंपा। और भगवान महावीरसे दीक्षा ली। कौशांबीका नाश करने पर तुला हुआ चंडप्रद्योत मृगावतीकी युक्तिसे असफल हुआ और महावीरके प्रभावसे वैर भूलकर कौशांबीका रक्षक बन गया।

महावीर स्वामीके श्रावकोंमेंसे बारह श्रावक मुख्य थे। वे महान समृद्धि शाली थे। भगवानके उपदेशसे उन्होंने श्रावक व्रत अंगीकार किया था। उनके नाम और संक्षिप्त परिचय यहाँ दिये जाते हैं—

दस श्रावक ×

१-आनंद-यह वणिजक ग्रामका रहनेवाला था। इसके पास बारह करोड स्वर्ण मुद्राएँ थीं। गायोंके ४ गोकुल[1] थे।

२-कामदेव-यह चंपा नगरीका रहनेवाला था। इसके पास १८ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ थीं और ६० हजार गायोंके ६ गोकुल थे।

३-चुलनी पिता-यह काशीका रहनेवाला था। इसके पास २४ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ थीं और ८० हजार गायोंके ८ गोकुल थे।

४-सुरादेव-यह काशीका रहनेवाला था। इसके पास १८ करोड़ स्वर्णमुद्राएँ थीं और ६० हजार गायोंके ६ गोकुल थे।

५-चुल्लशतिक-यह आलभिका नगरीका रहनेवाला था। इसके पास १८ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ थीं और ६० हजार गायोंके ६ गोकुल थे।

६-कुंडगोलिक-यह कांपिल्यपुरका रहनेवाला था। इसके पास १८ करोड स्वर्ण मुद्राएँ और ६० हजार गायोंके ६ गोकुल थे।

७-शब्दालपुत्र-यह पौलाशपुरका रहनेवाला और

× इनका पूरा चरित्र जैनरत्नके अगले भागोंमें दिया जायगा

१—एक गोकुलमें १० हजार गायें रहती थीं।

आविका कुम्हार था। इसके पास १ करोड़ स्वर्णमुद्राएँ और १० हजार गायोंका एक गोकुल था। शहरके बाहर उसकी पाँच सौ दुकानें थीं।

८-महाशतक—यह राजगृहका रहनेवाला था। इसके पास २४ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ और ८ हजार गायोंके आठ गोकुल थे।

९-नंदिनीपिता-यह श्रावस्तीका रहनेवाला था। इसके पास १२ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ और ४ गायोंके ४ गोकुल थे।

१०—सालिकापिता-यह श्रावस्तीका रहनेवाला था। इसके पास १२ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ और ४ गायोंके ४ गोकुल थे।

महावीर विहार करते हुए श्रावस्ती नगरीमें आये और वहाँ कोष्टक नामक उद्यानमें समोसरे।

महावीर स्वामीपर तेजोलेश्या रखना

गोशालक जो अपने आपको जिन कहनेवाला गोशालक भी आया हुआ था। और वह हालाहला नामक कुम्हारिनकी दुकानमें ठहरा हुआ था।

गौतमस्वामीने यह बात सुनी और महावीरस्वामीसे पूछाः—"प्रभो! इस नगरीमें गोशालकको जिन कहते हैं। यह योग्य है या अयोग्य?"

महावीर स्वामीने उत्तर दियाः—"यह बात अयोग्य है; क्योंकि वह जिन नहीं है।"

गौतम स्वामीने पूछाः—"वह कौन है?"

महावीर स्वामी बोलेः—"वह मेरा एक पुराना शिष्य है। मंखका पुत्र है। अष्टांग निमित्तका ज्ञान समझकर उससे

लोगोंके दिलकी बात कहता है। मुझसे तेजोलेश्याकी साधना सीख, उसे साधा है और अब मिथ्यात्वी हो तेजोलेश्यासे अपने विरोधियोंका दमन करता है।"

समवशरणमें ये प्रश्नोत्तर हुए थे। इसमे शहरके लोगोंने भी ये बातें सुनीं थीं। लोग चर्चा करने लगे, महावीरस्वामी कहते हैं कि गोशालक जिन नहीं है। वह तो मंखका बेटा है।

गोशालकने ये बातें सुनीं। वह बड़ा गुस्से हुआ। वह जब अपने स्थानमें बैठा हुआ था तब उसने महावीर स्वामीके शिष्य आनंद मुनिको, जाते देख, बुलाया और तिरस्कार पूर्वक कहाः—"हे आनंद! तू जाकर अपने धर्मगुरुसे कहना कि वे मेरी निंदा करते हैं इस लिए मैं उनको परिवार सहित जलाकर राख कर दूँगा।"

आनंद बहुत डरे। उन्होंने जाकर महावीरसे सारी बातें कहीं और पूछाः—"हे भगवन्! गोशालक क्या ऐसा करने-की शक्ति रखता है?"

महावीर स्वामी बोलेः—"हे आनंद! गोशालकने तप करके तेजोलेश्या प्राप्त की है। इसलिए वह ऐसा कर सकता है। तीर्थंकरको वह नहीं जला सकता। हाँ तकलीफ उनको भी पहुँचा सकता है।"

थोड़ी ही देरमें आजीविक संघके साथ गोशालक वहाँ आ गया। और क्रोधके साथ बोलाः—"हे आयुष्यमान काश्यप! तुम मुझे मंखलीपुत्र गोशालक और अपना शिष्य बताते हो यह ठीक नहीं है। मखलीपुत्र गोशालक तो मरकर स्वर्गमें गया है।

उसका शरीर परिसह सहन करनेके योग्य था, इसलिए मैंने उसके शरीरमें प्रवेश किया है। एक सौ तेतीस बरसोंमें मैंने सात शरीर बदले हैं। यह मेरा सातवाँ शरीर है।"

महावीर बोलेः—"हे गोशालक! चोर जैसे कोई आश्रय-स्थान न मिलनेसे कुछ ऊन, सन या कईके तंतुओंसे शरीरको ढककर अपनेको छिपा हुआ मानता है, इसी तरह हे गोशालक! तुम भी तुच्छ शब्दोंके अंदर छिपा हुआ मानते हो; मगर असलमें तुम वो गोशालक ही।"

गोशालक अधिक नाराज हुआ। उसने अनेक तरहसे महावीरका तिरस्कार किया और कहाः—"हे काश्यप! मैं आज तुझे नष्ट भ्रष्ट कर दूँगा।"

गुरुकी निंदा देख मद्रक शिष्य सर्वानुभूति मुनि और सुनक्षत्र मुनिने उसे गुरुका अपमान नहीं करनेकी सलाह दी; परंतु उसने क्रोध करके उन दोनोंको भस्म किया। फिर उसने महावीरपर सोलह देशोंको भस्म करनेकी ताकत रखनेवाली तेजोलेश्या रक्खी; परंतु वह प्रभुपर कुछ असर न कर सकी। उनका शरीर कुछ गरम हो गया। फिर तेजोलेश्या लौटकर गोशालकके शरीरमें प्रवेश कर गई। तब गोशालक बोलाः—"हे काश्यप! अभी तू बच गया है पर मेरे तपसे जन्मी हुई तेजोलेश्या तुझे पित्तज्वरसे पीड़ित करेगी और इसके दुःखसे छःमहीनेके अंदर तू अवश्य ही मर जायगा।"

महावीर बोलेः—"हे गोशालक! मैं छः महीनेके अंदर न मरूँगा। मैं तो सोलह बरस तक और भी तीर्थंकर पर्यायमें

विचरण करूँगा। मगर तुम खुद ही सात दिनके अंदर पित्त-ज्वरसे पीडित होकर कालधर्मको प्राप्त करोगे!"

गोशालकको तेजोलेश्याका प्रतिघात हुआ। वह स्तब्ध हो रहा। महावीर स्वामीने अपने शिष्योंसे कहा:--"हे आर्यो! गोशालक जलकर राख बने हुए काष्ठकी तरह निस्तेज हो गया है। अब इससे धार्मिक प्रश्न करके इसको निरुत्तर करो। अब क्रोध करके यह तुम्हें कुछ नुकसान न पहुँचा सकेगा।"

श्रमण निर्ग्रंथोंने धार्मिक प्रतिचोदना. (गोशालकके मतसे प्रतिकूल प्रश्न) करके गोशालकको निरुत्तर किया। संतोषकारक उत्तर देनेमें असमर्थ होकर गोशालक बहुत खीझा। उसने निर्ग्रंथोंको हानि पहुँचानेका बहुत प्रयत्न किया; परंतु न पहुँचा सका। इसलिए अपने बालोंको खींचता और पैर पछाड़ता हुआ हालाहला कुम्हारिनके घर चला गया।

श्रावस्ती नगरीमें यह बात चारों तरफ फैल गई। लोग बातें करने लगे,—"नगरके बाहर कोष्ठक चैत्यमें दो जिन परस्पर विवाद कर रहे है। एक कहते हैं 'तुम पहले मरोगे!' दूसरे कहते है—'तुम पहले मरोगे!' इनमें सत्यवादी कौन है और मिथ्यावादी कौन है? कई महावीरको सत्यवादी बताते थे और कई गोशालकको सत्यवादी कहते थे; परंतु सात दिनके बाद जब गोशालकका देहांत * हुआ तब सबको विश्वास हो गया कि महावीर ही सत्यवादी हैं।

* गोशालक महावीर स्वामीके पाससे निकलकर हालाहला कुम्हारिनके यहाँ आया। मद्य पीने लगा। बर्तनोंके लिए तैयार की हुई मिट्टी उठा

सात दिनके बाद जब गोशालक कालधर्म पाया तब गौतम स्वामीने पूछा:—“भगवन्, गोशालक मरकर किस

उग्र कर अपने शरीरपर छुपड़ने लगा। जमीनपर लोट लोटकर आक्रंदन करने लगा। उसकी हालत पागलोंकीसी हो गई।

पुत्राल नामका एक पुरुष गोशालकका भक्त था। वह रातके पहले और पिछले पहरमें धर्म-जागरण किया करता था। एक दिन उसको शंका हुई कि हल्ला (कीट विशेष) का संस्थान कैसा होता है? चलूँ अपने सर्वज्ञ गुरुसे पूछूँ। पुत्राल जब हालाहलाके यहाँ पहुँचा तब उसने गोशालकको नाचते कूदते गाते रोते देखा। पुत्रालको गोशालककी ये क्रियाएँ अच्छी न लगीं। वह लौट गया।

गोशालकके शिष्य पानी लेकर आ रहे थे। उन्होंने पुत्रालको वापिस घरकी तरफ जाते देखा। निमित्तज्ञानसे उसके मनकी बात जानकर वे बोले— महानुभाव! तुमको हल्ला गोपालिकाका संस्थान जाननेकी इच्छा है। आओ सर्वज्ञ गुरुसे पूछ लो। गुरुका निर्वाण-समय नजदीक है। इसलिए वे चरम गान इत्यादि कर रहे हैं। पुत्राल बोला—“महाराज! मैं घर जाकर आता हूँ।”

गोशालकके शिष्योंने पुत्रालके आनेके पहले ही गोशालकको ठीक तरहसे बिठा दिया और पुत्रालका मन भी बता दिया। पुत्राल आया। गोशालकको नमस्कार करके बैठा। गोशालक बोला—“तुम्हें हल्ला गोपालिकाका संस्थान जाननेकी इच्छा है। वह संस्थान (आकृति) बाँसकी जड़के जैसा होता है।” पुत्राल संतुष्ट होकर अपने घर गया।

गोशालकने एक दिन अपना मृत्युकाल निकट जान अपने शिष्योंको बुलाया और कहा—“देखो मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ सर्वज्ञताका मैंने ढोंग किया था। मैं वास्तवमें ही महावीर स्वामीका शिष्य गोशालक हूँ। मैंने घोर पाप किया है। अपने गुरुपर तेजोलेश्या रखकर उन्हें बहुत कष्ट पहुँचाया है। और अपने दो मुनि महात्माओंको-जिन्होंने

गतिमें गया ? " महावीर स्वामीने उत्तर दियाः—" गोशालक मरकर अच्युत देवलोकमें गया है। और अनेक भवभ्रमण करनेके बाद वह मोक्षमें जायगा। "

श्रावस्तीसे विहारकर प्रभु मेंढिक ग्राममें आये और साणकोष्ठक नामके चैत्यमें उतरे। वहाँ गोशालककी तेजोलेश्याका प्रभाव हुआ। उन्हें रक्त अतिसार और पित्तज्वरकी बीमारी हो गई। वह दिन दिन बढती ही गई। प्रभुने उसका कोई इलाज नहीं किया। लोगोंमें ऐसी चर्चा आरंभ हो गई कि गोशालकके कथनानुसार महावीर बीमार हुए हैं और छः महीनेमें वे कालधर्मको प्राप्त करेंगे।

सिंह अनगारकी शंका

महावीरके शिष्य सिंह साणकोष्ठकसे थोडी ही दूरपर मालुका वनके पास छट्ट तपकर, ऊँचा हाथ करके ध्यान करते थे। ध्यानान्तरिका[1]में उन्होंने लोगोंकी ये बातें सुनीं। उन्हें यह शंका हो गई कि, महावीर स्वामी सचमुच ही छः महीनेमें

मुझे गुरुद्रोह नहीं करनेकी सलाह दी थी– मारकर मैं हत्यारा बना हूँ। इसलिए मरनेके बाद मेरे पैरोंमें रस्सी बाँधना, मुझे सारे शहरमें घसीटना और मेरे पापोंका शहरके लोगोंको ज्ञान कराना। "

महावीर स्वामीपर तेजोलेश्या रक्खी उसके ठीक सातवें दिन गोशालक मरा और उसके शिष्योंने अपने गुरुकी आज्ञाका पालन करनेके लिए, हालाहलाके घरहीमें, उसको पैरसे डोरी बाँधकर घसीटा।

१–एक ध्यान पूरा होनेके बाद जब तक दूसरा ध्यान आरंभ नहीं किया जाता है तब तकका काल ध्यानान्तरिका कहलाता है।

कालधर्म पायँगे। इस शंकासे वे बहुत दुःखी हुए और तप करनेके स्थानसे मालुका वनमें जाकर जार जार रोने लगे।

अन्तर्यामी श्रमण भगवान महावीरने अपने साधुओं द्वारा सिंह मुनिको बुलाया और पूछा—"हे सिंह! तुम्हें ध्यानान्तरिकामें मेरे मरनेकी शंका हुई और तुम मालुकावनमें जाकर खूब रोये थे न?"

सिंहने उत्तर दिया—"भगवन् यह बात सत्य है।"

महावीर स्वामी बोले—"हे सिंह! तुम निश्चिंत रहो। मैं गोशालकके कथनानुसार छः महीनेके अंदर कालधर्मको प्राप्त नहीं होऊँगा। मैं अबसे सोलह बरस तक और गंध हस्तिकी तरह निरुपसे, विचरण करूँगा।"

सिंहने बड़ी ही नम्रताके साथ निवेदन किया—"हे भगवन! आप और सोलह बरस तक विचरण करेंगे यह सत्य है; परंतु हम लोग आपके इस दुःखको नहीं देख सकते, इस लिए आप कृपा करके औषधका सेवनकर हमें अनुगृहीत कीजिए।"

प्रभुका सिंहके आग्रहसे औषध लेना

महावीर स्वामीने कहा—"हे सिंह! मेंढिक गाँवमें जाओ। वहाँ रेवती नामकी श्राविका है। उसने मेरे निमित्तसे दो कोहलोंका पाक बनाया है, उसे मत लाना; परंतु अपने लिए मार्जारकृत (मार्जार नामक वस्तुसे वास्य करनेवाला) बीजोरा पाक बनाया है। उसे ले आना।"

सिंहमुनि रेवतीके मकानपर गये। धर्मलाभ दिया। रेवतीने

वंदनाकर सुखसात पूछनेके बाद प्रश्न कियाः-" पूज्यवर आपका आना कैसे हुआ ? " सिंह मुनि बोलेः-" मै भगवानके लिए औषध लेने आया हूँ।"

रेवती प्रसन्न हुई। उसने भगवानके लिए जो कुष्मांड पाक तैयार किया था वह वहोराने लगी। सिंह मुनि बोलेः-" महाभाग! प्रभुके निमित्तसे बनाये हुए इस पाककी आवश्यकता नहीं है। तुमने अपने लिए बीजोरा पाक बनाया है वह लाओ।"

भाग्यमती रेवतीने इसको अपना अहोभाग्य जाना और बीजोरा पाक बड़े भक्ति-भावके साथ सिंह मुनिको वोहरा दिया। इस शुद्ध दानसे रेवतीने देवायुका बंध किया।

सिंह मुनि बीजोरा पाक लेकर महावीर स्वामीके पास गये और यथाविधि उन्होंने वह प्रभुके सामने रक्खा। प्रभुने उसका उपयोग किया और वे रोगमुक्त हुए। उस दिन गोशालकने तेजोलेश्या रक्खी उसे छः महीने बीते थे। प्रभुके आरोग्य होनेके समाचार सुनकर सभी प्रसन्न हुए।

राजर्षि प्रसन्नचद्रको दीक्षा

अनुक्रमसे विहार करते हुए महावीर स्वामी पोतनपुरमें पधारे और मनोरम नामके उद्यानमे समोसरे। पोतनपुरका राजा प्रसन्नचंद्र प्रभुको वंदना करने आया और प्रभुका उपदेश सुन, संसारको असार जान, दीक्षित हो गया। प्रभुके साथ रहकर राजर्षि प्रसन्नचंद्र सूत्रार्थके पारगामी हुए।

एक वार विहार करते हुए प्रभु राजगृह नगरके बाहर समोसरे। प्रसन्नचद्र मुनि थोडी दूरपर ध्यान करने लगे। राजा

श्रेणिक अपने परिवार और सैन्य सहित प्रभुके दर्शनको चला। रस्तेमें उसने राजर्षि प्रसन्नचंद्रको, एक पैरपर खड़े हो ऊँचा हाथ किये आतापना करते देखा। श्रेणिक भक्ति सहित उनको वंदना करके महावीर स्वामीके पास पहुँचा। और प्रदक्षिणा दे, वंदना कर, हाथ जोड़, बैठ व बोला-"भगवन् मैंने इस समय आते हुए राजर्षि प्रसन्नचंद्रको उग्र तप करते देखा है। अगर वे इस समय कालधर्मको पावें तो कौनसी गतिमें जायँगे?"

महावीर स्वामीने उत्तर दियाः-" सातवें नरकमें।"

श्रेणिकको आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा,-क्या यह भी संभव है कि ऐसा महान तपस्वी भी नरकमें जायें? संभव है मेरे सुननेमें चूक हुई हो। उसने फिर पूछाः-"प्रभो! राजर्षि प्रसन्नचंद्र यदि अभी कालधर्मको प्राप्त करें तो कौनसी गतिमें जायँगे?"

महावीर स्वामी बोले-" सर्वार्थसिद्धि विमानमें।"

श्रेणिकको और भी आश्चर्य हुआ। उसने पुनः पूछा:-"स्वामिन्! आपने दोनों बार दो जुदा जुदा बातें कैसे कहीं?"

महावीर स्वामी बोले-"मैंने ध्यानके भेदोंसे जुदा जुदा बातें कही थीं। तुमने पहले प्रश्न किया तब प्रसन्नचंद्र मुनि ध्यानमें अपने मंत्रियों और सामंतोंके साथ युद्ध कर रहे थे और दूसरी बार पूछा तब वे अपनी भूलकी आलोचना कर रहे थे।"

श्रेणिकने पूछाः-"ऐसी भूलका कारण क्या है?"

प्रभु बोले-" रस्तेमें आते हुए तुम्हारे सुमुख और दुर्मुख नामके दो सेनापतियोंने राजर्षिको देखा। सुमुख बोला-"ऐसा

घोर तप करनेवाले मुनिके लिए स्वर्ग या मोक्ष कोई स्थान दुर्लभ नहीं है।" यह सुनकर दुर्मुख बोलाः-"क्या तुम नहीं जानते कि यह पोतनपुरका राजा प्रसन्नचंद्र है। इसने अपने बालकुमारपर राज्यका भारी बोझा रखकर बहुत बड़ा अपराध किया है। इसके मंत्री चंपानगरीके राजासे मिलकर राजकुमारको राज्यच्युत करनेवाले हैं। इसकी स्त्रियाँ भी न जाने कहाँ चली गई हैं? जिसके कारण यह अनर्थ हुआ या होनेवाला है उसका तो मुँह देखना भी पाप है।

"दुर्मुखकी बातें सुनकर राजर्षिको क्रोध हो आया और वे अपने मंत्रियों और उनके साथियोंके साथ मन ही मन युद्ध करने लगा। उस समय उनके परिणाम भयंकर थे। उसी समय तुमने पूछा कि वे कौनसी गतिमें जायँगे और मैंने जवाब दिया कि वे सातवें नरकमें जायगे।

"मगर मनमें युद्ध करते हुए जब उनके सभी हथियार बेकार हुए तब उन्होंने अपने मुकुटसे शत्रुओंपर आघात करना चाहा। जब उन्होंने अपने सिरपर हाथ रक्खा तो उनका सिर उन्हें साफ मालूम हुआ। तुरत उन्हें खयाल आया कि, मैं तो मुनि हूँ। मुझे राज और कुटुंबसे क्या मतलब? धिक्कार है मेरी ऐसी इच्छाको! मैं त्याग करके भी पूरा त्यागी न हो सका! भगवन्! मैं किस विटंबनामें पड़ा?" इस तरह अपनी भूलकी आलोचना करने लगे। उसी समय तुमने दूसरी बार पूछा था कि, वे कौनसी गतिमें जायँगे और मैंने

ध्यान किया था; कि सर्वार्थसिद्धि विमानमें जायँगे। कारण, उस समय उनके भाव अति निर्मल थे।"

इस तरह अभी भगवानका कथन चल ही रहा था; कि आकाशमें दुंदुभिनाद सुनाई दिया। श्रेणिकने पूछा:-"प्रभो! यह दुंदुभिनाद कैसा है?"

प्रभु बोले:-"राजन्! प्रसन्नचंद्र मुनिको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। उनका ध्यान निर्मलतम हुआ। वे शुक्ल ध्यानपर आरूढ हुए। उनके मोहिनी कर्मका और उसके साथ ही ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी और अन्तराय कर्मका भी क्षय हो गया। इनके क्षय होते ही उनको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई है।"

शुभ या अशुभ ध्यान ही प्राणियोंको सुखमें या दुःखमें डालते हैं।

केवलज्ञानका उच्छेद

राजा श्रेणिकने पूछा:-"भगवन्! केवलज्ञानका उच्छेद कब होगा? उस समय विद्युन्माली नामक ब्रह्मलोकके इन्द्रका सामानिक देव अपनी चार देवियोंके साथ प्रभुको वंदना करने आया हुआ था। उसे बताकर प्रभुने कहा:-"इस पुरुषसे केवलज्ञानका उच्छेद होगा। यानी इस भरतक्षेत्रमें इस अवसर्पिणी कालमें यह पुरुष अन्तिम केवली होगा।"

श्रेणिकने पूछा:-"क्या देवताओंको भी केवलज्ञान होता है?"

प्रभुने उत्तर दिया:-"नहीं यह देव सात दिनके बाद च्यवकर राजगृहीके श्रेष्ठी ऋषभदत्तका पुत्र होगा। वैराग्य पाकर,

सुधर्माका शिष्य होगा। जंबू नाम रक्खा जायगा। उसे केवलज्ञान होगा। उसके बाद कोई भी केवली नहीं होगा।"

श्रेणिकने पूछाः-"देवताओंका जब अंतकाल नजदीक आता है तब उनका तेज घट जाता है। इनका तेज क्यों कम नहीं हुआ?"

प्रभुने उत्तर दियाः-"इनका तेज पहले बहुत था; इस समय कम है। इनके पुण्यकी अधिकताके कारण इनका तेज एक दम चला नहीं गया है।"

मेंढकसे देव

उसी समय एक कोढ़ी पुरुष आकर वहाँ बैठा और अपने शरीरसे झरते हुए कोढको पोछ पोछकर प्रभुके चरणोंमें लगाने लगा। यह देखकर श्रेणिकको बहुत क्रोध आया। प्रभुका इस तरह अपमान करनेवाला उन्हें बध्य मालूम हुआ; परंतु प्रभुके सामने वे चुप रहे। उन्होंने सोचा,-जब यह यहाँसे उठकर जायगा तब इसका वध करवा दूँगा।

प्रभुको छींक आई। कोढ़ी बोलाः—"मरो।" कुछ क्षणोंके बाद राजा श्रेणिकको छींक आई। कोढ़ी बोलाः—"चिरकाल तक जीते रहो।" कुछ देरके बाद अभयकुमारको छींक आई। कोढ़ी बोलाः—"मरो या जीओ।" उसके बाद कालसौकरिकको छींक आई। कोढ़ी बोलाः—"न जी न मर।"

कोढ़ीने जब महावीर स्वामीको कहा कि मरो, तब तो श्रेणिकके क्रोधका कोई ठिकाना ही न रहा। उसने अपने सुभ-

रोंको हुक्म दिया कि यह घोड़ी जब बाहर निकले तब इसे कैद कर लेना।

थोड़ी देरके बाद घोड़ी बाहर निकला। सुभटोंने उसे घेर लिया; मगर सुभटोंको अचरजमें डाल, हिम्मतको धारणकर यह घोड़ी आकाशमें उड़ गया।

सुभटोंने आकर श्रेणिकको यह हाल सुनाया। श्रेणिक अचरजमें पड़े। उन्होंने प्रभुसे पूछा–" प्रभो! वह घोड़ी कौन था?"

महावीर बोले–" वह देव था।"

श्रेणिकने पूछा–" तो वह घोड़ी कैसे हुआ?"

" अपनी देवी–मायासे।" कहकर प्रभुने उसकी जीवन कथा सुनाई और कहा–" देवसे पहलेकी इसकी योनी मेंडककी थी। इसी शहरके बाहरकी बावड़ीमें यह रहता था। जब हम यहाँ आये तो लोग हमें वंदना करने जाने लगे। पानी भरनेवाली स्त्रियोंको हमारे आनेकी बातें करते इसने सुना। इसके मनमें भी हमें वंदना करनेकी इच्छा हुई। यह बावड़ीसे निकलकर हमें वंदना करने चला। रस्तेमें आते तुम्हारे घोड़ेके पैरों तले कुचलकर मर गया। शुभ भावनाके कारण मरकर यह दर्दुरांक नामका देवता हुआ। अनुष्ठानके बिना भी प्राणीको उसकी भावनाका फल मिलता है। उसने मेरे पैरोंमें गोशीर्ष चंदन लगाया था परंतु तुम्हें यह कोढ़-रस दिखाई दिया था।"

श्रेणिकने पूछा–" जब आपको छींक आई तब यह अमांगलिक शब्द बोला, और दूसरोंको छींकें आईं तब मांगलिक शब्द बोला, इसका क्या कारण है?"

महावीर स्वामीने उत्तर दियाः–"मुझे उसने कहा कि 'मरो' इससे उसका यह अभिप्राय था कि तुम अब तक इस दुनियामें कैसे हो ? मोक्षमें जाओ। तुम्हे कहा कि 'जीते रहो' इससे उसका यह अभिप्राय था कि तुम इस शरीरमें रहोगे इसीमें सुख है; क्योंकि मरकर तुम नरकमें जाओगे। अभयकुमारको कहा कि 'जीओ या मरो' इसका यह मतलब था कि अगर तुम जीते रहोगे तो धर्म करोगे और मरोगे तो अनुत्तर विमानमें जाओगे। इससे जीवन, मरण दोनों समान हैं। कालसौकरिकको कहा था कि 'न जी न मर' इससे यह अभिप्राय था कि अगर जीएगा तो पाप करेगा और मरेगा तो सातवें नरकमें जायगा।"

राजगृहीसे विहारकर प्रभु पृष्ठचंपा नामक नगरीमें आये।

साल राजाको दीक्षा

वहाँका राजा साल और युवराज महासाल–जो सालका छोटा भाई था और जिसे राजाने युवराज-पद दिया था–दोनों प्रभुको वंदना करने आये और उपदेश पा, वैराग्यवान हो प्रभुके शिष्य हो गये। उन्होंने अपना राज्य अपने भानजे 'गागली' को दिया। गागलीके पिताका 'नाम पिठर' और माताका नाम 'यशोमती' था।

पृष्ठचंपासे विहारकर प्रभु चंपानगरी पधारे। वहाँ प्रभुके मुख्य शिष्य गौतम स्वामीने जिन लोगोंको दीक्षा दी थी उन्हें केवलज्ञान हो गया; परंतु गौतम स्वामीको नहीं हुआ। इससे वे दुखी हुए। उन्हें दुखी देख महावीर स्वामीने उन्हें कहाः–

"हे गौतम ! तुम्हें केवलज्ञान होगा; मगर कुछ समयके बाद। तुमको मुझपर बहुत मोह है। इस लिए जबतक तुम्हारा मोह नहीं छूटेगा तबतक तुम्हें केवलज्ञानकी प्राप्ति भी नहीं होगी।

अंबड़ नामका परिव्राजक प्रभुको वंदना करने आया। उसके हाथमें छत्री और त्रिदंड थे। उसने बड़े ही भक्तिभावसे प्रभुको वंदना की और कहा–"हे वीतराग! आपकी सेवा करनेकी अपेक्षा आपकी आज्ञा पालना विशेष लाभकारी है। जो आपकी आज्ञाके अनुसार चलते हैं, उन्हें मोक्ष मिलता है। आपकी आज्ञा है कि हेय (छोड़ने योग्य) का त्याग किया जाय और उपादेय (ग्रहण करने योग्य) को स्वीकारा जाय। आपकी आज्ञा है कि आस्रव हेय है और संवर उपादेय है। आस्रव संसार भ्रमणका हेतु है और संवरसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। दीनता छोड़ प्रसन्न मनसे जो आपकी इस आज्ञाको मानते हैं वे मोक्षमें जाते हैं।"

अंबड संन्यासीका सम्यक्त्व

प्रभुका उपदेश सुननेके बाद अंबड़ जब राजगृही जानेको तैयार हुआ तब प्रभुने अंबड़को कहा–"तुम राजगृहीमें नाग नामक सारथीकी स्त्री सुलसासे सुखसाता पूछना।"

१–सुलसा परम श्राविका थी। महावीर स्वामीने सुलसाहीकी सुखसाता क्यों पुछाई? उसके परम श्राविकापनकी जाँच करना चाहिए। यह सोचकर अंबड़ने अनेक युक्तियोंद्वारा उसे श्राविकापनसे च्युत करनेकी कोशिश की परंतु वह निष्फल हुआ। तब उसको विश्वास हुआ कि महावीर स्वामीने सुलसाके प्रति इतना भाव दिखाया वह योग्य ही था। यह देवी सोलह सतियोंमेंसे एक है। इसका विस्तृत चरित्र अगले भागमें दिया जायगा।

चंपा नगरीसे विहार कर, प्रभु दशार्ण देशमें आये। वहाँकी राजधानी दशार्ण नामकी नगरी थी। वहाँ दशार्णभद्र नामका राजा राज्य करता था। दशार्ण नगरीके बाहर प्रभुका समवसरण हुआ। राजाको यह खबर मिली। वह अपने पूर्ण वैभवके साथ प्रभुके दर्शन करने गया और प्रभुको वंदना कर उचित स्थान पर बैठा। उसको गर्व हुआ कि, मेरे समान वैभववाला दूसरा कौन है।

राजा दशार्णभद्र

इन्द्रको राजा दशार्णभद्रके इस अभिमानकी खबर पडी। उसने राजाको, उपदेश देना स्थिर कर एक अद्भुत रथ बनाया। वह विमान जलमय था। उसके किनारोंपर कमल खिले हुए थे। हंस और सारस पक्षी मधुर बोल रहे थे। देव वृक्षों और देवलताओंसे सुंदर पुष्प उसमें गिरकर तैर रहे थे। नील कमलोंसे वह विमान इन्द्रनील मणिमयसा लगता था। मरकत मणिमय कमलिनीमें सुवर्णमय विकसित कमलोंके प्रकाशका प्रवेश होनेसे वह अधिक चमकदार मालूम हो रहा था। और जलकी चपल तरंगोंकी मालाओंसे वह ध्वजा-पताका-ओंकी शोभाको धारण कर रहा था।

ऐसे जलकांत विमानमें बैठकर इन्द्र अपने देव-देवांगना ओं सहित समवशरणमें आया, इन्द्रका वैभव देखकर दशार्ण-भद्र राजाके गर्वमें धक्का लगा। उसे खयाल आया कि, मेरा वैभव तो इस वैभवके सामने तुच्छ है। छिः मैं ईसीपर इतना फूल रहा हूँ। क्यों न मैं भी उस अनंत वैभवको पानेका

"हे गौतम! तुम्हें केवलज्ञान होगा; मगर कुछ समयके बाद। तुमको मुझपर बहुत मोह है। इस लिए जबतक तुम्हारा मोह नहीं छूटेगा तबतक तुम्हें केवलज्ञानकी प्राप्ति भी नहीं होगी।"

अंबड़ नामका परिव्राजक प्रभुको वंदना करने आया। उसके हाथमें छत्री और त्रिदंड थे। उसने

अंबड़ सन्यासीका आगमन

बड़े ही भक्तिभावसे प्रभुको वंदना की और कहा:—"हे वीतराग! आपकी सेवा करनेकी अपेक्षा आपकी आज्ञा पालना विशेष लाभकारी है। जो आपकी आज्ञाके अनुसार चलते हैं, उन्हें मोक्ष मिलता है। आपकी आज्ञा है कि हेय (त्यागने योग्य) का त्याग किया जाय और उपादेय (ग्रहण करने योग्य) को स्वीकारा जाय। आपकी आज्ञा है कि आस्रव हेय है और संवर उपादेय है। आस्रव संसार भ्रमणका हेतु है और संवरसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। दीनता छोड़ प्रसन्न मनसे जो आपकी इस आज्ञाको मानते हैं व मोक्षमें जाते हैं।"

प्रभुका उपदेश सुननेके बाद अंबड़ जब राजगृही जानेको तैयार हुआ तब प्रभुने अंबड़को कहा:—"तुम राजगृहीमें नाग नामक सारथीकी स्त्री सुलसासे सुखसाता पूछना।"

1–सुलसा परम श्राविका थी। महावीर स्वामीने सुलसाकी सुखसाता क्यों पुछाई? उसके परम श्राविकापनकी परीक्षा करना चाहिए। यह सोचकर अंबड़ने अनेक युक्तियोंद्वारा उसे श्राविकापनसे च्युत करनेकी कोशिश की; परंतु वह निष्फल हुआ। तब उसको विश्वास हुआ कि महावीर स्वामीने सुलसाके प्रति इतना प्रेम दिखाया वह योग्य ही था। यह देवी सोलह सतियोंमें से एक है। इसका विस्तृत चरित्र अगले पर्वमें दिया जायगा।

चंपा नगरीसे विहार कर, प्रभु दशार्ण देशमे आये। वहाँकी राजधानी दशार्ण नामकी नगरी थी। वहाँ दशार्णभद्र नामका राजा राज्य करता था। दशार्ण नगरीके वाहर प्रभुका समवसरण हुआ। राजाको यह खवर मिली। वह अपने पूर्ण वैभवके साथ प्रभुके दर्शन करने गया और प्रभुको वंदना कर उचित स्थान पर वैठा। उसको गर्व हुआ कि, मेरे समान वैभववाला दूसरा कौन है।

राजा दशार्णभद्र

इन्द्रको राजा दशार्णभद्रके इस अभिमानकी खवर पडी। उसने राजाको, उपदेश देना स्थिर कर एक अद्भुत रथ वनाया। वह विमान जलमय था। उसके किनारोपर कमल खिले हुए थे। हंस और सारस पक्षी मधुर वोल रहे थे। देव वृक्षों और देवलताओंसे सुंदर पुष्प उसमें गिरकर वैर रहे थे। नील कमलोंसे वह विमान इन्द्रनील मणिमयसा लगता था। मरकत मणिमय कमलिनीमें सुवर्णमय विकसित कमलोंके प्रकाशका प्रवेश होनेसे वह अधिक चमकदार मालूम हो रहा था। और जलकी चपल तरंगोंकी मालाओंसे वह ध्वजा-पताका-ओंकी शोभाको धारण कर रहा था।

ऐसे जलकांत विमानमें वैठकर इन्द्र अपने देव-देवांगना ओं सहित समवशरणमें आया, इन्द्रका वैभव देखकर दशार्ण-भद्र राजाके गर्वमें धक्का लगा। उसे खयाल आया कि, मेरा वैभव तो इस वैभवके सामने तुच्छ है। छिः मै इसीपर इतना फूल रहा हूँ। क्यों न मै भी उस अनंत वैभवको पानेका

अपना करके जिसको प्राप्त करनेका उपदेश महावीर स्वामी दे रहे हैं।

राजाने वहीं अपने वस्त्राभूषण निकाल डाले और अपने हाथोंसे लोच भी कर डाला। देवता और मनुष्य सभी विस्मित थे। फिर दशार्णभद्रने गौतम स्वामीके पास आकर मुनिलिंग धारण किया और देवाधिदेवके चरणोंमें उत्साह पूर्वक वंदना की।

दशार्णभद्रका गर्वहरण करनेकी इच्छा रखनेवाला इन्द्र आकर मुनिके चरणोंमें झुका और बोला:—"महात्मन्! मैंने आपके वैभव-गर्वको अपने वैभवसे नष्ट कर देना चाहा। वह गर्व नष्ट हुआ भी; परंतु वैभवको एकदम छोड़ देनेके आपके महान त्यागने मुझे गर्वहीन कर दिया। स्वामी महात्मन्! मेरी भक्ति-वंदना स्वीकार कीजिए।"

वैभवभोगीसे वैभवत्यागी महान होता है। दुनियामें उसकी कोई समता नहीं।

धन्ना और शालिभद्रको वैराग्य

धन्ना और शालिभद्र दोनों महान समृद्धिवान थे। राजगृही नगरीमें रहते थे। एक बार राजा श्रेणिकको शालिभद्रकी माताने अपने यहाँ आमंत्रण दिया। राजा श्रेणिक उसके घर आये। शालिभद्र सातवें खंडमें रहते थे। उन्हें माताने आकर कहा:—"पुत्र! नीचे चलो। हमारे स्वामी राजा आये हैं।"

'मेरे सिरपर भी स्वामी है' यह बात शालिभद्रको बहुत बुरी लगी और वे सब वैभवका त्याग करने लगे। शालिभद्रके बहनोई 'धन्ना' थे। उनको भी यह बात मालूम हुई। उन्हें भी वैराग्य हो आया। फिर जब भगवान महावीर विहार करते हुए वैभारगिरिपर आये। तब शालिभद्र और धन्नाने भगवानके पास जाकर दीक्षा ले ली।*

रोहिणेय चोरको दीक्षा

प्रभु राजगृहीके अंदर समवसरणमें विराजमान थे। उस समय एक पुरुष प्रभुके पास आया, चरणोंमें गिरा और बोलाः-"नाथ! आपका उपदेश संसार सागरमें गोता खाते हुए मनुष्यको पार करनेमें जहाजका काम देता है। धन्य हैं वे पुरुष जो आपकी वाणी श्रद्धापूर्वक सुनते हैं और उसके अनुसार आचरण करते हैं। भगवन्! मैंने तो एक वार कुछ ही शब्द सुने थे; परंतु उन्होंने भी मुझे बचा लिया है।"

फिर उसने प्रभुसे उपदेश सुना। सुनकर उसे वैराग्य हुआ। उसने पूछाः—"प्रभो! मैं यतिधर्म पानेके योग्य हूँ या नहीं? क्योंकि मैंने जीवनभर चोरीका धंधा किया है और अनेक तरहके अनाचार सेवे हैं।"

प्रभु बोलेः—"रोहिणेय! तुम यतिधर्मके योग्य हो।"

फिर रोहिणेय चोर मुनि हो गये।* प्रभु महावीरके उपदेशने और धर्मके आचरणने चोरको एक पूज्य पुरुष बना दिया।

---

*इनके विस्तृत चरित्र अगले भागोंमें दिये जायँगे।

भगवान विहार करते हुए मरुमंडलके वीतभय नगरमें पधारे। वहाँके राजा उदायनने प्रभुसे भव-
राज्य उत्पन्न करे दीक्षा देख सुन, संसारसे विमुख हो दीक्षा ग्रहण की। *

प्रभु विहार करते हुए राजगृहीमें पधारे। श्रेणिक अभय-कुमार वगैरा-प्रभुके दर्शनोंको गये।
अंतिम राजर्षि कौन होगा? अभयकुमारने–प्रभुसे प्रश्न किया– "हे भगवन्! अंतिम राजर्षि कौन होंगे?" प्रभुने उत्तर दिया–"उदायन राजा।"

अभयकुमारको जब यह मालूम हुआ कि, अंतिम राजर्षि उदायन होगा तब उनके मनमें संक-
अभयकुमारको दीक्षा * वहीं मन गई। त्याग और भोगका द्वंद्व शुरू हुआ। भोग कहता था,–
"राज्य–सम्पत्ति–सुख भोगनेमें पड़ोगे तो तुम्हें फिर कभी त्यागका सुख न मिलेगा राजा बनकर फिर दीक्षा न ले सकोगे।

धर्मपरायण अभयकुमार राज्यसम्पत्तिसुखके लोभमें न पड़े। उन्होंने अपने पिता श्रेणिकसे आज्ञा लेकर प्रभुके पाससे दीक्षा ले ली।

---

* इनके विस्तृत चरित्र जैनरत्नके अगले भागोंमें लिखे जायँगे।

हल्ल विहल्लको दीक्षा

राजा श्रेणिकके हल्ल और विहल्ल नामक दो लड़के भी थे। श्रेणिकने उन्हें महामूल्यवान कुंडल और सेचनक नामका हाथी दिये थे। श्रेणिकका लड़का कूणिक श्रेणिकको कैदकर राज्यपर बैठा। फिर उसने हल्ल विहल्लसे कुंडल और हाथी लेना चाहा। इससे हल्ल व विहल्ल अपने मामाके पास विशाला नगरी चले गये। मामा चेटकने उनको आश्रय दिया। कूणिकने विशालापर चढ़ाई की महान युद्धके बाद कूणिक जीता और हल्ल विहल्ल संसारसे उदास हो भगवान महावीर स्वामीके पास गये। और उपदेश सुन, वैराग्य पा प्रभुके पाससे उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। *

श्रेणिककी पत्नियोंको दीक्षा

प्रभु विहार करते हुए चंपानगरीमें पधारे। वहाँ श्रेणिक राजाकी अनेक राणियोंने पति और पुत्रोंके वियोगसे उदास हो प्रभुके पाससे दीक्षा ली।

राजा कूणिक * भी प्रभुके पास वंदना करने आया और उसने नम्रता पूर्वक हाथ जोड़ कर पूछाः—"भगवन्! जो चक्रवर्ती उम्रभर भोगको नहीं छोड़ते वे मरकर कहाँ जाते हैं?

प्रभुने उत्तर दियाः—"वे मरकर सातवें नरकमें जाते हैं।"

कूणिकने फिर पूछाः—"मैं मरकर कहाँ जाऊँगा?"

प्रभु बोलेः—"तुम मरकर छठे नरकमें जाओगे।"

कूणिकने पूछाः—"सातवेंमें क्यों नहीं?"

*इनके विस्तृत चरित्र अगले भागोंमें दिये जायँगे।

प्रभु बोले—"इस लिए कि तुम चक्रवर्ती नहीं हो।"
कूणिकने पूछा—"मैं चक्रवर्ती क्यों नहीं हूँ?"
प्रभु बोले—"इसलिए कि तुम्हारे पास चक्रादि रत्न नहीं हैं।"
कूणिक इससे बहुत दुखी हुआ और वह चक्रवर्ती बननेका इरादा कर अपने महलोंमें चला गया।

प्रभु विहार करते हुए अपापा पुरीमें समोसरे।
नगरीमें राजा हस्तिपाल प्रभुको वंदना
राजा हस्तिपालक स्वप्नोंका फल करने आया। वंदना कर, अपने
आसनपर बैठा।

प्रभुने उपदेश दिया—"इस जगतमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामके चार पुरुषार्थ हैं। इनमेंसे अर्थ और काम तो नाम मात्रके पुरुषार्थ हैं। क्योंकि इनका परिणाम अनर्थरूप होता है। वास्तवमें पुरुषार्थ तो मोक्ष है। और उसका कारण धर्म है। धर्म संयम आदि दस तरहका है। वह संसार-सागरसे जीवोंको तारता है। संसार अनंत दुःखरूप है और मोक्ष अनंत सुखरूप है। इसलिए संसारको छोड़ने और मोक्षको पानेका कारण एक मात्र धर्म ही है। जैसे लँगड़ा मनुष्य भी सवारीके सहारे दूरकी मुसाफिरी कर सकता है वैसे ही घोर कर्मी मनुष्य भी धर्मके सहारे मोक्षमें जा सकता है।"

राजाने नम्रतापूर्वक पूछा—"भगवन्! मैंने रातको स्वप्नमें क्रमशः, हाथी, बंदर, क्षीरवाला वृक्ष, कौआ, सिंह, कमल, बीज और कुंभ ये आठ चीजें देखी थीं। कृपा करके कहिए कि इनका फल क्या होगा?"

प्रभु बोले:—

१—हाथी—अबसे श्रावक समृद्धिके—दौलतके—क्षणिक सुखमें लुब्ध होंगे। हाथीके समान शरीर रखते हुए भी आलसी होकर घरमें पड़े रहेंगे। महासंकटमें आ पड़नेपर भी और परचक्रका भय होनेपर भी वे संयम नहीं लेंगे। यदि कुछ ले लेंगे तो कुसंग दोषसे उसे छोड़ देंगे। कुसंग दोषमें भी संयम पालनेवाले विरले ही होंगे।

२—बंदर—दूसरे स्वप्नका फल यह है कि गच्छके स्वामी आचार्य लोग बंदरके समान चपल (अस्थिर) स्वभाववाले, थोडी शक्तिवाले और व्रत-पालनमें प्रमाद करनेवाले होंगे। इतना ही नहीं जो धर्ममें स्थिर होंगे उनके भावोंको भी विपरीत बनायँगे। धर्मके उद्योगमें तत्पर तो विरले ही निकलेंगे। जो खुद धर्माचरणमें शिथिल होते हुए भी दूसरोंको धर्मोपदेश देंगे उनकी लोग ऐसे ही दिल्लगी करेंगे जैसे गावोंके लोग शहरमें रहनेवाले (श्रमसे डरनेवाले) लोगोंकी किया करते हैं। हे राजन्, भविष्यमें इस तरहके प्रवचनसे अज्ञात पुरुष (आचार्य ?) होंगे।

३—क्षीरवृक्ष—तीसरे स्वप्नका फल यह है कि, साती क्षेत्रोंमें द्रव्यका उपयोग करनेवाले, क्षीरवृक्षके जैसे दातार श्रावक होंगे। उन्हें लिंगधारी (वेषधारी) ठग रोक लेंगे, (अपने रागी बना लेंगे) ऐसे पाखंडियोंकी संगतिसे सिंहके समान सत्त्वशील आचार्य भी उन्हें श्वानके जैसे सारहीन मालूम होंगे। सुविहित मुनियोंकी विहारभूमिमें ऐसे लिंगधारी शूलकासा त्रास

देंगे। हीरालालके समान भावकोंको अच्छे मुनियोंकी संगति नहीं करने देंगे।

४–काकपक्षी–इस स्वप्नका यह फल है कि, जैसे काकपक्षी विहार वापिकामें नहीं जाता वैसे ही पद्मत सामायिक मुनि धर्मार्थी होते हुए भी अपने गच्छोंमें नहीं रहेंगे। वे दूसरे गच्छके सूरियोंके साथ, जो कि मिथ्यामत फैलानेवाले होंगे, मूर्खाग्रहसे चलेंगे। हितैषी अगर उनको उपदेश करेंगे कि इनके साथ रहना अनुचित है तो वे हितैषियोंका सामना करेंगे।

५–सिंह–इस स्वप्नका यह फल है कि, जैन धर्म जो सिंहके समान है–जातिस्मरणादि ज्ञानरहित और धर्मके रहस्यको–समझनेवालोंसे शून्य होकर इस भरतक्षेत्ररूपी वनमें विचरण करेगा–रहेगा। उसे अन्य तीर्थी तो किसी तरहकी बाधा न पहुँचा सकेंगे; परंतु स्वलिंगी ही–जो सिंहके शरीरमें पैदा होनेवाले कीड़ोंकी तरह होंगे–इसको कष्ट देंगे, धर्म-शासनकी निंदा करायँगे।

६–कमल–इस स्वप्नका यह फल है कि,–जैसे स्वच्छ सरोवरमें होनेवाले कमल सभी सुगंधवाले होते हैं, वैसे ही उत्तम कुलमें पैदा होनेवाले भी सभी धर्मात्मा होते हैं; परंतु भविष्यमें ऐसा न होगा। वे धर्मपरायण होकर भी कुसंगतिसे भ्रष्ट होंगे। मगर जैसे गंदे पानीके गढ्ढेमें भी कभी कभी कमल उग आते हैं वैसे ही कुग्राम और कुदेशमें जन्मे हुए भी कोई कोई मनुष्य धर्मात्मा होंगे; परंतु वे हीनजातिके होनेसे अनुपादेय होंगे।

७-बीज-इसका यह फल है कि, जैसे ऊसर भूमिमें बीज डालनेसे फल नहीं मिलता वैसे ही कुपात्रको धर्मोपदेश दिया जायगा; परंतु उसका कोई परिणाम नहीं होगा। हाँ कभी कभी ऐसा होगा कि जैसे किसी आशयके वगैर किसान, घुणाक्षर न्यायसे अच्छे खेतमें बुरे बीजके साथ उत्तम बीज भी डाल देता है वैसे ही श्रावकोंसे सुपात्रदान भी कर दिया जायगा।

८-कुंभ-इसका यह फल होगा कि क्षमादि गुणरूपी कमलोंसे अंकित और सुचरित्ररूपी जलसे पूरित एकांतमें रक्खे हुए कुंभके समान महर्षि विरले ही होंगे। मगर मलिन कलशके समान शिथिलाचारी लिंगी (साधु) जहाँ तहाँ दिखाई देंगे। वे ईर्ष्यावश महर्षियोंसे झगडा करेंगे और लोग (अज्ञानताके कारण) दोनोंको समान समझेंगे। गीतार्थ मुनि अंतरंगमें उत्तम स्थितिकी प्रतीक्षा करते हुए और संयमको पालते हुए वाहरसे दूसरोंके समान बनकर रहेंगे।"

राजा हस्तिपालको दीक्षा

राजाको वैराग्य हुआ और राजपाट सुखसंपत्तिको छोड़ उसने दीक्षा ली और घोर तप कर मोक्षपदको प्राप्त किया।

कल्की राजा

गौतम स्वामीने पूछाः-"भगवन्! तीसरे आरेके अंतमें भगवान ऋषभ देव हुए। चौथे आरेमें अजितनाथादि तेईस तीर्थंकर हुए जिनमेंके अंतिम तीर्थंकर आप हैं। अब दुःखमा नामके पाँचवें आरेमें क्या होगा सो कृपा करके फर्माइए!"

महावीर स्वामीने जवाब दिया:-"हे गौतम ! हमारे मोक्ष जानेके बाद तीन बरस और साढ़े आठ महीने बीतनेपर पाँचवाँ आरा आरंभ होगा। हमारे निर्वाण जानेके उन्नीस सौ और चौदह बरस बाद पाटलीपुत्रमें, म्लेच्छ कुलमें एक लड़का पैदा होगा। बड़ा होनेपर वह राजा बनेगा और कल्कि, रुद्र और चतुर्मुख नामसे प्रसिद्ध होगा। उस समय मथुराके रामकृष्णका मंदिर अकस्मात्-पुराना वृक्ष जैसे पवनसे गिर जाता है वैसे ही-गिर पड़ेगा। क्रोध, मान, माया और लोभ उसमें इसी तरहसे जन्मेंगे जैसे अनाजमें घुणा जातिका कीड़ा पैदा होता है। उस समय प्रजाको राजाका और चोरोंका दोनों हीका भय बना रहेगा। गंध और रसका क्षय होगा। दुर्भिक्ष और अतिवृष्टिका प्रकोप रहेगा। कल्कि अठारह बरसका होगा तब तक महामारीका रोग रहा करेगा। फिर कल्कि राजा बनेगा।

"एक बार कल्कि राजा फिरनेको निकलेगा। रस्तेमें पाँच स्तूपोंको देखकर वह पूछेगा कि,—"ये स्तूप किसने बनवाये हैं ?" उसे जवाब मिलेगा कि,—"पहले नंद नामका एक राजा हो गया है। वह कुबेरके भंडारी जैसा धनिक था। उसने इन स्तूपोंके नीचे बहुतसा धन गाड़ा है। आज तक उस धनको किसी राजाने नहीं निकलवाया।" धनका लोभी राजा इन स्तूपोंको खुदवाकर धन निकाल लेगा।

फिर वह यह सोचकर कि शहरमें और स्थानोंमें भी धन गड़ा हुआ होगा, सारे शहरको खुदवा डालेगा। उसमेंसे एक लवणदेवी नामकी शिलामयी गाय निकलेगी। वह चौराहेमें

खड़ी कर दी जायगी । वह अपना प्रभाव दिखलानेके लिए मुनियोंके-जो गोचरी जाते हुए उसके पाससे निकलेंगे-अपना सींग अड़ा देगी । इसको साधु भविष्यमें अति वृष्टिकी सूचना समझेंगे और वहाँसे चले जायँगे । कुछ भोजनवस्त्रके लोलुप यह कहकर वहीं रहेंगे कि कालयोगसे जो कुछ होनहार है वह जरूर होगा । होनहारको जिनेश्वर भी नहीं रोक सकते हैं ।

" फिर राजा कल्कि सभी धर्मोंके साधुओंसे कर लेगा । इसके बाद वह जैनसाधुओंसे भी कर माँगेगा । तब जैन साधु कहेंगे:—" हे राजन् ! हम अकिंचन हैं और गोचरी करके खाते हैं । हमारे पास क्या है सो हम तुम्हें दें ? हमारे पास केवल धर्मलाभ है । वही हम तुमको देते हैं । पुराणोंमें लिखा है कि, जो राजा ब्रह्मनिष्ठ तपस्वियोंकी रक्षा करता है उसे उनके पुण्यका छठा भाग मिलता है । इसलिए हे राजन् ! आप इस दुष्कर्मसे हाथ उठाइए । आपका यह दुष्कर्म देश और शहरका अकल्याण करेगा । "

" इससे कल्कि बड़ा गुस्से होगा । उसको नगरके देवता समझायँगे कि हे राजन् ! निष्परिग्रही मुनियोंको मत सताओ । ऐसे मुनियोंको ' कर ' के लिए सताकर तुम अपनी मौतको पास बुलाओगे ।

" इसको सुनकर कल्कि डरेगा और मुनियोंको नमस्कार कर उनसे क्षमा माँगेगा ।

" फिर शहरमें, उसके (शहरके) नाशकी सूचना देनेवाले बड़े बड़े भयंकर उपद्रव होंगे । सत्रह रात दिन तक बहुत मेंह

बरसेगा। इससे गंगामें (?) बाढ़ आयगी और पाटलीपुत्रको डुबा देगी। शहरमें केवल प्रातिपद नामके आचार्य कुछ श्रावक, थोड़े शहरके लोग और कल्कि राजा किसी ऊँचे स्थानमें चढ़ जानेसे बच जायँगे। शेष सभी नगरजन मर जायँगे।

"पानीके शांत होनेपर कल्कि नंदके पाये हुए धनसे पुनः शहर बसायगा। लोग आयँगे। शहरमें और देशमें सुख शांति होगी। एक पैसेका मटका भरके धान्य बिकेगा, तो भी खरीदार नहीं मिलेगा। साधुसंत सुखसे विचरण करेंगे। पचास बरस तक सुकाल रहेगा।

"जब राजा कल्किकी मौत निकट आयगी तब वह पुनः धर्मात्माओंको दुःख देने लगेगा। संघके लोगों सहित प्रातिपद आचार्यको वह गोशालामें बंद कर देगा और उनसे कहेगा—अगर तुम्हारे पास पैसा देनेको नहीं है तो जो कुछ माँगकर लाते हो उसीमेंका छठा भाग दो। इससे कायोत्सर्ग पूर्वक सब शक्रेन्द्रकी आराधना करेंगे। शासनदेवी आकर कल्किको कहेगी,— "हे राजन! साधुओंने इन्द्रकी आराधनाके लिए कायोत्सर्ग किया है। इससे तेरा अहित होगा।" मगर कल्कि कुछ भी ध्यान नहीं देगा।

"संघकी तपस्यासे इन्द्रका आसन काँपेगा। वह अपने अवधिज्ञानसे संघका संकट जान कर कल्किके शहरमें ब्राह्मणका रूप धरकर राजाके पास जाकर पूछेगा— "हे राजन! तुमने साधुओंको क्यों कैद किया है?"

"तब कल्कि राजा बोलेगा—"हे वृद्ध! ये लोग मेरे

शहरमें रहते हैं; परंतु मुझे कर नहीं देते। इनके पास पैसे नहीं है, इस लिए मैंने इनको कहा कि, तुम अपनी भिक्षाका छठा भाग मुझे दो; मगर वह भी देनेको ये राजी नहीं हुए। इसी लिए मैने इनको गायोंके वाड़ेमे वंद कर दिया है।"

तब शक्रेन्द्र उनको कहेगा,–"उन साधुओंके पास तुझे देनेके लिए कुछ भी नहीं है। भिक्षा वे इतनी ही लाते हैं जितनी उनको जरूरत होती है। अपनी भिक्षामेंसे वे किसीको एक दाना भी नहीं दे सकते। ऐसे साधुओंसे भिक्षांश माँगते तुम्हें लाज क्यो नहीं आती? अगर अब भी अपना भला चाहते हो तो साधुओंको छोड़ दो वरना तुम्हारा अपकार होगा।"

"ये बातें सुनकर कल्कि नाराज होगा और अपने सुभटोंको हुक्म देगाः–"इस ब्राह्मणको गर्दनिया देकर निकाल दो।"

"इन्द्र कुपित होकर तत्काल ही कल्किको भस्म कर देगा; उसके पुत्र दत्तको जैनधर्मका उपदेश देकर राज्यगद्दीपर बिठायगा, संघको मुक्त कर नमस्कार करेगा और फिर देवलोकमें चला जायगा। कल्कि छियासी वर्षकी आयु पूर्णकर दुरंत नरक भूमिमें जायगा।

"राजा दत्त अपने पिताको मिले हुए अधर्मके फलको याद करके और इन्द्रके दिये हुए उपदेशका खयाल करके सारी पृथ्वीको अरिहंतके चैत्योंसे विभूपित कर देंगे। पाँचवें आरेके अंत तक जैनधर्म चला करेगा।

"तीर्थंकर जब विचरण करते हैं तब यह भरतक्षेत्र सब-तरह समृद्ध और सुखी होता है। ऐसा भान पड़ता है मानों यह दूसरा स्वर्ग है। इसके गाँव शहरों जैसे, शहर अलकापुरी जैसे, कुटुंबीजन राजाके जैसे राजा कुबेरके भंडारी जैसा, आचार्य चंद्रके जैसे पिता देवके जैसे, सासु माताके समान और ससुर पिताके समान होते हैं। लोग सत्य और शौचमें तत्पर, धर्माधर्मके जाननेवाले, विनीत, देवगुरुके भक्त और स्वदारासंतोषी (अपनी स्त्रीके सिवा सभी स्त्रियोंको अपनी माँ बहन समझनेवाले) होते हैं। उन लोगोंमें, विज्ञान विद्या और कुलीनता होते हैं। परचक्र, ईति और चोरोंका भय नहीं होता है, न कोई नया कर ही डाला जाता है। ऐसे समयमें भी अरिहंतकी भक्तिको नहीं जाननेवाले और विपरीत दृष्टिवाले कुतीर्थियोंसे मुनियोंको उपसर्ग होते ही रहते हैं और दस आश्चर्य भी होते हैं।

तीर्थंकर विचरण करते हैं तब कैसी दशा रहती है।

"इसके बाद दुःषमा नामक पाँचवें आरेमें मनुष्य कषायोंसे लुप्त धर्मबुद्धिवाले और बाड़ बिनाके खेतकी तरह मर्यादा रहित होंगे। जैसे जैसे पाँचवाँ काल आगे बढ़ेगा वैसे ही वैसे लोग विशेष रूपसे कुतीर्थियोंद्वारा की गई भ्रमित बुद्धिवाले अहिंसाके त्यागी होंगे। गाँव श्मशानके जैसे शहर प्रेतलोक जैसे कुटुंबी दासोंके जैसे और राजा यमदंडके जैसे

पाँचवाँ आरा

होंगे। राजा अपने सेवकोंपर सख्ती करेंगे और सेवक लोगों-को सतायँगे, अपने संबंधियोंको लूटेंगे। इस तरह मात्स्य-न्यायकी प्रवृत्ति होगी। जो अंतमें होगा वह मध्यमें आयगा और जो मध्यम होगा वह अंतमें जायगा। यानी जो हल्का है वह ऊँचा हो जायगा और जो ऊँचा है वह हल्का हो जायगा। इस तरह श्वेत ध्वजावाले (१) जहाजोंकी तरह सभी चलित हो जायँगे (अपने कर्तव्यको भूल जायँगे।) चोर चोरीसे, अधिकारी भूतकी बाधावाले मनुष्यकी तरह उद्दंडता एवं रिश्वतसे और राजा करके बोझेसे प्रजाको सतायँगे। लोग स्वार्थ-परायण, परोपकारसे दूर, सत्य, लज्जा या दाक्षिण्य (मर्यादा) हीन और अपनोंहीके वैरी होंगे। न गुरु शिष्यको शिष्यकी तरह समझेगा न शिष्य ही गुरुभक्ति करेगा। गुरु शिष्योंको उपदेशादि (और आचरण द्वारा) श्रुतज्ञान नहीं देंगे। क्रमशः गुरुकुलका निवास बंद होगा, धर्ममें अरुचि होगी और पृथ्वी बहुतसे प्राणियोंसे आकुल व्याकुल हो जायगी। देवता प्रत्यक्ष नहीं होंगे, पिताकी पुत्र अवज्ञा करेंगे, बहुएँ सर्पिणीसी आचरण करेंगी। और सासुएँ कालरात्रिके जैसी प्रचंड होंगी। कुलीन स्त्रियाँ भी लज्जा छोड़कर भ्रूभंगीसे, हास्यसे, आलापसे अथवा दूसरी तरहके हावभावों और विलासोंसे वेश्या जैसी लगेंगी। श्रावक और श्राविकापनका ह्रास होगा,

१–तालाव या समुद्रके अंदरकी बड़ी मछली छोटी मछलियोंको खाती हैं। मझली और छोटियोंको खाती है। छोटी उनसे और छोटि-योंको खाती हैं। बड़ा छोटेको खाय, इसीका नाम मात्स्य न्याय है।

चतुर्विध धर्मका सब होगा और साधु साध्वियोंके पर्वोके दिन भी या स्वममें भी निमंत्रण नहीं मिलेगा। छोटे आप लोक धर्ममें। धर्ममें भी इच्छा होगी। सत्पुरुष दुःखी और दुष्ट पुरुष सुखी रहेंगे। मणि, मंत्र, औषध, तंत्र, विज्ञान, धन, आयु, फल, पुष्प, रस रूप, शरीरकी ऊँचाई और धर्म एवं दूसरे शुभ भावोंकी पाँचवें आरेमें दिन प्रति दिन हानि होगी। और उसके बाद छठे आरेमें तो और भी अधिक हानि होगी।

"इस तरह पुण्यरूप कार्य कालके फैलनेपर जिस मनुष्यकी बुद्धि धर्ममें होगी वह धन्य होगा। इस भरतक्षेत्रमें दुःखमा कालके अंतिम भागमें दुःप्रसह नामके आचार्य फल्गुश्री नाम्नी साध्वी, नायल नामक श्रावक और सत्यश्री नाम्नी श्राविका, विमलवाहन नामक राजा और सुमुख नामक मंत्री होंगे। उस समय शरीर दो हाथका उम्र ज्यादासे ज्यादा बीस बरसकी होगी। तप उत्कृष्ट छठका होगा। दशवैकालिकका ज्ञान रखनेवाले चौदह पूर्वधारी समझे जायँगे। और ऐसे मुनि दुःप्रसह सूरि उस संघरूप तीर्थको प्रतिबोध करेंगे। इस लिए उस समय तक अगर कोई यह कहे कि धर्म नहीं है तो वह संघ बाहिर किया जाय।

"दुःप्रसहाचार्य बारह वर्षतक घरमें रहेंगे और आठ बरस तक साधुधर्म पाल अंतमें अट्ठम तप करेंगे और मरकर सौधर्म देवलोकमें जायँगे। उस दिन सवेरे चारित्रका, मध्यान्हमें राजधर्मका और संध्याको अग्निका उच्छेद होगा। इस तरह इक्कीस हजार बरस प्रमाणका दुःखमा काल पूरा होगा।

"फिर इक्कीस हजार बरस वाला एकांत दुःखमा नामका छठा आरा शुरु होगा। वह भी इक्कीस हजार बरस तक रहेगा। उसमें धर्म तत्त्व नष्ट होनेसे चारों तरफ

छठा आरा

हाहाकार मच जायगा। पशुओंकी तरह मनुष्योंमें भी माता और पुत्रकी व्यवस्था नहीं रहेगी। रात दिन सख्त हवा चलती रहेगी। बहुत धूल उड़ती रहेगी। दिशाएँ धूँएके जैसी होनेसे भयानक लगेंगी। चंद्रमामें अत्यंत शीतलता और सूरजमें अत्यंत तेज धूप होगी। इससे बहुत ज्यादा सर्दी और बहुत ज्यादा गरमीके कारण लोग अत्यंत दुःखी होंगे।

"उस समय विरस बने हुए मेघ खारे, खट्टे विपेले विपाग्निवाले और वज्रमय होकर, उसी रूपमें वृष्टि करेंगे। इससे लोगोंमें खाँसी, श्वास, शूल, कोढ़, जलोदर, बुखार, सिरदर्द और ऐसे ही दूसरे अनेक रोग फैल जायँगे। जलचर, स्थलचर, और खेचर तिर्यंच भी महान दुःखमें रहेंगे। खेत, वन, बाग, वेल, वृक्ष और घासका नाश हो जायगा। वैताढ्य और ऋपभकूट पर्वत एवं गंगा और सिंधु नदियाँ रहेंगे दूसरे सभी पहाड़, खड्डे और नदियाँ समतल हो जायँगे। भूमि कहीं अंगारोंके समान दहकती, कहीं बहुत धूलवाली और कहीं बहुत कीचडवाली होगी। मनुष्योंके शरीर एक हाथ प्रमाण वाले और खराब रंगवाले होंगे। स्त्रीपुरुष कटु भापी, रोगी, क्रोधी, चपटी नाकवाले, निर्लज्ज और वस्त्रहीन होंगे। उत्कृष्ट आयु पुरुषोंकी बीस बरसकी और औरतोंकी सोलह

बरसकी होगी। उस समय स्त्री छः बरसकी उम्रमें गर्भधारण करेगी और प्रसवके समय अत्यंत दुःखी होगी। सोलह बरसकी उम्रमें तो वह बहुतसे बालबच्चोंवाली होगी और बुढ्ढा गिनी जायगी।
वैताढ्य गिरिके बीच उसके पास बिलोंमें लोग रहेंगे। गंगा और सिंधु दोनों नदियोंके तीरपर वैताढ्यके दोनों तरफ नौ नौ बिल हैं इस बहत्तर बिल हैं, उनमें रहेंगी । तिर्यंच जाति मात्र बीज रूपसे रहेगी । उस विषम कालमें मनुष्य और पशु सभी मांसाहारी, क्रूर और अविवेकी होंगे । गंगा और सिंधु नदीके प्रवाहमें बहुत मछलियाँ और कछुए होंगे। उनका पाट बहुत छलेय हो जायगा। लोग मछलियाँ पकड़कर धूपमें रक्खेंगे। धूपकी गरमीसे व पक जायँगी। उन्हींको लोग खायँगे। इस तरह उनका जीवन-निर्वाह होगा । कारण उस समय अन्न, फल, दूध, दही वगैरा कोई भी खानेकी चीज नहीं मिलेगी। पैया, आसन वगैरा सोने बैठनेके पदार्थ भी न रहेंगे।
भरत और ऐरावत नामके दसों क्षेत्रोंमें इसी तरह पाँचवाँ और छठा आरा इक्कीस इक्कीस हजार बरस तक रहेंगे। अब सर्पिणीमें जैसे अंत्य (छठा) और उपांत्य (पाँचवाँ) आरा होते हैं, वैसे ही उत्सर्पिणीमें अंत्य (पहला) और उपांत्य (दूसरा) आरा होते हैं।
' उत्सर्पिणीमें दुःषमा दुःषमा नामका (अवसर्पिणी कालके छठे आरे जैसा) पहला आरा होगा।
उत्सर्पिणी कालके आरे इस आरेके अंतमें पाँच जातिके मेघ बरसेंगे । हरेक जातिका मेघ सात

सात दिन तक बरसेगा। पहला पुष्कर मेघ बरसकर पृथ्वीको तृप्त करेगा। दूसरा क्षीर मेघ बरसकर अनाज पैदा करेगा। तीसरा घृत मेघ स्नेह (चिकनापन) पैदा करेगा। चौथा अमृत मेघ ओषधियाँ उत्पन्न करेगा। पाँचवाँ रस मेघ पृथ्वी वगैराको रसमय बनायगा।

"इस तरह पैंतीस दिन तक दुर्दिन नाशक वृष्टि होगी। बादमें वृक्ष, औषध, लता इत्यादि हरियाली देखकर बिलमें रहनेवाले मनुष्य खुश होकर बाहर निकलेंगे। उसके बाद भारतभूमि फलवती होगी। मनुष्य मांस खाना छोड़ देंगे। फिर जैसे जैसे समय बीतता जायगा वैसे ही वैसे मनुष्योंके रूपमे, शरीरके संगठनमें, आयुष्यमें और धान्यादिमे वृद्धि होती जायगी। क्रमशः सुखकारी पवन बहेगा, अनुकूल ऋतुएँ होंगी और नदियोंमे जल चढ़ेगा। इससे मनुष्य और तिर्यंच सभी नीरोग हो जायँगे।

"दुःखमा कालके (उत्सर्पिणीके दूसरे) आरेके अंतमें इस भारतवर्षमें सात कुलकर होंगे। (१) विमलवाहन (२) सुदाम (३) संगम (४) सुपार्श्व (५) दत्त (६) सुमुख (७) संमुची।

"उनमेंके पहले विमलवाहनको जातिस्मरणज्ञान होगा। इससे वे गाँव और शहर बसायँगे, राज्य कायम करेंगे, हाथी, घोड़े, गाय, बैल वगैरे पशुओंका संग्रह करेंगे और शिल्प, लिपि और गणितादिका व्यवहार लोगोंमें चलायँगे। बादमें

जब दूध, दही अग्नि आदि पैदा होंगे तब वह राजा अन्न पका-कर, लोगोंको, उसे खानका उपदेश देगा।

'इस तरह जब दुःसमा काल बीत जायगा तब शतद्वार नामक नगरमें सातवें कुलकर राजाकी रानी भद्रादेवीके कोखसे श्रेणिकका जीव पुत्ररूपमें उत्पन्न होगा। उनके आयुष्य और शरीरादि मेरे समान होंगे। उनका नाम पद्मनाभ होगा। वे ही उत्सर्पिणी कालमें पहले तीर्थंकर होंगे।

उसके बाद अवसर्पिणी कालकी तरह उलटी तरहके हिसाबसे तेईस तीर्थंकरोंके शरीर आयुष्य और अंतरमें अभिवृद्धि होगी। उनके नाम क्रमशः इस तरह होंगे—

" श्रेणिकका जीव पद्मनाभ नामक पहले तीर्थंकर होंगे। सुपार्श्वका जीव सूरदेव नामक दूसरे तीर्थंकर होंगे। पोट्टिलका जीव सुपार्श्व नामक तीसरे तीर्थंकर होंगे। दृढायुका जीव स्वयंप्रभु नामके चौथे तीर्थंकर होंगे। कार्तिक सेठका जीव सर्वानुभूति नामक पाँचवें तीर्थंकर होंगे। शंख श्रावकका जीव देवश्रुत नामक छठे तीर्थंकर होंगे। नंदका जीव उदय नामक सातवें तीर्थंकर होंगे। सुनंदका जीव पेढाल नामक आठवें तीर्थंकर होंगे। केकसीका जीव पोट्टिल नामक नवें तीर्थंकर होंगे। रेवतीका जीव शतकीर्ति नामक दसवें तीर्थंकर होंगे। सत्यकीका जीव सुव्रत नामक ग्यारहवें तीर्थंकर होंगे। कृष्ण वासुदेवका जीव अमम नामक बारहवें तीर्थंकर होंगे। बलदेवका जीव अकषाय नामक तेरहवें तीर्थंकर होंगे। रोहिणीका जीव निष्पुलाक नामक चौदहवें तीर्थंकर

होंगे। सुलसाका जीव निर्मम नामक पन्द्रहवें तीर्थकर होंगे। रेवतीका जीव चित्रगुप्त नामक सोलहवें तीर्थकर होंगे। गवालीका जीव समाधि नामक सत्रहवें तीर्थकर होगे। गार्गुलका जीव संवर नामक अठारहवें तीर्थकर होंगे। द्वीपायनका जीव यशोधर नामक उन्नीसवें तीर्थकर होंगे। कर्णका जीव विजय नामक वीसवें तीर्थकर होंगे। नारदका जीव मल्ल नामक इक्कीसवें तीर्थकर होंगे। अंबडका जीव देव नामक बाईसवें तीर्थकर होंगे। बारहवें चक्रवर्तीका जीव अनंतवीर्य नामक तेईसवें तीर्थकर होंगे। और स्वातिका जीव भद्र नामक चौवीसवें तीर्थकर होंगे।*

यह चौवीसी जितने समयमें होगी उतने समयमें दीर्घदंत, गूढदंत, शुद्धदंत, श्रीचंद्र, श्रीभूति, श्रीसोम, पद्म, दशम, विमल, विमलवाहन और अरिष्ठ नामके बारह चक्रवर्ती, नंदी, नदीमित्र सुंदर बाहु, महाबाहु, इतिबल, महाबल, बल, द्विपृष्ट और त्रिपृष्ट नामके नौ वासुदेव (अर्द्धचक्री); जरांत, अजितधर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, आनंद, नंदन, पद्म और संकर्षण नामके नौ प्रतिवासुदेव; और तिलक, लोहजंघ, वज्रजंघ, केशरी, बली, प्रल्हाद, अपराजित, भीम और सुग्रीव नामके नौ प्रतिवासुदेव होंगे।

इस तरह उत्सर्पिणी कालमें तिरसठ शलाका पुरुष होंगे।"

---

* ये नाम त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्रसे लिये गये है। पूर्वभवोंमें पाठातर भी हैं।

केवलज्ञानका उच्छेद

इसके बाद श्रीसुधर्मास्वामी गणधरने पूछा—"भगवन्! केवलज्ञान कब उच्छेद होगा और अंतिम केवली कौन होगा?"

प्रभुने उत्तर दिया:—"मेरे मोक्ष जानेके कुछ काल बाद तुम्हारे, जंबू नामक, शिष्य अंतिम केवली होंगे। उनके बाद केवलज्ञानका उच्छेद हो जायगा। केवलज्ञानके साथ ही, मनः पर्यय ज्ञान, पुलाकलब्धि, परमावधि ज्ञान, क्षपक श्रेणी व उपशम श्रेणी, आहारक शरीर, जिनकल्प, और त्रिविध (परिहार विशुद्धि, सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात चारित्र ये तीन) संयम भी विच्छेद हो जायँगे।

"तुम्हारे शिष्य जंबू चौदह पूर्वधारी होकर मोक्षमें जायँगे उनके शिष्य शय्यम्भव भी द्वादशांगीके पारगामी होंगे। वे पूर्वोमेंसे दशवैकालिक सूत्रकी रचना करेंगे। उनके शिष्य यशोभद्र सर्व पूर्वधारी होंगे और उनके शिष्य संभूतिविजय और भद्रबाहु, भी चौदह पूर्वधारी होंगे। संभूतिविजयके शिष्य स्थूलभद्र चौदह पूर्वधर होंगे। उनके बाद अंतिम चार पूर्वोका उच्छेद हो जायगा। उनके बाद महागिरि और सुहस्तिसे वज्रस्वामी तक दस तीर्थके प्रवर्तक दस पूर्वधर होंगे।'

इस तरह भविष्य कहकर महावीर स्वामी समवसरणसे बाहर निकले और हस्तिपाल राजाकी शुल्कशालामें (करसंग्रह करनेकी जगहमें) गये।

मोक्ष (निर्वाण)

उसी दिन प्रभुने सोचा, आज मैं मुक्त होनेवाला हूँ और गौतमका मुझपर बहुत ज्यादा स्नेह है। वह स्नेह ही उनको केवलज्ञान नहीं होने देता है। इसलिए वह काम करना चाहिए जिससे उनका स्नेह नष्ट हो जाय। फिर उन्होंने गौतम स्वामीको कहाः—"गौतम, पासके गाँवमें देवशर्मा नामका ब्राह्मण है। वह तुम्हारे उपदेशसे प्रतिबोध पायगा इसलिए तुम उसको उपदेश देने जाओ।"

गौतमस्वामी जैसी आपकी आज्ञा कह, नमस्कार कर देवशर्माके यहाँ गये। उन्होंने उसे उपदेश दिया और वह प्रतिबोध पाया।

उस दिन कार्तिक[1] मासकी अमावस, और पिछली रात थी। भगवानके छट्ठका तप था। जब चंद्र स्वाति नक्षत्रमें आया तब प्रभुने पचपन अध्ययन पुण्यफलविपाक संबंधी और पचपन अध्ययन पापफलविपाक संबंधी कहे। फिर उनने छत्तीस अध्ययनवाला अप्रश्न (यानी किसीके पूछे विना) व्याकरण कहा। जब प्रभु प्रधान नामक अध्ययन कहने लगे तब इन्द्रोंके आसन काँपे। वे भगवानका मोक्ष निकट जान अपने परिवार सहित प्रभुके पास आये। फिर शक्रेन्द्रने, साश्रु नयन, हाथ जोड प्रभुसे विनती कीः—"हे नाथ, आपके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञानके समय हस्तोत्तरा नक्षत्र था।

---

१ गुजरातमें और महाराष्ट्रमें इसको आसोजवदि अमावस कहते हैं।

इस समय उसमें भस्मक ग्रह संक्रांत होने वाला है—आनेवाला है। आपके जन्म नक्षत्रमें आया हुआ यह ग्रह दो हजार बरस तक आपकी संततिको (साधु, साध्वी और श्रावक, श्राविकाको) तकलीफ देगा इसलिए जबतक भस्मक ग्रह आपके जन्म नक्षत्रमें न आ जाए तबतक आप प्रतीक्षा कीजिए। अगर वह आपके सामने आ जायगा तो आपके प्रभावसे प्रभावहीन हो जायगा—अपना फल न दिखा सकेगा। जब आपके स्मरण मात्र ही कुस्वप्न, बुरे शकुन और बुरे ग्रह श्रेष्ठ फल देनेवाले हो जाते हैं तब जहाँ साक्षात आप विराजते हों वहाँका तो कहना ही क्या है? इसलिए हे प्रभो! एक क्षणके लिए अपना जीवन टिकाकर रखिए कि जिससे इस दुष्ट ग्रहका उपशम हो जाए।"

प्रभु बोले:—"हे इन्द्र! तुम जानते हो कि आयु बढ़ानेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है फिर तुम शासन-प्रेममें मुग्ध होकर ऐसी अनहोनी बात कैसे कहते हो? आगामी दुःषम कालकी प्रवृत्तिसे तीर्थको हानि पहुँचनेवाली है। उसमें भावीके अनुसार यह भस्मक ग्रह भी अपना फल दिखायगा।"

उस दिन प्रभुको केवलज्ञान हुए उनतीस बरस पाँच महीने और बीस दिन हुए थे। उस समय पर्यंकासनपर बैठे हुए प्रभुने बादर काययोगमें रहकर बादर मनोयोग और वचनयोगको रोका। फिर सूक्ष्म काययोगमें स्थित होकर योगविचक्षण प्रभुने बादर काय योगको रोका। तब उन्होंने वाणी और मनके सूक्ष्म योगको रोका। इस तरह सूक्ष्म क्रियावाला तीसरा शुक्ल ध्यान प्राप्त

किया। फिर सूक्ष्म काययोगको—जिसमें सारी क्रियाएँ बंद हो जाती हैं—रोककर समुच्छिन्न-क्रिया नामक चौथा शुक्ल ध्यान प्राप्त किया। फिर पाँच ह्रस्व अक्षरोंका उच्चारण किया जा सके इतने काल मानवाले, अव्यभिचारी ऐसे शुक्लध्यानके चौथे पाये द्वारा—पपीतेके बीजकी तरह—कर्मबंधसे रहित होकर, यथा स्वभाव रजुगति द्वारा उर्द्ध्व गमन कर मोक्षमें गये। उस वक्त जिनको लव मात्रके लिए भी सुख नहीं होता है ऐसे नारकी जीवोंको भी एक क्षणके लिए सुख हुआ।

वह चंद्र नामका संवत्सर था, प्रीतिवर्द्धन नामका महीना था, नंदिवर्द्धन नामका पक्ष था और अग्निवेस नामका दिन था। उस रातका नाम देवानंदा[2] था। उस समय अर्च नामका लव[1], शुल्क नामका प्राण, सिद्ध नामका स्तोक, सर्वार्थसिद्ध नामका मुहूर्त[3] और नाग नामका करण था। उस समय बहुत ही सूक्ष्म कुंथू कीट उत्पन्न हुए थे। वे जब स्थिर होते थे तब दिखते भी न थे। अनेक साधुओंने और साध्वियोंने उन्हें देखा और यह सोचकर कि अब संयम पालना कठिन है, अनशन कर लिया।

विक्रम सं. ४७१ (ई. स. ५२८) पूर्व कार्तिक वदि अमावसके दिन महावीरस्वामी मोक्षमें गये।

---

१ इसका नाम उपशम भी है। २ इसका दूसरा नाम निरति है। ३ सात स्तोक या ४९ श्वासोश्वास प्रमाणका एक कालविभाग।

इस समय उसमें भस्मक ग्रह संक्रांत होने वाला है—जन्मराश है। आपके जन्म नक्षत्रमें आया हुआ यह ग्रह दो हजार बरस तक आपकी संतिको (साधु, साध्वी और श्रावक, श्राविकाको) तकलीफ देगा इसलिए जबतक भस्मक ग्रह आपके जन्म नक्षत्रमें न आ जाय तबतक आप प्रतीक्षा कीजीए। अगर यह आपके सामने आ जायगा तो आपके प्रभावसे प्रभावहीन हो जायगा—अपना फल न दिखा सकेगा। जब आपके स्मरण मात्रसे ही कुस्वप्न, बुरे शकुन और बुरे ग्रह श्रेष्ठ फल देनेवाले हो जाते हैं तब जहाँ साक्षात आप विराजते हों वहाँका तो कहना ही क्या है? इसलिए हे प्रभो एक क्षणके लिए अपना जीवन विताकर रखिए कि जिससे इस दुष्ट ग्रहका उपशम हो जाय।"

प्रभु बोले—"हे इन्द्र तुम जानते हो कि आयु बढ़ानेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है फिर तुम शासन-प्रेममें मुग्ध होकर ऐसी अनहोनी बात कैसे कहते हो? आगामी दुखमा कालकी महिमासे तीर्थको हानि पहुँचनेवाली है। उसमें भावीके अनुसार यह भस्मक ग्रह भी अपना फल दिखायगा।"

उस दिन प्रभुको केवलज्ञान हुए उन्तीस बरस पाँच महीने और बीस दिन हुए थे। उस समय पर्यंकासनपर बैठे हुए प्रभुने बादर काययोगमें रहकर बादर मनोयोग और वचनयोगको रोका। फिर सूक्ष्म काययोगमें स्थित होकर योगविचक्षण प्रभुने बादर काय योगको रोका। तब उन्होंने वाणी और मनके सूक्ष्म योगको रोका। इस तरह सूक्ष्म क्रियावाला तीसरा शुक्ल ध्यान प्राप्त

बरस छः महीने और १५ दिन* घोर तप करनेके बाद उनको केवलज्ञान हुआ। २९ बरस ५ महीने और २० दिन तक केवली अवस्थामें जीवोंको कल्याणका उपदेश दे विक्रम सं. ४७१ (ई. स. ५२८) पूर्व कार्तिक वदि ३० को ७२ बरस ७ महीने और १८ दिनकी आयु पूर्णकर मोक्ष गये। ‡‡ श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकरको मोक्ष गये जब २५० बरस बीत गये थे तब श्रीमहावीर स्वामीका निर्वाण हुआ।

गौतमगणधरको ज्ञान और मोक्षलाभ

जब देवशर्माको उपदेश देकर गौतमस्वामी लौटे तो मार्गमें उन्होंने भगवानके निर्वाण होनेके समाचार सुने। सुनकर वे

* उपवासों और पारणोंके दिनोंकी संख्या ४५१५ दिन है। इन दिनोंके बरस महीने निकालनेसे १२ बरस ६ महीने और १५ दिन होते हैं और दीक्षाकी मिति मार्गशीर्ष वदि १० से केवलज्ञान प्राप्तिकी तिथि वैशाख सुदि १० तक साढे पांच महीने ही आते हैं। इससे मालूम होता है कि उस बरस चैत्र अथवा वैशाखका महीना अधिक मास रहा होगा। अधिकमास हमेशा चैत, वैसाख, जेठ, असाढ या सावनहीमें आते हैं।

‡‡ सामान्यता महावीरस्वामीकी उम्र ७२ बरसकी मानी जाती है। इसका कारण मोटे रूपसे उम्र बताना है। जन्म, दीक्षा, ज्ञान और निर्वाणकी तिथियोंके साथ हिसाब लगानेसे भगवानकी उम्र ७२ बरस ७ महीने और १८ दिन आती है। यदि इसमें कोई भूल हो तो विद्वान सुधारकर सूचना देनेकी कृपा करें।

दीवाली पर्व

उस समय राजाओंने देखा कि, अब ज्ञानदीपक—भावदीपक बुझ गया है इसलिए उन्होंने द्रव्यदीपक जलाये । दीपक-प्रकाशने बाह्य जगतको प्रकाशित कर दिया । उस दिनकी स्मृतिमें आज भी हिन्दुस्थानमें कार्तिक वदि अमावस्याके दिन दीपक जलाते हैं और उस दिनको दीवाली पर्वके नामसे पहचानते हैं ।

इन्द्रादि देवोंने 'निर्वाणकल्याणक' मनाया और वे सभी अपने अपने स्थानोंको चले गये ।

महावीर स्वामी विक्रम सं ५४२ (ईसी सन ६) पूर्व चैत्र सुदि १३ को जन्मे । २ बरस ७ महिने और १२ दिन गृहस्थ रहकर विक्रम सं ५१३ (ई स ५७) पूर्व मार्गशीर्ष वदि १ के दिन उन्होंने दीक्षा ली । वि० सं० ५ १ (ई स ५ ८) पूर्व वैशाख सुदि १ के दिन १२

१ हिन्दुधर्मके अनुसार दीवाली पर्व आरंभ होनेके दो कारण बताये जाते हैं । (क) उस दिन विष्णु (भगवान)ने बलिराजाकी कैदसे देवोंको और लक्ष्मीजीको छुड़ाया था । इसलिए उसकी स्मृतिमें दीवाली पर्व मनाया जाता है । (ख) उस दिन श्रीरामचंद्रजीने रावणको मारकर पृथ्वीका भार कम किया था । और सारे देशमें आनंद मनाया गया था । उसीकी स्मृतिमें कार्तिकवदि अमावस्या के दिन आज भी आनंदोत्सव मनाया जाता है ।

तीर्थंकरोंके संबंधकी जानने योग्य जरूरी बातें

१ तीर्थंकरका नाम
२ च्यवन तिथि
३ किस देवलोकसे आये
४ जन्म स्थान
५ जन्म तिथि
६ पिताका नाम
७ माताका नाम
८ जन्म नक्षत्र
९ जन्म राशि
१० लक्षण
११ शरीर प्रमाण
१२ आयु प्रमाण
१३ शरीरका रंग
१४ पद
१५ विवाहित या अविवाहित
१६ कितने मनुष्योंके साथ दीक्षा ली ?
१७ दीक्षाकी जगह
१८ दीक्षाके दिन कौनसा तप था
१९ दी० बाद प्रथम पारणेमें क्या मिला ?
२० प्रथम पारणा किसके घर किया ?
२१ कितने दिनका पारणा किया
२२ दीक्षा तिथि
२३ कितने समय तक छद्मस्थ रहे ?
२४ केवलज्ञान होनेका स्थान
२५ ज्ञानोत्पत्तिके दिन कौनसा तप था ?
२६ किस वृक्षके नीचे केवलज्ञान हुआ ?
२७ केवलज्ञानकी तिथि
२८ गणधरोंकी संख्या
२९ साधुओंकी संख्या
३० साध्वियोंकी संख्या
३१ उनके साधुओंमें वैक्रियलब्धिवाले
३२ उ० सा० अवधिज्ञानी
३३ उ० सा० केवली
३४ उ० सा० मन पर्ययज्ञानी
३५ उ० सा० चौदह पूर्वधारी
३६ वादियोंकी संख्या
३७ श्रावकोंकी संख्या
३८ श्राविकाओंकी संख्या
३९ शासनके यक्षका नाम
४० शासनकी यक्षिणीका नाम
४१ प्रथम गणधरका नाम
४२ प्रथम आर्याका नाम
४३ मोक्ष-स्थान
४४ मोक्ष-तिथि
४५ मोक्षके दिन तप
४६ किस आसनसे मोक्ष गये
४७ पूर्वके तीर्थंकर मोक्ष गये उनके कितने बरस बाद मोक्ष गये ?
४८ गण-नाम
४९ योनि-नाम
५० मोक्ष गये तब उनके साथ कितने साधु मोक्ष गये थे
५१ सम्यक्त्व पानेके बाद उनके जीवने कितने भव किये
५२ किस कुलमें जन्म
५३ गर्भवासमें कितने महीने रहे

सूचना।—आगेके कोष्ठकोंमें यहाँ ऊपर संख्याओंके सामने जो सवाल दिये हैं उन्हीं सवालोंके जवाब क्रमश प्रत्येक तीर्थंकरके लिए संख्याओंके सामने दिये गये हैं। ऊपर तीर्थंकरोंके नाम देखकर उन्हींके संबंधकी नीचेकी ५२ बातें समझ लेना।

शोक-मग्न हो गये और सोचनेलगे,–स्वामीमें मई निर्वाणमें जाते करनेवाले थे, तो भी मुझे उन्होंने दूर भेज दिया। हाय दुर्भाग्य! जीवनभर सेवा करके भी अंतमें उनकी सवासे वंचित रह गया। वे धन्य हैं जो अंत समयमें उनकी सेवामें थे; वे भाग्यशाली हैं जो अंतिम प्रभातक प्रभुके मुखारविंदसे उपदेशामृत सुनते रहे। हे हृदय! प्रभुके वियोग-समाचार सुनकर भी तू टूक टूक क्यों नहीं हो जाता? तू कैसा कठोर है कि इस वज्र-पातके होनेपर भी कायम है?

वे फिर सोचने लगे,–प्रभुने कितनी बार उपदेश दिया कि मोह–माया जगत्के बंधन हैं, परंतु मैंने उस उपदेशका पालन नहीं किया। वे वीतराग थे, मोह-ममतासे मुक्त थे। उनके साथ मोह कैसा? मैं कैसा भ्रांत हो रहा था। उपकारी प्रभुने मेरी भ्रांति मिटानेहीके लिए मुझे दूर भेज दिया था। धन्य प्रभो! आप धन्य हैं! जो आपके सरल उपदेशसे निर्मोही न बना उसे आपने स्वयमकर निर्मोही बनाया। सत्य है, आत्मा–निर्मोह आत्मा–किससे मोहमाया रखेगा? गौतम सावधान हो, प्रभुके पद-चिन्होंपर चल, अपने स्वरूपको पहचान। अगर प्रभुके पास सदा रहना है तो निर्मोही बन और आत्मस्वरूपमें लीन हो।

गौतमस्वामीको इसी तरह विचार करते हुए केवलज्ञान प्राप्त हुआ। फिर उन्होंने बारह बरसतक धर्मोपदेश दिया। अंतमें वे राजगृह नगरमें आये और भवोपग्राही कर्मोंको नाश कर मोक्षमें गये।

तीर्थंकरोंके संबंधकी जानने योग्य जरूरी बातें

१ तीर्थंकरका नाम
२ च्यवन तिथि
३ किस देवलोकसे आये
४ जन्म स्थान
५ जन्म तिथि
६ पिताका नाम
७ माताका नाम
८ जन्म नक्षत्र
९ जन्म राशि
१० लक्षण
११ शरीर प्रमाण
१२ आयु प्रमाण
१३ शरीरका रंग
१४ पद
१५ विवाहित या अविवाहित
१६ कितने मनुष्योंके साथ दीक्षा ली ?
१७ दीक्षाकी जगह
१८ दीक्षाके दिन कौनसा तप था
१९ दी० बाद प्रथम पारणेमें क्या मिला ?
२० प्रथम पारणा किसके घर किया ?
२१ कितने दिनका पारणा किया
२२ दीक्षा तिथि
२३ कितने समय तक छद्मस्थ रहे ?
२४ केवलज्ञान होनेका स्थान
२५ ज्ञानोत्पत्तिके दिन कौनसा तप था ?
२६ किस वृक्षके नीचे केवलज्ञान हुआ ?
२७ केवलज्ञानकी तिथि
२८ गणधरोंकी संख्या
२९ साधुओंकी संख्या
३० साध्वियोंकी संख्या
३१ उनके साधुओंमें वैक्रियलब्धिवाले
३२ उ० सा० अवधिज्ञानी
३३ उ० सा० केवली
३४ उ० सा० मन पर्ययज्ञानी
३५ उ० सा० चौदह पूर्वधारी
३६ वादियोंकी संख्या
३७ श्रावकोंकी संख्या
३८ श्राविकाओंकी संख्या
३९ शासनके यक्षका नाम
४० शासनकी यक्षिणीका नाम
४१ प्रथम गणधरका नाम
४२ प्रथम आर्याका नाम
४३ मोक्ष-स्थान
४४ मोक्ष तिथि
४५ मोक्षके दिन तप
४६ किस आसनसे मोक्ष गये
४७ पूर्वके तीर्थंकर मोक्ष गये उनके कितने बरस बाद मोक्ष गये ?
४८ गण-नाम
४९ योनि-नाम
५० मोक्ष गये तब उनके साथ कितने साधु मोक्ष गये थे
५१ सम्यक्त्व पानेके बाद उनके जीवने कितने भव किये
५२ किस कुलमें जन्म
५३ गर्भवासमें कितने महीने रहे

सूचना।—आगेके कोष्ठकोंमें यहाँ ऊपर संख्याओंके सामने जो सवाल दिये हैं उन्हीं सवालोंके जवाब क्रमशः प्रत्येक तीर्थंकरके लिए संख्याओंके सामने दिये गये हैं। ऊपर तीर्थंकरोंके नाम देखकर उन्हींके संबंधकी नीचेकी ५२ बातें समझ लेना।

	श्री सुमतिनाथजी ५	श्री पद्मप्रभुजी ६	श्रीसुपार्श्वनाथजी ७	श्री चंद्रप्रभुजी ८
२८	१ सौ	१०७	९५	९३
२९	३ लाख २० हजार	३ लाख ३० हजार	३ लाख	२ लाख ५० हजार
३०	५ लाख ३० हजार	४ लाख २० हजार	४ लाख ३० हजार	३ लाख ८० हजार
३१	१८ हजार ४ सौ	१६१०८	१५ हजार ३ सौ	१४ हजार.
३२	१० हजार ४ सौ	९ हजार ६ सौ	८ हजार ४ सौ	७ हजार ६ सौ
३३	११ हजार	१० हजार	९ हजार	८ हजार
३४	१३ हजार	१२ हजार	११ हजार	१० हजार
३५	१०४५०	१० हजार ३ सौ	९१५०	८ हजार
३६	२ हजार ४ सौ	२ हजार ३ सौ	२०३०	२ हजार
३७	२ लाख ८१ हजार	२ लाख ७६ हजार	२ लाख ५७ हजार	२ लाख ५० हजार
३८	५ लाख १६ हजार	५ लाख ५ हजार	४ लाख ९३ हजार	४ लाख ७९ हजार
३९	तुंवरु	कुसमय	मातंग	विजय
४०	महाकाली	श्यामा	शांता	भृकुटी
४१	चरम	प्रद्योतन	विदर्भ	दिन्न
४२	काश्यपि	रति	सोमा	सुमना
४३	समेत शिखर	समेतशिखर	समेत शिखर	समेत शिखर
४४	चैत्र सुदि ९	मगसर वदि ११	फागण वदि ७	भाद्रवा वदि ७
४५	१ महीना	१ महीना	एक महीना	एक महीना
४६	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७	९ लाख कोटिसागर	९०हजार कोटिसागर	९ हजार कोटिसागर	९ सौ कोटि सागर
४८	राक्षस	राक्षस	राक्षस	देव
४९	मूषक	महिष	मृग	मृग
५०	१ हजार	३०८	५ सौ	१ हजार
५१	३ भव	३ भव	तीन भव	३ भव
५२	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश
५३	९ महीने ६ दिन	९ महीने ६ दिन	९ महीने १९ दिन	९ महीने ७ दिन

	श्री ऋषभदेवजी १	श्री अजितनाथजी २	श्री संभवनाथजी ३	श्री अभिनंदनजी ४
२८	८४	९५	१०२	११६
२९	८४ हजार	१ लाख	२ लाख	३ लाख
३०	३ लाख	३ लाख ३० हजार	३ लाख ३६ हजार	६ लाख ३० हजार
३१	२० हजार ६ सौ	२० हजार ४ सौ	१९ हजार ८ सौ	१९ हजार
३२	१२६५०	१२ हजार ४ सौ	१२ हजार	११ हजार
३३	९ हजार	९ हजार ४ सौ	९ हजार ६ सौ	९ हजार ८ सौ
३४	२० हजार	२२ हजार	१५ हजार	१४ हजार
३५	१२७५०	१२५५०	१२१५०	११६५०
३६	४७५०	३७२०	२१५०	१५ सौ
३७	३ लाख ५० हजार	२ लाख ९८ हजार	२ लाख ९३ हजार	२ लाख ८८ हजार
३८	५ लाख ५४ हजार	५ लाख ४५ हजार	६ लाख ३६ हजार	५ लाख २७ हजार
३९	गोमुख यक्ष	महा यक्ष	त्रिमुख यक्ष	नायक यक्ष
४०	चक्रेश्वरी	अजि बला	दुरितारि	कालिका
४१	पुंडरीक	सिंहसेन	चारु	वज्रनाभ
४२	ब्राह्मी	फाल्गु	श्यामा	अजिता
४३	अष्टापद	समेतशिखर	समेतशिखर	समेत शिखर
४४	माघ वदि १३	चैत्र सुदि ५	चैत्र सुदि ५	वैशाख सुदि ८
४५	६ उपवास	एक मास	एक मास	एक मास
४६	पद्मासन	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७	×	५० लाख कोटिसागर	३० लाख कोटिसागर	१० लाख कोटिसागर
४८	मानव गण	मनुष्य गण	देव गण	देवगण
४९	नकुल योनि	सर्प योनि	सर्प योनि	छाग (बकरा) योनि
५०	१० हजार	१ हजार	१ हजार	१ हजार
५१	१३ भव	३ भव	३ भव	३ भव
५२	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश
५३	९ महीने ४ दिन	८ महीने २५ दिन	९ महीने ६ दिन	८ मास २८ दिन

	श्री सुमतिनाथजी ५	श्री पद्मप्रभुजी ६	श्रीसुपार्श्वनाथजी ७	श्री चन्द्रप्रभुजी ८
२८	१ सौ	१०७	९५	९३
२९	३ लाख २० हजार	३ लाख ३० हजार	३ लाख	२ लाख ५० हजार
३०	५ लाख ३० हजार	४ लाख २० हजार	४ लाख ३० हजार	३ लाख ८० हजार
३१	१८ हजार ४ सौ	१६१०८	१५ हजार ३ सौ	१४ हजार.
३२	१० हजार ४ सौ	९ हजार ६ सौ	८ हजार ८ सौ	७ हजार ६ सौ
३३	११ हजार	१० हजार	९ हजार	८ हजार
३४	१३ हजार	१२ हजार	११ हजार	१० हजार
३५	१०४५०	१० हजार ३ सौ	९१५०	८ हजार
३६	२ हजार ४ सौ	२ हजार ३ सौ	२०३०	२ हजार
३७	२ लाख ८१ हजार	२ लाख ७६ हजार	२ लाख ५७ हजार	२ लाख ५० हजार
३८	५ लाख १६ हजार	५ लाख ५ हजार	४ लाख ९३ हजार	४ लाख ७९ हजार
३९	तुंबरु	कुसमय	मातंग	विजय
४०	महाकाली	श्यामा	शांता	भृकुटी
४१	चरम	प्रद्योतन	विदर्भ	दिन्न
४२	काश्यपि	रति	सामा	सुमना
४३	समेत शिखर	समेतशिखर	समेत शिखर	समेत शिखर
४४	चैत्र सुदि ९	मगसर वदि ११	फागण वदि ७	भाद्रवा वदि ७
४५	१ महीना	१ महीना	एक महीना	एक महीना
४६	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७	९ लाख कोटिसागर	९० हजार कोटि सागर	९ हजार कोटिसागर	९ सौ कोटि सागर
४८	राक्षस	राक्षस	राक्षस	देव
४९	मूषक	महिष	मृग	मृग
५०	१ हजार	३०८	५ सौ	१ हजार
५१	३ भव	३ भव	तीन भव	३ भव
५२	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश
५३	९ महीने ६ दिन	९ महीने ६ दिन	९ महीने १९ दिन	९ महीने ७ दिन

	श्री सुविधिनाथजी ९	श्री शीतलनाथजी १०	श्री श्रेयांसनाथजी ११	श्री वासुपूज्यजी १२
२८	८८ गणधर	८१	७६	६६
२९	२ लाख	१ लाख	८४ हजार	७२ हजार
३०	१ लाख २० हजार	१ लाख ६	१ लाख ३ हजार	१ लाख
३१	१३ हजार	१२ हजार	११ हजार	१० हजार
३२	६ हजार	५ हजार ८ सौ	५ हजार	४ हजार ७ सौ
३३	८ हजार ४ सौ	७ हजार २ सौ	६ हजार	५ हजार ४ सौ
३४	७ हजार ५ सौ	७ हजार	६ हजार ५ सौ	६ हजार
३५	७ हजार ५ सौ	७ हजार ५ सौ	६ हजार	६ हजार ५ सौ
३६	१५ सौ	१४ सौ	१३ सौ	१२ सौ
३७	२ लाख २९ हजार	२ लाख ८९ हजार	२ लाख ७९ हजार	२ लाख १५ हजार
३८	४ लाख ७१ हजार	४ लाख ५८ हजार	४ लाख ४८ हजार	४ लाख ३६ हजार
३९	अजित	ब्रह्मा	[illegible]	कुमार
४०	सुतारिका	अशोका	मानवी	चंडा
४१	वराहक	नंद	कच्छुभ	सुभूम
४२	वारुणी	सुयशा	धारणी	धरणी
४३	समेतशिखर	समेत शिखर	समेतशिखर	चंपापुरी
४४	भादवा सुदि ९	वैशाख वदि २	श्रावण वदि ३	आषाढ सुदि १४
४५	एक महीना	एक महीना	एक महीना	एक महीना
४६	काउसग्ग	काउसग्ग	काउसग्ग	काउसग्ग
४७	९० कोटि सागर	९ कोटि सागर	६६ला २६ह १००सा गरन्यू १को सागर	५४ सागर
४८	राक्षस	मानव	देव	राक्षस
४९	वानर	नकुल	वानर	अश्व
५०	एक हजार	एक हजार	एक हजार	६ सौ
५१	३ भव	तीन भव	तीन भव	तीन भव
५२	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश
५३	८ महीने २६ दिन	९ महीने ६ दिन	९ महीने ६ दिन	८ महीने २० दिन

	विमलनाथजी १३	अनन्तनाथजी १४	धर्मनाथजी १५	शान्तिनाथजी १६
२८	५७	५०	४३	३६
२९	६८ हजार	६६ हजार	६४ हजार	६२ हजार
३०	१ लाख ८ सौ	६२ हजार	६२ हजार ४ सौ	६१ हजार ६ सौ
३१	९ हजार	८ हजार	७ हजार	६ हजार
३२	३६ सौ	३२ सौ	२८ सौ	२४ सौ
३३	४८ सौ	४३ सौ	३६ सौ	३ हजार
३४	५५ सौ	५ हजार	४५ सौ	४३ सौ
३५	५५ सौ	५ हजार	४५ सौ	४ हजार
३६	११ सौ	१ हजार	९ सौ	८ सौ
३७	२ लाख ८ हजार	२ लाख ६ हजार	२ लाख ४ हजार	१ लाख ९० हजार
३८	४ लाख २४ हजार	४ लाख १४ हजार	४ लाख १३ हजार	३ लाख ९३ हजार
३९	षण्मुख	पाताल	किन्नर	गरुड़
४०	विदिता	अंकुशा	कंदर्पा	निर्वाणी
४१	मंदर	जस	अरिष्ट	चक्रायुध
४२	धरा	पद्मा	आर्यशिवा	सुची
४३	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर	समेत शिखर
४४	आषाढ वदि ७	चैत्र सुदि ५	जेठ सुदि ५	जेठ वदि १३
४५	एक मास	एक मास	एक मास	१ मास
४६	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग	काउसग्ग
४७	३० सागरोपम	९ सागरोपम	४ सागरोपम	पौनपल्योपम कम तीन सागरोपम
४८	मनुष्य	देव	देव	मनुष्य
४९	छाग (बकरा)	हस्ति (हाथी)	(सिंह)	हस्ति
५०	६ सौ	७ सौ	१०८	९ सौ
५१	तीन भव	३ भव	३ भव	१२ भव
५२	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश
५३	८ महीने २१ दिन	९ महीने ६ दिन	८ महीने २६ दिन	९ महीने ६ दिन

	कुन्थुनाथजी १७	अरनाथजी १८	मल्लिनाथजी १९	मुनिसुव्रतजी २०
२८	३५	३३	२८	१८
२९	६० हजार	५० हजार	४० हजार	३० हजार
३०	६० हजार ६ सौ	६० हजार	५५ हजार	५० हजार
३१	५१ सौ	७३ सौ	२९ सौ	२ हजार
३२	२ हजार	१६ सौ	१४ सौ	१२ सौ
३३	२५ सौ	२६ सौ	२० सौ	१८ सौ
३४	३२ सौ	२८ सौ	२२ सौ	१८ सौ
३५	३३४०	२५५१	१७५०	१५ सौ
३६	६७०	६१०	६६८	५ सौ
३७	१ लाख ७९ हजार	१ लाख ८४ हजार	१ लाख ८३ हजार	१ लाख ७२ हजार
३८	३ लाख ८१ हजार	३ लाख ७२ हजार	३ लाख ७० हजार	३ लाख ५० हजार
३९	गधर्व	यक्षेद	कुबेर	वरुण
४०	वला	धणा	धरणप्रिया	नरदत्ता
४१	सांय	कुंभ	अभीक्षक	मल्ली
४२	दामिनी	रक्षिता	बधुमती	पुष्पमती
४३	समेत शिखर	समेत शिखर	समेत शिखर	समेत शिखर
४४	वैशाख वदि १	मगसर सुदि १०	फाल्गुन सुदि १२	जेठ वदि ९
४५	एक महीना	एक महीना	एक महीना	एक महीना
४६	काउसग्ग	काउसग्ग	काउसग्ग	काउसग्ग
४७	आधा पल्योपम	पाव, पल्योपम एक ह को वर्ष कम	एक हजार कोटि वर्ष	५४ लाख वर्ष
४८	राक्षस	देव	देव	देव
४९	बकरा	हाथी	अश्व (घोडा)	वानर
५०	१ हजार साधु	१ हजार साधु	५ सौ साधु	१ हजार साधु
५१	३ भव	३ भव	तीन भव	तीन भव
५२	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश	हरि वंश
५३	९ महीने ५ दिन	९ महीने ८ दिन	९ महीने ७ दिन	९ महीने ८ दिन

	नमिनाथजी २१	नेमिनाथजी २२	पार्श्वनाथजी २३	महावीर स्वामी २४
२८	१७	११	१०	११
२९	२० हजार	१८ हजार	१६ हजार	१४ हजार
३०	४१ हजार	४० हजार	३८ हजार	३६ हजार
३१	५ हजार	१५ सौ	११ सौ	७ सौ
३२	१ हजार	८ सौ	६ सौ	४ सौ
३३	१६ सौ	१५ सौ	१ हजार	१३ सौ
३४	१६ सौ	१५ सौ	१ हजार	७ सौ
३५	१२५०	१ हजार	७५०	५ सौ
३६	४५०	४००	३५०	३००
३७	१ लाख ७० हजार	१ लाख ६९ हजार	१ लाख ६४ हजार	१ लाख ५९ हजार
३८	३ लाख ४८ हजार	३ लाख ३६ हजार	३ लाख ३९ हजार	३ लाख १८ हजार
३९	भृकुटी	गोमेध	पार्श्व	मातंग
४०	गंधारी	अम्बिका	पद्मावती	सिद्धायिका
४१	शुभ	वरदत्त	आर्यदिन्न	इन्द्रभूति
४२	अनिला	यक्षदिन्ना	पुष्पचूडा	चंदनबाला
४३	समेत शिखर	गिरनार	समेत शिखर	पावापुरी
४४	वैशाख वदि १०	आषाढ सुदि ८	श्रावण सुदि ८	कार्तिक वदि ३०
४५	१ मास	एक मास	एक मास	दो दिन
४६	काउसग्ग	पद्मासन	काउसग्ग	पद्मासन
४७	६ लाख वर्ष	५ लाख बरस	८३७५० बरस	२५० बरस
४८	देवगण	राक्षस	राक्षस	मनुष्य
४९	अश्व	महिष	मृग	महिष
५०	१ हजार साधु	५३६ साधु	३३ साधु	अकेले
५१	तीन भव	९ भव	१० भव	२७ भव
५२	इक्ष्वाकुवंश	हरिवंश	इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुवंश
५३	९ महीने ८ दिन	९ महीने ८ दिन	९ महीने ६ दिन	९ महीने ७॥ दिन

जैनदर्शन[1]

पहले चौबीस तीर्थंकरोंके चरित्र लिखे जा चुके हैं। उन तीर्थंकरोंने जिन सिद्धान्तोंका उपदेश दिया है वे सिद्धान्त 'जैनदर्शन' या 'जैनधर्म' के नामसे प्रसिद्ध हैं। इसी 'जैनदर्शन' को यहाँ संक्षेपमें समझाया जाता है।

अवतरण।

जब हम सोचते हैं कि, संसार क्या चीज है? तो वह हमें जड़ और चेतन ऐसे दो पदार्थोंका—तत्त्वोंका विस्तार मालूम होता है। इन दोके सिवा संसारमें कोई तीसरा तत्त्व नहीं है। सारी प्रपञ्चकी चीजें इन्हीं दो तत्त्वोंमें समा जाती हैं।

जिसमें चेतना नहीं है ज्ञान नहीं है वह जड़ है। जो इससे विपरीत है, चैतन्य-ज्ञानमय है वह आत्मा है—चेतन है। आत्मा, जीव, चेतन आदि समान अर्थक हैं। इन्हीं दो तत्त्वोंको—जड़ और चेतनको—विस्ताररूपसे समझानेके लिए जैनशास्त्रकारोंने इनको कई भागोंमें विभक्त कर दिया है। मुख्य भाग नौ किये गये हैं। इन नौमें भी, अच्छी तरहसे समझानेके लिए, प्रत्येकको कई भागोंमें विभक्त किया है, और उनको अच्छी तरह खोल खोलकर समझाया है। मगर जैनसिद्धान्तविभागके मूलाधार ये ही तत्त्व हैं।

१—यह निबंध न्यायतीर्थ और न्यायविशारद मुनिश्री न्यायविजयजी महाराजका लिखा हुआ है।

'जिन' शब्दसे 'जैन' शब्द बना है । 'जिन' राग, द्वेष,
दि दोषरहित परमात्माका साधारणतया नाम है । 'जिन' शब्द
नी'—जीतना धातुसे बना है । राग, द्वेषादि समग्र दोषोंको
तनेवालोंके लिए यह नाम सर्वथा उपयुक्त है । अर्हन, वीतराग,
मेष्ठी, आदि 'जिन' के पर्यायवाचक शब्द हैं । 'जिन' के
क 'जैन' कहलाते हैं । जिन-प्रतिपादित धर्म, जैनधर्म, आर्हत-
र्शन, स्याद्वाददृष्टि, अनेकान्तवाद और वीतरागमार्ग आदि नामोंसे
ो पहिचाना जाता है ।

आत्मस्वरूपके विकासका अनेक भवोंसे प्रयत्न करते हुए जिस
वमें, जीवका पूर्ण आत्मविकास हो जाता है, जिस भवमें जीवके
मस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं, उस भवमें वह परमात्मा कहलाता है ।
न परमात्माओंको जैनशास्त्र दो भागोंमें विभक्त करके समझाते हैं ।
क भागमें 'तीर्थंकर' आते हैं और दूसरे भागमें सामान्य—केवली ।
ीर्थंकर जन्मसे ही विशिष्टज्ञानवान् और अलौकिक सौभाग्यसपन्न होते
हैं । शास्त्रकारोंने तीर्थंकरोंके सबधमें अनेक विशेषताएँ बताई हैं ।
ये जन्मसे ही तीर्थंकर कहे जाते हैं । कारण यह है कि भविष्यमें
वे अवश्यमेव तीर्थंकर होंगे । राजाका ज्येष्ठ पुत्र जैसे भाविष्यका
राजा होनेसे राजा कहलाता है, वैसे ही जन्मसे ही उनमें सर्वज्ञता—
गुण नहीं होता है, तीर्थंकरोंके गुण नहीं होते हैं, तो भी भावीकी
अपेक्षासे—उसी भवमें तीर्थंकर होंगे इससे वे तीर्थंकर कहलाते हैं ।
जब इनके घाती कर्म क्षीण हो जाते हैं, तब इनको केवलज्ञान होता
है । केवलज्ञान प्राप्त कर ये 'तीर्थ' की स्थापना करते हैं । साधु,
साध्वी और श्रावक, श्राविका ऐसे चतुर्विध सघका नाम 'तीर्थ' है ।

तीर्थंकरोंके उपदेशोंका आधार लेकर उनके मुख्य शिष्य, जो गणधर कहलाते हैं, शास्त्र-रचना करते हैं। यह रचना बारह भागोंमें विभाजित होती है इसलिए इसका नाम 'द्वादशांगी' रक्खा गया है। द्वादशांगीका अर्थ है—बारह अंगोंका समूह। अंग प्रत्येक विभागका—प्रत्येक सूत्रका पारिभाषिक नाम है। 'तीर्थ' शब्दसे यह द्वादशांगी भी समझी जाती है। इस तरहके वे तीर्थके कर्ता होनेसे तीर्थंकर कहलाते हैं।

जिन केवलज्ञानियोंमें—पवित्रात्मा परमात्माओंमें उक्त विशेषताएँ नहीं होती हैं वे दूसरे विभागके सामान्य—केवली होते हैं।

हिन्दू धर्मशास्त्रोंमें कालके कृतयुगादि चार विभाग किये गये हैं। इसी तरह जैनशास्त्रकारोंने भी कालके विभागकी भाँति छः आरे बताये हैं। तीर्थंकर, तीसरे और चौथे आरेमें हुआ करते हैं। जो तीर्थंकर या परमात्मा मोक्षमें जाते हैं, वे फिर कभी संसारमें नहीं आते। इससे यह स्पष्ट है कि जितने परमात्मा या तीर्थंकर बनते हैं वे किसी

१—[illegible] कालकी गणना इस तरह है। कालके मोटे मोटे दो विभाग हैं—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। एक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीमें इतने वर्ष बीत जाते हैं कि जिनको गणना करना कठिन होता है। उत्सर्पिणी [illegible] रूप, बल, आयुष्य आदि बातोंमें [illegible] होता है और अवसर्पिणीकालमें [illegible]। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके छः विभाग होते हैं। प्रत्येक विभागको आरा ([illegible]) कहते हैं। उत्सर्पिणीके छः आरे जब पूर्ण हो जाते हैं, तब अवसर्पिणीके आरे प्रारंभ होते हैं। [illegible] अवसर्पिणी [illegible] पाँचवाँ आरा चल रहा है [illegible]। पाँचवाँ आरा [illegible]। (विशेष जाननेके लिए देखो [illegible] पेज १-४)

एक परमात्माके अवतार नहीं है। वे सब भिन्न भिन्न आत्माएँ हैं। जैनसिद्धान्त यह नहीं मानता कि, आत्मा मुक्त होनेके बाद संसारमें आ जाता है।

प्रारंभमें ऊपर हम यह बता चुके हैं कि जैनशास्त्रोंके विकासकी नींव नवतत्त्व है। इसलिए हम नव तत्त्वोंका विवेचन करेंगे। उनके नाम ये हैं—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

जीवतत्त्व।

जैसे हम दूसरी चीजोंको देख सकते हैं, वैसे जीवको नहीं देख सकते। न किसी इन्द्रियकी सहायता ही इसको हमें बता सकती है। इसका ज्ञान हम स्वानुभव प्रमाणसे कर सकते हैं। "मैं सुखी हूँ दुःखी हूँ" आदि अनुभव जड शरीरको नहीं होता। जीवहीको होता है। जीव शरीरसे भिन्न पदार्थ है। यदि शरीर ही जीव माना जाय तो फिर मृत शरीरमें भी ज्ञान होना चाहिए। उसको अग्निमें भी नहीं जलना चाहिए। परन्तु वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा आदि शरीरमें नहीं होते; इससे सिद्ध होता है कि, इन गुणोंका आधार शरीर नहीं है, बल्के कोई अन्य ही पदार्थ है, उस पदार्थ का नाम आत्मा है। शरीर भौतिक है, जड है। क्योंकि यह भूत-समूहका (जैसे,-पृथ्वी, जल, तेज और वायुका) बना हुआ पुतला है। जैसे,-घट, पट आदि जड पदार्थोंमें ज्ञान, सुख

आदिकी सत्ता नहीं होती है, वैसे ही जड़ शरीरमेंभी ज्ञान, सुख आदि धर्मोंकी सत्ता नहीं हो सकती है।

शरीरमें पाँच इन्द्रियाँ हैं। मगर उनको साधन बनानेवाला उनसे सर्वथा भिन्न आत्मा है। प्रमाण यह है कि आत्मा इन्द्रियोंके द्वारा रूप रसादिका ज्ञान करता है। वह चक्षुसे रूपको देखता है, जिव्हासे रसको चखता है, नाकसे गंध लेता है, कानसे शब्द सुनता है और त्वचासे (चमड़ीसे) स्पर्श करता है। इस बातको स्पष्टतासे समझनेके लिए एक दो उदाहरण उपयोगी होंगे। चाकूसे कलम बनाई जाती है; मगर चाकू और कलम बनानेवाला भिन्न २ होते हैं; दीपकके प्रकाशसे मनुष्य देख सकता है; परन्तु दीपक और देखनेवाला भिन्न २ होते हैं; इसी तरह इन्द्रियोंसे रूप, रस, गंधादि विषय ग्रहण किये जाते हैं; परन्तु ग्रहण करनेवाला और इन्द्रियाँ दोनों भिन्न भिन्न हैं। यह ठीक है कि, साधकको साधनकी आवश्यकता रहती है; परन्तु इससे साधक और साधन एक ही चीज नहीं हो सकते। इसी तरह आत्मा साधक है और इन्द्रियाँ साधन हैं, इसलिए आत्मा और इन्द्रियाँ एक नहीं हो सकते। यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है कि इन्द्रियाँ एक ही नहीं है। वे पाँच हैं। इस लिए यदि इन्द्रियोंको आत्मा माने जाते हैं तो एक शरीरमें पाँच आत्माएँ हो जाती हैं; जिसका होना सर्वथा असंभव है।

अब हम इसका दूसरे दृष्टिबिन्दुसे विचार करेंगे। समझो कि एक आदमीकी आँखें फूट गई हैं; मगर वह आदमी उन सब पदार्थोंका जिनको उसने आँखोंकी स्थितिमें देखा था, स्मरण कैसा

हीं बता सकता है जैसा कि वह आँखोंकी स्थितिमें बता सकता था। यह बात प्रत्यक्ष है। अब अगर हम इन्द्रियोंको आत्मा मानने लगेंगे तो इस प्रत्यक्ष बातको भी, जिसका हरेकको अनुभव है, मिथ्या माननी पडेगी। क्योंकि चक्षुसे देखी हुई चीज, चक्षु ही बता सकता है, दूसरी इन्द्रियाँ उसको नहीं बता सकतीं। जैसे एक मनुष्यकी देखी हुई बात दूसरा मनुष्य नहीं बता सकता है, इसी तरह यह भी बात है। हरेक जानता है कि अमुक बातका एक आदमीको जो अनुभव हुआ है, उसको दूसरा नहीं बता सकता। इन्द्रियाँ भी सब भिन्न २ हैं। इसलिए एक इन्द्रियकी जानी हुई बात दूसरी इन्द्रिय नहीं बता सकती। मगर हम देखते हैं कि मनुष्य एक इन्द्रियसे किसी पदार्थको जानकर, उस इन्द्रियके अभावमें भी उस पदार्थके स्वरूपको जैसाका तैसा बता सकता है; इससे सिद्ध होता है कि, इन्द्रियोंसे परे कोई पदार्थ है, जो इन सबका ज्ञान रखता है। वह पदार्थ है आत्मा। आत्मा पूर्व अनुभूत की हुई बातको कालान्तरमें भी स्मरणद्वारा बता सकता है। इससे सिद्ध होता है कि, आत्मा इन्द्रियोंसे सर्वथा भिन्न है, चैतन्यस्वरूप है।

प्राय: मनुष्योंको हमने कहते सुना है कि,–मैंने अमुक पदार्थको देखकर उठा लिया–छू लिया। यह, देखना और छूना कहनेवालेंका अनुभव है। इनका विचार करनेसे मालूम होता है कि देखनेवाला और छूनेवाला दोनों एक ही है; भिन्न २ नहीं। यह एक कौन है? चक्षु? नहीं, क्यों कि वह स्पर्श नहीं कर सकता है। त्वचा? नहीं, क्योंकि यह देख नहीं सकती है। इससे यह

यह सत्यपरित सिद्ध हो गयी है कि, एक पदार्थको देखने और स्पर्श करनेवाला जो एक है वह इन्द्रियोंसे भिन्न है और उसीका नाम आत्मा है। आत्मामें रूप, रस, गंध आदि कोई धर्म नहीं है। इसलिए वह दूसरी चीजोंकी तरह प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है। प्रत्यक्ष नहीं होनेसे यह नहीं माना जा सकता कि आत्मा कोई चीज ही नहीं है। प्रत्यक्ष प्रमाणके अलावा अनुमान–प्रमाण आदिसे भी वस्तुकी सत्ता स्वीकारनी पड़ती है। जैसे परमाणु चर्म-चक्षुसे दिखाई नहीं देते। परमाणुके अस्तित्वका निश्चय करानेके लिए कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। तो भी अनुमान प्रमाणसे हरेक विद्वान् उसको स्वीकार करता है। अनुमान प्रमाणसे ही यह बात मानी जाती है कि, स्थूल पदार्थकी उत्पत्ति सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म परमाणुओंसे होती है।

आत्माओंमेंसे हम देखते हैं कि, कई दुःखी हैं और कई सुखी; कई विद्वान हैं और कई मूर्ख; कई राजा हैं और कई रंक; कई सेठ हैं और कई नौकर; आत्माओंमें इस तरहकी विचित्रता भी किसी कारण वश हुई है। हरेक यह मान सकता है कि, ऐसी विचित्रताएँ किसी खास कारणके बिना नहीं हो सकती हैं। हम देखते हैं कि, एक बुद्धिमान मनुष्यको हजार प्रयत्न करनेपर भी उसकी इष्ट वस्तु नहीं मिलती है और दूसरे एक मूर्खको बिना ही प्रयास या अल्प प्रयाससे उसके साध्य सिद्ध हो जाते हैं। एक स्त्रीकी कूखसे एक ही साथ दो लड़के उत्पन्न होते हैं। उनमेंसे एक विद्वान हो जाता है और दूसरा मूर्ख रह जाता है। इस विचित्रताका कारण क्या है? यह तो माना नहीं जा सकता कि, ये घटनाएँ यों ही हो जाया करती हैं। इनका कोई नियामक–योजक जरूर होना चाहिए।

तत्त्वज्ञ महात्मा इसका नियामक कर्मको वताते हैं, वे इससे कर्मकी सत्ता साबित करते है। कर्मकी सत्ता साबित होनेपर आत्मा स्वय ही सिद्ध हो जाता है। कारण यह है कि, आत्माको सुखदु ख देनेवाला कर्मसमूह है। यह समूह अनादिकालसे आत्माके साथ लगा हुआ है। इसीसे आत्माको ससारमें परिभ्रमण करना पड़ता है। जब कर्म और आत्माका निश्चय हो जाता है तो फिर परलोकके निश्चय होनेमें कोई रुकावट नहीं रहती। जीव जैसा शुभ या अशुभ कर्म करता है वैसा ही फल उसको परलोकमें मिलता है। जैसी भली या बुरी क्रिया की जाती है, वैसी ही वासना आत्मामें स्थापित होती है। यह वासना क्या है? विचित्र परमाणुओंका एक जत्था मात्र। यही जत्था 'कर्म' के नामसे पुकारा जाता है। यानी एक प्रकारके परमाणुसमूहका नाम 'कर्म' है। ये कर्म नवीन आते हैं और पुराने चले जाते हैं।

भली या बुरी क्रियासे जिन कर्मोंका बध होता है, वे कर्म परलोक तक प्राणीके साथ जाते हैं। इतना ही नहीं, कई तो अनेक जन्मों तक अपने उदयमें आनेका समय नहीं मिलनेसे वे वैसे ही आत्माके साथमें रहते हैं और समय आनेपर विपाक-समयमें आत्माको भले या बुरे फलोंका अनुभव करवाते हैं। जबतक फलविपाकको भोगानेकी उनमें शक्ति रहती है तबतक वे आत्माको फल भोगाते रहते हैं। उसके बाद वे आत्मासे अलग हो जाते हैं।

उक्त युक्तियोंसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि, आत्मसत्ता, इन्द्रियोंसे और शरीरसे भिन्न है, स्वतंत्र है।

संसारमें जीव अनन्त हैं।

यहां प्रश्न हो सकता है कि,—संसारवर्ती जीवराशिमेंसे जीव, कर्मोंको नष्ट करके मुक्तिमें गये हैं, जाते हैं और जावेंगे। ऐसे जीव हमेशा संसारमेंसे घटते जाते हैं, इससे एक दिन संसार जब जीवविहीन नहीं हो जायगा? इस प्रश्नपर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेके पहिले हम यह देख चाहते हैं कि, इस बातको न कोई सर्वज्ञशास्त्र ही मानता है और न प्रत्यक्ष तथा अनुमान ही स्वीकार करता है कि, किसी दिन संसार जीवोंसे खाली हो जायगा। साथ ही यह भी नहीं माना जा सकता है कि, मुक्तिमेंसे जीव वापिस आते हैं। क्योंकि मोक्ष जीवको उसी समय मिलता है जब कि वह सब कर्मोंका नाश कर देता है, इस बातको प्रायः सभी मानते हैं और संसार-भ्रमणके कारण कर्म जब निर्मूल परमात्मस्वरूप, मुक्त, जीवोंके नहीं होते हैं तब यह कैसे माना जा सकता है कि जीव मोक्षसे वापिस संसारमें आते हैं। यदि यह मान लिया जाय कि मोक्षमेंसे जीव वापिस आते हैं, तो मोक्षकी महत्ता ही उड़ जाती है। जिस स्थानसे पतनकी संभावना है वह स्थान मोक्ष कैसे माना जा सकता है?

उक्त बातोंसे सर्वथा मोक्षमेंसे जीव वापिस नहीं आते हैं और संसार कभी जीवशून्य नहीं होता है, इन दोनों सिद्धान्तोंको ध्यानमें रखकर उक्त शंकाका समाधान करना आवश्यक है।

यथार्थ इतिहास देखनेसे विदित होता है कि, जितने जीव मोक्षमें जाते हैं उतने संसारमेंसे अवश्य ही कम होते हैं। मगर जीवराशि अनंत है, इसलिए संसार जीवोंसे खाली नहीं हो सकता है। संसारमेंसे सब जीवोंके निकलते रहने, और जीवोंके नहीं आने पर

भी भविष्यमें कभी जीवोंका अन्त न आवे इतने 'अनन्त' जीव समझने चाहिए। यह 'अनन्त' शब्दकी व्याख्या है। इसको देखनेसे प्रस्तुत शकाका समाधान हो जाता है।

सूक्ष्मातिसूक्ष्म कालको जैनशास्त्रोंमें 'समय' बताया है। यह इतना सूक्ष्म है कि, एक समयमें कितने सेकड निकल जाते हैं, इसकी हमें कुछ भी खबर नहीं होती है। ऐसे, भूतकालके अनन्त समय, वर्तमानका एक समय और भविष्यके अनन्त समय, इन सबको जोडने पर जितनी जोड आती है, उससे भी अनन्त गुने अनन्त जीव हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि, अनन्त भविष्यकालमें भी जीवराशिकी समाप्ति होनेवाली नहीं है। जितने दिन, महीने और बरस बीतते जाते हैं, उतने ही भविष्यकालमेंसे कम होते जाते हैं। यानी भविष्यकाल प्रतिक्षण कम होता रहता है, तो भी भविष्य-कालका कभी अत नहीं होता है। कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता है कि, कभी भविष्यकालके दिन बीत जायँगे, कभी भविष्य-कालके बरस पूरे हो जायँगे, कभी भविष्यकाल बाकी नहीं रहेगा। जब भविष्यकालहीका अन्त नहीं होता है, तब जीवोंका—जो भविष्य-कालसे भी अनन्तानन्त है—कैसे अन्त हो सकता है? कैसे ससार जीव शून्य हो सकता है? कैसे ऐसी कल्पना भी की जा सकती है? कहनेका अभिप्राय यह है कि, जीव अनन्त हैं इसलिए, ससार कभी इनसे शून्य नहीं होगा।

जीवोंके विभाग।

सामान्यतया जीवोंके दो भेद किये जाते हैं—'ससारी' और 'सिद्ध'। जो जीव ससारमें भ्रमण कर रहे हैं, वे ससारी कहलाते हैं। 'ससार'

शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'सृ' धातुसे बनता है। 'सृ' का अर्थ 'भ्रमण' करना होता है। 'सम्' उसी अर्थमें व्यापक है। चौरासी लाख जीवयोनियोंमें भ्रमण करना संसार है और उसमें फिरनेवाले जीव 'संसारी' कहलाते हैं। दूसरी तरहसे चौरासी लाख जीवयोनियोंको भी संसार कह सकते हैं। आत्माकी कर्मबद्ध-अवस्थाका नाम भी संसार है। इस तरह संसारसे संबंध रखनेवाले जीव संसारी कहलाते हैं। इसका संसारी जीवोंकी सरल व्याख्या यह है कि, जो जीव कर्मबद्ध हैं वे ही संसारी हैं।

संसारी जीवोंके अनेक भेद हो सकते हैं, परन्तु उनके त्रस और स्थावर दो ही भेद मुख्यतया किये गये हैं। पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय वायुकाय और वनस्पतिकाय ये पाँचों 'स्थावर' कहलाते हैं। स्थावर शब्दका अर्थ स्थिर रहना होता है; परन्तु यह अर्थ 'वायु' और अग्निमें घटित नहीं हो सकता है; इसलिए स्थावर-शब्दका अर्थ शब्दार्थकी व्यापकतासे ग्रहण नहीं किया जाता है। यह रूढिसे एकेन्द्रिय जीवोंके लिए उपयोगमें आता है। ये पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय कहलाते हैं; क्योंकि इनके एक स्पर्शन इन्द्रिय (चमड़ी) ही होती है। इनके दो भेद होते हैं—सूक्ष्म और बादर। सूक्ष्म पृथ्वीकाय, सूक्ष्म जलकाय, सूक्ष्म अग्निकाय सूक्ष्म वायुकाय और सूक्ष्म वनस्पतिकाय जीव सारे लोकमें व्याप्त हैं। ये अत्यन्त

१—आधुनिक वैज्ञानिक भी यह मानते हैं कि सारी पोली जगह-खाली आकाश सूक्ष्म जीवोंसे भरा हुआ है। वैज्ञानिकोंने खोज करके यह भी बताया है कि [illegible] उनके [illegible] हैं। वे सुईके [illegible], [illegible] रह सकते हैं।

सूक्ष्म होते हैं, इसलिए चर्मचक्षु इन्हें नहीं देख सकते । बादर[1] पृथ्वीकाय, बादर जलकाय, बादर अग्निकाय, बादर वायुकाय और बादर वनस्पतिकायको चर्मचक्षु देख सकते हैं । घर्षण, छेदन आदि प्रहारविहीन मिट्टी, पत्थर आदि पृथ्वी, जिन जीवोंके शरीरोंका पिंड है, वे बादर पृथ्वीकाय कहलाते हैं । अग्नि आदिके आघातसे रहित-- कूवा, बावडी आदिका जल जिन जीवोंके शरीरोंका पिंड है वे बादर जलकायके जीव हैं । इसी तरह दीपक, अग्नि, बिजली आदि जिन जीवोंके शरीरोंका पिंड है वे बादर अग्निकाय जीव हैं । जिस वायुका हम अनुभव करते हैं वह जिन जीवोंके शरीरोंका पिंड है वे बादर वायुकाय हैं । और वृक्ष, शाखा, प्रशाखा, फूल, फल, पत्र आदि बादर वनस्पतिकाय[2] है ।

उक्त सचेतन पृथ्वी, सचेतन जल आदि अचेतन भी हो सकते हैं । सचेतन पृथ्वीमें छेदन, भेदन आदि आघात लगनेसे उसके अदरके जीव उसमेंसे च्युत हो जाते हैं और इससे वह पृथ्वी अचेतन हो जाती है । इसी तरह जलको गरम करनेसे अथवा उसमें शक्कर आदि पदार्थोंका मिश्रण होनेसे वह भी अचेतन हो जाता है । वनस्पति भी इसी प्रकारसे अचेतन हो जाया करती है ।

जिनके, त्वचा और जीभ ऐसे दो इन्द्रियाँ होती हैं, वे द्वीन्द्रिय जीव कहलाते हैं । कीडे, लट, अलसिये आदि जीवोंका द्वीन्द्रिय जीवोंमे समावेश होता है । जूँ, कीडी आदि जीव, स्पर्शन, रसना

१—बादर यानी स्थूल । 'बादर' जैनशास्त्रोंका पारिभाषिक शब्द है ।

२—धुरधर वैज्ञानिक डॉ जगदीशचंद्र महाशयने अपने विज्ञान-प्रयोगसे भी वनस्पति आदिमें जीवोंका होना सिद्ध करके बता दिया है ।

और प्राण इन्द्रियके होनेसे त्रीन्द्रिय कहलाते हैं। जिनके त्वचा, जीभ, नासिका और नेत्र होते हैं वे चतुरिन्द्रिय जीव कहलाते हैं। मक्खी डाँस, भौंरे बिच्छू आदि चतुरेन्द्रिय जीव हैं। और जिनके त्वचा जीभ, नाक, आँख और कान होते हैं व पंचेन्द्रिय जीव कहलाते हैं। पंचेन्द्रियके चार भेद हैं—मनुष्य तिर्यंच[1] स्वर्गोंमें रहनेवाले देव और नरकोंमें रहनेवाले नारकी।

त्रस जीवोंमें, द्वीन्द्रिय तीन-इन्द्रिय चार-इन्द्रिय और पंच-इन्द्रिय जीवोंका समावेश होता है। ये हिलने चलनेकी क्रिया करते हैं, इसलिए त्रस कहलाते हैं।

इस भाँति स्थावर और त्रस जीवोंमें सब संसारी जीवोंका समावेश हो जाता है। अब मुक्त जीव रहे, उनका वर्णन हम मोक्षतत्त्वके अदर करेंगे।

अजीव

जो पदार्थ चैतन्य-रहित होते हैं वे जड़—अजीव कहलाते हैं। जैनशास्त्रोंमें अजीवके पाँच भेद बताये गये हैं। उनके नाम हैं—धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल।

यहाँ धर्म और अधर्म जो नाम आये हैं इनसे यह नहीं समझना चाहिए कि, ये पुण्य और पापके पर्यायवाची शब्द हैं। बल्के इस नामके दो पदार्थ हैं जो सारे जगमें अवकाशकी भाँति व्याप्त और

1—तिर्यंच तीन तरहके होते हैं—जलचर (पानीमें रहनेवाले) स्थलचर (पशु—चार पैरवाले) और खेचर (पक्षी—उड़नेवाले)

अरूपी हैं। अन्यदर्शनी विद्वानोंको, संभव है कि ये दोनों पदार्थ नवीन मालूम हों, मगर जैनशास्त्रकारोंने तो इनके विषयमें बहुत कुछ लिखा है। आकाशको अवकाश देनेके लिए अन्य दर्शनवाले भी उपयोगी समझते हैं, मगर आकाशके साथ धर्म और अधर्मको भी जैनशास्त्रकार उपयोगी समझते हैं।

धर्म

गमन करते हुए प्राणियोंको और गति करती हुई जड वस्तुओंको सहायता करनेवाला जो पदार्थ है, वह 'धर्म' है। जैसे जलमें फिरनेवाली मछलीको चलनेमें जल सहायता देनेवाला निमित्त माना जाता है इसी भाँति जड और जीवोंकी गतिमें भी किसीको निमित्त मानना आवश्यक है—न्यायसंगत है। यह निमित्तकारण 'धर्म' है। अवकाश-प्राप्तिमें जैसे आकाश सहायक समझा जाता है, वैसे ही गति करनेमें 'धर्म' सहायक समझा जाता है।

अधर्म

जड और जीवोंकी स्थितिमें 'अधर्म' पदार्थका उपयोग होता है। गति करनेमें जैसे 'धर्म' सहायक है उसी तरह स्थितिमें भी कोई सहायक पदार्थ जरूर होना चाहिए। इस न्यायसे 'अधर्म' पदार्थ सिद्ध होता है। वृक्षकी छाया जैसे स्थिति करनेमें निमित्त होती है, वैसे ही जड और जीवोंकी स्थितिमें 'अधर्म' पदार्थ निमित्त होता है।

हिलना, चलना या स्थित होना, इसमें स्वतंत्र कर्ता तो जड और जीव स्वयं ही हैं, अपने ही व्यापारसे ये चलते फिरते और स्थिर होते हैं, परन्तु इसमें सहायककी भाँति किसी अन्य पदार्थकी अपेक्षा अवश्य होनी चाहिए,-वर्तमान वैज्ञानिक भी ऐसा ही मानते हैं,

ही स्वभावतः ऊर्ध्वगति करता है। मगर यहाँ यह विचारणीय है कि, आत्मा कहाँतक ऊर्ध्वगति कर सकता है, कहाँ जाकर वह ठहर सकता है। इसका निबटेरा धर्म—अधर्मद्वारा विभाजित लोक और अलोक माने विना नहीं होता। धर्म द्रव्य गतिमें सहायक है, इसलिए कर्ममलरहित जीव, जहाँतक धर्म द्रव्य है, वहींतक जाता है और लोकके अग्रभागमें जाकर स्थित हो जाता है। वह आगे नहीं जा सकता। कारण आगे सहायक पदार्थ धर्मका अभाव है। यदि धर्म और अधर्म पदार्थ न हों और उनसे होनेवाला लोक व अलोकका विभाग न हो तो कर्मरहित बना हुआ आत्मा ऊपर कहाँतक जायगा, कहाँ स्थित होगा? इन प्रश्नोंका बिलकुल उत्तर नहीं मिलता है।

पुद्गल

परमाणुसे लेकर घट, पट आदि सारे स्थूल-अतिस्थूल रूपी पदार्थोंको 'पुद्गल' सज्ञा दी गई है। 'पूर्' और 'गल्' इन दो धातुओंके संयोगसे 'पुद्गल' शब्द बना है। 'पूर्' का अर्थ पूर्ण होना, मिलना और 'गल्' का अर्थ गलना, खिर पडना, जुदा होना होता है। इसका अनुभव हमें अपने शरीरसे और दूसरे पदार्थोंसे होता है। परमाणुवाले छोटे मोटे सब पदार्थोंमें परमाणुओंका घटना, बढ़ना होता ही रहता है। अकेला परमाणु भी, स्थूल पदार्थसे मिलता और अलग होता है, इसलिए 'पुद्गल' कहला सकता है।

काल

इसको हरेक जानता है। नई चीज पुरानी होती है और पुरानी चीज नई होती है। बालक युवा होता है, युवा वृद्ध होता है।

भविष्यमें होनेवाली वस्तु वर्तमान होती है, और वर्तमानमें होनेवाली वस्तु भूतकालके प्रवाहमें प्रवाहित हो जाती है। यह सब कालकी गति है।

प्रदेश

ऊपर बताये हुए धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये चार अजीव पदार्थ और आत्मा अनेक-प्रदेशवाले हैं। 'प्रदेश' यानी सूक्ष्म-सूक्ष्मातिसूक्ष्म-अंश। इस बातको सब जानते हैं कि घट, पटादि पदार्थोंके सूक्ष्म अंश परमाणु हैं। वे परमाणु जबतक एक दूसरेके साथ जुड़े हुए होते हैं तबतक 'प्रदेश' नामसे पहिचाने जाते हैं। मगर जब वे अवयवीसे भिन्न हो जाते हैं, एक दूसरेसे सर्वथा जुदा हो जाते हैं तब परमाणुके नामसे पुकारे जाते हैं। यह तो हुई पुद्गलकी बात। मगर धर्म अधर्म आकाश और आत्माके प्रदेश तो एक विलक्षण ही प्रकारके हैं। वे प्रदेश परस्पर घनीभूत—सर्वथा एकीभूत हैं। घटके प्रदेश—सूक्ष्म अंश जैसे घड़ेसे भिन्न हो जाते हैं, वैसे धर्म अधर्म आकाश और आत्माके प्रदेश कभी एक दूसरेसे भिन्न नहीं होते हैं।

अस्तिकाय

आत्मा धर्म और अधर्म इन तीनोंके असंख्यात[1] प्रदेश हैं। आकाश अनन्त प्रदेशात्मक है। लोकाकाश असंख्यप्रदेशी है और अलोकाकाश अनंतप्रदेशी। पुद्गलके संख्यात असंख्यात और अनंत प्रदेश होते हैं। इस तरह ये पाँच प्रदेशयुक्त होनेसे अस्तिकाय कहलाते हैं। अस्तिकाय शब्दका अर्थ होता है—

१—जिसकी गणना नहीं हो सकती है उसको असंख्यात कहते हैं। यह सामान्य अर्थ है। मगर सिद्धान्तोंमें इसका जो विशेष अर्थ किया गया है।

'अस्ति' यानी प्रदेश, और 'काय' यानी समूह, यानी प्रदेशोंके समूहसे युक्त। धर्म, आकाश, पुद्गल और जीव इनके साथ 'अस्तिकाय' शब्दको जोड़कर इनका नाम 'धर्मास्तिकाय' 'अधर्मास्तिकाय' 'आकाशास्तिकाय' 'पुद्गलास्तिकाय' और 'जीवास्तिकाय' रख दिया गया है। और ये ही नाम प्रायः व्यवहारमें आते हैं।

कालके प्रदेश नहीं होते। इसलिए वह अस्तिकाय नहीं कहलाता है। बीता हुआ काल नष्ट हो गया और भविष्य समय इस समय असत् है। इसलिए चलता हुआ, वर्तमान क्षण ही सद्भूतकाल है। घड़ी, दिन, रात, महीने वर्ष आदि जो कालके भेद किये गये हैं वे सब असद्भूत क्षणोंको बुद्धिमें एकत्रित करके किये गये हैं। इससे स्पष्ट है कि, एक क्षणमात्र कालमें प्रदेशकी कल्पना नहीं की जा सकती है।

उक्त पाँच अस्तिकाय और कालको जैनदर्शन 'षड्द्रव्य' के नामसे पहिचानता है।

पुण्य और पाप

भले कर्मोंको पुण्य कहते हैं और खराबको पाप। सम्पत्ति, आरोग्य, रूप, कीर्ति, पुत्र, स्त्री, दीर्घायु आदि सुखसाधन जिन कर्मोंके कारण मिलते हैं, वे शुभ कर्म 'पुण्य' कहलाते हैं, और जो कर्म इनसे विपरीत दुःखकी सामग्री एकत्रित कर देते हैं, वे अशुभ कर्म 'पाप' कहलाते हैं।

कर्म आठ होते हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। (इनका सविस्तर वर्णन बंधतत्त्वमें

किया जायगा।) इन आठोंमेंसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म अशुभ हैं। इसलिए ये पापकर्म कहलाते हैं। ज्ञानावरण ज्ञानको ढकता है, दर्शनावरण दर्शनको ढकता है, मोहनीय कर्म मोह पैदा करता है, यानी यह कर्म जीवको संयम नहीं पालने देता है और तत्त्वश्रद्धानमें बाधा डालता है, और अन्तराय कर्म इष्टप्राप्तिमें विघ्न डालता है। इनके सिवा शेष कर्म शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके होते हैं। अशुभ जैसे—नामकर्मकी प्रकृतियोंमेंसे तिर्यंच गति और नरक गति वगैरह, गोत्रोंमेंसे नीच गोत्र, वेदनीयोंमेंसे असातावेदनीय और आयुओंमेंसे नरकायु ये अशुभ होनेसे पापकर्म हैं। शुभ जैसे,—नामकर्मकी प्रकृतियोंमेंसे मनुष्यगति, देवगति आदि, गोत्रोंमेंसे उच्च गोत्र, वेदनीयोंमेंसे साता वेदनीय और आयुओंमेंसे देवादि आयु ये पुण्य कर्म कहलाते हैं।

आस्रव

आत्माके साथ कर्मबंध होनेके जो कारण हैं उन कारणोंका नाम 'आस्रव' रक्खा गया है। जिन प्रवृत्तियोंसे, जिन कार्योंसे कर्म आते हैं यानी आत्माके साथ कर्मका संबंध होता है वे प्रवृत्तियाँ और वे कार्य आस्रव कहलाते हैं। 'आस्रूयते कर्म अनेन इत्यास्रवः' (जिनसे कर्म आते हैं वे आस्रव हैं।) आस्रवको आश्रव भी कहते हैं। 'आश्रवति कर्म अनेन इत्याश्रवः' ऐसी व्युत्पत्तिसे आश्रव शब्द बनता है। कर्म उक्त प्रकार ही

होता है। मन, वचन और कायकी प्रवृत्तियाँ यदि शुभ होती हैं, तो शुभ कर्म बँधते है और यदि अशुभ होती हैं तो अशुभ । अत मुख्यतया मन, वचन और कायकी प्रवृत्तियाँ ही आस्रव होती हैं। मनकी प्रवृत्तियाँ, जसे,–शुभ विचार और वास्तविक श्रद्धा या अशुभ विचार और अयथार्थ श्रद्धा । वचनकी प्रवृत्तियाँ जैसे,–दुष्ट भाषण या सम्यक् भाषण । शरीरका व्यापार, जैसे, हिंसा, चोरी, व्यभिचार आदि दुष्ट आचरण या जीवदया, परोपकार, ईश्वरपूजन आदि पवित्राचरण । श्रीमद् हरिभद्रसूरिमहाराज 'शास्त्रवार्तासमुच्चय' नामक ग्रथमें लिखते है कि —

" हिंसाऽनृतादय· पच तत्त्वाश्रद्धानमेव च ।
क्रोधादयश्च चत्वार इति पापस्य हेतव. ॥
विपरीतास्तु धर्मस्य एत एवोदिता बुधै ।"

भावार्थ–हिंसा, असत्य, (चोरी, मैथुन और परिग्रह) ये पाँच, तथा तत्त्वों (जीव, कर्म, परलोक, मोक्ष आदि पदार्थों) पर अश्रद्धा और कषाय (क्रोध, मान, माया, और लोभ) ये पापके हेतु हैं। इनसे विपरीत (जीवदया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच, तथा तत्त्वश्रद्धान और क्षमा, मृदुता, सरलता और सतोष ये चार) धर्मके यानी पुण्यके हेतु हैं। ऐसा ज्ञानियोंने कहा है। इन पुण्यके हेतुओंमें या पापके हेतुओंमें मनकी भली या बुरी प्रवृत्तियाँ ही मुख्यतासे कार्य करती हैं, और वचनप्रवृत्तियाँ एवं शारीरिक क्रियाएँ मनोयोगको पुष्ट करनेका काम करती हैं,–गौणरूपसे कर्मबधका हेतु होती हैं।

संवर

जो शुभ आत्मपरिणाम मनोयोग वचनयोग और शरीरयोगरूप आस्रवसे बँधनेवाले कर्मोंको रोकता है वह 'संवर' कहलाता है।

'संवर शब्द सम्' उपसर्ग लगाकर 'वृ' धातुसे बना है। सम् पूर्वक वृ' धातुका अर्थ रोकना' होता है। जितने अंशोंमें कर्म नहीं बँधते हैं उतने ही अंशोंमें 'संवर' समझना चाहिए। आत्माके जिन उज्ज्वल परिणामोंसे कर्म बँधने रुकता है, व परिणाम संवर' कहलाते हैं। एक समय ऐसा भी आता है, जब कर्ममात्रका बँधना बंद हो जाता है। ऐसी स्थिति केवलज्ञान प्राप्त होनेके बाद आती है। ऐसी स्थिति प्राप्त होनेके पहिले, जैसे जैसे आत्मोन्नति होती जाती है वैसे ही वैसे बंधनमें भी कमी होती जाती है।

बंध

कर्मोंका आत्माके साथ दूध और पानीकी तरह मेल हो जानेका नाम बंध है। कर्म कहींसे बने नहीं आने पड़ते। इस प्रकारके परमाणु सारे लोकमें ठूँस ठूँसकर भर हुए हैं। उनका नाम जैन-शास्त्रकारोंने 'कर्मवर्गणा' रखा है। ये परमाणु राग-द्वेष रूपी विकारोंके कारण आत्माके साथ बँधते हैं।

यहाँ शंका हो सकती है कि,—शुद्धात्माको राग-द्वेषरूपी विकार कैसे लग सकते हैं? इसका समाधान करनेके लिए जरा सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करना पड़ेगा। यह तो कहा नहीं जा सकता है कि, आत्माके साथ राग-द्वेषरूपी विकारमान अमुक समयमें आ गया है।

क्योंकि ऐसा कहनेसे तो यह प्रमाणित हो जाता है कि चिकनापन लगनेके पहिले आत्मा शुद्धस्वरूपवाला था। मगर शुद्धस्वरूपी आत्माके राग-द्वेषके परिणाम नहीं होते। अगर शुद्धस्वरूपी आत्माके राग-द्वेषके परिणामोंका उत्पन्न होना मानेंगे तो फिर मुक्त आत्माओंके भी राग-द्वेषके परिणामोंका उत्पन्न होना मानना पड़ेगा। भूतकालमें आत्मा शुद्ध था, पीछेसे उसके रागद्वेषरूपी चिकनापन लगा, ऐसा यदि मान लेंगे तो इस आक्षेपको कैसे टाल सकेंगे कि मुक्त होने पर भी, और शुद्ध होने पर भी जीव फिरसे राग-द्वेष युक्त हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि राग-द्वेषके परिणाम आत्माके साथ पीछेसे नहीं लगे हैं। वे अनादि है।

स्वर्णके साथ मिट्टी जैसे अनादिकालसे लगी हुई है, वैसे ही कर्म भी आत्माके साथ अनादिकालसे लगे हुए हैं, और जैसे मिट्टीने स्वर्णकी चमकको ढक रखा है, वैसे ही अनादि कर्म-प्रवाहने भी आत्माके शुद्ध ब्रह्मस्वरूपको ढक रखा है।

ऊपर कहा जा चुका है कि, जैसे 'पहिले आत्मा और पीछे कर्मसंबंध' यह बात नहीं मानी जा सकती है वैसे ही यह भी नहीं कहा जा सकता है कि पहिले कर्म और फिर आत्मा, क्योंकि ऐसा कहनेसे आत्मा उत्पन्न होनेवाला और विनाशी प्रमाणित होता है। इस तरह जब ये दोनों पक्ष सिद्ध नहीं होते हैं, तब यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि आत्मा और कर्म अनादि-सगी हैं।

जैनशास्त्रकारोंने कर्मके मुख्यतया आठ भेद बताये हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। यह बात नये सिरेसे नहीं कहनी पड़ेगी कि आत्माका

वास्तविक स्वरूप अनन्तज्ञान–सच्चिदानन्दमय है; मगर उक्त कर्मोंके कारण उसका असली स्वरूप रुक गया है।

ज्ञानावरणीय कर्म आत्माकी ज्ञानशक्तिको दबानेवाला है। जैसे जैसे यह कर्म विशेषरूपसे प्रबल होता जाता है, वैसे ही वैसे यह ज्ञानशक्तिको विशेषरूपसे आच्छादित करता जाता है। जैसे जैसे इस कर्ममें शिथिलता आती जाती है, वैसे ही वैसे बुद्धिका विकास होता जाता है। इस कर्मके पूर्णतया नष्ट हो जाने पर केवलज्ञान हो जाता है।

दर्शनावरणीय कर्म दर्शन–शक्तिको दबाता है। ज्ञान और दर्शनमें विशेष अन्तर नहीं है। सामान्य आकारके ज्ञानका नाम दर्शन रखा गया है। जैसे–हमने किसीको दूरसे देखा, हम उसको पहिचान नहीं सके, केवल इतना ही जान सके कि यह मनुष्य है। इसका नाम है दर्शन। उसी मनुष्यको विशेष रूपसे जान लेना है ज्ञान।

वेदनीय कर्मका कार्य सुख–दुःखका अनुभव कराना है। जो सुखका अनुभव कराता है उसे सातावेदनीय और जो दुःखका अनुभव कराता है उसको असातावेदनीय कहते हैं।

मोहनीय कर्म मोह पैदा करता है। स्त्री पर मोह, पुत्र पर मोह, मित्र पर मोह, और अन्यान्य पदार्थों पर मोह होना मोहनीय कर्मका परिणाम है। जो लोग मोहसे अंधे हो जाते हैं उन्हें कर्तव्याकर्तव्यका भान नहीं रहता। शराबमें मस्त मनुष्य जैसे वस्तुको वस्तुस्थितिसे नहीं देख सकता है वैसे ही जो मनुष्य मोहकी मद अवस्थामें होता है, वह भी तत्त्वको तत्त्वदृष्टिसे नहीं

समझ सकता है, और विपरीत स्थितिमें गोते खाया करता है। मोहकी लीलाके हजारों उदाहरण हम रातदिन देखते हैं। आठों कर्मोंमेंसे यह कर्म आत्म-स्वरूपकी खराबी करनेमें नेताका कार्य करता है। इस कर्मके दो भेद हैं,—तत्त्वदृष्टिको रोकनेवाला 'दर्शनमोहनीय' और चारित्रको रोकनेवाला 'चारित्रमोहनीय'।

आयुष्य कर्मके चार भेद हैं,—**देवायु, मनुष्यायु, तिर्यंचायु** और **नरकायु**। यह कर्म बेड़ीका कार्य करता है। जब तक पैरमें बेड़ी होती है, तब तक मनुष्य स्वतन्त्रतासे भाग दौड़ नहीं कर सकता है, वैसे ही जब तक आयु कर्म होता है तब तक जीव देवगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति या नरकगतिसे—जिसमें वह होता है—निकल नहीं सकता है।

नाम कर्मके अनेक भेद-प्रभेद हैं। अच्छा या बुरा शरीरका संगठन, सुरूप या कुरूपकी प्राप्ति, यश या अपयशका मिलना सौभाग्य या दुर्भाग्य और सुस्वर या दुःस्वरका होना आदि कई बातोंका आधार इसी नाम कर्म पर है। जैसे चित्रकार भले या बुरे चित्र बनाता है, वैसे ही यह कर्म भी जीवको विचित्र स्थितियोंमें रखता है।

गोत्र कर्मके दो भेद हैं,—उच्च और नीच। ऊँचे कुलमें या नीचे कुलमें उत्पन्न होना इस कर्मका प्रभाव है। ज्ञातिबंधनकी परवाह नहीं करनेवाले देशोंमें भी ऊँच, नीचका व्यवहार होता है। इसका कारण यही कर्म है।

अन्तराय कर्म विघ्न डालनेका कार्य करता है। धनी और धर्मका जाननेवाला होकर भी कोई दान नहीं कर सकता, इसका कारण यह कर्म है। वैराग्यवृत्ति या त्यागवृत्तिके न होने

पर भी कोई पदार्थ भोग नहीं कर सकता है, इसका कारण यह कर्म है। किसीको बुद्धिपूर्वक अनेक प्रयत्न करने पर भी लाभ नहीं होता उल्टे हानि उठानी पड़ती है, इसका कारण यह कर्म है। और शरीरके पुष्ट होने पर भी उद्यम करनेमें प्रवृत्ति नहीं होती, इसका कारण भी यही अन्तराय कर्म है।

संक्षेपमें कर्मसे संबंध रखनेवाली सब बातें कही गईं। जिस तरहकी प्रवृत्तियाँ होती हैं उसी तरहके सचिक्कण कर्म बँधते हैं; और फल भी वैसा ही सचिक्कण भोगना पड़ता है। कर्मबंधनके समय कर्मकी स्थितिका भी बंध हो जाता है। अर्थात् यह भी निश्चित हो जाता है कि यह कर्म अमुक समय तक रहेगा। कर्म बद्ध होते (बँधते) ही उदयमें नहीं आते। जैसे बीज बोनेके कुछ काल बाद उसका फल मिलता है, वैसे ही कर्म भी बंध होनेके कुछ काल बाद उदयमें आते हैं। इसका कोई नियम नहीं है, कि उदयमें आनेके बाद कितने समय तक कर्मका फल भोगना पड़ता है। कारण यह है कि वह स्थिति भी शुभ भावनाओंसे कम हो जाती है।

कर्मोंका बंध एक ही तरहका नहीं होता। किसी कर्मका बंध बहुत दृढ़ होता है, किसीका शिथिल होता है और किसीका शिथिल-तम होता है। जो बंध अतिगाढ़—दृढ़ होता है, उसको जैनशास्त्र निकाचित के नामसे पहिचानते हैं। इस बंधवाला कर्म प्रायः सबको भोगना ही पड़ता है। अन्य बंधवाले कर्म शुभ भावनाओंके प्रबल वेगसे भोगे बिना भी छूट जाते हैं।

निर्जरा

बँधे हुए कर्मोका खिर जाना 'निर्जरा' के नामसे पहिचाना जाता है। यह निर्जरा दो तरहसे होती है। 'मेरे जो कर्मोका बंध है वह छूट जाय' इस प्रकार बुद्धिपूर्वक तपस्या या अनुष्ठानसे जो निर्जरा होती है, यह पहिले प्रकारकी निर्जरा कहलाती है। दूसरी निर्जरा है, कर्मोका, स्थितिके पूर्ण होने पर,—स्वत. खिर पडना। पहिली निर्जराका नाम, जैनशास्त्रोंकी परिभाषामें, 'सकाम निर्जरा' है और दूसरीका नाम 'अकाम निर्जरा'। वृक्षोंके फल जैसे डाल पर भी पक जाते हैं और प्रयत्नोंसे भी पकाये जाते हैं, इसी तरह कर्म भी स्थिति पूर्ण होने पर स्वत· भी खिर जाते हैं और तपश्चर्यादि क्रियाओंद्वारा भी ये खिरा दिये जाते हैं।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चारों कर्म 'घाति कर्म' कहलाते हैं, क्योंकि ये आत्माके केवलज्ञानादि मुख्य गुणोंको हानि पहुँचानेवाले हैं। इन चार घातिकर्मोका नाश होने पर केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है। यह केवलज्ञान लोक और अलोकके भूत, भविष्यत और वर्तमान, सब पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला है। इस ज्ञानके प्रकाशसे जीव सर्वज्ञ कहलाता है। ये सर्वज्ञ आयुष्य पूर्ण होने पर, यानी आयु कर्म पूर्ण होने पर शेष तीन कर्मोको, जो आयुकर्मसहित 'अघाति' या 'भवोपग्राही'[1] के नामसे पहिचाने जाते हैं, भी नष्ट कर देते हैं। इनके नष्ट होते ही, उनका

1—भव अर्थात् संसार या शरीर, और उपग्राही याने टिका रखनेवाला। शरीरको टिका रखनेवाला।

आत्मा तत्काल ही ऊर्ध्व गमन कर एक समयमात्रमें लोकके अग्र-भागमें जा स्थित होता है। आत्माकी इसी अवस्थाका नाम मोक्ष है।

मोक्ष

नौ तत्वोंमेंसे नवाँ तत्व मोक्ष है। इसका लक्षण है—'कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः" अथवा "परमानन्दो मुक्तिः" अर्थात् सारे कर्मोंका क्षय, या कर्मोंके क्षय होनेसे उत्पन्न होनेवाला आनंद। आत्माका स्वभाव है कि, वह सारे कर्मोंका क्षय हो जाने पर ऊर्ध्व गमन करता है। इसके लिए पहिले तूँबीका उदाहरण दिया जा चुका है। आत्मा ऊर्ध्वगमन करता हुआ लोकके अग्रभागमें जाकर रुक जाता है। फिर वह वहाँसे आगे नहीं जा सकता है। क्यों नहीं जा सकता है? इसका कारण भी पहिले कहा जा चुका है कि गमन करनेमें सहायता देनेवाला धर्मद्रव्य लोकके अग्रभागसे आगे नहीं है।

उक्त मुक्तावस्थामें सारे कर्मोंकी उपाधियाँ छूट जानेके कारण शरीर, इन्द्रिय और मनका सर्वथा अभाव हो जाता है; और उससे जो अनिर्वचनीय सुख मुक्त आत्माओंको मिलता है उस सुखके सामने तीन लोकका सुख भी बिन्दुमात्र है। बहुतसे यह शंका किया करते हैं कि मोक्षमें—जहाँ शरीर नहीं रहा, मकान और बाग नहीं—सुख क्या हो सकता है? मगर ऐसी शंका करनेवाले यह भूल जाते हैं कि शारीरिक सुखके साथ दुःख भी लगा हुआ है। भोजन खानेमें आनंद मिलता है इसका कारण भूखकी वेदना है। इस बातको हरेक मानता है कि पेट भर जाने पर अमृतके समान भोजन भी अच्छा

नहीं लगता है। सरदीकी पीड़ाको दूर करनेके लिए जो वस्त्र पहिने जाते हैं, वे ही वस्त्र गरमीके सतापमें बुरे लगते हैं । बहुत देरतक बैठे रहनेवालेको चलनेकी इच्छा होती है, और बहुत चलनेवाला बैठ जाना चाहता है। कामभोग प्रारभमें जितने अच्छे जान पड़ते है, वे अन्तमें उतने ही बुरे ज्ञात होते हैं। यह ससारकी स्थिति क्या सुखमय है ? कदापि नहीं। जो सुखके साधन समझे जाते हैं, वे दु खको कुछ देरके लिए शमन करते हैं, किन्तु नवीन सुख तो इनसे लेशमात्र भी उत्पन्न नहीं होता है। फोडा फूट जानेपर 'हा–य' करके जिस सुखका अनुभव किया जाता है, वह क्या वास्तविक सुख है ? नहीं। वह क्षणमात्रके लिए वेदनाकी शान्ति है। यदि वह सुख सच्चा होता तो उसका अनुभव बेफोडेवाला मनुष्य भी करता ।

ऊपर विषयसेवनमें क्षणिक सुख बताया गया है, उसके लिए इतनी बात और याद रखनी चाहिए कि इस क्षणिक सुखलाभका परिणाम अत्यत भयकर होता है ।

जिस स्वास्थ्यकी प्राप्तिके लिए ससारी जीव खाना, पीना, चलना, फिरना आदि कार्य करते है वह स्वास्थ्य कर्मोंके नष्ट हो जानेसे संसारी जीवोंको स्वतः मिल जाता है। इससे यह स्वीकार करना पडता है कि, मुक्त आत्माओंको अनन्त सुख है ।

जिसके खुजली होती है, उसीको खुजाना अच्छा लगता है दूसरेको नहीं, इसी तरह जिनके पीछे मोहकी वासनाएँ लगी रहती हैं उन्हींको चेष्टाएँ अच्छी लगती हैं औरोंको—मुक्तात्माओंको—नहीं । ससारका मोहमय–विलास प्रारभमें, खुजलीके समान आनद देनेवाला होता है, परन्तु अन्तमें वह दु खोंको पैदा करता है। मुक्त आत्माओंको—

परमात्माओंको,—जिनके मोक्षरूपी शुक्लध्यान प्राप्त है,—जो निर्मल ज्योति स्फुरित और स्वाभाविक आनंद मिलता है, वही वास्तविक परमार्थ आनंद है—सुख है। ऐसे परमसुखी परमात्माओंको, शास्त्रोंमें शुद्ध, बुद्ध, सिद्ध, निरंजन, परमज्योति और परमात्मा आदि नामोंसे संबोधित किया है।

मोक्ष मनुष्य—शरीरसे ही मिलता है। देवता भी देवशरीरसे मोक्षमें नहीं जा सकते हैं।

जैनशास्त्रानुसार 'भव्य' और 'अभव्य' ऐसे दो प्रकारके जीव माने हैं। अन्तमें मोक्षको—चाहे वह कितने ही भवोंमें क्यों न हो—प्राप्त कर लेनेवाले जीव भव्य कहलाते हैं और जो जीव 'अभव्य' होते हैं उन्हें कभी मुक्ति नहीं मिलती है। 'भव्य' या 'अभव्य' कोई किसीके बनानेसे नहीं बनते। यह भव्यत्व—अभव्यत्व जीवका स्वाभाविक परिणाम है। मूँगोंमें जैसे कोरडू मूँग होता है, इसी तरह जीवोंमें अभव्य जीव भी होते हैं। मूँगोंके पक जाने पर भी जैसे कोरडू मूँग नहीं पकता है, वैसे ही अभव्य जीवकी भी संसार-स्थिति पूर्ण नहीं होती है।

जनसमाजको ईश्वरसंबंधी सिद्धान्त खास तौरसे ध्यान आकर्षित करनेवाले हैं। " परिक्षीणसकलकर्मा ईश्वरः " (अर्थात्—जिसके सारे कर्म निर्मूल हो गये हैं वही ईश्वर है) मुक्त-अवस्था-प्राप्त परमात्मासे ईश्वर कोई भिन्न व्यक्ति नहीं है। ईश्वरत्व और मुक्ति अवस्था लक्षण एक है।

जैनशास्त्रकार कहते हैं कि, मोक्षप्राप्तिके कारण सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रका अभ्यास करते करते एक समय ऐसा आता है कि

जब जीव उसका पूर्ण अभ्यासी हो जाता है। पूरा अभ्यास होने पर सारे कर्मबंध छूट जाते हैं और आत्माके अनन्तज्ञानादि सकल गुण प्रकाशित हो जाते हैं। ऐसा सकल गुणप्रकाशित आत्मा ही पर-मात्मा-ईश्वर है। जो जीव अपनी आत्म-शक्तिको विकसित करनेका प्रयत्न करते हैं, परमात्मस्थितिको प्राप्त करनेकी यथावत् कोशिश करते हैं व ईश्वर हो सकते हैं। जैनसिद्धान्त यह नहीं मानते कि ईश्वर एक ही व्यक्ति है। तो भी एक बात है। परमात्मस्थितिप्राप्त सारे सिद्ध एक दूसरेमें मिले हुए हैं, इसलिए हम उनका समुच्चय रूपसे—समष्टि रूपसे 'एक' शब्दसे भी किसी अंशमें व्यवहार कर सकते हैं। भिन्न भिन्न नदियोंका पानी जैसे समुद्रमें जाकर मिलने पर एक हो जाता है, फिर उन भिन्न २ नदियोंमेंसे आया हुआ जल एक कहलाने लग जाता है, इसी तरह भिन्न भिन्न जीव भी मोक्षमें जाकर ऐसे सम्मिलित हो जाते है, जिससे उनको—सिद्ध जीवोंको समुच्चय दृष्टिसे 'एक ईश्वर' या 'एक परमात्मा' मानना अनुचित या असंभव नहीं है।

मोक्षका शाश्वतत्व।

यहाँ एक आशंका होती है कि—यह एक अटल नियम है कि, जिस पदार्थकी उत्पत्ति होती है उसका विनाश भी होता है। मोक्ष भी उत्पन्न होता है, इसलिए उसका अंत होना जरूरी है। जब मोक्षका अन्त हो जायगा तब वह शाश्वत कैसे रहेगा? मगर मोक्ष उत्पन्न होनेवाला पदार्थ नहीं है। कर्मोंसे मुक्त होना यही आत्माका मोक्ष है। आत्मामें जब कोई नवीन पदार्थ उत्पन्न नहीं होता तब उनके नाश होनेकी कल्पना तो सर्वथा व्यर्थ ही है। जैसे बादलोंके हट जानेसे देदीप्यमान सूर्य प्रकाशित होता है, वैसे ही कर्मावरणके

छूट जानेसे आत्माके सारे गुण प्रकाशित हो जाते हैं। इसीसे मोक्ष कहते हैं। इसमें क्या कोई नवीन पदार्थ उत्पन्न होता है?

यह बात खूब ध्यानमें रखनी चाहिए कि सर्वथा निर्मल बने हुए आत्माके फिर कर्मबंध नहीं होता है। कहा है कि—

"दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवाङ्कुरः॥"

भावार्थ—बीजके अत्यंत जल जानेके बाद उसमें अंकुर नहीं आता इसी तरह कर्मरूपी बीजके जल जाने पर फिर भवरूपी अंकुर उत्पन्न नहीं होते हैं।

संसारका संबंध कर्म-संबंधके आधीन है; और कर्मसंबंध रागद्वेषरूपी चिकनाईके आधीन है। इसलिए जो अत्यंत निर्मल हुए हैं—सर्वथा निर्लेप हो गये हैं, उनके रागद्वेषरूपी चिकनापन कैसे हो सकता है? उनके कर्मसंबंधकी कल्पना कैसे की जा सकती है? और इसलिए यह बात कैसे मानी जा सकती है कि, वे फिरसे संसारमें आवेंगे।

सारे कर्म क्षीण हो सकते हैं।

यहाँ शंका हो सकती है कि, आत्माके साथ कर्मका संयोग जब अनादि है तब उसका नाश कैसे हो सकता है? क्योंकि अनादि वस्तुका कभी नाश नहीं होता है। तर्कशास्त्रियोंका यही कथन है, सबका यही अनुभव है। मगर इसके समाधानके लिए यह ध्यानमें रखना चाहिए कि, आत्माके नवीन कर्म बँधते जाते हैं और पुराने खिरते जाते हैं। इससे सहजहीमें समझमें आ जाता है कि अमुक कर्म-व्यक्तिका—अमुक कार्मणवर्गणापरमाणु-समूहका आत्माके साथ अनादि संबंध नहीं है। प्रत्युत भिन्न २

कर्मोंके सयोगका प्रवाह अनादिकालसे वहता आ रहा है। जो सयोग आत्मा और आकाशकी तरह अनादि होता है, वही कभी नष्ट नहीं होता है, बाकीके अनादि सयोग नष्ट हो जाते हैं। आत्माके साथ प्रत्येक कर्मव्यक्तिका सयोग सादि है। इसलिए किसी कर्मव्यक्तिका आत्माके साथ स्थायी होना नहीं बनता है, तब इस बातके माननेमें कौनसी आपत्ति हो सकती है कि, सारे कर्म आत्मासे भिन्न हो जाते हैं[1]

इसके अतिरिक्त ससारके मनुष्योंकी ओर दृष्टिपात करनेसे विदित होता है कि, किसी मनुष्यमें राग-द्वेष ज्यादह होता है और किसीमें कम। इस तरहकी राग-द्वेषकी कमी ज्यादती, विना हेतुके नहीं है। इससे माना जा सकता है कि कम-ज्यादा होनेवाली चीज जिस हेतुसे कम होती है, उस हेतुकी पूर्ण सामग्री मिलने पर वह चीज नष्ट भी हो जाती है। जैसे पोस महीनेकी प्रबल शीत बाल सूर्यके मंद तापसे कम होने लगती है और जब ताप प्रखर हो जाता है तब वह शीत सर्वथैव नष्ट हो जाती है। अत इस कथनमें क्या बाधा हो सकती है कि, कम-ज्यादा होनेवाले राग-द्वेष दोष जिस कारणसे कम होते हैं, उस कारणके पूर्णतया सिद्ध होने पर वे सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। शुभ भावनाओंके सतत प्रवाहसे राग-द्वेषकी कमी होती है। इन्हींका प्रवाह जब प्रबल हो जाता है, जब आत्मा ध्यानके स्वरूपमें निश्चल हो जाता है, तब राग-द्वेष सम्पूर्णरूपसे नष्ट हो जाते हैं; केवलज्ञानका प्रादुर्भाव होता

१—जहाँ कर्म अनादि बताया गया है, वहाँ भिन्न २ कर्मोंके सयोगका प्रवाह अनादिकालसे समझना चाहिए।

है। क्योंकि रागद्वेषके क्षय होनेसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय ये तीनों ही कर्म नष्ट हो जाते हैं। यह संसाररूपी महल केवल दो ही स्तंभोंपर टिका हुआ है। वे हैं राग और द्वेष। मोहनीय कर्मके सर्वस्व ये ही राग और द्वेष हैं। ताड़वृक्षके सिरमें सुई भोंक देनेसे जैसे सारा ताड़वृक्ष सूख जाता है, वैसे ही सर्व कर्मोंके मूल राग-द्वेष पर आघात करनेसे—उसका उच्छेद करनेसे—सारा कर्मवृक्ष सूख जाता है—नष्ट हो जाता है।

केवलज्ञानकी सिद्धि।

राग-द्वेषके क्षय होनेसे जो केवलज्ञान उत्पन्न होता है, उसके संबंधमें बहुतोंको अनेक शंकाएँ रहती हैं। शंकाकार कहते हैं कि— "ऐसा भी कोई ज्ञान होता होगा जो अनंत पदार्थोंके—सकल लोकालोकके—त्रिकालवर्ती तमाम पदार्थों पर प्रकाश डाल सके?" मगर वास्तवमें तो इसमें शंकाके लिए कोई अवकाश नहीं है। हम देखते हैं, मनुष्योंमें ज्ञानकी मात्रा न्यूनाधिक प्रमाणमें होती है। यह क्या सूचित करता है? यही कि, जब आवरण थोड़ा हटता है तब ज्ञान थोड़ा प्रकाशमें आता है, और अधिक हटता है तब अधिक, और जब आवरण सब पूरा हट जाता है तब ज्ञान भी पूर्णतया प्रकाशमें आ जाता है। इस बातको हम एक दृष्टान्त देकर स्पष्ट करेंगे। छोटी मोटी चीजोंमें जो परिमाण देखा जाता है वह बढ़ता हुआ अन्तमें आकाशमें जाकर विश्रान्ति लेता है। आकाशसे बड़ा परिमाणवाला पदार्थ नहीं है। संपूर्ण परिमाण आकाशमें आ गया है। इस दृष्टान्तसे न्यायद्वारा सिद्ध होता है कि ज्ञानकी मात्राको भी, इसी तरह, किसी पुरुषविशेषमें विश्रान्ति लेनी चाहिए। बढ़ते हुए ज्ञानके प्रकर्षका

जहाँ अन्त होता है, ज्ञानकी मात्रा जिसके आगे बढनेसे रुक गई है, जिसके अन्दर सपूर्ण ज्ञानने विश्रान्ति ली है वही पुरुष सर्वज्ञ है, सर्व-दर्शी है और उसीका ज्ञान केवलज्ञानके नामसे पहिचाना जाता है।

ईश्वर जगत्का कर्ता नहीं है।

जैनधर्मका एक सिद्धान्त विचारशील पाठकोंका ध्यान अपनी ओर विशेपरूपसे आकर्षित करता है। वह यह है कि,—ईश्वर जगत्का पैदा करनेवाला नहीं है। जैनशास्त्र कहते हैं कि कर्मसत्तासे फिरनेवाले ससारचक्रमें निर्लेप, परमवीतराग और परमकृतार्थ, ईश्वरके कर्तृत्वकी कैसे सभावना हो सकती है ? प्रत्येक प्राणीके सुख-दु खका आधार उसकी कर्मसत्ता है। वीतराग न किसी पर प्रसन्न होता है और न रुष्ट ही। प्रसन्न या नाराज होना वीतराग-स्थितिको नहीं पहुँचे हुए नीची स्थितिवालोंका काम है।

ईश्वरपूजाकी आवश्यकता।

'ईश्वर जगत्कर्ता नहीं है' इस सिद्धान्तके साथ इस प्रश्नका उत्पन्न होना भी स्वाभाविक है कि—ईश्वरको पूजनेसे क्या लाभ है ? जब ईश्वर वीतराग है—वह प्रसन्न या नाराज नहीं होता है, तब उसकी पूजा-भक्ति क्यों की जाय ? जैनशास्त्रकार इसका उत्तर इस तरह देते हैं कि,—ईश्वर की उपासना उसको प्रसन्न करनेके लिए नहीं की जाती है, बल्के अपने हृदयको शुद्ध बनानेके लीए की जाती है। सब दु खोंकी जड राग-द्वेपको दूर करनेके लिए राग-द्वेपरहित परमात्माका अवलम्बन करना अत्यन्त आवश्यक है। मोहवासनाओंसे पूर्ण आत्मा स्फटिकके समान है। जैसे स्फटिक अपने पासवाले रग के समान ही रग धारण कर लेता है, वैसे ही राग-द्वेपके जैसे सयोग

आत्मासे मिलते हैं वैसा ही असर आत्मा पर चीजोंके साथ हो जाता है। इसलिए हरेक विचारशील उत्तम संयोगप्राप्तिकी आवश्यकताको स्वीकार करता है। वीतराग देवका स्वरूप परम शान्तिमय है। उसमें राग-द्वेषका लेशमात्र भी स्थान नहीं है। इसलिए उसका स्मरण करनेसे—उसका ध्यान करनेसे आत्मामें वीतरागभावका संचार होता है और क्रमशः ध्याता आत्मा भी वीतराग बन जाता है। संसारमें देखा जाता है कि रूपवती स्त्रीको देखनेसे कामकी उत्पत्ति होती है पुत्र या मित्रके दर्शन करनेसे स्नेहकी जागृति होती है और एक प्रसन्नात्मा मुनिके दर्शन करनेसे हृदयमें शान्तिका संचार होता है। इन कार्योंसे 'संसर्ग असर' जनतापर विशेष रूपसे प्रमाण आकर्षित होता है। वीतरागकी मोहमय है—उनका दर्शन स्तवन, पूजन या स्मरण करना। इससे आत्मा पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि, उसकी राग-द्वेषवृत्ति स्वतः कम हो जाती है। यह ईश्वरपूजनका मुख्य फल है।

पूज्य परमात्माको पूजकसे कुछ प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं होती। पूज्य परमात्माका पूजकसे कोई उपकार नहीं होता। हाँ पूजकका उपकार पूज्य परमात्माकी पूजासे अवश्य होता है। पूजा भी वह अपनी भलाईके लिए ही करता है। परमात्माके अवलंबनसे,—परमात्माका एकाग्रचित्त होकर ध्यान करनेसे—उस पवित्रात्माके बलसे, पूजक अपना फल प्राप्त कर सकता है।

जैसे अग्निके पास जानेसे मनुष्यकी सरदी उड़ जाती है, परन्तु अग्नि किसीकी सरदी उड़ानेके लिए नहीं बुलाती और न वह प्रसन्न होकर किसीकी सरदी उड़ाती ही है, इसी प्रकार वीतराग प्रभुकी भी बात है। प्रभुकी उपासना करनेसे राग-द्वेषकी सरदी स्वतः उड़

जाती है, और चैतन्य–विकासरूपी महान् फलकी प्राप्ति होती है। इस प्रकारकी फलप्राप्तिमें ईश्वरका प्रसन्न होना, मानना, जैनशास्त्रोंको अस्वीकार है।

वेश्याकी संगति करनेवाला मनुष्य दुर्गतिका भाजन बनता है, यह बात अक्षरशः सत्य है। मगर विचारना यह है कि इस दुर्गतिका देनेवाला है कौन? वेश्याको दुर्गतिदाता मानना भ्रान्तिपूर्ण है। क्यों कि प्रथम तो वेश्या यह जानती ही नहीं है कि दुर्गति क्या चीज है? दूसरे यह है कि कोई किसीको दुर्गतिमें ले जानेका सामर्थ्य नहीं रखता है। इससे निर्भीकताके साथ यह कहा जा सकता है कि मनुष्यको दुर्गतिमें ले जानेवाली उसके हृदयकी मलिनता है। इससे यह सिद्धान्त स्थिर किया जा सकता है कि सुखदुःखके कारणभूत जो कर्म हैं उन कर्मोंका कारण हृदयकी शुभाशुभ वृत्तियाँ हैं, और इन वृत्तियोंको शुभ बनाने और उनके द्वारा सुख प्राप्त करनेका सर्वोत्कृष्ट साधन भगवद्-उपासना है। उसकी उपासनासे वृत्तियाँ शुभ बनती हैं और अन्तमें सारी वृत्तियोंका निरोध होकर अतीन्द्रिय परमानंद मिलता है।

मोक्षमार्ग

नव तत्त्वोंका संक्षिप्त वर्णन समाप्त हुआ। इससे पाठक भली प्रकार समझ गये होंगे कि जैन लोग आत्मा, पुण्य, पाप, परलोक, मोक्ष और ईश्वर इन सबको यथावत् मानते हैं। आस्तिकोंके आस्तिकत्वका

आकार, इन्हीं पुण्य, पाप, परलोक आदि परोक्ष तत्त्वोंका मानना है। केवल प्रत्यक्ष प्रमाण ही माननेसे तत्त्वज्ञानका मार्ग नहीं मिलता। ऐसा करनेसे आत्मजीवनकी भी स्थिति ठीक नहीं रहती। जो सिर्फ प्रत्यक्ष प्रमाणको मानते हैं उन्हें भी धुएँको देखकर अग्नि होनेका अनुमान करना ही पड़ता है। नहीं देखनेसे वस्तुका अभाव मानना न्यायसंगत नहीं। बहुतसी वस्तुएँ ऐसी हैं, कि जो अपने दृष्टिगत नहीं होतीं; परन्तु उनका अस्तित्व है। तो क्या न दिखनेसे अस्तित्वका अभाव हो जायगा? आकाशमें उड़ता हुआ पक्षी इतना ऊँचा चला गया कि वह दिखनेसे बंद हो गया; इससे क्या यह मान लिया जाय कि वह पक्षी है ही नहीं? अपना ही अनुभव मानना और दूसरेके अनुभवको नहीं मानना अनुचित है। एक मनुष्य लंदन, पेरिस, न्यूयार्क, बर्लिन आदि नगर देखकर आया है और वह उनकी शोभाका वर्णन लोगोंके सामने यथावत् वर्णन कर रहा है; मगर सुननेवालेको प्रत्यक्ष प्रमाणके अभाव; स्वयंने उसका अनुभव नहीं किया इसलिए; यदि उस बातको नहीं मानेगा तो हँसीका पात्र होगा। इसी तरह यह बात भी है। यानी साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा अनंत महापुरुष अनुभवज्ञानमें बहुत बढ़े चढ़े थे। उनके सिद्धान्तोंको हम अनुभव नहीं कर सकते इसीलिए नहीं मानना अनुचित है।

मनुष्यको चाहिए कि वह पुण्य-पापकी जो बातें संसारमें हो रही हैं उनको सभी प्रकार समझे, संसाररूपी महाविपत्तिसे सावधान बने और आत्माके ऊपर लगे हुए कर्मरूपी मलको दूर करनेके लिए वैराग्यको पूर्ण प्रकाशमें लानेके लिए कल्याणमंगल मार्गमें लगे। मनुष्य धार्मिक मार्ग पर चलता हुआ, चाहे चाल धीमी ही क्यों न

हो, कभी नहीं घबराता है, वह क्रमशः आगेकी ओर बढ़ता ही जाता है, और अन्तमें वह अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच जाता है। साध्यको लक्ष्यमें न रखकर बाण चलानेवाले धनुर्धरकी चेष्टा जैसे निष्फल जाती है, वैसे ही साध्यको स्थिर किये बिना जो क्रिया की जाती है वह भी निष्फल जाती है। मोक्ष मनुष्यमात्रका-चाहे वह साधु हो या गृहस्थ-वास्तविक साध्य है। इसलिए इसको लक्ष्यमें रख इसको सिद्ध करानेवाले मार्गकी खोज करना प्रत्येकका कर्तव्य है। जो दुराग्रहको छोड़, गुणानुरागी बन, जिज्ञासु बुद्धिसे आत्मकल्याणकी खोज करता है, शास्त्रोंका मनन करता है, उसको वास्तविक निष्कलक मार्ग मिल ही जाता है। मार्ग जान कर उसपर चलना आवश्यक है। इस बातको हरेक समझ सकता है कि, पानीमें तैरनेकी क्रियाको जानता हुआ भी अगर कोई पानीमें नहीं उतरता है, क्रियाको कार्यमें नहीं लाता है, तैरनेका प्रयत्न नहीं करता है, तो वह समय पर तैर नहीं सकता है। इसलिए शास्त्रकार कहते हैं कि–"**सम्यग्ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः**"—यथार्थ ज्ञान और तदनुकूल की गई क्रियासे ही मोक्ष मिलता है।

सम्यग्ज्ञान।

आत्मतत्त्वकी पहिचान करनेका नाम सम्यग्ज्ञान है। आत्माके साथ जिन जड तत्त्वोंका—कर्मोंका संबध है, उनका जब तक वास्तविक स्वरूप समझमें नहीं आता है तब तक मनुष्योंको आत्मतत्त्वका यथार्थ बोध नहीं होता है और आत्मतत्त्वके बोध विना ससारकी सारी विद्वत्ता निरर्थक है। ससारकी क्लेशजालका आधार अज्ञानता है। अत क्लेशजालको हटानेके लिए अज्ञानको हटाना

चाहिए। अज्ञानको हटानेका सबसे उत्तम उपाय है—आत्मस्वरूपका ज्ञान। इसलिए मनुष्यका सबसे पहिला कर्तव्य सद्बुद्धि, एक-शक्ति आत्मस्वरूपका परिचय करना है।

सम्यक् चारित्र।

उसस्वरूपको जाननेका फल पापकर्मोंसे हटना है। इसीको सम्यक् चारित्र कहते हैं। 'सम्यक् चारित्र' का वास्तविक अर्थ है अपने जीवनको पापके संयोगसे दूर रखकर निर्मल बनाना। मनुष्य पापके संयोगसे कैसे बच सकता है? इसके लिए शास्त्रोंमें नियम बताये गये हैं। उनको आचरणमें लाना पापसंयोगसे बचनेका बहुत ही सीधा उपाय है। सामान्यतः चारित्र दो भागोंमें विभक्त किया गया है। एक है गृहस्थोंका चारित्र और दूसरा है, साधुओंका चारित्र। पहिला गृहस्थधर्म और दूसरा साधुधर्म के नामसे पहिचाना जाता है।

जैनशास्त्रकारोंने साधुधर्म और गृहस्थधर्मके लिए बहुत कुछ लिखा है।

साधुधर्म।

"साध्नोति स्वपरहितकार्याणि इति साधुः"—अर्थात् जो निजके और दूसरोंके लाभ पहुँचानेवाले कार्य करता है, वह साधु है। संसारके भोगोंको—धन, दौलत, स्त्री आदिको छोड़, कुटुम्ब-परिवारके नातेको तोड़, व्यापारको तिलांजलि दे, आत्मकल्याणकी उच्च कोटि पर आरूढ़ होनेकी पवित्र कामना रख, अकिंचनत्व ग्रहण करनेका नाम साधुधर्म है। साधुके आचरणका मुख्य नियम होता है—राग-द्वेषकी वृत्तियोंका त्याग। किसी जीवको मारने या सतानेमे

दूर रहना, झूठ नहीं बोलना, किसी चीजको, मालिककी आज्ञा विना न उठाना, मैथुनसे दूर रहना और परिग्रह नहीं रखना,[1] ये साधुओंके पाँच महाव्रत हैं। अपने मनकी, अपने वचनकी और अपने शरीरकी चचलता पर अंकुश रखना[2] साधुजीवनका अटल लक्षण है। साधुधर्म यह विश्वबन्धुताका व्रत है। इसका फल है,—जन्म, जरा, मृत्यु, आधि, व्याधि, उपाधि आदि सब दुःखोंसे रहित स्थानको—मोक्षको पाना। यह साधुधर्म जितना उज्ज्वल और पवित्र है, उतना ही विकट भी है। साधुधर्मको वही आचरणमें लाता है, जिसको ससारके स्वरूपका वास्तविक ज्ञान होता है, जिसके हृदयमें वात्त्विक वैराग्यका प्रादुर्भाव होता है और जिसको मोक्ष प्राप्त करनेकी प्रवल आकाक्षा होती है।

जो साधुधर्मको नहीं पाल सकते हैं, उनको चाहिए कि, वे गृहस्थधर्मका पालन करें। इससे भी वे अपने जीवनको कृतार्थ बना सकते हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि गृहस्थधर्ममें चलनेके पहिले मनुष्यको अमुक गुण प्राप्त कर लेने चाहिएँ। अमुक बातोंका अभ्यास कर लेना चाहिए। सबमे पहिले न्यायपूर्वक धन कमाने, कठोरसे कठोर स्थितिमें भी अन्याय नहीं करनेका गुण प्राप्त करना चाहिए। इसके सिवा महात्माओंकी सगति, तत्त्वश्रवणकी उत्कंठा और इन्द्रियोंकी उच्छृंखलतापर अधिकार करना आदि गुण प्राप्त कर लना भी गृहस्थधर्मके-मार्ग पर चलनेवाले मनुष्यके लिए आवश्यक है।

---

१ प्राणातिपातविरमण, मृषावादविरमण, अदत्तादानविरमण, मैथुनविरमण और परिग्रहविरमण, ये पाँच व्रतोंके क्रमश जैनशास्त्रानुसार पारिभाषिक (technical) शब्द हैं।

२—जैनशास्त्रोंकी परिभाषामें इसको मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति कहते हैं।

चाहिए। अज्ञानको हटानेका सबसे उत्तम उपाय है—आत्मस्वरूपको जानना। इसलिए मनुष्यका सबसे पहिला कर्तव्य, यथाबुद्धि, यथाशक्ति आत्मस्वरूपका परिचय करना है।

सम्यक् चारित्र।

तत्त्वस्वरूपको जाननेका फल पापकर्मोंसे हटना है। इसीको सम्यक् चारित्र कहते हैं। 'सम्यक् चारित्र' शब्दका वास्तविक अर्थ है अपने जीवनको पापके संयोगसे दूर रखकर निर्मल बनाना। मनुष्य पापके संयोगसे कैसे बच सकता है। इसके लिए शास्त्रोंमें नियम बताये गये हैं। उनको आचरणमें लाना पापसंयोगसे बचनेका बहुत ही सीधा उपाय है। सामान्यतः चारित्र दो भागोंमें विभक्त किया गया है। एक है गृहस्थोंका चारित्र और दूसरा है, साधुओंका चारित्र। पहिला 'गृहस्थधर्म' और दूसरा 'साधुधर्म' के नामसे पहिचाना जाता है।

जैनशास्त्रकारोंने साधुधर्म और गृहस्थधर्मके लिए बहुत कुछ लिखा है।

साधुधर्म।

"साध्नोति स्वपरहितकार्याणि इति साधुः"—अर्थात् जो निजको और दूसरोंको लाभ पहुँचानेवाले कार्य करता है वह साधु है। संसारके भोगोंको—कंचन, कामिनी आदिको छोड़, कुटुम्ब-परिवारके नातेको तोड़, घरबारको जलांजलि दे, आत्मकल्याणकी उच्च कोटि पर पहुँचनेकी पवित्र भावना रख, धर्मध्यान महान करनेका नाम साधुधर्म है। साधुके आचारका प्रथम नियम होता है—छःकायके जीवोंका रक्षण। किसी जीवको मारने या सतानेसे

दूर रहना, झूठ नहीं बोलना, किसी चीजको, मालिककी आज्ञा विना न उठाना, मैथुनसे दूर रहना और परिग्रह नहीं रखना, [1]ये साधुओंके पाँच महाव्रत हैं। अपने मनकी, अपने वचनकी और अपने शरीरकी चचलता पर अंकुश रखना [2]साधुजीवनका अटल लक्षण है। साधुधर्म यह विश्वबन्धुताका व्रत है। इसका फल है,—जन्म, जरा, मृत्यु, आधि, व्याधि, उपाधि आदि सब दुःखोंसे रहित स्थानको—मोक्षको पाना। यह साधुधर्म जितना उज्ज्वल और पवित्र है, उतना ही विकट भी है। साधुधर्मको वही आचरणमें लाता है, जिसको ससारके स्वरूपका वास्तविक ज्ञान होता है, जिसके हृदयमें तात्त्विक वैराग्यका प्रादुर्भाव होता है और जिसको मोक्ष प्राप्त करनेकी प्रबल आकाक्षा होती है।

जो साधुधर्मको नहीं पाल सकते हैं, उनको चाहिए कि, वे गृहस्थधर्मका पालन करें। इससे भी वे अपने जीवनको कृतार्थ बना सकते हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि गृहस्थधर्ममें चलनेके पहिले मनुष्यको अमुक गुण प्राप्त कर लेने चाहिएँ। अमुक बातोंका अभ्यास कर लेना चाहिए। सबसे पहिले न्यायपूर्वक धन कमाने, कठोरसे कठोर स्थितिमें भी अन्याय नहीं करनेका गुण प्राप्त करना चाहिए। इसके सिवा महात्माओंकी सगति, तत्त्वश्रवणकी उत्कठा और इन्द्रियोंकी उच्छृखलतापर अधिकार करना आदि गुण प्राप्त कर लेना भी गृहस्थधर्मके मार्ग पर चलनेवाले मनुष्यके लिए आवश्यक है।

---

१ प्राणातिपातविरमण, मृषावादविरमण, अदत्तादानविरमण, मैथुनविरमण और परिग्रहविरमण, ये पाँच व्रतोंके क्रमश जैनशास्त्रानुसार पारिभाषिक (technical) शब्द हैं।

२—जैनशास्त्रोंकी परिभाषामें इसको मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति कहते हैं।

इस व्रतका निष्कर्ष यह है कि, जान बूझकर-संकल्पपूर्वक किसी निरपराधी त्रस जीवको नहीं मारना चाहिए, नहीं सताना चाहिए।

इस व्रतमें यद्यपि स्थावर जीवोंकी हिंसाका कोई प्रतिबंध नहीं है, तो भी इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि, जहाँतक हो सके स्थावर जीवोंकी व्यर्थ हिंसा न हो। इसके अतिरिक्त अपराधीके संबंधमें भी बहुत गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। साँप, बिच्छू आदिको, उनके काट खाने पर, अपराधी समझना और उनको मारनेकी चेष्टा करना अनुचित है। हृदयमें पूर्णतया दयादृष्टि रखनी चाहिए और सर्वत्र विवेकपूर्वक, लाभालाभको सोचकर, प्रवृत्ति करनी चाहिए। यही गृहस्थजीवनका शृंगार है।[1]

स्थूल मृषावादविरमण—जो सूक्ष्म असत्यसे भी बचनेका व्रत नहीं निभा सकते हैं उनके लिए स्थूल (मोटे) असत्योंका त्याग करना बताया गया है। इसमें कहा गया है कि, कन्याके संबंधमें, पशुओंके संबंधमें, खेत कूओंके संबंधमें और इसी तरहकी और बातोंके संबंधमें झूठ नहीं बोलना चाहिए। यह भी आदेश किया गया है कि, दूसरोंकी धरोहर नहीं पचा जाना चाहिए, झूठी गवाही नहीं देनी चाहिए और खोटे लेख-दस्तावेज नहीं बनाने चाहिए।[2]

1—"पङ्गुकुष्ठिकुणित्वादि दृष्ट्वा हिंसाफलं सुधीः।
निरागस्त्रसजन्तूनां हिंसां संकल्पतस्त्यजेत्" ॥
—हेमचन्द्राचार्यकृत योगशास्त्र।

2—"कन्यागोभूम्यलीकानि न्यासापहरणं तथा।
कूटसाक्ष्यं च पञ्चेति स्थूलासत्यान्यकीर्तयन्" ॥
(योगशास्त्र)

स्थूल अदत्तादानविरमण—जो सूक्ष्म चोरीका त्यागना नियम नहीं पाल सकते उनके लिए स्थूल चोरी छोड़नेका नियम किया गया है। स्थूल चोरीमें इन कार्योंका समावेश होता है—ताला खोलना, ताला तोड़ना, जेबकी कतरना, खोटे बाट-तौले रखना कम ज्यादा नाप आदि; और ऐसी चोरी नहीं करना जो राजनियमोंसे अपराध बताई गई हो। किसीकी रास्तेमें पड़ी हुई चीजको उठा लेना किसीके जमीनमें गड़े हुए धनको निकाल लेना और किसीकी धरोहरको दबा जाना—इन कार्योंका इस व्रतमें पूर्णतया त्याग करना चाहिए।

स्थूल मैथुनविरमण—इस व्रतका अभिप्राय है, परस्त्रीका त्याग करना। वेश्या, विधवा और कुमारीकी संगतिका त्याग करना भी इसी व्रतमें आ जाता है।

परिग्रहपरिमाण—इच्छा अपरिमित है। इस व्रतका अभिप्राय है—इच्छाको नियममें रखना। धन धान्य, सोना, चाँदी, घर खेत, पशु आदि तमाम आवश्यकताके लिए अपनी इच्छानुकूल नियम ले लेना चाहिए। नियमसे विशेष कमाई हो, तो उसको धर्मकार्यमें खर्च देना चाहिए। इच्छाका परिमाण नहीं होनेसे लोभका विशेष रूपसे पोषण पड़ता है, और उसके कारण मनुष्य अधोगतिमें चला जाता है। इसलिए इस व्रतकी आवश्यकता है।

१— पतितं विस्मृतं नष्टं स्थितं स्थापितमाहितम्।
अदत्तं नाददीत स्वं परकीयं क्वचित् सुधीः॥ (योगशास्त्र)

२— षण्ढत्वमिन्द्रियच्छेदं वीक्ष्याब्रह्मफलं सुधीः।
भवेत् स्वदारसन्तुष्टोऽन्यदारान् वा विवर्जयेत्॥ (योगशास्त्र)

३— असन्तोषमविश्वासमारम्भं दुःखकारणम्।
मत्वा मूर्च्छाफलं कुर्यात् परिग्रहनियन्त्रणम्॥ (योगशास्त्र)

दिग्व्रत—उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम इन चारों दिशाओं और ऐशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य, और वायव्य इन विदिशाओंमें जाने आनेका नियम करना, यह इस व्रतका अभिप्राय है। बढती हुई लोभवृत्तिको रोकनेके लिये यह नियम बनाया गया है।

भोगोपभोगपरिमाण—जो पदार्थ एक ही वार उपयोगमें आते हैं वे भोग कहलाते है। जैसे—अन्न, पानी आदि। और जो पदार्थ वार वार काममें आ सकते हैं वे उपभोग कहलाते हैं। जैसे-वस्त्र, जेवर आदि। इस व्रतका अभिप्राय है कि, इनका नियम करना—इच्छानुसार निरतर परिमाण करना। तृष्णा—लोलुपता पर इस व्रतका कितना प्रभाव पडता है, इससे तृष्णा कितनी नियमित हो जाती है सो अनु-भव करनेहीसे मनुष्य भली प्रकार जान सकता है। मद्य, मास, कदमूल आदि अभक्ष्य पदार्थोंका त्याग भी इसी व्रतमें आ जाता है। शान्तिमार्गमें आगे बढनेकी मनुष्य को जब इच्छा होती है, तब ही वह इस व्रतको पालन करता है। इसलिए जिसमें अनेक जीवोंका सहार होता हो, ऐसा पापमय व्यापार नहीं करना भी इसी व्रतमें आ जाता है।

अनर्थदंडविरमण—इसका अर्थ है—विना मतलब दडित होनेसे—पापद्वारा बँधनेसे बचना। व्यर्थ खराब ध्यान न करना, व्यर्थ पापोपदेश न देना और व्यर्थ दूसरोंको हिंसक उपकरण न देना इस व्रतका पालन है। इनके अतिरिक्त, खेल तमाशे देखना, गप्पें लडाना, हँसी दिल्लगी करना आदि प्रमादाचरण करनेसे यथाशक्ति बचते रहना भी इस व्रतमें आ जाता है।

१—जहाँ दाक्षिण्यका विषय हो, वहाँ गृहस्थको खेत, कूए आदि कार्योंके लिए उपदेश या उपकरण देनेका इस व्रतमें प्रतिबध नहीं है।

सामायिक व्रत—राग-द्वेषरहित शान्तिके साथ दो घड़ी यानी ४८ मिनिट तक आसन पर बैठनेका नाम 'सामायिक' है। इस समयमें आत्मस्वरूपकी विचारणा, वैराग्यमय शास्त्रोंका परिशीलन अथवा परमात्माका ध्यान करना चाहिए।

देशावकाशिक व्रत—इसका अभिप्राय है—छठे व्रतमें ग्रहण किये हुए दिशाके दीर्घकालिक नियमको एक दिन या अमुक समयतकके लिए परिमित करना; इसी तरह दूसरे व्रतोंमें जो छूट है उसको भी संक्षेप करना।

पोषधव्रत—यह धर्मका पोषक होता है इसलिए 'पोषध' कहलाता है। इस व्रतका अभिप्राय है—उपवासादि तप करके चार या आठ प्रहर तक साधुकी तरह धर्मकार्यमें आरूढ़ रहना। इस पोषधमें अंगकी तैल-मर्दन आदि द्वारा शुश्रूषाका त्याग, पाप-व्यापारका त्याग तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक धर्मक्रिया करनेका और शुभ ध्यानका अथवा शास्त्रमननका स्वीकार किया जाता है।

अतिथिसंविभाग—अपनी आत्मोन्नति करनेके लिए गृहस्थ-आश्रमका त्याग करनेवाले मुमुक्षु अतिथि कहलाते हैं। उन अतिथियोंको—मुनि महात्माओंको अन्न वस्त्र आदि चीजोंका जो उनके धर्ममें बाधा न डालें मगर उनके संयमपालनमें उपकारी हों दान देना और रहनेके लिए स्थान देना इस व्रतका अभिप्राय है। साधु संतोंके अतिरिक्त उत्तम गुण-पात्र गृहस्थोंकी प्रतिपत्ति करना भी इस व्रतमें सम्मिलित होता है।

इन बारह व्रतोंमेंसे प्रारंभके पाँच व्रत अणुव्रत कहलाते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि ये साधुके महाव्रतोंके सामने अणु

मात्र हैं—बहुत छोटे है। उनके बादके तीन 'गुणव्रत' कहलाते हैं। कारण यह है कि ये तीन व्रत अणुव्रतोंका गुण यानी उपकार करनेवाले हैं, उनको पुष्ट करनेवाले हैं। अन्तिम चार 'शिक्षाव्रत' कहलाते है। शिक्षाव्रत शब्दका अर्थ है-विशेष धार्मिक कार्य करनेका अभ्यास डालना।

बारहों व्रत ग्रहण करनेका सामर्थ्य न होने पर शक्तिके अनुसार भी व्रत ग्रहण किये जा सकते हैं। इन व्रतोंका मूल सम्यक्त्व है। सम्यक्त्वप्राप्तिके विना गृहस्थधर्मका सपादन नहीं हो सकता है।

सम्यक्त्व।

'सम्यक्त्व' शब्दका सामान्य अर्थ होता है—अच्छापन, या निर्मलता। मगर जैनशास्त्रकारोंने इसका अर्थ विशेष रूपसे किया है।

"तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्"।

(तत्त्वार्थाधिगम २ रा सूत्र)

भावार्थ—जीवाजीवादि तत्त्वोंको यथार्थ स्वरूपमें बुद्धिपूर्वक अटल विश्वास करना सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन, सम्यक्त्वका नामान्तर है। गृहस्थोंके लिए सम्यक्त्वका विशेष लक्षण भी बताया गया है। जैसे—

"या देवे देवताबुद्धिर्गुरौ च गुरुतामति.।
धर्मे च धर्मधी शुद्धा सम्यक्त्वमिदमुच्यते"॥ (योगशास्त्र)

भावार्थ—देव पर देवबुद्धि, गुरु पर गुरुबुद्धि और धर्म पर धर्म-बुद्धि—शुद्ध प्रकारकी बुद्धि रखनेका नाम सम्यक्त्व है। यहाँ हम थोडासा देव, गुरु और धर्म तत्त्वका भी पाठकोंको परिचय करा देना चाहते हैं।

देवतत्त्व ।

देव कहो या ईश्वर कहो, बात एक ही है। ईश्वरका स्वरूप पहिले बताया जा चुका है; फिर भी योगशास्त्र यहाँ बता रहे हैं—

" सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः ।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः ॥ (योगशास्त्र)

भावार्थ—जो सर्वज्ञ है, रागद्वेष आदि समस्त दोषोंसे मुक्त है, तीन लोक जिसकी पूजा करता है और जो यथार्थ उपदेश देता है वही 'परमेश्वर' अथवा 'देव' कहलाता है।

गुरुतत्त्व ।

" महाव्रतधरा धीरा भैक्षमात्रोपजीविनः ।
सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मताः " (योगशास्त्र)

भावार्थ—जो अहिंसा आदि पाँच महाव्रतोंको धारण करते हैं, जो धैर्य गुणसे विभूषित होते हैं जो भिक्षा-माधुकरीवृत्तिद्वारा अपना जीवननिर्वाह करते हैं जो समभावमें रहते हैं और धर्मका यथार्थ उपदेश करते हैं वे ही गुरु कहलाते हैं।

धर्मकी व्याख्या ।

पञ्चैतानि पवित्राणि सर्वेषां धर्मचारिणाम् ।
अहिंसा सत्यमस्तेयं त्यागो मैथुनवर्जनम् " ॥

(हरिभद्रसूरिकृत अष्टक)

भावार्थ—सब धर्मोंवाले अहिंसा सत्य अचौर्य त्याग, सन्तोषवृत्ति और ब्रह्मचर्य इन पाँच व्रतोंको पवित्र मानते हैं; वे व्रत सर्वमान्य हैं। धर्मस्वरूप अर्थ है—

१ अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

"दुर्गतिप्रपतत्प्राणिधारणाद् धर्म उच्यते"।

भावार्थ—जो दुर्गतिमें पडते हुए प्राणियोंको धारण करता है—प्राणियोंको दुर्गतिमें पडनेसे बचाता है, वह धर्म है।

वास्तवमें तो धर्म, आत्माकी स्वानुभवगम्य—अनुभवसे ही समझमें आनेवाली वस्तु है। क्लिष्ट कर्मोंके संस्कार दूर होने पर, राग-द्वेषकी वृत्तियाँ घटने पर, अन्त.करणकी जो शुद्धि होती है, वही वास्तविक धर्म है। इस वास्तविक धर्मको सपादन करनेके लिए दान—पुण्य आदि जो क्रियाएँ की जाती हैं, वे भी धर्म ही कहलाती हैं, क्योंकि वे भी धर्म राजाकी ही परिवार होती हैं।

जो गृहस्थ उक्त बारह व्रतोंको सम्यक्त्वसहित पालते हैं उनकी आत्मिकशक्तिका क्रमश विकास होता है, और अन्तमें उनकी आत्माके सारे गुण प्रकट हो जाते हैं। अब यह विचार किया जायगा कि, आत्मशक्तिका विकास कैसे होता है।

गुणश्रेणी अथवा गुणस्थान

जैनशास्त्रोंमें चौदह श्रेणियाँ बताई गई है। ये गुणस्थानकी श्रेणियाँ हैं। गुणस्थानका अर्थ है गुणोंका विकास। आत्मिक गुणोंका विकास यथायोग्य क्रमश. चौदह श्रेणियोंमें होता है।

प्रथम श्रेणी पङ्क्तिके जीवोंकी अपेक्षा दूसरी और तीसरी श्रेणीके जीवोंके आत्मिक गुण कुछ विशेष रूपसे विकसित होते हैं। चौथी श्रेणीके आत्मिक गुण इन तीनोंमे अधिक होते हैं। इसी प्रकार उत्तरोत्तर श्रेणियोंके जीव यथासम्भव पूर्व पूर्व श्रेणियोंके जीवोंकी

अपेक्षा विशेष उन्नति पर पहुँचे हुए होते हैं। चौदहवीं मंजिलके जीव अतिनिर्मल और परम कृतार्थ होते हैं। जीव चौदहवीं श्रेणीमें पहुँचते ही मुक्त हो जाते हैं। सारे जीव प्रारंभमें तो प्रथम श्रेणीमें ही होते हैं; पीछेसे जो अपने आत्मगुणोंको विकसित करनेका प्रयत्न करते हैं वे उत्तरोत्तर श्रेणियोंमेंसे गुजरते हुए अन्तमें चौदहवीं श्रेणीमें। पहुँच जाते हैं। जिनके प्रयत्नका वेग अतिप्रबल होता है वे बीचकी श्रेणियोंमें बहुत ही थोड़ा समयतक रहते हैं। जिनके प्रयत्नका वेग मंद होता है वे बहुत समयतक बीचकी श्रेणियोंमें रहते हैं फिर तेरहवीं और चौदहवीं श्रेणीमें पहुँचते हैं।

यद्यपि यह विषय बहुत ही सूक्ष्म है, तथापि यदि इसको समझनेकी ओर ध्यान दिया जाता है तो यह बहुत ही अच्छा लगता है। यह आत्मिक उत्क्रान्तिकी निसेनी है मोक्षमंदिरमें पहुँचनेके लिए निसेनी है। पहिला सोपान—जिससे सब जीव चढ़ना आरंभ करते हैं और कोई धीरे चलनेसे देरमें और कोई तेज चलनेसे जल्दी चौदहवें जीने पर पहुँचते ही मोक्षमंदिरमें दाखिल हो जाते हैं। कई चढ़ते हुए ध्यान नहीं रखनेसे फिसल जाते हैं और प्रथम सोपान पर आ जाते हैं। ग्यारहवें सोपानपर चढ़े हुए भी मोहके धक्कारके कारण गिरकर प्रथम जीने पर आ जाते हैं। इसलिए शास्त्रकार बार बार कहते हैं कि, चलते हुए क्षण मात्र भी प्रमाद न करो। बारहवें जीने पर पहुँचनेके बाद गिरनेका कोई भय नहीं

१—जैन उत्तराध्ययन सूत्रके दसवें अध्ययनमें भगवान् महावीरने गौतम गणधरको इस अध्ययनमें उपदेश दिया है कि— समयं गोयम! मा पमायए। इसी प्रकारसे और भी बहुत इस उपदेश दिया गया है।

रहता है। आठवें और नवमें जीनेमें भी यदि मोह क्षय होना प्रारभ हो जाता है, तो गिरनेका भय मिट जाता है।

जैनशास्त्रानुकूल इन चौदह श्रेणियोंका हम सक्षेपमें विवेचन करेंगे इनके नाम है—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरतसम्यग्दृष्टि, देश-विरति, प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्ति, सूक्ष्मसपराय, उपशातमोह, क्षीणमोह, सयोगकेवली और अयोगीकेवली।

मिथ्यादृष्टिगुणस्थान—इस बातको सब लोग समझते हैं कि प्रारभमें सब जीव अधोगतिहीमें होते हैं। इसलिए जो जीव प्रथम श्रेणीमें होते हैं वे मिथ्यादृष्टि होते हैं। मिथ्यादृष्टिका अर्थ है—वस्तु-तत्वके यथार्थ ज्ञानका अभाव। इसी प्रथम श्रेणीसे जीव आगे बढते हैं। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि, इस दोषयुक्त प्रथम श्रेणीमें भी ऐसा कौनसा गुण है, जिससे इसकी गिनती भी 'गुणश्रेणी' में की गई है? इसको गुणस्थान कहना कैसे उचित हो सकता है? इसका समाधान यह है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म और नीची हदके जीवोंमें भी चेतनाकी कुछ मात्रा तो अवश्यमेव उज्ज्वल रहती है। इसी उज्ज्वलताके कारण मिथ्यादृष्टिकी गणना भी 'गुणश्रेणी' में की गई है।

सासादन—सम्यग्दर्शनसे गिरती हुई दशाका यह नाम है। सम्यग्द-र्शन प्राप्त होनेके बाद, क्रोधादि अतितीव्र कषायोंका उदय होनेसे जीवके गिरनेका समय आता है। यह गुणस्थान पतनावस्थाका है। मगर इसके पहिले जीवको सम्यग्दर्शन हो गया होता है इसलिए, उसके लिए यह भी निश्चित हो जाता है कि वह कितने समयतक संसारमें भ्रमण करेगा।

१—'आसादन' का अर्थ है अतितीव्र क्रोधादि कषाय। जो इन कषायोंसे युक्त होता है उसीको 'सासादन' कहते हैं।

" सम्यग्दर्शनसम्पन्न' कर्मणा नहि बध्यते ।
दर्शनेन विहीनस्तु ससार प्रतिपद्यते " ॥ (छठा अध्याय)

भावार्थ—सम्यग्दर्शनवाला जीव कर्मोंसे नहीं बँधता है और सम्यग्दर्शनविहीन प्राणी संसारमें भटकता फिरता है ।

देशविरति—सम्यक्त्वसहित, गृहस्थके व्रतोंको परिपालन करनेका नाम देशविरति है । 'देशविरति' शब्दका अर्थ है–सर्वथा नहीं मगर अमुक अंशमें पापकर्मसे विरत होना ।

प्रमत्तगुणस्थान—यह गुणस्थान उन मुनिमहात्माओंका है कि जो पंचमहाव्रतोंके धारक होने पर भी प्रमादके बंधनसे सर्वथा मुक्त नहीं होते हैं ।

अप्रमत्तगुणस्थान—प्रमादबंधनसे मुक्त बने हुए महामुनियोंका यह सातवाँ गुणस्थान है ।

अपूर्वकरण[1]—मोहनीय कर्मको उपशम या क्षय करनेका अपूर्व (जो पहिले प्राप्त नहीं हुआ) अध्यवसाय इस गुणस्थानमें प्राप्त होता है ।

अनिवृत्तिगुणस्थान—इसमें पूर्व गुणस्थानकी अपेक्षा ऐसा अधिक उज्ज्वल आत्म परिणाम होता, है, कि जिससे मोहका उपशम या क्षय होने लगता है ।

सूक्ष्मसपराय[2]—उक्त गुणस्थानोंमें जब मोहनीय[3]कर्मका क्षय

१—'करण' यानी अध्यवसाय–आत्मपरिणाम ।

२—'सपराय' शब्दका अर्थ 'कषाय' होता है, परन्तु यहाँ 'लोभ' समझना चाहिए ।

३—यहाँ और ऊपर नीचेके गुणस्थानोंमें 'मोह' 'मोहनीय' ऐसे सामान्य शब्द रक्खे हैं । मगर इससे मोहनीय कर्मके जो विशेष प्रकार घटित होते हैं उन्हींको यथायोग्य ग्रहण करना चाहिए । अवकाशाभाव यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया गया है ।

मिश्रगुणस्थान—इस गुणस्थानकी अवस्थायें आत्माके परिणाम बड़े ही विचित्र होते हैं। इस गुणस्थानवाला सत्य मार्ग और असत्य मार्ग दोनों पर श्रद्धा रखता है। जैसे जिस देशमें नारियलका ही भोजन होता है उस देशका व्यक्ति अन्न पर न श्रद्धा रखते हैं और न अश्रद्धा ही। इसी तरह इस गुणस्थानवर्तीकी भी सत्यमार्ग पर न रुचि होती है और न अरुचि ही। दही और गुड़ दोनोंके समान समानरूपकी मोहमिश्रित वृत्ति इसमें रहती है। इतना होने पर भी इस गुणस्थानमें आनेके पहिले जीवको सम्यक्त्व हो गया होता है इसलिए, सासादन गुणस्थानकी तरह उसका भवभ्रमणकाल भी कम निश्चित हो जाता है।

अविरतसम्यग्दृष्टि—विरत का अर्थ है व्रत। व्रत बिना जो सम्यक्त्व होता है उसको अविरतसम्यग्दृष्टि कहते हैं। यदि सम्यक्त्वका थोड़ासा भी स्पर्श हो जाता है तो जीवके भव-भ्रमणकी अवधि निश्चित हो जाती है। इसीके प्रभावसे सासादन और मिश्र गुणस्थानके जीवोंका भवभ्रमण-काल निश्चित हो गया होता है। आत्माके एक प्रकारके शुद्ध विश्वासको सम्यग्दर्शन या सम्यग्दृष्टि कहते हैं। इस स्थितिमें तत्त्व-विषयक संशय या भ्रमको स्थान नहीं मिलता है। इस सम्यक्त्वहीसे मनुष्य मोक्षप्राप्तिके योग्य होता है। इसके अतिरिक्त चाहे जितना भी कायक्लेश किया जाय, उससे मनुष्यको मुक्ति नहीं मिलती। मनुस्मृतिमें भी लिखा है कि—

१—जीवाजीवादि तत्त्वोंके यथार्थ स्वरूपमें दृढ़ विश्वास होना सम्यक्त्व है। यह बात पहिले कही जा चुकी है। इसके अन्दर धर्म तत्त्व नहीं है, परन्तु इसके लिए यहाँ स्थान नहीं है।

है उसका अर्थ ‘ योगवाला ’ होता है । योगका अर्थ है, शरीरादिके व्यापार । केवलज्ञान होनेके बाद भी शरीरधारीके गमनागमनका व्यापार, बोलनेका व्यापार आदि व्यापार होते है, इसलिए वे शरीरधारी केवली सयोग ’ कहलाते है ।

उन केवली परमात्माओंके, आयुष्यके अन्तमें, प्रबल शुक्लध्यानके प्रभावसे, जब सारे व्यापार रुक जाते है, तब उनको जो अवस्था प्राप्त होती है उसका नाम—

अयोगीकेवली गुणस्थान है । अयोगीका अर्थ है सर्वव्यापार-रहित—सर्वक्रियारहित ।

ऊपर यह विचार किया जा चुका है, कि आत्मा गुणश्रेणियोंमें आगे बढ़ता हुआ, केवलज्ञान प्राप्त कर, आयुष्यके अन्तमें अयोगी बन तत्काल ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है । यह आध्यात्मिक विषय है । इस-लिए यहाँ थोड़ीसी आध्यात्मिक बातोंका दिग्दर्शन कराना उचित होगा ।

अध्यात्म

ससारकी गति गहन है । जगत्में सुखी जीवोंकी अपेक्षा दु खी जीवोंका क्षेत्र बहुत बडा है । लोक आधि-व्याधि और शोक संतापसे परिपूर्ण है । हजारों तरहके सुखसाधनोंकी उपस्थितिमें भी, सासारिक वासनाओंमेंसे दु खकी सत्ता भिन्न नहीं होती । आरोग्य, लक्ष्मी, सुवनिता और सत्पुत्रादिके मिलने पर भी दु खका सयोग कम नहीं होता । इससे यह समझमें आ जाता है कि दु खसे सुखको भिन्न करना—केवल सुखभोगी बनना बहुत ही दु:साध्य है ।

या उपशम होते हुए, सूक्ष्म लोभांश ही शेष रह जाता है, तब यह गुणस्थान प्राप्त होता है।

उपशान्तमोह—पूर्वगुणस्थानोंमें जिसने मोहका उपशम करना प्रारंभ किया होता है, वह जब पूर्णतया मोहको दाब देता है-मोहका उपशम कर देता है तब उसको यह गुणस्थान प्राप्त होता है।

क्षीणमोह—पूर्व गुणस्थानोंमें जिसने मोहनीय कर्मका क्षय करना प्रारंभ किया होता है वह जब पूर्णतया मोहका नाश कर देता है, तब उसको यह गुणस्थान प्राप्त होता है।

यहाँ उपशम और क्षयका भेदभी समझना बहुत आवश्यक है। मोहका सर्वथा उपशम हो गया होता है तो भी वह पुनः प्रादुर्भूत हुए बिना नहीं रहता है। जैसे किसी पानीके बरतनमें मिट्टी होती है, मगर वह नीचे जम जाती है, तो उसका पानी स्वच्छ दिखाई देता है परन्तु उस पानीमें किसी प्रकारकी हलन चलन होते ही, मिट्टी ऊपर उठ आती है और पानी मैला हो जाता है। इसी तरह जब मोहके रजकण मोहके पुंज-आत्मप्रदेशोंमें स्थिर हो जाते हैं तब आत्मप्रदेश स्वच्छसे दिखाई देते हैं। परन्तु वे उपशान्त मोहके रजकण किसी कारणको पाकर फिरसे उदयमें आ जाते हैं और उनके उदयमें आनेसे जिस तरह आत्मा गुणश्रेणियोंमें चढ़ा होता है उसी तरह वापिस गिरता है। इससे स्पष्ट है कि केवलज्ञान मोहके सर्वथा क्षय होनेहीसे प्राप्त होता है; क्योंकि मोहके क्षय हो जाने पर पुनः वह प्रादुर्भूत नहीं होता है।

'सयोगकेवली'—केवलज्ञानके होते ही यह गुणस्थान प्रारंभ होता है। इस गुणस्थानके नाममें जो सयोग शब्द रक्खा गया

है उसका अर्थ 'योगवाला' होता है। योगका अर्थ है, शरीरादिके व्यापार। केवलज्ञान होनेके बाद भी शरीरधारीके गमनागमनका व्यापार, बोलनेका व्यापार आदि व्यापार होते है, इसलिए वे शरीरधारी केवली सयोग' कहलाते हैं।

उन केवली परमात्माओंके, आयुष्यके अन्तमें, प्रबल शुक्लध्यानके प्रभावसे, जब सारे व्यापार रुक जाते है, तब उनको जो अवस्था प्राप्त होती है उसका नाम—

अयोगीकेवली गुणस्थान है। अयोगीका अर्थ है सर्वव्यापार-रहित—सर्वक्रियारहित।

ऊपर यह विचार किया जा चुका है, कि आत्मा गुणश्रेणियोंमें आगे बढ़ता हुआ, केवलज्ञान प्राप्त कर, आयुष्यके अन्तमें अयोगी बन तत्काल ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है। यह आध्यात्मिक विषय है। इस-लिए यहाँ थोडीसी आध्यात्मिक बातोंका दिग्दर्शन कराना उचित होगा।

अध्यात्म

ससारकी गति गहन है। जगत्में सुखी जीवोंकी अपेक्षा दु.खी जीवोंका क्षेत्र बहुत बडा है। लोक आधि-व्याधि और शोक संतापसे परिपूर्ण है। हजारों तरहके सुखसाधनोंकी उपस्थितिमें भी, सासारिक वासनाओंमेंसे दु खकी सत्ता भिन्न नहीं होती। आरोग्य, लक्ष्मी, सुवनिता और सत्पुत्रादिके मिलने पर भी दु खका सयोग कम नहीं होता। इससे यह समझमें आ जाता है कि दु खसे सुखको भिन्न करना—केवल सुखभोगी बनना बहुत ही दु साध्य है।

'अध्यात्म शब्द 'अधि' और 'आत्मा' इन दो शब्दोंके समाससे-मेलसे बना है। इसका अर्थ है आत्माके शुद्धस्वरूपको लक्ष्य करके, उसके अनुसार वर्ताव करना। संसारके मुख्य दो तत्त्व, जड और चेतन-जिनमेंसे एकको जाने विना दूसरा नहीं जाना जा सकता है-इस आध्यात्मिक विषयमें पूर्णतया अपना स्थान रखते हैं।

"आत्मा क्या चीज है? आत्माको सुखदुःखका अनुभव कैसे होता है? सुखदुःखके अनुभवका कारण स्वयं आत्मा ही है, या किसी अन्यके संसर्गसे आत्माको सुख-दुःखका अनुभव होता है? आत्माके साथ कर्मका संबंध कैसे हो सकता है? वह संबंध आदिमान् है या अनादि? यदि अनादि है तो उसका उच्छेद कैसे हो सकता है? कर्मके भेद-प्रभेदोंका क्या हिसाब है? कार्मिक बंध, उदय और सत्ता कैसे नियमबद्ध हैं?" अध्यात्ममें इन सब बातोंका भली प्रकारसे विवेचन है।

इसके सिवा अध्यात्म विषयमें मुख्यतया संसारकी असारताका हूबहू चित्र खींचा गया है। अध्यात्म-शास्त्रका प्रधान उपदेश, भिन्न भिन्न भावनाओंको स्पष्टतया समझाकर मोहममताके ऊपर दाब रखना है।

दुराग्रहका त्याग, तत्त्वश्रवणकी इच्छा, संतोंका समागम, साधु पुरुषोंकी प्रतिपत्ति, तत्त्वोंका श्रवण, मनन और निदिध्यासन, मिथ्यादृष्टिका नाश, सम्यग्दृष्टिका प्रकाश, क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायोंका संहार, इन्द्रियोंका संयम, ममताका परिहार, समताका प्रादुर्भाव, मनोवृत्तियोंका निग्रह, चित्तकी निश्चलता, आत्मस्वरूपकी रमणता, ध्यानका प्रवाह, समाधिका आविर्भाव, मोहादि कर्मोंका क्षय और अन्तमें केवलज्ञान तथा मोक्षकी प्राप्ति, इस तरह आत्मोन्नतिका क्रम अध्यात्मशास्त्रोंमें बताया गया है।

'अध्यात्म' कहो या 'योग' कहो दोनों शब्द एक ही हैं। योग शब्द 'युज्' धातुसे बना है; जिसका अर्थ है 'जोड़ना'। जो साधन मुक्तिके साथ जोड़ता है उसको योग कहते हैं।

अनन्तज्ञानस्वरूप सच्चिदानन्दमय आत्मा कर्मोंके संसर्गसे शरीररूपी अँधेरी कोठरीमें बन्द हो गया है। कर्मके संसर्गका मूल कारण अज्ञानता है। सारे शास्त्रों और सारी विद्याओंके सीखने पर भी जिसको आत्माका ज्ञान न हुआ हो उसके लिए समझना चाहिए कि वह अज्ञानी है। मनुष्यका ऊँचेसे ऊँचा ज्ञान भी आत्मिक ज्ञानके बिना निरर्थक होता है।

अज्ञानतासे जो दुःख होता है वह आत्मिक ज्ञानसे ही क्षीण किया जा सकता है। ज्ञान और अज्ञानमें प्रकाश और अन्धकारके समान विरोध है। अन्धकारको दूर करनेके लिए जैसे प्रकाशकी आवश्यकता होती है, वैसे ही अज्ञानको दूर करनेके लिए ज्ञानकी जरूरत पड़ती है। आत्मा जब तक कषायों इन्द्रियों और मनके आधीन रहता है तब तक वह संसारी कहलाता है। मगर वही जब इनसे भिन्न हो जाता है; निर्मोह बन अपनी शक्तियोंको पूर्ण विकसित करता है तब मुक्त कहलाता है।

क्रोधका विजय क्षमासे होता है, मानका पराजय मृदुतासे होता है मायाका संहार सरलतासे होता है और लोभका निकंदन संतोषसे होता है। इन कषायोंको जीतनेके लिए इन्द्रियोंको अपने अधिकारमें करना चाहिए, इन्द्रियों पर सत्ता जमानेके लिए मनःशुद्धिकी आवश्यकता होती है; मनोवृत्तियोंको रोकनेकी आवश्यकता होती है। वैराग्य और सत्क्रियाके अभ्याससे मनका रोध होता है, मनोवृत्तियें

अधिकृत होती हैं[१]। मनको रोकनेके लिए राग-द्वेषको अपने काबूमें करना बहुत जरूरी है। राग द्वेषरूपी मलको धोनेका कार्य समतारूपी जल करता है। ममताके मिटे विना समताका प्रादुर्भाव नहीं होता। ममता मिटानेके लिए कहा गया है कि—

'अनित्य संसारे भवति सकलं यन्नयनगम्।'

अर्थात्—'आँखोंसे इस संसारमें जो कुछ दिखता है वह सब अनित्य है'—ऐसी अनित्य भावना, और 'अशरण' आदि भावनाएँ करनी चाहिएँ। इन भावनाओंका वेग जैसे जैसे प्रबल होता जाता है वैसे ही वैसे ममत्वरूपी अंधकार क्षीण होता जाता है, और समताकी देदीप्यमान ज्योति झगमगाने लगती है। ध्यानकी मुख्य जड़ समता है। समताकी पराकाष्ठाहीसे चित्त किसी एक पदार्थ पर स्थिर हो सकता है। ध्यानश्रेणीमें आने बाद लब्धियाँ-सिद्धियाँ प्राप्त होने पर यदि फिरसे मनुष्य मोहमें फँस जाता है तो उसका अधःपात हो जाता है। इस लिए ध्यानी मनुष्यको भी प्रतिक्षण इस बातके लिए सचेत रहना चाहिए कि वह कहीं मोहमें न फँस जाय।

ध्यानकी उच्च अवस्थाको 'समाधि' का नाम दिया गया है। समाधिसे कर्मसमूहका क्षय होता है, केवलज्ञान प्रकटता है। केवलज्ञानी जबतक शरीरी रहता है तबतक वह जीवनमुक्त कहलाता है, पश्चात्—शरीरका संबंध छूट जाने पर—वह परब्रह्मस्वरूपी हो जाता है।

आत्मा मूढदृष्टि होता है तब 'बहिरात्मा,' तत्त्वदृष्टि होता है तब 'अन्तरात्मा' और सम्पूर्णज्ञानवान् होने पर 'परमात्मा' कह

१—"असंशयं महाबाहो! मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन च कौन्तेय! वैराग्येण च गृह्यते॥" (भगवद्गीता)

जाता है। दूसरी तरहसे कहें तो शरीर 'बहिरात्मा' है, शरीरस्थ चैतन्यस्वरूप जीव 'अन्तरात्मा' है और कर्मविमुक्त परमशुद्ध-सच्चिदानन्दस्वरूप बना हुआ वही जीव 'परमात्मा' है।

जैनशास्त्रकारोंने आत्माकी आठ दृष्टियोंका वर्णन किया है। उनके नाम हैं—मित्रा तारा, बला, दीप्रा, स्थिरा कान्ता प्रभा और परा। इन दृष्टियोंमें आत्माकी उत्क्रान्तिका क्रम है। प्रथम दृष्टिसे जो बोध होता है, उसके प्रकाशको तृणाग्निके उद्योतकी उपमा दी गई है। उस बोधके अनुसार उस दृष्टिमें सामान्यतया सद्वर्तन होता है। इस स्थितिमेंसे जीव जैसे जैसे ज्ञान और वर्तनमें आगे बढ़ता जाता है वैसे ही वैसे उसके लिए कहा जाता है कि यह पूर्वकी दृष्टियोंको पार कर चुका है।

ज्ञान और क्रियाकी ये आठ भूमियाँ हैं। पूर्व भूमिकी अपेक्षा उत्तर भूमिमें ज्ञान और क्रियाका प्रकर्ष होता है। इन आठ दृष्टियोंमें योगके आठ अंग जैसे—यम नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि क्रमशः सिद्ध किये जाते हैं। इस तरह आत्मोन्नतिका व्यापार करते हुए जीव जब अन्तिम दृष्टिमें पहुँचता है तब उसका आवरण क्षीण होता है, और उसे केवलज्ञान मिलता है।

१—आठ दृष्टियोंका विशेष हरिभद्रसूरिकृत योगदृष्टिसमुच्चय में और आठ [illegible] योगशास्त्र आदि ग्रंथोंमें है। योगके आठ अंगोंका [illegible] में और पातञ्जलयोगदर्शन [illegible] आदि ग्रंथोंमें है। [illegible] ये सब ग्रंथ छपकर प्रकाशित हो चुके हैं।

महात्मा पतंजलिने योगके लिए लिखा है—" **योगश्चित्त-वृत्तिनिरोधः** " अर्थात्—चित्तकी वृत्तियों पर दाव रखना—इधर उधर भटकती हुई वृत्तियोंको आत्म-स्वरूपमें जोड कर रखना, इसका नाम है योग। इसके सिवाय इस हदपर पहुँचनेके लिए जो जो शुभ व्यापार हैं वे भी योगके कारण होनेसे योग कहलाते हैं।

दुनियामें मुक्ति विषयके साथ सीधा सबध रखनेवाला, एक अध्यात्मशास्त्र है। अध्यात्मशास्त्रका प्रतिपाद्य विषय है—मुक्ति-साधनका मार्ग दिखाना और उसमें आनेवाली बाधाओंको दूर करनेका उपाय बताना। मोक्षसाधनके केवल दो उपाय हैं। प्रथम, पूर्वसंचित कर्मोंका क्षय करना और द्वितीय, नवीन आनेवाले कर्मोंका रोकना। इनमें प्रथम उपायको 'निर्जरा' और द्वितीय उपायको 'सवर' कहते हैं। इनका वर्णन पहिले किया जा चुका है। इन उपायोंको सिद्ध करनेके लिए शुद्ध विचार करना, हार्दिक भावनाएँ दृढ रखना, अध्यामिक तत्त्वोंका पुन पुन परिशीलन करना और खराब सयोगोंसे दूर रहना यही अध्यात्मशास्त्रके उपदेशका रहस्य है।

आत्मामें अनन्त शक्तियाँ हैं। अध्यात्ममार्गसे वे शक्तियाँ विकासित की जा सकती हैं। आवरणोंके हटनेसे आत्माकी जो शक्तियाँ प्रकाशमें आती हैं उनका वर्णन करना कठिन है। आत्माकी शक्तिके सामने वैज्ञानिक चमत्कार तुच्छ हैं। जडवाद विनाशी है, आत्मवाद उससे विरुद्ध है—अविनाशी है। जड़वादसे प्राप्त उन्नतावस्था और जड पदार्थोंके आविष्कार सब नश्वर हैं, परन्तु आत्मस्वरूपका प्रकाश और उससे होनेवाला अपूर्व आनद सदा स्थायी हैं। इन बातोंसे बुद्धिमान् मनुष्य समझ सकता है कि आध्यात्मिक तत्व कितने मूल्यवान् और सर्वोत्कृष्ट हैं।

दूसरी बातके लिए जैनदर्शनकी मान्यता है कि, ज्ञान आत्माका वास्तविक धर्म है, आत्माका असली स्वरूप है, या यह कहो कि आत्मा ज्ञानमय ही है। इसीलिए जैनदर्शन यह भी मानता है कि इन्द्रियों और मनका सबंध छूटने पर भी, मुक्तावस्थामें भी, आत्मा अनन्तज्ञानशाली× रहता है। ज्ञानको आत्माका असली धर्म नहीं माननेवाले, आत्माको मुक्तावस्थामें भी ज्ञानप्रकाशमय नहीं मान सकते हैं।

आत्माके सबधमें अन्य दर्शनकारोंकी अपेक्षा जैनदर्शनकारोंके मन्तव्य भिन्न हैं। वे इस प्रकार हैं।

"चैतन्यस्वरूपः, परिणामी, कर्ता, साक्षाद्भोक्ता, देहपरिमाणः, प्रतिक्षेत्रं भिन्नः, पौद्गलिकादृष्टवांश्चायम्"।

इस न्यायसे सिद्ध होता है कि आत्माके जजबे-लागणीयाँ, (Feeling) इच्छा आदि गुणोंका अनुभव शरीरहीमें होता है इसलिए उन गुणोंका स्वामी आत्मा भी शरीरहीमें होना चाहिए।

× ज्ञानकी भाँति सुख भी वास्तविक धर्म है। हम जानते हैं कि सूर्य बहुत प्रकाशमान् है, परन्तु जब वह बादलोंमें छिपता है तब उसका प्रकाश फीका दिखाई देता है। और वही फीका प्रकाश अनेक पर्देवाले मकानमें और भी विशेष फीका मालूम होता है। मगर इससे क्या कोई यह कह सकता है कि सूर्य प्रखर प्रकाश-वाला नहीं है। इसी प्रकार आत्माके ज्ञान प्रकाशका या वास्तविक आनदका भी, यदि शरीर, इन्द्रिय और मनके बंधनसे या कर्मावरणसे पूर्णतया अनुभव न हो; मलिन अनुभव हो, विकारयुक्त अनुभव हो तो इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि ज्ञान और आनंद आत्माके असली स्वरूप नहीं हैं।

१—वादि देवसूरिकृत 'प्रमाणनयतत्त्वलोकालकार' नामक न्यायसूत्रके सातवें परिच्छेदका यह ५६ वाँ सूत्र है। यह मूलसूत्र ग्रंथ कलकत्ता युनिवरसिटीके एम. ए. के कोर्समें है।

इस सूत्रमें आत्माके पहिला विशेषण 'चैतन्यस्वरूपका' दिया गया है। अर्थात् ज्ञान यह आत्माका असली स्वरूप है। इससे उक्त कथनानुसार, नैयायिक आदि भिन्न मतवाले हैं। परिणामी (आत्मा नवीन नवीन पर्यायोंमें; भिन्न भिन्न पर्यायोंमें भ्रमण करता है इसलिए परिणाम-स्वभाववाला कहलाता है।) 'कर्ता' और साक्षात् भोक्ता' इन तीन विशेषणोंसे, आत्माको आकाशकी तरह सर्वथा निर्लेप, परिणामरहित और क्रियारहित माननेवाला सांख्यमत भिन्न पड़ता है। नैयायिक आदि भी आत्माको परिणामी नहीं मानते हैं। मात्र शरीरमें व्याप्त' यह, देहपरिमाण' विशेषणका अर्थ होता है। इस विशेषणको वैशेषिक, नैयायिक और सांख्य नहीं मानते हैं; क्योंकि वे आत्माको सर्वत्र व्यापक मानते हैं। प्रत्येक शरीरमें आत्मा जुदा होता है' यह प्रतिक्षेत्रं भिन्न विशेषणका अर्थ है। इस विशेषणको अद्वैतवादी—आत्मवादी नहीं मानते हैं; क्योंकि वे सबमें एक ही आत्मा मानते हैं। और अन्तिम विशेषणसे पौद्गलिकरूप अदृष्टवाला आत्मा बताते हुए, कर्मको अर्थात् धर्म-अधर्मको आत्माका विशेष गुण माननेवाले नैयायिक-वैशेषिक, और कर्मको एक प्रकारके परमाणुओंका समूहरूप नहीं माननेवाले वेदान्ती वगैरह सभी जुदा पड़ते हैं।

'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' इस सूत्रकी उद्घोषणा करनेवाले इस सूत्रका अर्थ चाहे जैसा ही करें; परन्तु इसका वास्तविक अर्थ तो यह होता है कि—"संसारमें जितने भी दृश्य पदार्थ हैं, वे सब विनाशी हैं, इसलिए उनको मिथ्या समझना चाहिए। आत्मज्ञान करने

१—देह-शरीर।

योग्य मात्र शुद्ध चैतन्य आत्मा ही है।" यह उपदेश बहुत महत्त्वका है। प्राचीन आचार्य, ऐसे उपदेशोंको अनादि मोहवासनाओंके भीषण संतापको नष्ट करनेकी रामबाण औषध समझते थे।

यदि उक्त सूत्रका अर्थ यह किया जाय कि—"जगत्के सारे पदार्थ गधेके सींगकी तरह असत् है" तो बहुतसी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। इस अर्थकी अपेक्षा ऊपर जो अर्थ बताया गया है वही उचित और सबके अनुभवमें आने योग्य है। दृश्यमान बाह्य पदार्थोंकी असारताका वर्णन करते हुए जैन महात्मा भी उनको 'मिथ्या' बता देते हैं। इससे यह कैसे माना जा सकता है कि वस्तुतः दुनियामें कोई पदार्थ ही नहीं है? यह ठीक है कि संसारका सारा प्रपंच असार है, विनाशी है, अनित्य है। इस मतका कोई विरोधी नहीं है। जैनाचार्योंने इसी मतको प्रतिपादन करते हुए संसारको मिथ्या बताया है। परन्तु इससे सर्वानुभव सिद्ध जगत्का अत्यंत अभाव सिद्ध नहीं हो सकता है।

कर्मकी विशेषता।

अध्यात्मका विषय आत्मा और कर्मसे संबंध रखनेवाले विस्तृत विवेचनसे पूर्ण है। हम आत्मस्वरूपके संबंधका कुछ विचार कर चुके हैं, अब कर्मकी विशेषताके संबंधमें कुछ विवेचन करेंगे।

संसारके दूसरे जीवोंकी अपेक्षा मनुष्योंकी ओर अपनी दृष्टि जल्दी जाती है। कारण यह है कि मनुष्य-जातिका हम लोगोंको विशेष परिचय है, इसलिए उनकी प्रकृतिका मनन करनेसे, कई आध्यात्मिक बातें विशेषरूपसे स्पष्ट हो जाती हैं।

संसारमें मनुष्य दो प्रकारके दिखाई देते हैं। प्रथम पवित्र जीवन

बितानेवाले और दूसरे मलिन जीवन बितानेवाले। ये दोनों प्रकारके मनुष्य भी दो भागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं—धनी और दरिद्र। इस मिला कर मनुष्य चार प्रकारके कहे जा सकते हैं—(१) पवित्र जीवन बितानेवाले-धर्मात्मा—धनी (२) पवित्र जीवन बितानेवाले धर्मात्मा—गरीब (३) मलिन जीवन बितानेवाले—पापी—धनी और (४) अपवित्र जीवन बितानेवाले पापी—गरीब। इस तरह चार प्रकारके मनुष्योंको हम संसारमें देखते हैं। सामान्यतया सारा संसार मानता है कि, इस विचित्रताका कारण पाप पुण्यकी विचित्रता है। यद्यपि इस विचित्रताके सम्बन्धका क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण है, तथापि मोटे रूपसे इतना तो हम भली प्रकारसे समझ सकते हैं, कि चार प्रकारके मनुष्योंकी अपेक्षा पुण्य-पाप भी चार प्रकारके होने चाहिएँ।

जैनशास्त्रकार पुण्य पापके चार भेदोंका वर्णन इस तरह करते हैं। (१) पुण्यानुबंधी पुण्य (२) पुण्यानुबंधी पाप (३) पापानुबंधी पुण्य और (४) पापानुबंधी पाप।

पुण्यानुबंधी पुण्य।

जन्मान्तरके जिस पुण्यसे सुख भोगते हुए भी धर्मकी लालसा रहती है जिससे पुण्यका कार्य हुआ करते हैं और जिससे पवित्रतासे जीवन बीतता रहता है, ऐसे पुण्यको पुण्यानुबंधी पुण्य कहते हैं। इसको पुण्यानुबंधी पुण्य कहनेका कारण यह है कि यह इस जीवनको सुखी और पवित्र बनाता है और साथ ही जन्मान्तरके लिए भी पुण्यका संचय कर देता है। 'पुण्यानुबंधी पुण्य' का अर्थ है—पुण्यका लाभक पुण्य। यानी जन्मान्तरके लिए भी जो पुण्यका संपादन कर देता है उसको पुण्यानुबंधी पुण्य कहते हैं।

पुण्यानुबंधी पाप।

जन्मान्तरका जो पाप जीवको दु:ख भोगाता है, मगर जीवनको मलिन नहीं बनाता, धर्मसाधनके व्यवसायमें बाधा नहीं डालता, वही पाप पुण्यानुबंधी पाप कहलाता है। यह पाप यद्यपि वर्तमान जीवनमें गरीबी आदि दुःख देता है, तथापि जीवको पापके कार्यमें नहीं डालता, इसलिए जन्मान्तरके लिए पुण्य उत्पन्न करनेका कारण बनता है। पुण्यानुबंधी पापका शब्दार्थ है–पुण्यके साथ संबंध जोडनेवाला पाप। अर्थात् जन्मान्तरके लिए पुण्यसाधनमें बाधा नहीं डालनेवाला पाप।

पापानुबंधी पुण्य।

जन्मान्तरका जो पुण्य, सुख भोगाता हुआ पापवासनाओंको बढाता रहता है, अधर्मके कार्य कराता रहता है, वह पुण्य पापानुबंधी पुण्य कहलाता है। यह पुण्य यद्यपि इस जीवनमें सुख देता है, तथापि आगामी जीवनके लिए वर्तमान जीवनको मलिन बना कर पापको संचित कर देता है। पापानुबंधी पुण्यका शब्दार्थ होता है–पापका साधन पुण्य। अर्थात् जो पुण्य जन्मान्तरके लिए पापसम्पादन कर देता है उसे पापानुबंधी पुण्य कहते हैं।

पापानुबंधी पाप।

जन्मान्तरका जो पाप गरीबी आदि दुःख भोगाता है, पाप करनेकी बुद्धि देता है और अधर्मके कार्य करवाता है, वह पापानुबंधी पाप कहलाता है। यह पाप इस जीवनमें तो दुःख देता ही है, परन्तु वर्तमान जीवनको भी मलिन बना कर भावी जीवनके लिए भी पापका संचय कर देता है। पापनुबंधी पापका शब्दार्थ होता है–पापका साधन पाप। अर्थात् जन्मान्तरके लिए पापका संपादन कर देनेवाला पाप।

संसारमें जो मनुष्य सुखी हैं और धर्मयुक्त जीवन बिता रहे हैं, उनके लिए समझना चाहिए कि वे पुण्यानुबंधी पुण्यवाले हैं। जो मनुष्य दरिद्रताके दुःखसे दुःखी होनेपर भी अपना जीवन धर्मयुक्त बिता रहे हैं उनके लिए समझना चाहिए कि वे पुण्यानुबंधी पापवाले हैं। जो सांसारिक सुखोंका आनन्द लेते हुए पापपूर्ण जीवन बिता रहे हैं, उन्हें पापानुबंधी पुण्यवाले समझना चाहिए और जो दरिद्रताके दुःखसे सन्तप्त होते हुए भी अपने जीवनको पापिष्ठतासे बिता रहे हैं, उनके लिए समझना चाहिए कि वे पापानुबंधी पापवाले हैं।

दगा, छल, कपट, चोरी-जारी आदि प्रचंड पापके कार्योंसे धन एकत्रित कर, मौजसे, ऐश-मौज उड़ाते हुए मनुष्योंको देख कई अदूरदर्शी मनुष्य कहने लगते हैं कि,—"देखो! धर्मात्मा तो बड़ी कठिनतासे दिन निकालते हैं मगर पापात्मा कैसी मौज उड़ाते हैं! अब कहाँ रहा धर्म! और कहाँ रहा शुभ कर्म! किसीने ठीक ही कहा है कि—

"करेगा धरम, फोड़ेगा करम;
करेगा पाप, खाएगा बाप।"

मगर यह कथन अज्ञानतापूर्ण है। कारण उक्त धर्मसंबंधी बातोंसे पाठक भली प्रकार समझ गये होंगे। इस जीवनमें पूर्वपुण्यके बलसे चाहे कोई पाप करता हुआ भी सुख भोगता रहे मगर अगले जन्ममें उसको अवश्यमेव इसका फल भोगना पड़ेगा। प्रकृतिका साम्राज्य विचित्र है। उसके छुटकारा असम्भव है। मोहके वशमें कोई चाहे जितने पाप करो, चाहे जितनी कुचेष्टाएँ कर निर्भीक होकर फिरो, मगर यह सदा ध्यानमें रखना चाहिए कि आज तक

प्रकृतिके शासनमें न कोई अपराधी दण्ड भोगे विना रहा है और न आगे रहेहीगा।

आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करना सरल नहीं है। इसके लिए आचार-व्यवहार शुद्ध रखनेकी बहुत जरूरत है। यह बात खास विचारणाय है कि, कौनसे आचरणोंसे जीवन स्वच्छ और उन्नत बनता है। जैनशास्त्रोंमें इस पर बहुत विचार किया गया है और बताया गया है कि, कैसे आचार रखने चाहिएँ। **वसिष्ठ** स्मृतिके छठे अध्यायके तीसरे श्लोकमें लिखा है कि—"**आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः**" यानी आचारविहीनको वेद भी पवित्र नहीं बना सकते हैं—वेदोंके जाननेवाले भी यदि आचारहीन होते हैं तो वे अपवित्र ही रहते हैं। जैनशास्त्रोंमें बताया गया है कि आचार कैसे रखने चाहिएँ, उसका यहाँ कुछ उल्लेख कर देना आवश्यक है।

जैन-आचार

साधुधर्म और गृहस्थधर्मका यद्यपि पहिले सामान्यतया विवेचन हो चुका है, तथापि आचारसे संबंध रखनेवाली बातोंका विवेचन रह गया था। अतः यहाँ उन्हीं बातोंका कुछ विवेचन किया जायगा।

साधुओंका आचार।

जैन- आचारशास्त्रोंमें साधुओंके लिए कहा गया है कि वे इक्का, गाडी, घोडे आदि किसी भी सवारीपर न चढें। वे सब जगह पैदल

१—यदि मार्गमें नदी आ जाय और, स्थलद्वारा जानेका आसपासमें कोई मार्ग न हो, तो साधु नावमें बैठकर परले पार जा सकते है, मगर यह ध्यान रखना चाहिए कि, सामने किनारा दिखाई देता हो तब ही नाव पर चढनेकी आज्ञा है, अन्यथा नहीं।

जैनसाधुओंको अग्निस्पर्श करनेका या अग्निसे रसोई बनानेका अधिकार नहीं है[1]। साधुओंके लिए आज्ञा है कि, वे भिक्षासे—माधुकरी वृत्तिसे अपना जीवन निर्वाह करें। भिक्षा एक घरसे न

जन्तु कपडेमें आ गये, परन्तु यदि वे कपडेमें ही रह जाते हैं, तो मर जाते हैं। यह बात हरेक समझ सकता है। इसलिए उस कपडेका सखारा (जलमेंसे आये हुए जन्तु) वापिस जलहीमें पहुँचा देने चाहिएँ। अर्थात् वह सखारा थोडे पानीमें डालकर उस पानीको वहीं (उसी कूए या तालावमें) पहुँचा देना चाहिए, जहाँसे कि वह पानी आया है। यह बात जैनशास्त्र ही नहीं कहते हैं, बल्के हिन्दू-शास्त्र भी कहते हैं। इसी उत्तरमीमांसामें लिखा है कि —

" म्रियन्ते मिष्टतोयेन पूतरा क्षारसम्भवा ।
क्षारतोयेन तु परे न कुर्यात् सकर तत " ॥

भावार्थ-मीठे जलके पोरे खारे पानीमें जानेसे और खारे पानीके पोरे मीठे जलमें जानेसे मर जाते हैं; इसलिए भिन्न भिन्न जलाशयोंका जल-जो भिन्न स्वभाववाला हो, छाने विना शामिल नहीं करना चाहिए।"

महाभारतमें भी लिखा है कि —

" विंशत्यगुलमान तु त्रिंशदगुलमायतम् ।
तद्वस्त्र द्विगुणीकृत्य गालयित्वा पिबेज्जलम् " ॥
" तस्मिन् वस्त्रे स्थितान् जीवान् स्थापयेत् जलमध्यत ।
एव कृत्वा पिबेत् तोय स याति परमां गतिम्" ॥

भावार्थ—बीस अगुल चौडा और तीस अगुल लबा वस्त्र ले, उसको दुगना करना, फिर उससे पानीको छानकर पीना चाहिये और उस वस्त्रमें आये हुए जीवोंको जलमें कूए आदिमें डाल देना चाहिए। जो इस तरह छानकर पानी पीता है, वह छाने विना पानी पीनेवालेकी अपेक्षा उत्तम गति पाता है।

इसके अतिरिक्त ' विष्णुपुराण ' आदि ग्रंथोंमें भी पानी छानकर पीनेका आदेश दिया गया है।

१—" अनग्निरनिकेत स्यात्
.. ..
(मनुस्मृति छठा अध्याय ४३ वाँ श्लोक),
भावार्थ—साधु अग्निस्पर्शसे रहित और गृहवाससे मुक्त होते हैं।

साधुको वर्षा ऋतुमें एक ही जगह रहना चाहिए। साधुको कभी स्त्रीसे स्पर्श नहीं करना चाहिए।

संक्षेपमें यह है कि साधुओंको सारे सांसारिक प्रपंचोंसे मुक्त और सदा अध्यात्मरति-परायण रहना चाहिएँ। निःस्वार्थ भावसे जगत्‌का कल्याण करना इनके जीवनका मूल मंत्र होना चाहिए।

१—" पर्यटेत् कीटवद् भूमिं वर्षास्वेकत्र संविशेत्। "

(विष्णुस्मृति ४ था अध्याय, ६ ठा श्लोक)

भावार्थ—कीडा जैसे फिरता रहता है, वैसे ही साधुको भी फिरते रहना चाहिए। एक ही स्थानपर स्थिरतासे नहीं रहना चाहिए। दूसरा तरह कहें तो-कीडा जैसे आहिस्ता चलता है-सूक्ष्मतासे देखे विना कोई उसकी चालको नहीं जान सकता है, इसी तरह साधुओंको भी घोडेकी तरह न चलकर, आहिस्ता आहिस्ता, भूमिकी तरफ देखते हुए जीवदयाकी भावनासहित चलना चाहिए। साधुको वर्षाऋतुमें (चौमासेमें) एक ही जगह रहना चाहिए।

२—विष्णुस्मृति, ४ थे अध्यायके ८ वें श्लोकमें लिखा है —

" संभाषणं सह स्त्रीभिरालम्भप्रेक्षणे तथा ' "

भावार्थ—साधुको स्त्रीके साथ न वार्तालाप करना चाहिए और न स्त्रीका निरीक्षण तथा स्पर्श ही करना चाहिए।

३ साधुओंकी विरक्त दशाके संबंधमें मनुस्मृतिमें लिखा है कि —

" अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन। "

" क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत्। "

" भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति। "
" अलाभे न विषादी स्याद् लाभे चैव न हर्षयेत्।
प्राणयात्रिकमात्रः स्यात् मात्रासंगाद् विनिर्गतः ॥ "
" इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ "

मनुस्मृतिके पाँचवें अध्यायके पाँचवें, उन्नीसवें आदि श्लोकोंमें–
" लशुन गृञ्जनं चैव पलाण्डुं " .... आदि शब्दों द्वारा, लहसन, गाजर, प्याज आदि अभक्ष्य चीजें खानेकी मनाई की गई है।

बैंगन, प्याज, लहसन आदि पदार्थ तामस स्वभावको पुष्ट करनेवाले होते हैं। शिवपुराण ' ' इतिहासपुराण ' आदि ग्रंथोंमें भी ऐसे अभक्ष्य पदार्थ खानेका पूर्णतया निषेध किया गया है।

जैन सिद्धान्तानुसार कठोळ (उडद, मूँग, चने आदि) के साथ कच्चा गोरस (दूध, दही, छास) खाना मना है। पद्मपुराणका निम्न लिखित श्लोक भी इस बातको पुष्ट करता है:—

" गोरस मापमध्ये तु मुद्गादिके तथैव च।
भक्षयेत् तद् भवेन्नून मासतुल्य युधिष्ठिर, ॥ "

भावार्थ—हे युधिष्ठिर, उडद और मूँग आदिके साथ कच्चा गोरस खाना मास खानेके बराबर है।

इसके अतिरिक्त शहद खाना भी जैन-आचारशास्त्रों और हिन्दु-धर्मशास्त्रों द्वारा वर्ज्य है। महाभारत आदि ग्रंथोंमें इसके लिए विशेष रूपसे उल्लेख है।

रात्रिभोजनका निषेध।

रात्रिमें भोजन करना भी अनुचित है। इस विषयका पहिले अनुभवसिद्ध विचार करना ठीक होगा। संध्या होते ही अनेक सूक्ष्म जीवोंके समूह उड़ने लगते हैं। दीपकके पास, रातमें बेशुमार जीव फिरते हुए नजर आते हैं। खुले रखे हुए दीपकपात्रमें, सैकडों जीव पडे हुए दिखाई देते हैं। इसके सिवा रात होते ही अपने शरीर पर भी अनेक जीव बैठते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है

कि, रात्रिमें जीव-समूह भोजन पर भी अवश्यमेव बैठते होंगे। अब रातमें खाते समय, उन जीवोंमेंसे जो भोजनपर बैठते हैं-वे जीवोंको क्षेम खाते हैं; और इस तरह उनकी हत्याका पाप अपने सिर लेते हैं। कितने ही जहरी जीव एसिभोजनके साथ पेटमें चले जाते हैं, और अनेक प्रकारके रोग उपजाते हैं। कई ऐसे जहरी जन्तु भी होते हैं जिनका असर पेटमें जाते ही नहीं होता, दीर्घ कालके बाद होता है। जैसे मकोड़ा करोलियासे कोढ और कीडीसे बुद्धिका नाश होता है। यदि कोई तिनका खानेमें आ जाता है तो वह गलेमें अटक कर कष्ट पहुँचाता है; मक्खी आ जानेसे वमन हो जाती है और अगर कोई जहरी जन्तु खानेमें आ जाता है तो मनुष्य मर जाता है; अकालमृत्युमें कारणभूत भोजन बन जाता है।

शामका (सूर्यास्तके पहिले) किया हुआ भोजन, बहुतसा जठराग्निकी ज्वालापर चढ़ जाता है-पच जाता है, इसलिए निद्रापर उसका असर नहीं होता है। मगर इससे विपरीत करनेसे-रातको खाकर थोड़ी ही देरमें सो जानेसे चलना फिरना नहीं होता इसलिए, पेटमें नसजालमें भरा हुआ अन्न कई बार गंभीर रोग उत्पन्न कर देता है। वैद्यकी नियम है कि, भोजन करनेके बाद थोड़ा थोड़ा जल पीना चाहिए। यह नियम रातमें भोजन करनेसे नहीं पाला जा सकता है क्योंकि इसके लिए अवकाश ही नहीं मिलता है। इसका परिणाम अजीर्ण होता है। अजीर्ण सब रोगोंका घर है यह बात हरेक मानता है। प्राचीन लोग भी पुकार पुकार कर कहते हैं — "अजीर्णप्रभवा रोगाः।"

इस प्रकार हिंसाकी बातको छोड़ कर आरोग्यका विचार करने पर भी सिद्ध होता है कि, रातमें भोजन करना अनुचित है।

यहाँ हम थोड़ासा, यह भी बता देना चाहते हैं, कि इस विषयमें धर्मशास्त्र क्या कहते हैं?

हिन्दु-धर्मशास्त्रकारोंमें 'मार्कंड' मुनि प्रख्यात हैं। वे कहतेहैं कि —

" अस्त गते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते ।
अन्न मांससम प्रोक्तं मार्कण्डेन महर्षिणा ॥ "

भावार्थ—मार्कण्ड ऋषि कहते हैं कि सूर्यके अस्त हो जाने पर जल पीना मानो रुधिर पीना है और अन्न खाना मानो मांस खाना है।

कूर्मपुराणमें भी लिखा है कि—

" न द्रुह्येत् सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयो भवेत् ।
न नक्तं चैवमश्नीयाद् रात्रौ ध्यानपरो भवेत् ॥ "

(२७ वाँ अध्याय ६४५ वाँ पृष्ठ)

भावार्थ—मनुष्य सब प्राणियों पर द्रोहरहित रहे, निर्द्वन्द्व और निर्भय रहे; तथा रातको भोजन न करे और ध्यानमें तत्पर रहे।

और भी ६५३ वें पृष्ठपर लिखा है कि —

" आदित्ये दर्शयित्वाऽन्न भुञ्जीत प्राङ्मुखो नर । "

भावार्थ—सूर्य हो उस समय तक—दिनमें गुरु या बडेको दिखा, पूर्व दिशामें मुख करके भोजन करना चाहिए।

अन्य पुराणों और अन्य ग्रंथोंमें भी रात्रिभोजनका निषेध करने वाले अनेक वाक्य मिलते है। युधिष्ठिरको संबोधन करके यहाँतक कहा गया है कि, किसीको भी, चाहे वह गृहस्थ हो या साधु, रात्रिमें जल तक नहीं पीना चाहिए। जैसे.—

" नोदकमपि पातव्यं रात्रावत्र युधिष्ठिर, ।
तपस्विनां विशेषेण गृहिणां च विवेकिनाम् ॥ "

कहा है कि—

" दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे ।
एतद् नक्तं विजानीयाद् न नक्तं निशि भोजनम् ॥ "

" मुहूर्त्तोनं दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
नक्षत्रदर्शनान्नक्तं नाहं मन्ये गणाधिप !" ॥

भावार्थ—दिनके आठवें भागको–जब कि दिवाकर मंद हो जाता है–(रात होनेके दो घडी पहिलेके समयको) ' नक्त ' कहते हैं। ' नक्त '–' नक्तव्रत ' का अर्थ रात्रिभोजन नहीं है। हे गणाधिप! बुद्धिमान् लोग उस समयको ' नक्त ' बताते हैं, जिस समय एक-मुहूर्त–दो घडी–दिन अवशेष रह जाता है। मैं नक्षत्रदर्शनके समयको नक्त नहीं मानता हूँ।

और भी कहा है कि —

" अम्भोदपटलच्छन्ने नाश्नन्ति रविमण्डले ।
अस्तंगते तु भुञ्जाना अहो ! भानोः सुसेवका ! " ॥

" ये रात्रौ सर्वदाऽऽहारं वर्जयन्ति सुमेधसः ।
तेषां पक्षोपवासस्य फलं मासेन जायते " ॥

" मृते स्वजनमात्रेऽपि सूतकं जायते किल ।
अस्तंगते दिवानाथे भोजनं क्रियते कथम् ? " ॥

ली जाती है। इसी नीतिके अनुसार ' नक्त ' शब्दका मुख्य अर्थ ' रात्रि ' जहाँ घटित नहीं होता हो, वहाँ रात्रिका समीपवर्ती भाग दो घडी पहिलेका समय ग्रहण कर लेनेमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं आती है। ' नक्त ' शब्दका मुख्य अर्थ रात्रि लेनेसे रात्रि-भोजननिषेधक अनेक वाक्य मिथ्या ठहरते हैं, जो हो नहीं सकते। इसलिये ' नक्त ' शब्दका गौण अर्थ ग्रहण कर लेना चाहिये। जहाँ गौण अर्थ लिया जाता है वहाँ यही समझना चाहिये कि मुख्य अर्थ लेनेमें वास्तविक बातको बाधा पहुँचती है।

भावार्थ—आहुति, स्नान, श्राद्ध, देवपूजन, दान और खास करके भोजन रातमें नहीं करना चाहिए।

इस विषयमें आयुर्वेदका मुद्रालेख भी यही है कि:—

" हृन्नाभिपद्मसंकोचश्चण्डरोचिरपायतः ।

अतो नक्तं न भोक्तव्यं सूक्ष्मजीवादनादपि " ॥

भावार्थ—सूर्य छिप जानेके बाद हृदयकमल और नाभिकमल दोनों संकुचित हो जाते हैं, इसलिए, और सूक्ष्म जीवोंका भी भोजनके साथ भक्षण हो जाता है, इसलिए रातमें भोजन नहीं करना चाहिए।

एक दूसरेकी झूठन खाना भी जैनधर्ममें मना है। शुद्धता और समुचित शौचकी तरफ गृहस्थोंको खास तरहसे ध्यान देना चाहिए। जैनशास्त्रकारोंने इस बातका खास तरहसे उपदेश दिया है। रसायन शास्त्र कहते हैं, कि बहुत समय तक मलमूत्र रहनेसे नाना भाँतिके विलक्षण जन्तु उत्पन्न होते हैं और जब वे उडते हैं तब उनके संक्रमणसे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जैनशास्त्र भी इस बात को मानते हैं और इसलिए उन्होंने, खुली जगहमें मल मूत्र-त्यागनेके लिए कहा है।

संक्षेपमें इतना कहना काफी होगा कि जैनशास्त्रोंमें जिन आचार व्यवहारोंका प्रतिपादन किया है, वे सब विज्ञानके शुद्ध तत्वोंके साथ मिलते जुलते हैं। शास्त्रनियमानुसार यदि बर्ताव रक्खा जाता है तो, आरोग्यका लाभ उठानेके साथ ही लोकप्रियता, राज्य मान्यता, सुखी जीवन और आत्मोन्नतिका उद्देश बराबर सिद्ध होता है।

जब तक वस्तुज्ञानमें संदेह या भ्रान्ति होती है, तब तक मनुष्यकी प्रवृत्ति यथार्थ नहीं होती है। वस्तुतत्त्वकी परीक्षा प्रमाणद्वारा

भावार्थ—यह बात कैसे आश्चर्यकी है कि, सूर्य-भक्त जब सूर्य, मेघोंसे ढक जाता है, तब वे न भोजनका त्याग कर देते हैं, परन्तु वही सूर्य जब अस्तदशाको प्राप्त होता है, तब वे एक भोजन करते हैं! जो रातमें भोजन नहीं करते हैं, वे एक महीनेमें एक पक्षके उपवासोंका फल पाते हैं—क्योंकि रात्रिके चार प्रहर वे सदैव अनाहार रहते हैं। स्वजनमात्रके (अपने कुटुम्बमेंसे किसीके) मर जाने पर भी जब लोग सूतक पालते हैं यानी उस दशामें अनाहार रहते हैं, तब दिवस-नाथ सूर्यके अस्त होने बाद तो भोजन किया ही कैसे जा सकता है!

और भी कहा है—

" देवैस्तु भुक्तं पूर्वाह्णे मध्याह्ने ऋषिभिस्तथा।
अपराह्णे च पितृभिः सायाह्ने दैत्यदानवैः॥
सन्ध्यायां यक्षरक्षोभिः सदा भुक्तं कुलोद्वह।
सर्ववेलामतिक्रम्य रात्रौ भुक्तमभोजनम्॥"

इन श्लोकोंमें युधिष्ठिरसे कहा गया है कि—हे युधिष्ठिर! दिनके पूर्वभागमें देवता, मध्याह्नकालमें ऋषि, तीसरे प्रहरमें पितृगण, सायंकालमें दैत्य-दानव और संध्या समयमें यक्ष-राक्षस भोजन करते हैं। इन समयोंको छोड़कर जो भोजन किया जाता है वह अभोजन-दुष्ट भोजन होता है।

शास्त्रमें जो कार्य करना मना किया गया है उनमें रात्रिभोजन भी है। यह भी रात्रि-भोजननिषेधके कथनको पुष्ट करता है जैसे—

" नैवाहुतिर्न च स्नानं न श्राद्धं देवतार्चनम्।
दानं वा विहितं रात्रौ भोजनं तु विशेषतः॥"

भावार्थ—आहुति, स्नान, श्राद्ध, देवपूजन, दान और खास करके भोजन रातमें नहीं करना चाहिए।

इस विषयमें आयुर्वेदका मुद्रालेख भी यही है कि:—

" हृन्नाभिपद्मसंकोचश्चण्डरोचिरपायत ।
अतो नक्तं न भोक्तव्य सूक्ष्मजीवादनादपि " ॥

भावार्थ—सूर्य छिप जानेके बाद हृदयकमल और नाभिकमल दोनों संकुचित हो जाते हैं, इसलिए, और सूक्ष्म जीवोंका भी भोजनके साथ भक्षण हो जाता है, इसलिए रातमें भोजन नहीं करना चाहिए।

एक दूसरेकी झूटन खाना भी जैनधर्ममें मना है। शुद्धता और समुचित शौचकी तरफ गृहस्थोंको खास तरहसे ध्यान देना चाहिए। जैनशास्त्रकारोंने इस बातका खास तरहसे उपदेश दिया है। रसायन शास्त्र कहते हैं, कि बहुत समय तक मलमूत्र रहनेसे नाना भाँतिके विलक्षण जन्तु उत्पन्न होते हैं और जब वे उडते हैं तब उनके संक्रमणसे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जैनशास्त्र भी इस बात को मानते हैं और इसलिए उन्होंने, खुली जगहमें मल मूत्र—त्यागनेके लिए कहा है।

संक्षेपमें इतना कहना काफी होगा कि जैनशास्त्रोंमें जिन आचार व्यवहारोंका प्रतिपादन किया है, वे सब विज्ञानके शुद्ध तत्वोंके साथ मिलते जुलते हैं। शास्त्रनियमानुसार यदि वर्ताव रक्खा जाता है तो, आरोग्यका लाभ उठानेके साथ ही लोकप्रियता, राज्य मान्यता, सुखी जीवन और आत्मोन्नतिका उद्देश बराबर सिद्ध होता है।

जब तक वस्तुज्ञानमें संदेह या भ्रान्ति होती है, तब तक मनुष्यकी प्रवृत्ति यथार्थ नहीं होती है। वस्तुतत्त्वकी परीक्षा प्रमाणद्वारा

होती है। इस विषयमें किसीका मत भिन्न नहीं है। अब हम यहाँ जैनशास्त्रोंकी रीतिके अनुसार इस विषयकी प्रतिपादक न्यायपरिभाषाका संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

न्याय-परिभाषा

" प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम् " अर्थात्–जिससे वस्तुतत्त्वका यथार्थ निर्णय होता है उसको 'प्रमाण' कहते हैं। इससे संशय, भ्रम और मूढता दूर होते हैं और वस्तु-स्वरूपका वास्तविक भान होता है। इसीलिए यथार्थ ज्ञानको 'प्रमाण' कहते हैं।

प्रमाणके दो भेद हैं–प्रत्यक्ष और परोक्ष। मनसहित चक्षु आदि इन्द्रियोंसे जो रूप रस आदिका ग्रहण होता है अर्थात् चक्षुसे रूपका जीभसे रसका, नासिकासे गंधका त्वचासे स्पर्शका और कानसे शब्दका जो ज्ञान होता है वह 'प्रत्यक्ष प्रमाण' कहलाता है।

व्यवहारमें आनेवाले उक्त प्रत्यक्षोंकी अपेक्षा योगियोंका प्रत्यक्ष सर्वथा भिन्न होता है। उसको मन या इन्द्रियकी बिलकुल अपेक्षा नहीं रहती है, वह आत्मशक्तिसे ही होता है।

अब यहाँ यह विचारना चाहिए कि इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष होनेमें वस्तुके साथ इन्द्रियोंका संयोग होना आवश्यक है या नहीं।

जीभसे रसका आस्वाद लिया जाता है उसमें जीभ और रसका बराबर संयोग होता है। त्वचासे स्पर्श किया जाता है, उसमें त्वचा और स्पर्श्य वस्तुका संयोग साफतया मालूम होता है। नाकसे गंध ली जाती है, उस समय नाकके साथ गंधवाले पदार्थोंका अवश्य

संयोग होता है। जिन पदार्थोंकी गंध दूरसे आती है उन गंधवाले सूक्ष्म द्रव्योंका भी नाकके साथ अवश्य संबंध होता है। कानसे सुना भी उसी समय जाता है, जब कि दूरसे आनेवाले शब्दोंका कानके साथ संबंध होता है।

इस तरह जीभ, त्वचा, नाक और कान ये चार इन्द्रियाँ, वस्तुके साथ संयुक्त होकर अपने विषयको ग्रहण करती हैं। परन्तु 'चक्षु' इसमें प्रतिकूल है। यह स्पष्ट है कि दूरसे जो पदार्थ, जैसे वृक्ष, मनुष्य, पशु आदि दिखाई देते हैं वे आँखोंके पास नहीं आते हैं। इसी प्रकार आँखें भी निकलकर उनके पास नहीं जाती हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि, आँखोंसे देखनेमें वस्तुओंके साथ चक्षुका संयोग नहीं होता है। अतएव चक्षु 'अप्राप्यकारी' कहा जाता है। अर्थात् 'अप्राप्य'—प्राप्ति किये विना, संयोग किये विना, 'कारी'—विषयको ग्रहण करनेवाला। विपरीत इसके चार इन्द्रियाँ 'प्राप्यकारी' कहलाती हैं। चक्षुकी भाँति मन भी अप्राप्यकारी है।

परोक्षप्रमाण प्रत्यक्षसे विपरीत है। परोक्ष विषयोंका ज्ञान परोक्ष प्रमाणसे होता है। परोक्षप्रमाणके पाँच भेद किये गये हैं। **स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान** और **आगम**।

पूर्व—अनुभूत वस्तुको याद करना '**स्मरण**' है। 'स्मरण' अनुभूत पदार्थ पर बराबर प्रकाश डालता है, इसलिए वह 'प्रमाण' कहलाता है। खोई हुई वस्तु जब फिरसे मिल जाती है उस समय—"यह वही पदार्थ है" ऐसा जो ज्ञान होता है, उसे '**प्रत्यभिज्ञान**' कहते हैं। पहिले जिस मनुष्यको हमने देखा था, वही फिरसे मिलता है, उस समय यह ज्ञान होता है कि 'यह वही मनुष्य है'। यही ज्ञान प्रत्यभिज्ञान है।

शब्दोंमें कहो तो धूम्रस्थ अग्निके साथ रहनेका निश्चल नियम 'तर्क' हीसे साबित हो सकता है। इस नियमको तर्कशास्त्री लोग 'व्याप्ति' कहते हैं। यह बात तो स्पष्ट ही है कि, धूम्रमें जब तक व्याप्तिका निश्चय नहीं होता है, तब तक धूम्रको देखने पर भी अग्निका अनुमान नहीं हो सकता है। जिस मनुष्यने धूम्रमें अग्निकी व्याप्तिका निश्चय किया है, वही धूम्रको देखकर, वहाँ अग्नि होनेका ठीक ठीक अनुमान कर सकता है। इससे सिद्ध होता है कि अनुमानके लिए व्याप्ति निश्चय करनेकी आवश्यकता है और व्याप्ति-निश्चय करनेके लिए 'तर्क' की जरूरत है।

दो पदार्थ, अनेक स्थानोंमें एक ही जगह देखनेसे इनका व्याप्ति नियम सिद्ध नहीं होता है। परंतु इन दोनोंके भिन्न रहनेमें क्या बाधा है, इसकी जाँच करने पर जब बाधा सिद्ध होती है, तभी इन दोनोंका व्याप्तिनियम सिद्ध होता है। इस तरह दो पदार्थोंके साह-चर्यकी परीक्षा करनेका जो अध्यवसाय है उसे 'तर्क' कहते हैं। धूम्र और अग्निके संबंधमें भी—"यदि अग्निके विना धूम्र होगा, तो वह अग्निका कार्य नहीं होगा, और ऐसा होनेसे, धूम्रकी अपेक्षावाले जो अग्निकी शोध करते हैं, नहीं करेंगे। ऐसा होनेपर अग्नि और धूम्रकी, परस्परकी कारणकार्यता जो लोकप्रसिद्ध है—नहीं टिकेगी।" इस प्रकारके तर्कहीसे उन दोनोंकी व्याप्ति साबित होती है और व्याप्ति निश्चयके बलसे अनुमान किया जाता है। अतएव 'तर्क' प्रमाण है।

अनुमान—जिस वस्तुका अनुमान करना हो, उस वस्तुसे अलग नहीं रहनेवाले पदार्थका—हेतुका जब दर्शन होता है, और उस

हेतुमें अनुमेय वस्तुकी व्याप्ति रहनेका स्मरण होता है तब ही किसी वस्तुका अनुमान हो सकता है[1]।

जैसे—किसी मनुष्यको किसी स्थानमें धूम-रेखा देखनेसे और उस धूममें अग्निकी व्याप्ति होनेका स्मरण आनेसे उसके हृदयमें तत्क्षण ही उस स्थानमें अग्नि होनेका अनुमान स्फुरित होता है। इस अनुमान-स्फूर्तिमें, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, हेतुका दर्शन और हेतुमें साध्यकी व्याप्ति होनेका स्मरण दोनों मौजूद है। इन दोनोंमेंसे यदि एकका भी अभाव होता है तो अनुमान नहीं होता है।

'हेतु' 'साध्य' 'अनुमेय' आदि सब संस्कृत शब्द हैं। 'हेतु' का अर्थ है—साध्यको सिद्ध करनेवाली वस्तु। जैसे ऊपर उदाहरणमें बताया गया है 'धूम'—साध्यसे कभी कहीं अलग न रहना। यह हेतुका लक्षण है। 'हेतु' को 'साधन' भी कहते हैं। 'लिंग' भी साधनका ही समानार्थ है। जिस वस्तुका अनुमान करना होता है उसको 'साध्य' कहते हैं। जैसे पूर्वोक्त उदाहरणमें 'अग्नि' बताया गया है। 'अनुमेय' साध्यका समानार्थ है।

दूसरोंके समझाये बिना अपनी ही बुद्धिसे 'हेतु' द्वारा जो अनुमान किया जाता है उसे 'स्वार्थानुमान' कहते हैं। दूसरोंको समझानेमें अनुमानका प्रयोग करना 'परार्थानुमान' है। जैसे—यहाँ अग्नि है क्योंकि यहाँ धूम दिखाई देता है। जहाँ धूम होता है वहाँ अग्नि अवश्यमेव होती है। हम देखते हैं कि रसोई—घरमें अग्नि होनेसे धूआँ जरूर होता है। यहाँ धूम दिखाई दे रहा है इसलिए यहाँ अग्नि भी अवश्यमेव होगी। प्रतिज्ञा, हेतु, उदा-

1—" साधनात् साध्यविज्ञानमनुमानं [illegible]।

हरण, उपनय और निगमन ये पाँच प्रकारके वाक्य प्रायः परार्थ-अनुमानमें जोडे जाते हैं। "यह प्रदेश अग्निवाला होना, चाहिए" यह 'प्रतिज्ञा' वाक्य है। "क्योंकि यहाँ धूम्र दिखाई देता है।" यह 'हेतु' वाक्य है। रसोईघरका उदाहरण देना यह 'उदाहरण' वाक्य है। "यहाँ भी रसोई घरकी भाँति धूम्र दिखाई देता है" यह 'उपनय' वाक्य है। "अत यहाँ अग्नि जरूर है" यह 'निगमन' वाक्य है। इस तरह सारे अनुमानोंमें यथासभव अनुमान कर लेना चाहिए।

जो हेतु झूठा होता है वह 'हेत्वाभास' कहलाता है। हेत्वा-भाससे सच्चा अनुमान नहीं किया जा सकता है।

आगम—जिसमें प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणोंसे विरुद्ध कथन न हो, जिसमें आत्मोन्नतिसे सबध रखनेवाला भूरि भूरि उपदेश हो, जो तत्त्वज्ञानके गभीर स्वरूपपर प्रकाश डालनेवाला हो, जो रागद्वेषके ऊपर दाब रख सकता हो, ऐसा परमपवित्र शास्त्र '**आगम**' कहलाता है।

सद्बुद्धिपूर्वक जो यथार्थ कथन करता है वह '**आप्त**' कहलाता है। आप्तके कथनको '**आगम**' कहते हैं। सबसे प्रथमश्रेणीका आप्त वह है कि जिसके रागादि समस्त दोष क्षीण हो गये हैं और जिसने अपने निर्मल ज्ञानसे बहुत उच्च प्रकारका उपदेश दिया है।

आगम-वर्णित तत्त्वज्ञान अत्यत गभीर होता है। इसलिए यदि तटस्थभावसे उस पर विचार नहीं किया जाता है तो, अर्थका अनर्थ हो जानेकी सभावना रहती है। आगम वर्णित तत्त्वोंके गहन भागमें भी वही मनुष्य निर्भीक होकर विचरण कर सकता है जिसको दुराग्रहका त्याग, जिज्ञासा-गुणकी प्रबलता और स्थिर तथा सूक्ष्म दृष्टि, इतने साधन प्राप्त हो जाते हैं।

ऊपर ऊपर जब साधारणदृष्टिसे विचार किया जाता है तब धर्मोंके कितने ही विचार एक दूसरेके प्रतिकूल ज्ञात होते हैं। मगर वे ही विचार, जब उनके मूलमें प्रवेश करके देखे जाते हैं, उनके पूर्वापरका खूब अनुसंधान किया जाता है और सूक्ष्मतासे देखे जाते हैं कि वे परस्परमें सुसंगत कैसे होते हैं। तब समान भास पड़ते हैं।

प्रमाणकी व्याख्याका निरूपण किया गया। प्रमाणसे जैनशास्त्रोंमें एक ऐसा सिद्धान्त स्थापित किया गया है कि जिसपर विद्वानोंको आश्चर्य उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता है। मगर उनका वह आश्चर्य उस समय टल ही नहीं जाता है बल्कि उस सिद्धान्तकी तरफ उनकी अभिरुचि भी हो जाती है जब वे उस पर गंभीरतासे विचार करते हैं। उस सिद्धान्तका नाम है— स्याद्वाद।

स्याद्वाद

स्याद्वादका अर्थ है—वस्तुका भिन्न भिन्न दृष्टि-बिंदुओंसे विचार करना देखना या कहना। एक ही वस्तुमें अमुक अमुक अपेक्षासे भिन्न भिन्न धर्मोंको स्वीकार करनेका नाम स्याद्वाद है। जैसे एक ही पुरुषमें पिता पुत्र, चाचा भतीजा, मामा भानजा आदि व्यवहार माना जाता है, वैसे ही एक ही वस्तुमें अनेक धर्म माने जाते हैं। एक ही घटमें नित्यत्व और अनित्यत्व आदि विरुद्ध रूपसे दिखाई देते हुए धर्मोंको अपेक्षादृष्टिसे स्वीकार करनेका नाम 'स्याद्वाद दर्शन' है।

एक ही पुरुष अपने पिताकी अपेक्षा पुत्र अपने पुत्रकी अपेक्षा पिता, अपने भतीजे और भानजेकी अपेक्षा चाचा और मामा एवं

अपने चचा और मामाकी अपेक्षा भतीजा और भानजा होता है। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि इस प्रकार परस्पर विरुद्ध दिखाई देने-वाली बातें भी भिन्न भिन्न अपेक्षाओंसे, एक ही मनुष्यमें स्थित रहती हैं। इसी तरह नित्यत्व आदि परस्पर विरोधी धर्म भी एक ही घटमें भिन्न भिन्न अपेक्षाओंसे क्यों नहीं माने जा सकते हैं?

पहिले इस बातका विचार करना चाहिए कि 'घट' क्या पदार्थ है? हम देखते हैं कि एक ही मिट्टीमेंसे घडा, कूँडा, सिकोरा आदि पदार्थ बनते हैं। घडा फोड़ दो और उसी मिट्टीसे बने हुए कूंडेको दिखाओ। कोई उसको घडा नहीं कहेगा। क्यों? मिट्टी तो वही है? कारण यह है कि उसकी सूरत बदल गई। अब वह घडा नहीं कहा जा सकता है। इससे सिद्ध होता है कि 'घडा' मिट्टीका एक आकार विशेष है। मगर यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि, आकार विशेष मिट्टीसे सर्वथा भिन्न नहीं होता है। आकारमें परिवर्तित मिट्टी ही जब 'घडा' 'कूँडा' आदि नामोंसे व्यवहृत होती है, तब यह कैसे माना जा सकता है कि घडेका आकार और मिट्टी सर्वथा भिन्न है? इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि घडेका आकार और मिट्टी ये दोनों घडेके स्वरूप हैं। अब यह विचारना चाहिए कि उभय स्वरूपोंमें विनाशी स्वरूप कौनसा है और ध्रुव कौनसा? यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि घडेका आकार-स्वरूप विनाशी है। क्योंकि घडा फूट जाता है। घडेका दूसरा स्वरूप जो मिट्टी है, वह अविनाशी है। क्योंकि मिट्टीके कई पदार्थ बनते हैं, और टूट जाते हैं, परन्तु मिट्टी तो वही रहती है। ये बातें अनुभव सिद्ध हैं।

हम देख गये हैं कि घड़ेका एक स्वरूप विनाशी है और दूसरा ध्रुव। इससे सहजहीमें यह समझा जा सकता है कि विनाशी रूपसे घड़ा अनित्य है और ध्रुव रूपसे घड़ा नित्य है। इस तरह एक ही वस्तुमें नित्यता और अनित्यताकी मान्यताको रखनेवाले सिद्धान्तको 'स्याद्वाद' कहा गया है।

स्याद्वादका क्षेत्र उक्त नित्य और अनित्य इन दो ही धर्मोंमें पर्याप्त नहीं होता है। सत् और असत् आदि दूसरी, विरुद्धरूपमें दिखाई देनेवाली बातें भी स्याद्वादमें आ जाती हैं। घट आँखोंसे प्रत्यक्ष दिखाई देता है इससे यह तो अनायास ही सिद्ध हो जाता है कि वह 'सत्' है। मगर न्याय कहता है कि अमुक दृष्टिसे वह 'असत्' भी है।

यह बात खास विचारणीय है कि, प्रत्येक पदार्थ को 'सत्' कहलाता है किस लिए? रूप रस आकार आदि अपने ही गुणोंसे अपने ही धर्मोंसे—प्रत्येक पदार्थ 'सत्' होता है। दूसरेके गुणोंसे कोई पदार्थ 'सत्' नहीं हो सकता है। जो बाप कहलाता है, वह अपने पुत्रसे, किसी दूसरेके पुत्रसे नहीं। यानी खास पुत्र ही पुत्रको बाप कहता है दूसरेका पुत्र उसको बाप नहीं कह सकता। इस तरह जैसे स्वपुत्रकी अपेक्षा जो पिता होता है वही पर-पुत्रकी अपेक्षा अपिता होता है; वैसे ही अपने गुणोंसे—अपने धर्मोंसे अपने स्वरूपसे जो पदार्थ 'सत्' है वही पदार्थ दूसरेके धर्मोंसे—दूसरोंमें रहे हुए गुणोंसे—दूसरोंके स्वरूपसे 'सत्' नहीं हो सकता है। जब 'सत्' नहीं हो सकता है तब यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि वह 'असत्' होता है।

१—अस्तित्व और नास्तित्व।

इस तरह भिन्न भिन्न अपेक्षाओंसे 'सत्' को 'असत्' कहनेमें विचारशील विद्वानोंको कोई बाधा दिखाई नहीं देगी। 'सत्' को भी 'सत्'पनेका जो निषेध किया जाता है, वह ऊपर कहे अनुसार अपनेमें नहीं रही हुई विशेष धर्मकी सत्ताकी अपेक्षासे। जिसमें लेखनशक्ति या वक्तृत्वशक्ति नहीं है, वह कहता है कि—"मैं लेखक नहीं हूँ।" या "मैं वक्ता नहीं हूँ।" इन शब्दप्रयोगोंमें 'मै' और साथ ही 'नहीं' का उच्चारण किया गया है वह ठीक है। कारण, हरेक समझ सकता है कि यद्यपि 'मैं' स्वय 'सत्' हूँ, तथापि मुझमें लेखन या वक्तृत्वशक्ति नहीं है। इसलिए उस शक्तिरूपसे "मैं नहीं हूँ"। इस तरह अनुसधान करनेसे सर्वत्र एक ही व्यक्तिमें 'सत्' और 'असत्' का स्याद्वाद बराबर समझमें आ जाता है।

स्याद्वादके सिद्धान्तको हम और भी थोडा स्पष्ट करेंगे—

सारे पदार्थ उत्पत्ति, स्थिति और विनाश, ऐसे तीन धर्मवाले हैं। उदाहरणार्थ—एक स्वर्णकी कंठी लो। उसको तोडकर हार बना डाला। इस बातको हरेक समझ सकता है कि कठी नष्ट हुई और हार उत्पन्न हुआ। मगर यह नहीं कहा जा सकता है कि, कठी सर्वथा नष्ट ही हो गई है और हार बिलकुल ही नवीन उत्पन्न हुआ है। हारका बिलकुल ही नवीन उत्पन्न होना तो उस समय माना जा सकता है, जब कि उसमें कठीकी कोई चीज आई ही न हो। मगर जब कि कंठीका सारा स्वर्ण हारमें आ गया है, कठीका आकार—मात्र ही बदला है, तब यह नहीं कहा जा सकता है कि हार बिलकुल नया उत्पन्न हुआ है। इसी तरह यह मानना होगा कि कठी भी

१—" उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत्।" तत्त्वार्थसूत्र, 'उमास्वाति' वाचक।

सर्वथा नष्ट नहीं हुई है। कंठीका सर्वथा नष्ट होना तभी माना जा सकता है जब कि कंठीकी कोई चीज बाकी न बची हो। परन्तु जब कंठीका सारा स्वर्ण ही हारमें आ गया है तब यह कैसे कहा जा सकता है कि कंठी सर्वथा नष्ट हो गई है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि,—कंठीका नाश उसके आकारका नाश मात्र है और हारकी उत्पत्ति उसके आकारकी उत्पत्ति मात्र है। कंठी और हारका स्वर्ण एक ही है। कंठी और हार एक ही स्वर्णके आकार-भेदके सिवा दूसरा कुछ नहीं है।

इस उदाहरणसे यह भली प्रकार समझमें आ गया कि कंठीको तोड़ कर हार बनानेमें—कंठीके आकारका नाश, हारके आकारकी उत्पत्ति और स्वर्णकी स्थिति इस प्रकार उत्पाद, नाश और ध्रौव्य (स्थिति) तीनों धर्म बराबर हैं। इसी तरह घड़ेको फोड़कर कूंडा बनाते हुए उदाहरणको भी समझ लेना चाहिए। घर जब गिर जाता है तब जिन पदार्थोंसे घर बना होता है वे चीजें कभी सर्वथा विलीन नहीं होती हैं। वे सब चीजें स्थूल रूपसे अथवा अव्यक्त परमाणु रूपमें तो अवश्यमेव जगत्में रहती ही हैं। अतः तत्त्वदृष्टिसे यह कहना अनुचित है कि घर सर्वथा नष्ट हो गया है। जब कोई स्थूल वस्तु नष्ट हो जाती है तब उसके परमाणु दूसरी वस्तुके साथ मिलकर नवीन परिवर्तन धारण करते हैं। संसारके पदार्थ संसारहीमें इधर उधर, विचरण करते हैं; जिससे नवीन नवीन रूपोंका भान होता है। दीपक बुझ गया इससे यह नहीं समझना चाहिए कि वह सर्वथा नष्ट हो गया है। दीपकका परमाणु-समूह वैसाका वैसा ही मौजूद है। जिस परमाणु-संघातसे दीपक उत्पन्न हुआ था वही

परमाणु-संघात, दूसरा रूप पा जानेमे, दीपक—रूपमें न दीखकर, अंधकार—रूपमें दीखता है, अन्धकार रूपमें उसका अनुभव होता है। सूर्यकी किरणोंसे पानीको सूखा हुआ देखकर, यह नहीं समझ लेना चाहिए कि पानीका अत्यंत अभाव हो गया है। पानी, चाहे किसी रूपमें क्यों न हो, बराबर स्थित है। यह हो सकता है कि, किसी वस्तुका स्थूलरूप नष्ट हो जाने पर उसका सूक्ष्मरूप दिखाई न दे, मगर यह नहीं हो सकता कि उसका सर्वथा अभाव ही हो जाय। यह सिद्धान्त अटल है कि न कोई मूल वस्तु नवीन उत्पन्न होती है और न किसी मूल वस्तुका सर्वथा नाश ही होता है। दूधसे बना हुआ दही, नवीन उत्पन्न नहीं हुआ। यह दूधहीका परिणाम है। इस बातको सब जानते हैं कि दुग्धरूपसे नष्ट होकर दही रूपमें आनेवाला पदार्थ भी दुग्धहीकी तरह 'गोरस' कहलाता है। अत-एव गोरसका त्यागी दुग्ध और दही दोनों चीजें नहीं खा सकता है। इससे दूध और दहीमें जो साम्य है वह अच्छी तरह अनुभवमें आ सकता है।[1] इसी प्रकार सब जगह समझना चाहिए कि, मूलतत्त्व सदा स्थिर रहते हैं, और इसमें जो अनेक परिवर्तन होते रहते हैं, यानी पूर्वपरिणामका नाश और नवीन परिणामका प्रादुर्भाव होता रहता है, वह विनाश और उत्पाद है। इससे, सारे

१—"पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रत ।
अगोरसव्रतो नोभे तस्माद् वस्तु त्रयात्मकम् " ॥
—शास्त्रवार्तासमुच्चय, हरिभद्रसूरि ।

" उत्पन्न दधिभावेन नष्ट दुग्धतया पय ।
गोरसत्वात् स्थिर जानन् स्याद्वादद्विट् जनोऽपि क ? ॥ "
—अध्यात्मोपनिषद्, यशोविजयजी ।

घड़ोंमें सामान्यधर्म—एकरूपता है। मगर लोग उनमेंसे अपने भिन्न भिन्न घड़े जब पहिचान कर उठा लेते हैं, तब यह मालूम होता है कि प्रत्येक घड़ेमें कुछ न कुछ पहिचानका चिन्ह है, यानी भिन्नता है। यह भिन्नता ही उनका विशेष—धर्म है। इस तरह सारे पदार्थोंमें सामान्य और विशेष धर्म हैं। ये दोनों धर्म सापेक्ष हैं, वस्तुसे अभिन्न हैं। अतः प्रत्येक वस्तुको सामान्य और विशेष धर्मवाली समझना ही स्याद्वाद्दर्शन है।

स्याद्वादके संबंधमें कुछ लोग कहते हैं कि, यह संशयवाद है निश्चयवाद नहीं। एक पदार्थको नित्य भी समझना और अनित्य भी, अथवा एक ही वस्तुको 'सत्' भी मानना और 'असत्' भी मानना संशयवाद नहीं है तो और क्या है? मगर विचारक लोगोंको यह कथन—यह प्रश्न अयुक्त जान पड़ता है।

१—स्याद्वादके विषयमें तार्किकोंकी तर्कणाएँ अतिप्रबल हैं। हरिभद्रसूरिने 'अनेकान्तजयपताका' में इस विषयका प्रौढ़ताके साथ विवेचन किया है।

२—गुजरातके प्रसिद्ध विद्वान प्रो० आनंदशंकर ध्रुवने अपने एक व्याख्यानमें स्याद्वादके संबंधमें कहा था —"स्याद्वादका सिद्धान्त अनेक सिद्धान्तोंको देखकर उनका समन्वय करनेके लिए प्रकट किया गया है। स्याद्वाद हमारे सामने एकीभावका दृष्टिबिन्दु उपस्थित करता है। शंकराचार्यने स्याद्वादके ऊपर जो आक्षेप किया है, उसका, मूल रहस्यके साथ कोई संबंध नहीं है। यह निश्चय है कि विविध दृष्टिबिन्दुओं द्वारा निरीक्षण किये बिना किसी वस्तुका संपूर्ण स्वरूप समझमें नहीं आ सकता है। इसलिए स्याद्वाद उपयोगी और सार्थक है। महावीरके सिद्धान्तोंमें बताये गये स्याद्वादको कई संशयवाद बताते हैं। मगर मैं यह बात नहीं मानता। स्याद्वाद संशयवाद नहीं है। यह हमको एक मार्ग बताता है—यह हमें सिखाता है कि विश्वका अवलोकन किस तरह करना चाहिए।

काशीके स्वर्गीय महामहोपाध्याय राममिश्रशास्त्रीने स्याद्वादके लिए अपना जो उत्तम अभिप्राय दिया था उसके लिए उनका 'सुजन-सम्मेलन' शीर्षक व्याख्यान देखना चाहिए।

'सत्' ही है और अमुक अपेक्षासे घट 'असत्' ही है। अमुक अपेक्षासे घट 'नित्य' ही है और अमुक अपेक्षासे घट 'अनित्य' ही है—इस प्रकार निश्चयात्मक अर्थ समझना चाहिए। 'स्यात्' शब्दका अर्थ—'कदाचित्' 'शायद' या इसी प्रकारके दूसरे संशयात्मक शब्दोंसे नहीं करना चाहिए। निश्चयवादमें संशयात्मक शब्दका क्या काम? घटको घटरूपसे समझना जितना यथार्थ है—निश्चयरूप है, उतना ही यथार्थ—निश्चयरूप, घटको अमुक अमुक दृष्टिसे अनित्य और नित्य दोनोंरूपसे, समझना है। इससे स्याद्वाद अव्यवस्थित या अस्थिर सिद्धान्त भी नहीं कहा जा सकता है।

अब वस्तुके प्रत्येक धर्ममें स्याद्वादकी विवेचना, जिसको 'सप्तभङ्गी' कहते हैं, की जाती है।

सांख्यदर्शने, पृथ्वीको परमाणुरूपमे नित्य और स्थूलरूपमे अनित्य माननेवाला तथा द्रव्यत्व, पृथ्वीत्व आदि धर्मोंका सामान्य और विशेषरूपसे स्वीकार करनेवाले नैयायिक, वैशेषिक दर्शन, अनेक वर्णयुक्त वस्तुके अनेकवर्णाकारवाले एक चित्र ज्ञानको—जिसमें अनेक विरुद्ध वर्ण प्रतिभासित होते हैं—माननेवाला बौद्ध दर्शन, प्रमाता, प्रमिति और प्रमेय आकारवाले एक ज्ञानको, जो उन तीन पदार्थोंका प्रतिभासरूप है, मंजूर करनेवाला मीमांसक दर्शन और ऐसे ही प्रकारान्तरसे दूसरे भी स्याद्वादको अयत स्वीकार करते हैं। अन्तमें चार्वाकको भी स्याद्वादकी आज्ञामें बँधना पड़ा है। जैसे—पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार तत्त्वोंके सिवा पाँचवाँ तत्त्व चार्वाक नहीं मानते। इसलिए चार तत्त्वोंसे उत्पन्न होनेवाले चैतन्यको चार्वाक तत्त्वोंसे अलग नहीं मान सकता है। चार्वाक यह भी जानता है कि, चैतन्यको पृथिव्यादिप्रत्येकतत्त्वरूप माना जाय तो घटादि पदार्थोंके चेतन बन जानेका दोष आ जाता है। अत—एव चार्वाकका यह कथन है या चार्वाकको यह कहना चाहिए कि—चैतन्य, पृथिव्यादिअनेकतत्त्वरूप है। इस तरह एक चैतन्यको अनेकवस्तुरूप—अनेकतत्त्वात्मक मानना यह स्याद्वादहीकी मुद्रा है।

सप्तभंगी ।

ऊपर कहा जा चुका है कि 'स्याद्वाद' भिन्न भिन्न अपेक्षासे अस्तित्व-नास्तित्व, नित्यत्व अनित्यत्व आदि अनेक धर्मोंका एक ही वस्तुमें होना बताता है । इससे यह समझमें आ जाता है कि वस्तु-स्वरूप जिस प्रकारका हो, उसी रीतिसे उसकी विवेचना करनी चाहिए । वस्तुस्वरूपकी जिज्ञासावाले किसीने पूछा कि—" घड़ा क्या अनित्य है ?" उत्तरदाता यदि इसका यह उत्तर दे कि घड़ा अनित्य ही है, तो उसका यह उत्तर या तो अधूरा है या अयथार्थ है । यदि यह उत्तर अमुक दृष्टिबिन्दुसे कहा गया है तो वह अधूरा है । क्योंकि उसमें ऐसा कोई शब्द नहीं है जिससे यह समझमें आवे कि यह कथन अमुक अपेक्षासे कहा गया है । अतः वह उत्तर पूर्ण होनेके लिए किसी अन्य शब्दकी अपेक्षा रखता है । अगर वह संपूर्ण दृष्टि-बिन्दुओंके विचारका परिणाम है तो अयथार्थ है । क्योंकि घटा (प्रत्येक पदार्थ) संपूर्ण दृष्टिबिन्दुओंसे विचार करने पर अनित्यके साथ ही नित्य भी प्रमाणित होता है । इससे विचारशील समझ सकते हैं कि—वस्तुका कोई धर्म बताना हो तब इस तरह बताना चाहिए कि जिससे उसका प्रतिपक्षी धर्मका उसमेंसे लोप न हो जाय । अर्थात् किसी भी वस्तुको नित्य बताते समय, इस कथनमें कोई ऐसा शब्द

" सम्मतिर्विमतिर्वापि चार्वाकस्य न मृग्यते ।
परलोकात्मामोक्षेषु यस्य मुह्यति शेमुषी " ॥

भावार्थ—स्याद्वादके संबंधमें चार्वाककी, जिसकी बुद्धि परलोक, आत्मा और मोक्षके संबंधमें मूढ हो गई है, सम्मति या विमति (पसंदगी या नापसंदगी- देखनेकी जरूरत नहीं है ।

तीसराशब्द प्रयोग—किसीने पूछा कि—" घट क्या अनित्य और नित्य दोनों धर्मवाला है ? " उसके उत्तरमें कहना कि—"हाँ, घट अमुक अपेक्षासे, अवश्यमेव नित्य और अनित्य है।" यह तीसरा वचन-प्रकार है । इस वाक्यसे मुख्यतया अनित्य धर्मका विधान और उसका निषेध, क्रमश. किया जाता है ।

चतुर्थ शब्दप्रयोग—" घट किसी अपेक्षासे अवक्तव्य है ।" घट अनित्य और नित्य दोनों तरहसे क्रमश बताया जा सकता है, जैसा कि तीसरे शब्दप्रयोगमें कहा गया है । मगर यदि विना क्रम—युगपत् (एक ही साथ) घटको अनित्य और नित्य बताना हो तो, उसके लिए जैनशास्त्रकारोंने,—'अनित्य' 'नित्य' या दूसरा कोई शब्द उपयोगमें नहीं आ सकता है इसलिए,—'अवक्तव्य' शब्दका व्यवहार किया है । यह भी ठीक है। घट जैसे अनित्य रूपसे अनुभवमें आता है उसी तरह नित्य रूपसे भी अनुभवमें आता है । इससे घट जैसे केवल अनित्य रूपमें नहीं ठहरता वैसे ही केवल नित्यरूपमें भी घटित नहीं होता है । बल्के वह नित्यानित्यरूप विलक्षणजातिवाला ठहरता है । ऐसी हालतमें घटको यदि यथार्थ रूपमें नित्य और अनित्य दोनों तरहसे—क्रमश नहीं किन्तु एक ही साथ—बताना हो तो शास्त्रकार कहते है कि इस तरह बतानेके लिए कोई शब्द नहीं है ।[1] अत. घट अवक्तव्य है ।

---

१ शब्द एक भी ऐसा नहीं है कि जो नित्य और अनित्य दोनों धर्मोंको एक ही साथमें, मुख्यतया प्रतिपादन कर सके । इस प्रकारसे प्रतिपादन करनेकी शब्दोंमें शक्ति नहीं है । ' नित्यानित्य ' यह समास—वाक्य भी क्रमहीसे नित्य और अनित्य धर्मोंका प्रतिपादन करता है । एक साथ नहीं । " सकृदुच्चारित

इन चार वचन प्रकारोंमें अन्य तीन वचन-प्रयोग भी उत्पन्न किये जा सकते हैं।

पाँचवाँ वचन प्रकार—"अमुक अपेक्षासे घट अनित्य होनेके साथ ही अवक्तव्य भी है।"

छठा वचन-प्रकार—"अमुक अपेक्षासे घट नित्य होनेके साथ ही अवक्तव्य भी है।"

सातवाँ वचन-प्रकार—"अमुक अपेक्षासे नित्य-अनित्य होनेके साथ ही अवक्तव्य भी है।"

सामान्यतया, घटका तीन तरहसे-नित्य, अनित्य और अवक्तव्यरूपसे-विचार किया जा चुका है। इन तीन वचन प्रकारोंको उक्त चार वचन-प्रकारोंके साथ मिला देनेसे सात वचनप्रकार होते हैं। इन सात वचन-प्रकारोंको जैन 'सप्तभंगी' कहते हैं। सप्त' यानी सात, और 'भंग' यानी वचनप्रकार। अर्थात् सात वचन-प्रकारके समूहको सप्तभंगी कहते हैं। इन सातों वचन प्रयोगोंको भिन्न भिन्न अपेक्षासे-भिन्न भिन्न दृष्टिसे-समझना चाहिए। किसी भी वचनप्रकारको एकान्त दृष्टिसे नहीं मानना चाहिए। यह बात तो सरलतासे समझमें आ सकती है कि, यदि एक वचन प्रकारको एकान्तदृष्टिसे मानेंगे तो दूसरे वचनप्रकार असत्य हो जायँगे।[1]

---

१ "सर्वत्राऽऽय ध्वनिर्विधिप्रतिषेधाभ्यां स्वार्थमभिदधान सप्तभङ्गीमनुगच्छति ॥"

"एकत्र वस्तुनि एकैकधर्मपर्यनुयोगवशात् अविरोधेन व्यस्तयो समस्तयोश्च विधिनिषेधयो कल्पनया स्यात्काराङ्कित सप्तधा वाक्प्रयोग सप्तभङ्गी।"

"स्यादस्त्येव सर्वम् इति विधिकल्पनया प्रथमो भङ्ग।"

"स्याद् नास्त्येव सर्वम्, इति निषेधकल्पनया द्वितीय।"

इन चार वचन प्रकारोंमे अन्य तीन वचन-प्रयोग भी उत्पन्न किये जा सकते है।

पाँचवाँ वचन प्रकार—"अमुक अपेक्षासे घट अनित्य होनेके साथ ही अवक्तव्य भी है।"

छठा वचन-प्रकार—"अमुक अपेक्षासे घट नित्य होनेके साथ ही अवक्तव्य भी है।"

सातवाँ वचन-प्रकार—"अमुक अपेक्षासे नित्य-अनित्य होनेके साथ ही अवक्तव्य भी है।"

सामान्यतया, घटका तीन तरहसे—नित्य, अनित्य और अवक्तव्यरूपसे—विचार किया जा चुका है। इन तीन वचन प्रकारोंको उक्त चार वचन-प्रकारोंके साथ मिला देनेसे सात वचनप्रकार होते हैं। इन सात वचन-प्रकारोंको जैन 'सप्तभंगी' कहते है। सप्त' यानी सात, और 'भंग' यानी वचनप्रकार। अर्थात् सात वचन-प्रकारके समूहको सप्तभंगी कहते है। इन सातों वचन प्रयोगोंको भिन्न भिन्न अपेक्षासे—भिन्न भिन्न दृष्टिसे—समझना चाहिए। किसी भी वचनप्रकारको एकान्त दृष्टिसे नहीं मानना चाहिए। यह बात तो सरलतासे समझमें आ सकती है कि, यदि एक वचन-प्रकारको एकान्तदृष्टिसे मानेंगे तो दूसरे वचनप्रकार असत्य हो जायँगे।[1]

---

[1] "सर्वत्राऽयं ध्वनिर्विधिप्रतिषेधाभ्यां स्वार्थमभिदधानः सप्तभङ्गीमनुगच्छति॥"

"एकत्र वस्तुनि एकैकधर्मपर्यनुयोगवशात् अविरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्च विधिनिषेधयोः कल्पनया स्यात्काराङ्कितः सप्तधा वाक्प्रयोगः सप्तभङ्गी।"

"स्यादस्त्येव सर्वम् इति विधिकल्पनया प्रथमो भङ्गः।"

"स्याद् नास्त्येव सर्वम्, इति निषेधकल्पनया द्वितीयः।"

कहलाता है। वस्तुके अमुक अंशके ज्ञानको 'नय' कहते हैं और उस अमुक अंशके ज्ञानको प्रकाशित करनेवाला वाक्य 'नयवाक्य' कहलाता है। इन प्रमाणवाक्यों और नयवाक्योंको सात विभागोंमें बाँटनेहीका नाम 'सप्तभंगी' है।[1]

प्रमाणकी व्याख्या 'न्यायपरिभाषा' में आ चुकी है। अब नयका थोडासा वर्णन किया जायगा।

नय।

एक ही वस्तुके विषयमें भिन्न भिन्न दृष्टिबिन्दुओंसे, उत्पन्न होनेवाले भिन्न भिन्न यथार्थ अभिप्रायोंको 'नय' कहते हैं। एक ही मनुष्य भिन्न भिन्न अपेक्षाओंसे काका, मामा, भतीजा, भानजा, भाई, पुत्र, पिता, ससुर और जमाई समझा जाता है, सो यह 'नय' के सिवा और कुछ नहीं है। हम यह बता चुके हैं, कि वस्तुमें एक ही धर्म नहीं है। अनेक धर्मवाली वस्तुमें अमुक धर्मसे संबंध रखनेवाला जो अभिप्राय बंधता है उसको जैनशास्त्रोंने 'नय' संज्ञा दी है। वस्तुमें जितने धर्म हैं और उससे संबंध रखनेवाले जितने अभिप्राय हैं वे सब 'नय' कहलाते हैं।

एक ही घट वस्तु, मूल द्रव्य–मिट्टीकी अपेक्षा विनाशी नहीं है, नित्य है। परन्तु घटके आकाररूप परिणामकी दृष्टिसे विनाशी है।

१—यह विषय अनंत गहन है, विस्तृत है। सप्तभंगीतरंगिणीनामा जैन तर्कग्रंथमें इस विषयका प्रतिपादन किया गया है। 'सम्मतिप्रकरण' आदि जैन-न्यायशास्त्रोंमें भी इस विषयका बहुत गंभीरतासे विचार किया गया है।

इस तरह भिन्न भिन्न दृष्टि बिन्दुसे पदार्थ नित्य और अनित्य दोनों मान्यताएँ सत्य हैं।

इस बातको सब मानते हैं कि आत्मा नित्य है। और यह बात है भी ठीक; क्योंकि उसका नाश नहीं होता है। मगर इस बातका सबको अनुभव हो सकता है, कि उसका परिवर्तन विविध तरहसे होता है। कारण आत्मा किसी समय पशुअवस्थामें होता है किसी समय मनुष्य-स्थिति प्राप्त करता है; कभी देवगतिका मोक्ष करता है और कभी नरकादि दुर्गतियोंमें जाकर गिरता है। यह कितना परिवर्तन है! एक ही आत्माकी यह कैसी विकराल अवस्था है! यह क्या बताती है! आत्माकी परिवर्तनशीलता। एक शरीरके परिवर्तनसे भी, यह समझमें आ सकता है कि, आत्मा परिवर्तनकी अवस्थाओंमें फिरता रहता है। ऐसी स्थितिमें यह नहीं माना जा सकता है कि, आत्मा सर्वथा-एकान्ततः नित्य है। अत-एव यह माना जा सकता है कि, आत्मा न एकान्ततः नित्य है, न एकान्ततः अनित्य है; बल्के नित्यानित्य है। इस दशामें आत्मा जिस दृष्टिसे नित्य है वह, और जिस दृष्टिसे अनित्य है वह, दोनों ही दृष्टियाँ, सत्य प्रमाणती है।

यह बात सुस्पष्ट और निस्सन्देह है कि, आत्मा शरीरसे जुदा है। तो भी यह ध्यानमें रखना चाहिए कि, आत्मा शरीरमें ऐसे ही व्याप्त हो रहा है जैसे कि मक्खनमें घृत। इसीसे शरीरके किसी भी भागमें जब चोट पहुँचती है तब तत्काल ही आत्माको वेदना होने लगती है। शरीर और आत्माके ऐसे प्रगाढ संबंधको लेकर जैनशास्त्रकार कहते हैं कि, यद्यपि आत्मा शरीरसे वस्तुतः भिन्न है, तथापि सर्वथा नहीं। यदि सर्वथा भिन्न मानेंगे तो आत्माको, शरीर पर आघात

लगनेसे, कुछ कष्ट नहीं होगा, जैसे कि एक आदमीको आघात पहुँचानेसे दूसरे आदमीको कष्ट नहीं होता है, परन्तु आबाल-वृद्धका यह अनुभव है कि, शरीर पर आघात होनेसे आत्माको उसकी वेदना होती है। इसलिए किसी अंशमें आत्मा और शरीरका अभेद भी मानना चाहिए। अर्थात् शरीर और आत्मा भिन्न होनेके साथ ही कथंचित् अभिन्न भी है। इस स्थितिमें जिस दृष्टिसे आत्मा और शरीर भिन्न है वह, और जिस दृष्टिसे आत्मा और शरीर अभिन्न हैं वह, दोनों दृष्टियाँ ' नय ' कहलाती है।

जो अभिप्राय, ज्ञानसे मोक्ष होना बताता है, वह ' ज्ञाननय ' है और जो अभिप्राय क्रियासे मोक्षसिद्धि बताता है वह ' क्रियानय ' है। ये दोनों अभिप्राय ' नय ' है।

जो दृष्टि, वस्तुकी तात्त्विकस्थितिको अर्थात् वस्तुके मूलस्वरूपको स्पर्श करनेवाली है, वह ' निश्चयनय ' है और जो दृष्टि वस्तुकी बाह्य अवस्थाकी ओर लक्ष खींचती है वह ' व्यवहारनय ' है। निश्चयनय बताता है कि आत्मा (संसारी जीव) शुद्ध-बुद्ध-निरंजन-सच्चिदानंदमय है और व्यवहार नय बताता है कि आत्मा, कर्मबद्ध अवस्थामें मोहवान्-अविद्यावान् है। इस तरहके निश्चय और व्यवहारके अनेक उदाहरण हैं।

अभिप्राय बतानेवाले शब्द, वाक्य, शास्त्र या सिद्धान्त सब ' नय ' कहलाते हैं। उक्त नय अपनी मर्यादामें माननीय है। परन्तु यदि वे एक दूसरेको असत्य ठहरानेके लिए तत्पर होते हैं तो अमान्य हो जाते हैं। जैसे-ज्ञानसे मुक्ति बतानेवाला सिद्धान्त, और क्रियासे मुक्ति बतानेवाला सिद्धान्त-ये दोनों सिद्धान्त, स्वपक्षका

इस तरह भिन्न भिन्न दृष्टि बिन्दुसे पदार्थको नित्य और अनित्य मान-नेवाली दोनों मान्यताएँ सत्य हैं।

इस बातको सब मानते हैं कि आत्मा नित्य है। और यह पक्ष है भी ठीक; क्योंकि उसका नाश नहीं होता है। मगर इस बातको सबको अनुभव हो सकता है कि उसका परिवर्तन विचित्र तरहसे होता है। कारण, आत्मा किसी समय पशु अवस्थामें होता है, किसी समय मनुष्य-स्थिति प्राप्त करता है, कभी देवगतिका भोक्ता बनता है और कभी नरकादि दुर्गतियोंमें जाकर गिरता है। यह कितना परिवर्तन है! एक ही आत्माकी यह कैसी विलक्षण अवस्था है! यह क्या बताती है? आत्माकी परिवर्तनशीलता। एक शरीरके परिवर्तनमें भी, यह समझमें आ सकता है कि, आत्मा परिवर्तनकी धारामें फिरता रहता है। ऐसी स्थितिमें यह नहीं माना जा सकता है कि, आत्मा सर्वथा-एकान्त नित्य है। अत-एव यह माना जा सकता है कि आत्मा न एकान्त नित्य है, न एकान्त अनित्य है; बल्के नित्यानित्य है। इस दशामें आत्मा जिस दृष्टिसे नित्य है वह और जिस दृष्टिसे अनित्य है वह दोनों ही दृष्टियाँ, सत्य बतलाती हैं।

यह बात सुस्पष्ट और निस्सन्देह है कि, आत्मा शरीरसे जुदा है। तो भी यह ध्यानमें रखना चाहिए कि, आत्मा शरीरमें ऐसे ही व्याप्त हो रहा है जैसे कि माखनमें घृत। इसीसे शरीरके किसी भी भागमें जब चोट पहुँचती है तब तत्काल ही आत्माको वेदना होने लगती है। शरीर और आत्माका ऐसा प्रगाढ संबंध है। [illegible] कहते हैं कि यद्यपि आत्मा शरीरसे वस्तुतः भिन्न है तथापि सर्वथा नहीं। यदि सर्वथा भिन्न मानेंगे तो आत्माको, शरीर पर आघात

माला, जंजीर कड़े, अंगूठी आदि पदार्थोंमें परिवर्तन होता रहता है। इस, अनित्यत्वको परिवर्तन होने जितना ही समझना चाहिए; क्योंकि सर्वथा नाश या सर्वथा अपूर्व उत्पाद किसी वस्तुका कभी नहीं होता है।

प्रकारान्तरसे नयके सात भेद बताये गये हैं। **नैगम्, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ** और **एवम्भूत**।

नैगम—'निगम' का अर्थ है संकल्प-कल्पना। इस कल्पनासे जो वस्तुव्यवहार होता है वह नैगमनय कहलाता है। यह नय तीन प्रकारका होता है,—'भूत नैगम' 'भविष्यद् नैगम' और 'वर्तमान नैगम'। जो वस्तु हो चुकी है उसको वर्तमानरूपमें व्यवहार करना 'भूत नैगम' है।[1] जैसे—आज वही दीवालीका दिन है कि जिस दिन महावीर स्वामी मोक्षमें गये थे।" यह भूतकालका वर्तमानमें उपचार है। महावीरके निर्वाणका दिन आज (आज दीवालीका दिन) मान लिया जाता है। इस तरह भूतकालके वर्तमानमें उपचारके अनेक उदाहरण हैं। होनेवाली वस्तुको हुई कहना 'भविष्यद् नैगम' है। जैसे चावल पूरे पके न हों, पक जानेमें थोडी ही देर रही हो, उस समय कहा जाता है कि "चावल पक गये हैं।" ऐसा वाक्यव्यवहार प्रचलित है। अथवा—अर्हन् देवको मुक्त होनेके पहिले ही, कहा जाता है कि मुक्त हो गये। यह 'भविष्यद् नैगमनय' है। ईंधन, पानी आदि चावल पकानेका सामान इकट्ठा करते हुए मनुष्यको कोई पूछे कि क्या करते हो?

---

१ अतीतस्य वर्तमानवत् कथनं यत्र स भूतनैगमः। यथा—"तदेवाऽद्य दीपोत्सवपर्व यस्मिन् वर्द्धमानस्वामी मोक्षं गतवान्"

—नयप्रदीप, यशोविजयजी।

खण्डन करते हुए, यदि वे एक दूसरेका खण्डन करने लगें तो वे तिरस्कारके पात्र हैं। इस तरह घटको अनित्य और नित्य माननेवाले सिद्धान्त, तथा आत्मा और शरीरका भेद और अभेद माननेवाले सिद्धान्त यदि एक दूसरेपर आक्षेप करनेको उतारू हों तो वे अमान्य ठहरते हैं।

यह समझ रखना चाहिए कि नय आंशिक सत्य है। आंशिक सत्य सम्पूर्ण सत्य नहीं माना जा सकता है। आत्माको अनित्य या घटको नित्य मानना सर्वांशमें सत्य नहीं हो सकता है। जो सत्य जितने अंशोंमें हो उसको उतने ही अंशोंमें मानना युक्त है।

इसकी गिनती नहीं हो सकती है कि वस्तुतः नय कितने हैं। अभिप्राय या वचनप्रयोग जब गणनासे बाहिर हैं तब नय जो उनसे जुदा नहीं है—जैसे गणनाके बाहर हो सकते हैं। यानी नयोंकी भी गिनती नहीं हो सकती है।[1] ऐसा होने पर भी नयोंके मुख्यतया दो भेद बताये गये हैं—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। मूल पदार्थको द्रव्य कहते हैं। जैसे—घड़ेकी मिट्टी। मूल द्रव्यके परिणामको पर्याय कहते हैं। मिट्टी अथवा अन्य किसी द्रव्यमें जो परिवर्तन होता है वह सब पर्याय है। द्रव्यार्थिक का मतलब है, मूल पदार्थों पर लक्ष्य देनेवाला अभिप्राय और पर्यायार्थिक नय का मतलब है पर्यायोंको लक्ष्य करनेवाला अभिप्राय। द्रव्यार्थिक नय सब पदार्थोंको नित्य मानता है। जैसे—घड़ा मूलद्रव्य—मृत्तिका रूपसे नित्य है। पर्यायार्थिकनय सब पदार्थोंको अनित्य मानता है। जैसे—स्वरूप

1 जावइया वयणवहा तावइया चेव हुंति णयवाया।”
— सन्मतिसूत्र सिद्धसेनदिवाकर

माला, जंजीर कडे, अंगूठी आदि पदार्थोंमें परिवर्तन होता रहता है। इस, अनित्यत्वको परिवर्तन होने जितना ही समझना चाहिए; क्योंकि सर्वथा नाश या सर्वथा अपूर्व उत्पाद किसी वस्तुका कभी नहीं होता है।

प्रकारान्तरसे नयके सात भेद बताये गये हैं। **नैगम्, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवम्भूत।**

नैगम—' निगम ' का अर्थ है सकल्प–कल्पना। इस कल्पनासे जो वस्तुव्यवहार होता है वह नैगमनय कहलाता है। यह नय तीन प्रकारका होता है,—' भूत नैगम ' भविष्यद् नैगम ' और ' वर्तमान नैगम '। जो वस्तु हो चुकी है उसको वर्तमानरूपमें व्यवहार करना ' भूत नैगम ' है।[1] जैसे—आज वही दीवालीका दिन है कि जिस दिन महावीर स्वामी मोक्षमें गये थे। " यह भूतकालका वर्तमानमें उपचार है। महावीरके निर्वाणका दिन आज (आज दीवालीका दिन) मान लिया जाता है। इस तरह भूतकालके वर्तमानमें उपचारके अनेक उदाहरण हैं। होनेवाली वस्तुको हुई कहना ' भविष्यद् नैगम ' है। जैसे चावल पूरे पके न हों, पक जानेमें थोड़ी ही देर रही हो, उस समय कहा जाता है कि " चावल पक गये हैं। " ऐसा वाक्यव्यवहार प्रचलित है। अथवा–अर्हन् देवको मुक्त होनेके पहिले ही, कहा जाता है कि मुक्त हो गये। यह 'भविष्यद् नैगमनय' है। ईंधन, पानी आदि चावल पकानेका सामान इकट्ठा करते हुए मनुष्यको कोई पूछे कि क्या करते हो?

१ अतीतस्य वर्तमानवत् कथनं यत्र स भूतनैगमः। यथा—" तदेवाऽद्य दीपोत्सवपर्व यस्मिन् वर्द्धमानस्वामी मोक्षं गतवान्"

—नयप्रदीप, यशोविजयजी।

वह उत्तर दे कि—“ मैं चावल पकाता हूँ।” यह उत्तर ‘ वर्तमान नैगमनय ’ है। क्योंकि चावल पकानेकी क्रिया यद्यपि वर्तमानमें प्रारंभ नहीं हुई है तो भी यह वर्तमानरूपमें बताई गई है।

संग्रह—सामान्यतया वस्तुओंका समुच्चय करके कथन करना ‘ संग्रह ’ नय है। जैसे—“ सारे शरीरोंका आत्मा एक है।” इस कथनसे वस्तुतः सब शरीरोंमें एक आत्मा सिद्ध नहीं होता है। प्रत्येक शरीरमें आत्मा भिन्न भिन्न ही है; तथापि सब आत्माओंमें रही हुई समान जातिकी अपेक्षासे कहा जाता है कि—“सब शरीरोंमें आत्मा एक है।”

व्यवहार—यह नय वस्तुओंमें रही हुई समानताकी उपेक्षा करके, विशेषताकी ओर लक्ष खींचता है। इस नयकी प्रवृत्ति लोक-व्यवहारकी तरफ है। पाँच वर्णवाले भँवरेको ‘ काला भँवर ’ बताना इस नयकी पद्धति है। ‘ रस्ता आता है ’ ‘ कूँडा झरता है ’ इन सब उपचारोंका इस नयमें समावेश हो जाता है।

ऋजुसूत्र—वस्तुमें होते हुए नवीन नवीन रूपान्तरोंकी तरफ यह नय लक्ष्य आकर्षित करता है। स्वर्णकी, मुकुट, कुंडल आदि, जो पर्यायें हैं उन पर्यायोंको यह नय देखता है। पर्यायोंके अलावा स्थायी द्रव्यकी ओर यह नय दृष्टिपात नहीं करता है। इसीलिए पर्यायें विनश्वर होनेसे सदास्थायी द्रव्य इस नयकी दृष्टिमें कोई चीज नहीं है।

---

१ इसके सिवा अन्य प्रकारसे बहुतसे जैन-ग्रंथोंमें व्याख्या इन नयोंकी मिलती है।

शब्द—इस नयका काम है—अनेक पर्यायशब्दोंका एक अर्थ मानना। यह नय बताता है कि, 'कपडा' 'वस्त्र' 'वसन' आदि शब्दोंका अर्थ एक ही है।

समभिरूढ—इस नयकी पद्धति है—पर्यायशब्दोंके भेदसे अर्थका भेद मानना। यह नय कहता है, कि, कुंभ, कलश, घट आदि शब्द भिन्न अर्थवाले हैं, क्योंकि कुंभ, कलश, घट आदि शब्द यदि भिन्न अर्थवाले न हों तो घट, पट, अश्व आदि शब्द भी भिन्न अर्थवाले न होने चाहिएँ, इसलिए शब्दके भेदसे अर्थका भेद है।

एवंभूत—इस नयकी दृष्टिसे शब्द, अपने अर्थका वाचक (कहनेवाला) उस समय होता है, जिस समय वह अर्थ-पदार्थ उस शब्दकी व्युत्पत्तिमेंसे क्रियाका जो भाव निकलता हो, उस क्रियामें प्रवर्ता हुआ हो। जैसे—'गो' शब्दकी व्युत्पत्ति है—"गच्छतीति गौ" अर्थात् जो गमन करता है उसे गो कहते है, मगर वह 'गो' शब्द इस नयके अभिप्रायसे—प्रत्येक गऊका वाचक नहीं हो सकता है, किन्तु केवल गमन-क्रियामें प्रवृत्त—चलती हुई—गायका ही वाचक हो सकता है। इस नयका कथन है कि, शब्दकी व्युत्पत्तिके अनुसार ही यदि उसका अर्थ होता है तो उस अर्थको वह शब्द कह सकता है।

यह बात भली प्रकारसे समझा कर कही जा चुकी है कि ये सातों नयें एक प्रकारके दृष्टिबिन्दु हैं। अपनी अपनी मर्यादामें स्थित रहकर, अन्य दृष्टिबिन्दुओंका खंडन न करनेहीमें नयोंकी साधुता है। मध्यस्थ पुरुष सब नयोंको भिन्न भिन्न दृष्टिसे मान दे कर

तत्त्वोंकी विशाल सीमाका अवलोकन करते हैं। इसीलिए वे, राग-द्वेषकी बाधा न होनेसे, आत्माकी निर्मल दशा प्राप्त कर सकते हैं।

जैनदृष्टिकी उदारता।

ऊपर स्याद्वादका कथन किया जा चुका है। उसको पढ़कर पाठक यह समझ गये होंगे कि विविध दृष्टिबिन्दुओंसे वस्तुका निरीक्षण करनेकी शिक्षा देनेवाला जैनधर्म कितना उदार है। जैनधर्मकी जितनी शिक्षाएँ हैं जितने उपदेश हैं उन सबका साध्यबिन्दु—अन्तिम ध्येय राग-द्वेषको नष्ट करना—है। अत-एव जैनधर्मके प्रचारक महापुरुषोंने तत्त्वविवेचनमें किसी प्रकारका पक्षपात न कर मध्यस्थ भाव रखे हैं। उनके ग्रंथ इस बातके प्रमाण हैं। उन्होंने सबसे पहिले यह उपदेश दिया है कि—"किसी तत्त्वमार्गको ग्रहण करनेके पहिले, युक्ति द्वारा और तटस्थवृत्तिसे उसका खूब विचार कर लो।" उनके लेखोंमें, किसी भी दर्शनके सिद्धान्तको एकदम नष्ट करनेकी संकुचित वृत्ति नहीं है। उनके ग्रंथ बताते हैं कि, उनका लक्ष्य प्रत्येक सिद्धान्तका समन्वय करनेकी ओर रहा है। शास्त्रवार्तासमुच्चय नामक ग्रंथ देखो। उस ग्रंथमें हमारे कथनका प्रमाण मिलेगा। इस ग्रंथमें ईश्वर जगत्कर्ता नहीं है इस बातको सिद्ध करनेके बाद लिखा गया है कि,—

---

१ यह ग्रंथ बहुत गंभीर है। इसके अंदर भिन्न भिन्न अनेक व्याख्याएँ शामिल हैं। [illegible] तत्त्वार्थसूत्र और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आदि तथा अन्य अनेक ग्रंथोंसे यह भिन्न [illegible] [illegible] [illegible] है।

" ततश्चेश्वरकर्तृत्ववादोऽय युज्यते परम् ।
सम्यग्न्यायाविरोधेन यथाऽऽहु शुद्धबुद्धयः ॥ "
" ईश्वरः परमात्मैव तदुक्तव्रतसेवनात् ।
यतो मुक्तिस्ततस्तस्याः कर्त्ता स्याद् गुणभावतः ॥"
" तदनासेवनादेव यत्ससारोऽपि तत्त्वत. ।
तेन तस्यापि कर्तृत्व कल्प्यमान न दुष्यति ॥ "

भावार्थ—ईश्वरकर्तृत्वका मत इस तरहकी युक्तिसे घटित भी किया जा सकता है कि—ईश्वर-परमात्माके बताये हुए मार्गका सेवन करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है । इस लिए, उपचारसे यह कहा जा सकता है कि, मुक्तिका देनेवाला ईश्वर है । उपचारसे यह भी कहा जा सकता है कि, ईश्वर-दर्शित मार्गका सेवन न करनेसे जीवको ससारमें भटकना पड़ता है, यह ईश्वरोपदेश नहीं माननेका दंड है ।

जिनको इस वाक्य पर विश्वास हो गया है कि—ईश्वर जगत्कर्ता है, उनके लिए उक्त प्रकार की कल्पना की गई है । यह बात—

" कर्ताऽयमिति तद्वाक्ये यत केषाञ्चिदादरः ।
अतस्तदानुगुण्येन तस्य कर्तृत्वदेशना " ॥

इस श्लोकसे स्पष्ट हो जाती है । दूसरी तरहसे विना उपचारके भी ईश्वर जगत्कर्ता बताया गया है ।

" परमैश्वर्ययुक्तत्वाद् मत आत्मैव वेश्वर. ।
स च कर्तेति निर्दोष कर्तृवादो व्यवस्थित ॥ "

वास्तविक रीत्या तो आत्मा ही ईश्वर है । क्योंकि प्रत्येक आत्मामें ईश्वर-शक्ति मौजूद है । आत्मारूपी ईश्वर सब तरहकी

क्रियाएँ करता रहता है इसलिए वह कर्ता है। इस प्रकारसे कर्तृत्ववाद (ईश्वरकर्तृत्ववाद) की व्यवस्था हो सकती है।

आगे और भी लिखा है कि—

" शास्त्रकारा महात्मानः प्रायो वीतस्पृहा भवे।
सत्त्वार्थसंप्रवृत्ताश्च कथं तेऽयुक्तभाषिणः ॥"

" अभिप्रायस्ततस्तेषां सम्यग्मृग्यो हितैषिणा।
न्यायशास्त्राविरोधेन यथाऽऽह मनुरप्यदः " ॥

" आर्षं च धर्मशास्त्रं च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥

भावार्थ—जहाँ ईश्वर जगत्कर्ता बताया गया है, वहाँ उस अभिप्रायहीसे उसको कर्ता समझना चाहिए। परमार्थ दृष्टिसे कोई भी शास्त्रकर्ता ईश्वरको जगत्कर्ता नहीं बता सकता है। क्योंकि ग्रन्थ बनानेवाले ऋषि-महात्मा प्रायः परमार्थदर्शियोंके और लोकोपकारक वृत्तिवाले होते हैं इस लिए वे अयुक्त-प्रमाणबाधित उपदेश नहीं दे सकते हैं। इसलिए उनके वचनोंके रहस्यको समझना चाहिए; सोचना चाहिए कि उन्होंने अमुक बात किस आशयसे कही है।

इसके बाद ग्रंथकार प्रकृतिवादकी समीक्षा करते हैं। सांख्यमतानुयायी विद्वानोंने प्रकृतिवादकी जो विवेचना की है उससे असंतोष प्रकट कर उन्होंने प्रकृतिवादमें वास्तविक क्या आशय है उसका प्रतिपादन किया है। अन्तमें वे लिखते हैं कि—

"एवं प्रकृतिवादोऽपि विज्ञेयः सत्य एव हि।
कपिलोक्तत्वतश्चैव दिव्यो हि स महामुनिः ॥"

भावार्थ—इस तरह (प्रकृतिवादका जो वास्तविक रहस्य बताया गया है उसके अनुसार) प्रकृतिवादको यथार्थ ही जानना चाहिए। अलावा इसके वह **कपिलका** उपदेश है, इसलिए सत्य है, क्योंकि वे दिव्यज्ञानी महामुनि थे।

आगे उन्होंने क्षणिकवाद और विज्ञानवादकी आलोचना की है, उनमें कहाँ कहाँ दोष हैं सो बताये हैं और अन्तमें इस तरह वस्तु-स्थितिका कथन किया है.—

"अन्ये त्वभिदधत्येवमेतदास्थानिवृत्तये।
क्षणिकं सर्वमेवेति बुद्धेनोक्त न तत्त्वतः" ॥
"विज्ञानमात्रमप्येवं बाह्यसंगनिवृत्तये।
विनेयान् काश्चिदाश्रित्य यद्वा तद्देशनार्हत" ॥
"एव च शून्यवादोपि सद्विनेयानुगुण्यत।
अभिप्रायत इत्युक्तो लक्ष्यते तत्त्ववेदिना" ॥

भावार्थ—मध्यस्थ पुरुषोंका कथन है, कि बुद्धने क्षणिकवाद परमार्थदृष्टिसे—वस्तुस्थितिको देखकर नहीं कहा है, बल्के मोहवासनाको दूर करनेके लिए कहा है। विज्ञानवाद भी वैसे शिष्योंको लक्ष्य करके अथवा विषय सगको दूर करनेके लिए बताया गया है। ऐसा जान पडता है कि, बुद्धने शून्यवाद भी योग्यशिष्योंको लक्ष्यमें रख-कर वैराग्यकी पुष्टि करनेके आशयसे बताया है।

वेदान्तके अद्वैतवादकी वेदान्तानुयायी विद्वानोंने जो विवेचना की है, उसमें दोष बताकर आचार्य महाराज कहते हैं कि·—

"अन्ये व्याख्यानयन्त्येव समभावप्रसिद्धये।
अद्वैतदेशना शास्त्रे निर्दिष्टा न तु तत्त्वतः" ॥

भावार्थ—मध्यस्थ महर्षि कहते हैं कि, अद्वैतवाद वस्तुतत्त्वकी दृष्टिसे नहीं बताया गया है; किन्तु समभाव-प्राप्तिके लिए बताया गया है।

इस तरह जैन महात्माओंका, अन्य दर्शनोंकी तटस्थदृष्टिसे परीक्षा करना; उनका समन्वय करनेके लिए दृष्टि फैलाना, और गुणदृष्टिसे पूर्णतया विचार करना कि, जैनेतर दर्शनोंके सिद्धान्त जैनसिद्धान्तोंके साथ कैसे मिलते हैं? जैनत्वकी—जैनदृष्टिकी कम महत्ता नहीं है।

अन्यदर्शनोंके पुरुषोंको 'महर्षि' 'महामति' और इसी प्रकारके दूसरे ऊँचे शब्दोंसे अपने ग्रंथोंमें उल्लेख करना और पृथक् अभिप्रायवालोंके मतका खंडन करते हुए भी उनके लिए हलके शब्दोंका व्यवहार न करना जैनमहापुरुषोंके उदार आशयका प्रमाण है। धार्मिक मत-भेदके प्रसंगमें भी विरुद्ध दर्शनकारोंकी ओर प्रेम-दृष्टिसे देखना और तदनुसार ही व्यवहार करना कितनी सात्विकता है!

देखिए! जैनाचार्योंके माध्यस्थ्य-पूर्ण उद्गार—

"भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै" ॥

—हेमचन्द्राचार्य।

"नाशाम्बरत्वे न सिताम्बरत्वे
न तर्कवादे न च तत्त्ववादे।
न पक्षसेवाऽऽश्रयणेन मुक्तिः
कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव" ॥

—उपदेशतरंगिणी।

"पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद् वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः" ॥

—हरिभद्रसूरि।

भावार्थ—“ जिनके, संसारके कारणभूत कर्मरूपी अकुरोंको उत्पन्न करनेवाले राग द्वेषादि समग्र दोष क्षीण हो चुके हैं, उनको, वे चाहे ब्रह्मा हों, विष्णु हों, शकर हों या जिन हों मैं नमस्कार करता हूँ। ”

“ मोक्ष न दिगम्बरावस्थामें है, न श्वेताम्बरावस्थामें है, न तर्क-जालमें है, न तत्त्ववादमें है और न स्वपक्षका समर्थन करनेहीमें है। वस्तुतः मोक्ष कषायोंसे (क्रोध, मान, माया और लोभसे) मुक्त होनेमें है। ”

“ परमात्मा महावीरके प्रति न मेरा पक्षपात है और न महर्षि कपिल, और महात्मा बुद्ध आदिहीके प्रति मेरा द्वेष है। मैं तो मध्य-स्थबुद्धिसे, निर्दोष परीक्षाद्वारा जिनका वचन युक्त हो उन्हींका शासन स्वीकारनेके लिए तैयार हूँ। ”

उपसंहार।

जैनदर्शनकी उदारताका थोडासा विवेचन किया गया। इससे पाठक समझ गये होंगे कि जैनदर्शनका क्षेत्र सकुचित नहीं है; वह बहुत ही विस्तृत है। यद्यपि हमारे संकुचित वक्तव्यक्षेत्रमेंतमाम तत्त्वोंका समास न हो सका है तथापि जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, सवर, निर्जरा, बध और मोक्ष इन नौ तत्त्वोंका, जीवास्तिकाय धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल इन छः द्रव्योंका, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्रिरूप मोक्षमार्गका, गुणस्थान, अध्यात्म, जैन-आचार, न्यायशैली, स्याद्वाद, सप्तभगी और नयका—इतनी बातोंका दिग्दर्शन कराया गया है।

परिशिष्ट (१)

कितने समयके बाद कौनसे तीर्थंकर हुए ?

१-ऋषभदेवजी-तीसरे आरेके पिछले भागमें हुए।
२-अजितनाथजी-ऋषभदेवजीके मोक्ष जानेके पचास लाख

	कोटि	सागरोपम	बीते	तब
३-संभवनाथजी-३० लाख	"	"	"	"
४-अभिनंदनजी-१० लाख	"	"	"	
५ सुमतिनाथ- ९ "		"	"	"
६-पद्मप्रभु- ९० हजार	"	"	"	"
७-सुपार्श्वनाथ- ९ "	"	"	"	"
८-चंद्रप्रभु- ९ सौ	"		"	"

९-पुष्पदंतजी-(सुविधिनाथ) ९ कोटि सागरोपम बीते तब।
१०-शीतलनाथजी- ९ " " " "
११-श्रेयांसनाथ-सौ सागरोपम छासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम एक कोटि सागरोपम बीते तब।
१२-वासु पूज्यजी-५४ सागरोपम बीते तब।
१३ विमलनाथजी-३० " बीते तब।
१४-अनंत नाथजी-९ " " "
१५ धर्मनाथजी- ४ " " "
१६-शान्तिनाथजी-३/४ पल्योपम कम तीन सागरोपम बीते तब।
१७ कुंथुनाथजी-आधा पल्योपम बीता तब।
१८ अरनाथजी-एक हजार कोटि वर्ष कम १/४ पल्योपम बीता तब।
१९-मल्लिनाथजी-एक हजार कोटि वर्ष बीते तब।
२० मुनिसुव्रतजी-चौपनलाख वर्ष " "।
२१ नमिनाथजी-छः लाख वर्ष " "।
२२-नेमिनाथजी-पाँच लाख वर्ष " "।
२३-पार्श्वनाथजी-८३७५० वर्ष " "।
२४-महावीर स्वामी-ढाई सौ वर्ष " "।

जैनरत्न पूर्वार्द्धका शुद्धिपत्र ।

पे०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
१०	१०	अरिष्टनेमिकी माता शिवादेवीने हस्ति देखा	महावीर स्वामीकी माता त्रिशला देवीने सिंह देखा ।
१८	९	पाषाणके दो गोलोंको पृथ्वीम पछाडती है ।	घूघरे बजाती है ।
२०	४	अठासी ।	२८ अट्ठाईस ।
२३	११	एक हजार आठ	आठ हजार ।
२३	१२	कुल मिलाकर इन घडोंकी सख्या ।	कुल मिलाकर ढाई सौ अभिषेकोंमें इन घडोंकी सख्या ।
२५	८	चार ।	पाँच ।
२६	९	तीर्थंकर नामकर्मका उदय होता है ।	तीर्थकी स्थापना करते हैं ।
३१	२	मणिका के ।	मणियोंके ।
३१	८	(धूप)	(केशर ककूक)
३१	१५	घी तथा शहद डालते है ।	घी डालते हैं ।
३२	८	रुधिर दुग्धके समान।	घिर और मांस दुग्धके समान।
३२	१७	दो सो कोस तक।	सौ कोस तक ।
३४	५	बारह जोडी (चौबीस)	चार जोडी (आठ)
३५	९	या मूलातिशय कहलाते हैं।	कहलाते है ।
३६	५	सवासौ योजनतक	पचीस योजन (सौ कोस) तक।

३६ सत्रहवीं लाइनके आगे "ये चार मूलातिशय कहलाते है।" यह वाक्य और पढिए ।

पे०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
१०३	४	वितादि।	वितादित।
११३	८	घसुमित्रने।	वसुमित्रने।
११३	१४	(इसमें 'त्रिपदीके अनुसार' दो बार आया है, वह एक ही बार होना चाहिए।	
११३	१६	महायज्ञ।	महायक्ष
११८	२१	वहत्तर लाख वर्षकी।	बहत्तर लाख पूर्व वर्षकी।
११८	२२	पादोपगमन।	पाद्पोपगमन।
१२२	२	त्वमसुनाये।	स्वम सुनाये।
१२३	४	शववनाथ।	शभवनाथ
१२३	७	पूर्व भोग भोगनेके बाद।	पूर्व बीतनेके बाद
१२३	२२	कौओंको खिलाना।	कौओंको उडानेके लिए फेंकना है।
१२५	१	तीन लाख।	तीन लाख और छत्तीस हजार साध्वियाँ।
१२५	१९	एक पूर्वांग कम।	चार पूर्वांग कम।
१२८	५	१ गणधर।	११६ गणधर।
१२८	७	एक हजार आठ सौ।	एक हजार पाँच सौ।
१२८	१९	आठ पूर्वांगमें एक लाख पूर्व कम इस तरह।	आठ पूर्वांग कम एक लाख पूर्व इस तरह।
१३२	१७	वत्स नामका नगर है।	वत्स नामका विजय (द्वीप) है।
१३३	४	वहाँ ३३ सागरोपम	वहाँ ३१ सागरोपम।
१३७	५	बीस पूर्वांग न्यून बीस लाख पूर्व	बीस पूर्वांग न्यून एक लाख पूर्व।
१४०	३	२४ पूर्व सहित।	२४ पूर्व कम।
१४०	११	हाथके आँवलेकी	निर्मल जलकी।

पे० ला०	अशुद्ध	शुद्ध
२०५	३–मुनिवस्थामें ।	मुनि अवस्थामें ।
२०५	८–अतिशयार्द्धिभि ।	अतिशयर्द्धिभि. ।
२०७	१३–४५०० सौ वर्ष ।	२३ हजार साढे सात सौ ।
२०८	९–जला नामकी ।	बला नामकी ।
२०९	१६–नदवर्तना ।	नदवर्त्तदा ।
२०९	१६–प्रभुने ६४०० ।	प्रभुने ६४ हजार ।
२११	१–सबिलावती ।	सलिलावती ।
२१२	९–मोतियोंकी ।	माल्य (पुष्प)
२१८	११–निथ्यात्वी ।	मिथ्यात्वी ।
२४०	१३–चित्र नक्षत्रमें ।	चित्रा नक्षत्रमें ।
२५१	१५–अतस वृक्ष ।	वेतस (बैंत) वृक्ष ।
२५७	१५–आहार पानी लेकर ।	नेम्निाथ प्रभुकी वदनाकर ।
२५९	१५–साध्वियाँ ।	श्राविकाएँ ।
२६४	१६–मरुभूति ।	मरुभूति हाथी ।
२७५	६–देवलोकसे ।	विमानसे ।
२८७	१–नशत्रम ।	नक्षत्रमें ।
२८७	५–८६ हजार ।	८३ हजार ।
२८८	२०–समयसार ।	नयसार । (आगे भी समयसारकी जगह नयसार पढिए ।)
३०४	२०–(उत्तराषाढा)	(उत्तराफाल्गुनी)
३०७	३–उत्तराषाढा ।	उत्तराफाल्गुनी ।
३०८	५–उत्तराषाढा ।	उत्तरा फाल्गुनी ।
३१६	८–इन्द्र बड़े तडके उठकर सोचने लगा ।	उस समय इन्द्र सोचने लगा ।
३२१	११–बैल आर्तध्यानमें मरकर ।	बैल मरकर ।

जैनरत्न (प्रथमखंड)

या

१ चौवीस तीर्थंकर चरित्र

(भूमिका लेखक-आचार्यमहाराज श्रीविजयवल्लभ सूरिजीके प्रशिष्य मुनि

श्रीचरणविजयजी महाराज)

लेखक-कृष्णलाल वर्मा

कलिकाल सर्वज्ञ श्रीमद् हेमचंद्राचार्य रचित त्रिपष्टिशलाकापुरुषचरित्र और दूसरे अनेक ग्रंथोंके आधारपर यह ग्रंथ लिखा गया है। इस ग्रंथकी भाषा बडी ही सुंदर और सरल है। बडे टाइपमें छपाया गया है, जिससे कम पढे लिखे स्त्रीपुरुष भी आसानीसे पढ़ और समझ सकें। ऊपर सुनहरी अक्षरोंवाली कपडेकी बाईंडिंग। मूल्य ६)

इसमें पूर्वार्द्धमें २४ तीर्थंकरोंके चरित्र और उत्तरार्द्धमें करीब ४० वर्तमानके जैन सद्गृहस्थोंके परिचय हैं। पूर्वार्द्धमें करीब ६ सौ पेज है और उत्तरार्द्धमें करीब दो सौ।

यह ग्रंथ जैनरत्नकी निम्नलिखित योजनाका प्रथमखंड है।

जैनरत्न

इस ग्रंथमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, बलदेव, राजा, आचार्य, साधु, साध्वियाँ, श्रावक और श्राविकाएँ वगैराके चरित्र रहेंगे।

ग्रंथ कई खडोंमें प्रकाशित किया जायगा। हरेक खडमें दो विभाग रहेंगे। एक पूर्वार्द्ध और दूसरा उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्धमें प्राचीन-भूतकालके महापुरुषोंके चरित्र रहेंगे और उत्तरार्द्धमें वर्तमान सज्जनोंका परिचय रहेगा।

प्राचीन कालके चरित्रोंमें त्रिपष्टिशलाकापुरुषचरित्रके पश्चात भगवान महावीरके बादका सभी सिलसिलेवार इतिहास रहेगा।

(१) भगवान महावीरके पट्टधर आचार्य।

(२) वे सभी आचार्य या साधु जिन्होंने जैनधर्मकी जयपताका फहराई और अनेक जातियोंको जैनधर्मानुयायिनी बनाया। जैसे, ओसवाल, अग्रवाल, पोरवाड,

पांच रुपये देकर ग्राहक होनेवालोंसे रु २५) ३ पीछेसे ग्रंथकी कीमत जितनी रखी जाय उतनी। जो सज्जन इस ग्रंथकी ५ प्रतियोंके ग्राहक होंगे वे **सहायक,** जो १० के ग्राहक होंगे वे **आश्रयदाता,** जो १५ के ग्राहक होंगे वे **रक्षक,** और जो २० के ग्राहक होंगे वे **पोषक** समझे जायँगे।

हमारे अन्य जैनग्रंथ

२ जैनरामायण

(अ०—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा)

इसमें राम, लक्ष्मण, सीता और रावणके मुख्यतासे और हनुमान, अंजनासुन्दरी, पवनंजय तथा वालीके गौणरूपसें चरित्र हैं। प्रसंगवश और भी कई कथाएँ इसमें आ गई हैं। वर्णन करनेका ढंग बडा ही सुन्दर है। हिन्दू रामायणसे यह बिलकुल भिन्न है। इसके पढनेसे पाठकोंको यह भी ज्ञात हो जाता है, कि रामचंद्रजीकी ओरसे युद्ध करनेवाले ' वानर ' पशु नहीं थे बल्कि वे विद्याधर थे। ' वानर ' एक वंशका नाम था। इसी तरह रावण 'आदि ' राक्षस-दैत्य नहीं थे बल्कि ' राक्षस ' एक वंशका नाम था। जैनाचार्य, श्रीहेमचंद्राचार्य रचित त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्रके सातवें पर्वका यह अनुवाद है। छपाई सफाई बढिया। पक्की बाइंडिंग। ऊपर सुनहरी अक्षर। मू० ४) रु.

३ स्त्रीरत्न

(लेखक-श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा)

इसमें ब्राह्मी, सुंदरी और चंदनबालाके पावन चरित्र हैं। इनका वाचन जीवनको उच्च व धर्म-परायण बनाता है और संसारकी वासनाओंसे छुडाकर कर्तव्यमार्गपर लगाता है। चार सुंदर चित्रोंसें सुशोभित। दूसरी बार छपी है। मू० पाँच आने।

४ सुरसुंदरी या सात कौडीमें राज्य

(लेखक—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा)

[स्त्री समाजके लिए सुंदर भेट]

बालपनका शिक्षाकाल और आनंद, पति पत्नीका उल्लासमय जीवन, प्रति पेजमें पवित्रताकी अपूर्व भावनाएँ, पतिकी भूलका दुखद परिणाम, सुरसुंदरीपर पडे हुए

८ जैनदर्शन

अ०—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा

इसके मूल लेखक हैं स्वर्गीय आचार्य श्रीविजयधर्म सूरिजीके शिष्यरत्न मुनि श्री न्यायविजयजी महाराज। इसको पढ़नेसे जैनदर्शनकी मोटी मोटी सभी बातें सरलतासे समझमें आ जाती हैं। विद्यार्थियोंको पढ़ाने, इनाममें देने और थोड़ेमें जैनदर्शनकी बातें समझनेके लिए यह ग्रंथ बहुत उपयोगी है। मूल्य बारह आने।

९ जैन तत्त्व प्रदीप

प्रसिद्ध पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराजके विद्वान शिष्य मुनि श्री घासीलालजी महाराज द्वारा लिखित। इसमें देवस्वरूप, गुरुस्वरूप, धर्मस्वरूप, सम्यग्ज्ञान दर्शन और चारित्र स्वरूप, जीवस्वरूप, २४ दण्डक, २४ द्वार। इतनी बातें हैं। पहले मूल प्राकृत और फिर उसपर संस्कृत एवं हिन्दी कविता है। स्थानकवासी सम्प्रदायकी दृष्टिसे तत्त्वोंकी जानकारीके लिए यह ग्रंथ बहुत उपयोगी है। विद्यार्थियोंके लिए स्कूलोंमें पढ़ानेकी चीज है। मूल्य सादीके ॥) सजिल्दका १)

१० जैन सतीरत्न (गुजराती)

इसमें ब्राह्मी, सुंदरी, चंदनबाला, महासती सीता और सती दमयंतीके चारित्र हैं। अनेक सादे और रंगीन चित्रोंसे सुशोभित। मूल्य १।) सजिल्द १॥।)

हमारे सर्वोपयोगी ग्रंथ

१ गृहिणीगौरव।

(अ०—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा।)

इसमें नारी जीवनको गौरवान्वित करने वाली सात गल्पें हैं।

(१) गृणिहीगौरव—इसमें बताया गया है कि, पतिकी वीरता, पतिकी महत्ता और पतिके शौर्यमें ही स्त्रीका गौरव है। स्त्रीका गौरव इसमें नहीं है कि वह साहूकारकी या राजाकी पुत्री होनेसे अपने आपको बड़ी माने और पतिको तुच्छ दृष्टिसे देखे।

" गृहिणी गौरवकी सातों गल्पें बडी ही सुंदर और शिक्षाप्रद हैं । सातोंहीमें कोमलता, कमनीयता और त्यागशीलताके मनोमुग्धकर चित्र चित्रित किये गये हैं । इन्हें देखकर आँखें जुडा जाती हैं और हृदय पवित्र प्रेमकी भावनासे भर जाता है । प्राय प्रत्येक कहानीमें ऐसे प्रसग आये हैं जिन्हें पढकर आँसुओंका रोकना असंभव हो जाता है । पढी लिखी बहिनेबेटियोंको देनेके लिए इससे अच्छी भेट और क्या होगी ? जो स्त्रियाँ पढ नहीं सकतीं हैं उन्हें पढकर ये कहानियाँ सुनानी चाहिए । इससे उनके हृदय पवित्र और उन्नत बनेंगे । पवित्र कहानियोंका ऐसा सुदर सग्रह प्रकाशित करके आपने स्त्रियोपयोगी साहित्यके मनोरंजक अशकी बहुत अच्छी पूर्ति की है ।"

२. आदर्श बहू ।

अनु०—पं० शिवसहाय चतुर्वेदी

बढिया एण्टिक पेपरपर छपी हुई । चार सुदर चित्रोंसे सुशोभित । (तीसरा संस्करण मू०।।।) सजिल्द १।)

यह बगालके सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत शिवनाथ शास्त्रीकी ' मेजबऊ ' नामकी पुस्तकका परिवर्तित अनुवाद है । बगालमें इसका बडा आदर है । थोडे ही समयमें अबतक इसके इक्कीस सस्करण हो चुके हैं । आशा है हिन्दी ससारमें भी इसको आदर होगा । इसमें शारदाके चरित्र द्वारा बताया गया है कि, एक सुशील बहू किस प्रकारसे सारे कुटुम्बमें सुखशान्ति रख सकती है ? कैसे समय पर अपने पतिकी सहायता कर सकती है और कैसे प्रेम दिखानेवाले ससुर और विना ही कारण नाराज रहनेवाली सासकी, एकाग्रताके साथ एकसी भक्ति और सेवा कर सकती है । अपनी गृहस्थीको सुखपूर्ण बनानेके लिए हरेक घरमें इस पुस्तकका पाठ होना चाहिए । (फिरसे छपती है)

३. दरिद्रता और उससे बचनेके उपाय ।

(अनु०—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा ।)

इसमें बताया गया है कि, हरेक मनुष्य प्रामाणिक प्रयत्नसे, रातदिन धनवान बननेके विचारोंसे, अपनेको क्षुद्र न समझनेके खयालसे, गरीबीसे छूट सकता है ।

और सात सात बार पढा है, तो भी उनका जी न भरा। ऐसा उत्तम उपन्यास आजतक प्रकाशित नही हुआ। मूल्य १)

७ वरदान ।

(लेखक—श्रीयुत प्रेमचन्द्रजी ।)

कर्त्तव्य और प्रेमका अनोखा संग्राम, कर्तव्यके हेतु सुखका बलिदान, बाल्पनकी मनमुग्धकारी चुहलें, माता पिताकी कन्याको धनिक घरमें ब्याहनेकी लालसामें युवक युवतिके हृदयोंके टुकडे, और परोपकारके लिए अपना सर्वस्व समर्पण । ये सब आपको इस ग्रंथमें देखनेके लिए मिलेंगे। श्रीयुत प्रेमचन्द्रजीकी सुविख्यात लेखिनीका चमत्कार स्वयं प्रसिद्ध है। पवित्र भावनाओंसे पूर्ण इस ग्रंथका मूल्य १) रु.

८ विधवा प्रार्थना ।

(ले०—स्व० मौलाना अलताफहुसेन हाली ।)

उर्दूके परम प्रसिद्ध लेखक और कवि शमसुल उल्मा मौलाना अल्ताफहुसेन हॉलीकी कविता ' **मनाजात बेवा** ' का यह नागराक्षर संस्करण है।

मूल पुस्तकके कठिन उर्दू और अप्रचलित हिन्दी शब्दोंके अर्थ पादटीकामें दिये हैं।

मौलाना साहबने इस कवितामें विशेपकर हिन्दु विधवाओंके दुखोंका वर्णन किया है। मनाजातका विषय करुणा प्रधान है। आरंभके १४ पृष्ठोंमें विधवा शोकभरे शब्दोंमें ईश्वरकी लीलाका वर्णन करती है, फिर शेष अंशमें वह अपनी रामकहानी सुनाती है।

भाव और रसकी प्रधानताके सिवा, इस कवितामें अलंकार, प्रकृति वर्णन, मनोहर पदयोजना आदि अनेक चमत्कार हैं, । जिनका आनंद पुस्तकको आद्योपान्त पढ़नेहीसे प्राप्त हो सकता है। भाव और भाषा दोनोंके विचारसे ' विधवाप्रार्थना ' एक आदर्श-रचनाका आदर्श है। मू. पाँच आने।

९ सर्वोदय ।

(लेखक—म० गाँधी ।)

कानपुरकी ' प्रभा ' लिखती है —" अर्थशास्त्र और सार्वजनिक सुखके संबंधमे सुविख्यात अंग्रजी लेखक स्वर्गीय जॉन रस्किनके विचार अत्यंत सुंदर और दिव्य

१३ स्वदेशी धर्म।

लेखक०—काका कालेलकर।

इसके विषयमें गाँधीजी कहते हैं। "इसके अदर जो विचार हैं वे स्वदेशी धर्मको सुशोभित करनेवाले हैं। मैं चाहता हूँ कि समस्त भारत इनका पूर्णतया उपयोग करे।" मू०।)

१४ कलियुगमे देवताओंके दर्शन।

हास्यरसपूर्ण एक छोटासा निबंध। मू० एक आना।

१५ संवाद सग्रह।

(लेखक—कृष्णलाल वर्मा।)

हर साल हरेक पाठशाला और हरेक हाइ स्कूलमें वार्षिकोत्सव और पारितोषिक वितीर्णोत्सव हुआ करते हैं। उनमें खेलनेके लिए सवाद कठिनतासे मिलते हैं। इसी कमीको पूरा करनेके लिए लेखकने यह सवाद सग्रह तैयार किया है। इसमें कन्याओंके और लड़कोंके खेलने लायक सवाद हैं। ये सवाद बंबईमें बडी ही सफलताके साथ खेले जा चुके हैं। इसमें जितने गायन हैं उन सबके नोटेशन भी दिये गये हैं। जिससे हरेक आदमी आसानीसे उन्हें गा सकता है और बजा सकता है। मू० १)

१६–१७ बाल श्रीकृष्ण (भाग १ ला, २ रा)

(लेखक—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा)

इसमें भगवान श्रीकृष्णकी बाललीलाका वर्णन है। बच्चे पढ़कर प्रसन्न होते हैं। उनके हृदयमें उत्साह आता है। जीवनकी एक एक घटनापर एक एक कथा है। हरेक कथाके साथ उसके भावको बतानेवाले चित्र हैं। ऊपर आर्टपेपरपर माखनचोर और बसीवालेके बडे ही सुंदर बहुरगे चित्र हैं। मूल्य प्रत्येक भागके चार आने।

१८ शिशुकथा

इस पुस्तकके लेखक श्रीयुत एन जी लिमये बी ए. एस टी सी सुप्रिन्टेण्डेण्ट

१३ स्वदेशी धर्म ।

लेखक०—काका कालेलकर ।

इसके विषयमें गाँधीजी कहते हैं । " इसके अंदर जो विचार हैं वे स्वदेशी र्मको सुशोभित करनेवाले हैं । मैं चाहता हूँ कि समस्त भारत इनका पूर्णतया पयोग करे । " मू० ।)

१४ कलियुगमें देवताओंके दर्शन ।

हास्यरसपूर्ण एक छोटासा निबंध । मू० एक आना ।

१५ संवाद संग्रह ।

(लेखक—कृष्णलाल वर्मा ।)

हर साल हरेक पाठशाला और हरेक हाइ स्कूलमें वार्षिकोत्सव और पारितोषिक वितीर्णोत्सव हुआ करते हैं । उनमें खेलनेके लिए संवाद कठिनतासे मिलते हैं । इसी कमीको पूरा करनेके लिए लेखकने यह संवाद संग्रह तैयार किया है । इसमें कन्याओंके और लडकोंके खेलने लायक संवाद हैं । ये संवाद बंबईमें बडी ही सफलताके साथ खेले जा चुके हैं । इसमें जितने गायन हैं उन सबके नोटेशन भी दिये गये हैं । जिससे हरेक आदमी आसानीसे उन्हें गा सकता है और बजा सकता है । मू० १)

१६–१७ बाल श्रीकृष्ण (भाग १ ला, २ रा)

(लेखक—श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा)

इसमें भगवान श्रीकृष्णकी बाललीलाका वर्णन है । बच्चे पढकर प्रसन्न होते हैं । उनके हृदयमें उत्साह आता है । जीवनकी एक एक घटनापर एक एक कथा है । हरेक कथाके साथ उसके भावको बतानेवाले चित्र हैं । ऊपर आर्टपेपरपर माखनचोर और बंसीवालेके बडे ही सुंदर बहुरंगे चित्र हैं । मूल्य प्रत्येक भागके चार आने ।

१८ शिशुकथा

इस पुस्तकके लेखक श्रीयुत एन जी लिमये बी ए एस टी सी सुप्रिण्टेण्डेण्ट